

शोध दिशा

ISSN 0975-735X

विश्वस्तरीय शोध-पत्रिका : केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से अनुदान प्राप्त

शोध अंक 23

जुलाई-सितंबर 2013

200 रूपए

संपादकीय कार्यालय

हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,
बिजनौर 246701 (उ०प्र०)

फोन : 01342-263232, 07838090732

ई-मेल : shodhdisha@gmail.com

वेब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय

दिल्ली एन०सी०आर०

अनुभूति

सी-106, शिव कला

बी 9/11, सैक्टर 62, नोएडा

फोन : 09952070700

हरियाणा

डॉ० मीना अग्रवाल

बी-203, पार्क व्यू सिटी-2 सोहना रोड,

गुडगाँव (हरियाणा)

फोन : 0124-4076565, 07838090237

डॉ० हरिशरण वर्मा

एफ-120, सेक्टर 10

डी०एल०एफ० (के०एल० मेहता स्कूल के पास)

फरीदाबाद (हरियाणा)

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक

डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

प्रबंध संपादक

डॉ० मीना अग्रवाल

संयुक्त संपादक

डॉ० शंकर क्षेम

उपसंपादक

डॉ० रश्मि त्रिवेदी

कला संपादक

गीतिका गोयल/ डॉ० अनुभूति

उपसंपादक

डॉ० अशोककुमार 09557746346

विधि परामर्शदाता

अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता

ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी०ए०

शुल्क

आजीवन :

व्यक्तिगत : चार हजार रूपए

संस्थागत : पाँच हजार रूपए

वार्षिक शुल्क : पाँच सौ रूपए

यह प्रति : दो सौ रूपए

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें। (सन् 1989 से प्रकाशन-क्षेत्र में सक्रिय)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी आफसेट प्रिंटर्स, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

परामर्श-मंडल

- डॉ० सुधा ओम ढींगरा, 101, Guymon Court, Morrisville, NC-27560 USA
- डॉ० सुरेशचंद्र शुक्ल, अध्यक्ष इंडो-नार्वेजियन सूचना एवं सांस्कृतिक मंच
- प्रो० हरिशंकर आदेश, भारतीय प्राच्य विद्या संस्थान, कनाडा
- डॉ० आर०पी० सिंह (पूर्व कुलपति, मेरठ विश्वविद्यालय) प्राचार्य बरेली कॉलेज, बरेली (उ०प्र०)
- डॉ० अशोक चक्रधर, उपाध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा
- डॉ० कमलकिशोर गोयनका, ए-98, अशोक विहार फ़ेज-1, दिल्ली 110052
- डॉ० हरिमोहन, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, के०एम०मुंशी हिंदी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
- डॉ० राजेंद्र मिश्र, 14/4 स्नेहलता गंज, इंदौर 452003 (म०प्र०)
- डॉ० आदित्य प्रचंडिया, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट (डीम्ड यूनिवर्सिटी) दयालबाग, आगरा (उ०प्र०)
- डॉ० रामसजन पांडेय, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)
- डॉ० दामोदर खड्गे, कार्याध्यक्ष, महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी, मुंबई (महा०)
- डॉ० आनंदप्रकाश त्रिपाठी, अध्यक्ष हिंदी अध्ययन मंडल, डॉ० हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर
- डॉ० पद्मा पाटिल, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महा०)
- डॉ० माया टाक, प्रोफ़ेसर संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज०)
- डॉ० नरेंद्रकिशोर पांडेय, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज०)
- डॉ० अनिलकुमार जैन, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज०)
- डॉ० हनुमानप्रसाद शुक्ल, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
- डॉ० बाबूराम, प्रोफ़ेसर, हिंदी-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र
- डॉ० चंद्रकांत मिसाल, अध्यक्ष हिंदी विभाग, एस०एन०डी०टी० महिला विद्यापीठ, पुणे (महा०)
- डॉ० मुकेश गर्ग, रीडर हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- डॉ० जितेंद्र वत्स, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार)
- डॉ० हरeram पाठक, अध्यक्ष हिंदी विभाग, डिगबोई महिला महाविद्यालय, डिगबोई (तिनसुकिया) असम
- डॉ० शंभुनाथ तिवारी, रीडर हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ०प्र०)
- डॉ० श्यामधर तिवारी, प्रोफ़ेसर हिं०वि०, संघटक महाविद्यालय पौड़ी, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर
- डॉ० दिनेशकुमार चौबे, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)
- डॉ० सभापति मिश्र, पूर्व प्राचार्य, हंडिया कालेज, हंडिया, इलाहाबाद (उ०प्र०)
- डॉ० शाहबुद्दीन शेख, प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा०, औरंगाबाद (महा०)
- डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण', (पूर्व प्राचार्य) 74/3 नया नेहरूनगर, रुड़की (उत्तराखंड)
- डॉ० महेशचंद्र, रीडर हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ०प्र०)
- डॉ० संतोषकुमार गौड़, रीडर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ०प्र०)
- डॉ० महेश दिवाकर, अध्यक्ष, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी साहित्य एवं कला मंच, मुरादाबाद (उ०प्र०)
- डॉ० घनश्याम अरोरा, पूर्व रीडर इतिहास विभाग, वर्धमान कालेज, बिजनौर (उ०प्र०)
- डॉ० सुधारानी सिंह, वरिष्ठ प्रवक्ता हिंदी विभाग, शहीद मंगल पांडेय राजकीय महिला स्ना० महा०, मेरठ

आजीवन सदस्य

डॉ० रामानंद शर्मा

अध्यक्ष हिंदी विभाग, हिंदू (पी०जी०) कालेज
9, जिगर कालोनी, मुरादाबाद (उ०प्र०)

डॉ० मधुलिका तिवारी

रीडर एवं अध्यक्ष, इतिहास विभाग,
एल०आर० पी०जी० कॉलेज, साहिबाबाद
गाषियाबाद (उ०प्र०)

श्री हरिराम 'पथिक'

स्नेहगंगा, विष्णुधाम कालोनी,
गली नं० 3, न्यू माधोनगर, सहारनपुर (उ०प्र०)

डॉ० वंदना सेमल्टे

टी०एफ० 7, प्रेरणा अपार्टमेंट्स,
गांधीनगर, गाजियाबाद 201001

डॉ० मनमोहन शुक्ल

147, मायापुरी, आवास योजना
झूँसी, इलाहाबाद 211019

डॉ० अश्विनीकुमार 'विष्णु'

अध्यक्ष अंग्रेजी विभाग
सीताबाई आर्ट्स कालेज, अकोला (महा०)

डॉ० शहाबुद्दीन नियाज़ मुहम्मद शेख

(प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा० औरंगाबाद)
अध्यक्ष, राष्ट्रीय हिंदी सेवी महासंघ
78/484 सिविल हडको, अहमदनगर 414003
09850119687

डॉ० लियाकत मियाँ भाई शेख

अखिलेश नगर, प्लॉट क्र० 11
नए बस स्टैंड के पास,
गंगापुर, (औरंगाबाद) महा०
09423933402

प्रो० शेख मुहम्मद शाकिर शेख बशीर

अध्यक्ष हिंदी विभाग
पूना कालेज ऑफ आर्ट्स, कामर्स एंड साइंस
कैंप, पुणे 411201 (महा०)
09423017017

डॉ० अशोक द्रौपद गायकवाड़

'कृतज्ञता', अवधूत पार्क, आरोह निसर्ग के पास
कादंबरी नगर क्रमांक 1 के पास
पाइप लाइन रोड, सावेडी
अहमदनगर (महा०) 414003
09822941330

प्रा० दत्तात्रय माधवराव टिलेकर

द्वारा संतोष मेडिकल, साई प्रेस्टिज, फ्लैट नं० 13
पाटील अली, ओतूर
तह० जुन्नर, ज़िला पुणे (महा०) 412409
09860229544

डॉ० मजीद मुनीर शेख

ग्राम व पो० साष्ट, पिंपल गाँव,
(वाया अंकुशनगर) तह० अंबड
षिला जालना (महा०) 431212
09765944586

श्री अरुणकुमार भगत

माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता
एवं संचार विश्वविद्यालय, नोएडा परिसर
'माध्यम' सी-56, ए/5, सेक्टर-62
नोएडा 201301 (उ०प्र०)

डॉ० मेहमूद रसूल पटेल

दारुल अमन, काशीनगर,
जालना रोड, बीड़ (महा०)

डॉ० भरत त्र्यंबक शेणकर

द्वारा होटल जय महाराष्ट्र
ग्राम, पो० व तह० अकोले
षिला अहमदनगर (महा०) 422601
09423164521

डॉ० पोपट विठ्ठल कोटमे

फ्लैट नं० 5, सत्यसंगम
कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी
श्री जयनगर, इंदिरानगर, नासिक (महा०) 422006
09850760866

प्रा० अनंत नानाजी केदारे

5 पार्वती अपार्टमेंट, अयोध्या कॉलोनी
दाते नगर, गंगापुर रोड
नासिक 422005 (महा०)

डॉ० शोभा साहेबराव राणे

17 स्वर समृद्धि अपार्टमेंट, नंदनवन लॉन के सामने
आशाराम बापू आश्रम मार्ग, सावरकर नगर,
गंगापुर रोड,
नासिक (महा०) 422013

डॉ० श्रीमती विजयालक्ष्मी नारायण रामटेके

सुशीला सोसायटी, प्लॉट क्र० 5
अजय जिम के पीछे, तेलरांधे के सामने
जरी पटका रिंगरोड, जरी पटका पोस्ट ऑफिस
नागपुर 440014 (महा०)

डॉ० मंजूर चाँदभाई सय्यद

‘गुलसिता’ 223 औदुंबरनगर, अमृतधाम
पंचवटी, नासिक 422004 (महा०)
09822991516

प्रा० (श्रीमती) ऐनूर अजीजभाई इनामदार

स्वामी समर्थनगर, राजूरी रोड
कोल्हार 413710
तहसील राहाता, जिला अहमदनगर (महा०)
09011449636

डॉ० एस०एन० देवरे

प्लॉट नं० 17, सिद्धिविनायक कॉलोनी
देवपुर, धुले (महा०) 424002

डॉ० अर्चना वालिया

286, जौनपुर दक्षिण, स्नेहकुंज कालोनी,
कोटद्वार (गढ़वाल) उत्तराखंड 246149

डॉ० विपिनकुमार गिरि

पुराना माधव नगर, भारद्वाज गली,
सहारनपुर (उ०प्र०)

श्री हेमांशु शर्मा

हिंदी विभाग, साईदास ए०एस०सी० सी०से० स्कूल
पटेल चौक,
जालंधर शहर (पंजाब)

प्राचार्या

आर०बी०डी० महिला महाविद्यालय
बिजनौर (उ०प्र०) 246701

प्राचार्या

कमला नेहरू कालेज फॉर वुमैन
फगवाड़ा (कपूरथला) पंजाब

प्राचार्या

कन्या महाविद्यालय
विद्यालय मार्ग,
जालंधर (पंजाब) 144004

डॉ० विद्या चौधरी

मिर्जापुर फार्म,
कुरुक्षेत्र (हरियाणा) 136119

डॉ० विजय इंदु

1608 हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी
सेक्टर 10 ए,
गुड़गाँव (हरियाणा) 122001

डॉ० सुधारानी सिंह

सी-54, सेक्टर-3, सुशांत सिटी,
दिल्ली बाईपास, मेरठ (उ०प्र०)

डॉ० राजेंद्र मिश्र

14/4 स्नेहलता गंज,
इंदौर 452003 (म०प्र०)

डॉ० स्मृति शुक्ला

ए-16 पंचशील नगर, नर्मदा रोड,
जबलपुर (म०प्र०)

डॉ० सुरेंद्र यादव

301 नवदीप अपार्टमेंट, 7 शंकर नगर (साकेत),
इंदौर 452018

डॉ० प्रेमव्रत तिवारी

सरस्वती सदन, बेतियाहाता,
गोरखपुर (उ०प्र०)

प्रो० डॉ० चंद्रकांत मिसाल

हिंदी विभाग,
एस०एन०डी०टी० वुमन विश्वविद्यालय,
कर्वे रोड,
पुणे 411038 (महाराष्ट्र)

सुश्री शारदा बी. जावरे
ओमकार, समृद्धि डेपलपर, प्लेट क्र० 402
प्लॉट नं० 26, सर्व क्र० 137/1 ए,
बराटे स्कूल के पास, वारजे, मालवाडी,
पुणे 411058 (महाराष्ट्र)
08805616654

सुश्री कामिनी अशोक न्यायाधीश
661 अरुणोदय कालोनी, सिडको एन-5
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
09975773345

प्रा. अशोक शामराव मराठे
116, सखाराम नगर,
पेरेजपुर रोड, साक्री, तह. साक्री,
जिला धुले 424304 (महाराष्ट्र)

प्रा. पंजाबी ममता नानकचंद
19/20, त्रिमूर्ति नगर, मोरे अस्पताल के पास,
साक्री, तहसील साक्री,
जिला धुले 424304

प्रा. करुणा दत्तात्रय अहिरे
व्ही.यू.पाटील कला एवं विज्ञान महाविद्यालय,
साक्री, तह. साक्री,
जिला धुले 424304

प्रा. डॉ० प्रमोद गोकुळ पाटील
मु.पो. मोराणे (प्र.ल.)
तह. जिला धुले 424001 (महाराष्ट्र)

प्रा. डॉ० अभयकुमार रमेश खैरनार
मु. पो. जुनवणे,
तह. जि. धुले (महाराष्ट्र)

प्रा. डॉ० संजय विक्रम ढोढरे
7, मोतीराम नगर, वाडीभोकर रोड,
देवपूर, धुले 424002 (महाराष्ट्र)

प्रा० उषा पुंडलिक शिरोळे
द्वारा श्री शशिकांत हरी बागडे
गुरुकृपा हास्पिटल, डाक पारीपत्यदार
सावतानगर मालेगाँव, तह-मालेगाँव
जिला नासिक (महा०)

प्रा. डॉ० अशफाक सिकलगर
जीएफ-102 ताज अपार्टमेंट,
चालीसगाँव रोड,
धुले (महाराष्ट्र)

प्रा. डॉ० महेंद्रसिंह रघुवंशी
सरस्वती नगर, प्लॉट नं. 10,
वाघेश्वरी मंदिर के पास,
नंदुरबार 425412

डॉ० सुषमा कोंडे
81/ए, प्लॉट नं० 9/ए,
गिरिदर्शन हाउसिंग सोसायटी, बानेर रोड
पुणे 411007 (महाराष्ट्र)
09822848464

प्रा. डॉ० योगेश गोकुळ पाटील
प्लॉट नं. 12, नयना सोसायटी,
नकाणे रोड,
देवपूर, धुले 424002

प्रा. डॉ० मंजू तरडेजा (सिंघाणी)
ब्लॉक नं. आर-10, रूम नं. 10,
कुमार नगर,
साक्री रोड, धुले 424001

प्रा. डॉ० चंद्रमादेवी पाटील
59, धनदाई नगर, गोंदुर रोड, वलवाडी,
देवपूर, धुले 424005 (महाराष्ट्र)

डॉ० संजयकुमार नंदलाल शर्मा
38, जमनानंद, गुरुकुल कालोनी,
तलोदा,
जि० नंदुरबार (महाराष्ट्र) 425413

श्रीमती वर्षा सुभाषचंद्र देशमुख
बी-6, चंद्रवेल अपार्टमेंट, गोविंदनगर होटेल
प्रकाश्या भागे, मुंबई नाका,
नासिक (महाराष्ट्र) 422010

डॉ० देवकीनंदन महाजन
1 टेलीफोन कालोनी,
धुले रोड
अमलनेर (जलगाँव) महाराष्ट्र

डॉ० कल्पना राजेंद्र पाटील
38, जमनानंद, गुरुकुल कालोनी,
तलोदा,
जि० नंदुरबार (महाराष्ट्र) 425413

प्रा० डॉ० रामचंद्र माली
अध्यक्ष हिंदी विभाग, क०वा०वि० महाविद्यालय,
नवापुर, षिला नंदुरबार (महाराष्ट्र)

डॉ० रेखा वसंत पाटील
सीतामाई नगर, चालिसगाँव
जिला-जलगाँव (महा०) 424101

प्राचार्य
विद्यावर्धिनी महाविद्यालय,
धुले (महा०) 424001

डॉ० हेमलता कांचनकर
43 नंदनवन कालोनी (कैंट),
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
09730202528

डॉ० पूनम भारद्वाज
17 प्रेम विहार,
मुजफ्फरनगर 251001
09997100697

श्रीमती अल्पना
द्वारा श्री अरुण कपूर, III एच 288 नेहरू नगर
पवन सिनेमा के पीछे, राकेश मार्ग
गाजियाबाद 201001

सुश्री नेहा संदीप घोरपड़े
द्वारा सुश्री सुनीता पवार
फ्लेट नं० 404, प्रकाश मेमाराइज
एस नं० 73, दूध डेयरी, पुणे-411046

सुश्री निर्मला पुरुषोत्तम तोमर
फ्लेट नं० 12, एस नं० 137/2
वारजे मलवाडी, पुणे 411058
08087612123

प्रा० शिंदे नवनाथ सर्जेराव
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
सांगोला महाविद्यालय, सांगोला
कडलास रोड, सांगोला (सोलानुर) 413307

09763602304

डॉ० ज्योतिसिंह
213 अनूपनगर
सी०एच०एल० अपोलो हास्पिटल के सामने
ए०बी० रोड,
इंदौर 452008 (म०प्र०)
09926300355

डॉ० चंदा तलेरा जैन
जी-17, रेडियो कालोनी
इंदौर (म०प्र०) 452001
09425944773

डॉ० वंदना अग्निहोत्री
194 सुखदेव नगर, एरोडूम रोड
इंदौर (म०प्र०) 452001
09926477787

डॉ० पुष्पा शाक्य
110, सुंदर नगर मेन
सुकलिया, इंदौर (म०प्र०)
09827281203

सुश्री मीनल वार्वे
बी-8, ड्रीम घरकुल,
एम.एस.ई.बी. कॉलोनी के पास,
शिवाजी नगर, जेल रोड,
नासिक रोड (महाराष्ट्र)

Dr. V. Jayalakshmi
Mathura, Plot No. 38
5th Cross Street, Gokul Nagar
Preumbakkam
Chennai-600100

प्रा० ईश्वर पदमसिंग ठाकुर
जनशक्ति कालोनी
रिंग रोड, फैजपुर
तहसील यावल (जलगाँव)

सुश्री भारती मधुकर पाटील
मु०पो० सावलदे, तहसील शिरपूर
जिला धुले (महा०)

डॉ० सुचित्रा मलिक

37 गांधी आश्रम, विष्णु गार्डन
कनखल (हरिद्वार) उत्तराखंड

डॉ० वंदना श्रीवास्तव

के 83 सी आशियाना
लखनऊ 226012

09415917170

प्राचार्य

शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई
कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय
किला भवन, इंदौर (म०प्र०)

डॉ० चंद्रकिरण अग्निहोत्री

108, रेडियो कालोनी
इंदौर (म०प्र०) 452001

डॉ० जुबैदा हाशिम मुल्लाँ

बैतुल हाशमी, म०नं० 152, ताजनगर
हुबली 580031 (कर्नाटक)

प्रो० दीपक विश्वासराव पाटील

मुकाम पोस्ट सुन्दने
निकट कलाविश्व कंप्यूटर सेंटर
तहसील जिला धुले
घुलेवाडी, संगमनेर (महा०) 424002
099923811609

डॉ० अनिता मधुकर अंतरे

मयूर सोलर ऐजेंसी
स्वामी समर्थ मंदिर के पास
पो० लोनी बी के, तालुका रहाता,
जिला अहमदनगर (महाराष्ट्र) 413736
09970343766

डॉ० विट्ठलसिंह नंदरामसिंह ढाकरे

'सी' टाइप कालेज
शास्त्रीनगर, लासलगाँव
जिला नासिक (महाराष्ट्र) 422306
08888590156

श्री गुलाबराव शांताराम बाविस्कर

201, के-टॉवर, श्रीनंदनगर
सोखड़ा रोड, छाणी रोड
बड़ोदरा (गुजरात) 391740
09624501415

प्रो० अमानुल्लाह मो० शेख

श्रद्धा रेजिडेंसी, बिल्डिंग ए, बिंग ए-201
आई०टी०आई० कालेज के पास
पो० मुकिन्दपुर, तह० नेवासा
जिला अहमदनगर (महा०)

'शोध दिशा' हिंदी में प्रकाशित विश्वस्तरीय शोध पत्रिका है, जो प्रत्येक तीन माह के अंतराल से नियमित रूप से प्रकाशित हो रही है।

पत्रिका में साहित्य और समाजविज्ञान से संबंधित शोध आलेख प्रकाशित किए जाते हैं।

'शोध दिशा' को भारत के प्रतिष्ठित शोध संस्थान हिंदी साहित्य निकेतन द्वारा प्रकाशित किया जाता है।

'शोध दिशा' का उद्देश्य है शोध का विकास और शोध-छात्रों एवं शोध-निदेशकों के मध्य संपर्क-सूत्र का निर्माण।

हमें आशा है कि पत्रिका को देश के सभी शोध-निदेशकों, शोध-छात्रों और साहित्य-प्रेमियों का सहयोग प्राप्त होगा।

जनसुलभ साहित्य माला

हिंदी साहित्य निकेतन ने जनसुलभ साहित्य माला के अंतर्गत निम्नलिखित पुस्तकों को प्रकाशित किया है। इनमें से प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल पचास रुपए है। 12 पुस्तकों का पूरा सैट मात्र 500 रुपए में।

कहानी

कमरा नंबर 103 / सुधा ओम ढींगरा

इमराना हाज़िर हो / महेशचंद्र द्विवेदी

कुत्तेवाले पापा / डॉ० मीना अग्रवाल

प्रेमचंद : कालजयी कहानियाँ / सं० डॉ० कमलकिशोर गोयनका
लघुकथाएँ मानव-जीवन की /

सं० सुकेश साहनी, रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु'
कहानियाँ अमेरिका से / सं० इला प्रसाद

व्यंग्य

दूध का धुला लोकतंत्र / गोपाल चतुर्वेदी

आदमी और कुत्ते की नाक / डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

सच का सामना / डॉ० हरीशकुमार सिंह

व्यंग्य-एकांकी

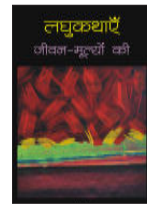
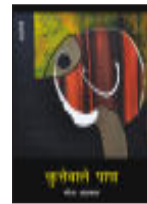
अफलातून की अकादमी / डॉ० शिव शर्मा

सिनेमा

सिनेमा, साहित्य और संस्कृति / नवलकिशोर शर्मा

कविता

मान भी जा छुटकी / गीतिका गोयल



काका हाथरसी के जन्मदिवस पर
18 सितंबर 1906-18 सितंबर 1995

हास्यकवि : काका हाथरसी

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार—‘सच्चा व्यंग्यकार समाज की कुरीतियों को सही रूप में देखता है और अपने व्यंग्यवाण से उसे बेधता रहता है, उसका उद्देश्य समाज का परिशोधन होता है, वह व्यक्ति को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहता, बल्कि उन छिछली मान्यताओं को पर्दाफाश करता है, जिसमें औसत या उससे नीचे का मनुष्य उलझकर असत् आचरण से विरत होने के प्रलोभन का शिकार होता रहता है।’

काका हाथरसी ने भी अपने काव्य में सामाजिक, राजनीतिक या जीवन की प्रत्येक प्रकार की समस्याओं, दशाओं, परिस्थितियों, चरित्रों और व्यवहारों की डटकर हँसी उड़ाई है और उनकी इस हँसी का उद्देश्य रहा है समाज की गंदगी और असंगतियों को दूर करना और वह इस कार्य में पूर्ण रूप से सफल भी रहे हैं, समाज की विषमताओं और कुरीतियों पर उन्होंने गहरी चोट की है, उसमें इतनी अधिक तीव्रता है कि उसका लक्ष्य खाली नहीं जाता, निशाना चूकता नहीं। काका की कलम का कमाल कार से लेकर बेकार तक, भ्रष्टाचार से चोर बाजार तक, परिवार से पत्रकार तक, अखबार से गँवार तक, रिश्वत से दुर्गत तक, फ्रैशन से राशन तक, परिवार से नियोजन तक, कमाई से मँहगाई और मंत्री से संत्री तक देखने को मिलता है। मतलब यह है कि काका ने हर समस्या में हास्य खोजा है और उसकी डटकर हँसी उड़ाई है।

काका ने भ्रष्टाचारी समाज का सही चित्र खींचा है। न्यायालयों की स्थिति बड़ी भयंकर है, वह न्यायालय है या भ्रष्टालय इसका भेद आसानी से नहीं किया जा सकता, यहाँ न्याय तो बाद में मिलता है, परंतु उससे पहले की मुड़ाई से कोई बच जाए तभी तो, क्योंकि—

प्लीडर, मुंशी, मुहर्रिर, सब निचोड़ लें अर्क,
सायल को घायल करे, फायल वाला क्लर्क।
फायल वाला क्लर्क, अगर कुछ बच जाएगा,
वह चपरासी के इनाम में पच जाएगा।
कह काका, जो जीत गया सो हारा समझो,
हार गया सो पत्थर से दे मारा समझो।

वस्तुओं में तरह-तरह की मिलावट करके लाखों के वारे न्यारे करनेवालों की इस देश में बढ़ोत्तरी होती जा रही है, परंतु मिलावट करनेवालों का तर्क है कि यह सृष्टि भी तो मिलावट से ही तैयार हुई है, इसलिए मिलावट करनेवालों की निंदा करना ही व्यर्थ है—

वेदशास्त्र सबने यही तथ्य किया स्वीकार,
मिलकर माया ब्रह्म यह सृष्टि हुई तैयार।
सृष्टि हुई तैयार, विधाता सृष्टाचारी,

शब्द बिगड़कर यही हो गया भ्रष्टाचारी।
कह काका, कर रहे मिलावट की क्यों निंदा,
चलने दो व्यापार, भजो राधे गोविंदा।

पंसारी द्वारा सामान में क्या-क्या मिलावट की जाती है इसका काला चिट्ठा कितनी सरलता से काका जी ने खोला है—

पिसे हुए धनिए में लकड़ी का बुरादा,
हींग में गोंद, गोंद में कतीरा,
शहद में शीरा और जीरे में बूहारी का जीरा
प्रेम से मिलाते हैं, तिलक लगाते हैं,
महीने में दो बार गंगा जी नहाते हैं
आपके द्वारा निर्मित
चने के रँग हुए छिलके पानी में मिलके
चाय का रंग लाते हैं।
सुपाड़ियों में छुहारे की गुठली मिलाते हैं।
गरम मसालों के आकर्षण लेविल छपाकर
उसमें पैक कराते हैं,
दुकान का कूड़ा, जवान मेरे या बूढ़ा।

सारे क्षेत्र में आज रिश्वत का बोलबाला है, हर काम इसकी सहायता से संपन्न हो सकता है, और कभी रिश्वत लेने वाला पकड़ा भी जाए तो भी उसका बालबाँका नहीं हो सकता, कितना करारा व्यंग्य है रिश्वत पर—

कूटनीति मंथन करी, प्राप्त हुआ यह ज्ञान,
लोहे से लोहा कटे, यह सिद्धांत प्रमान।
यह सिद्धांत प्रमान, जहर से जहर मारिए,
चुभ जाए काँटा, काँटे से ही निकालिए।
कहँ काका कवि, काँप रहा क्यों रिश्वत लेकर,
रिश्वत पकड़ी जाय, छूट जा रिश्वत देकर।

रिश्वत का महत्त्व कितना अधिक है—

जिसको नहीं नसीब थी, टूटी-फूटी छान,
आज वहाँ भन्ना रही कोठी आलीशान।
कोठी आलीशान, भिनकतीं मुँह पर मक्खी,
उनके घर में घूम रही चाँदी की चक्की।
कहँ काका कवि, जो रिश्वत का हलवा खाते,
सूखे-पिचके गाल कचौड़ी-से हो जाते।

विद्यार्थीवर्ग में अनुशासन की समस्या भी अब प्रचंड रूप में सामने आ रही है, छात्र अनुशासन की टाँग तोड़ रहे हैं, उनको अपनी पढ़ाई की कोई चिंता नहीं है वरन् अपनी माँगों के लिए वक़्त को बरबाद करना ही उनका काम है। काका ने ऐसे शिक्षार्थियों को संबोधित करते

हुए अपने हास्य द्वारा कितना सही चित्र खींचा है—

अधिकारी मानें नहीं, अगर तुम्हारी माँग,
हाकी लेकर तोड़ दो, अनुशासन की टाँग।
अनुशासन की टाँग, वही बन सकता नेता,
जो सभ्यता, शिष्टता का चूरन कर देता।

काका कृत विद्यार्थी की परिभाषा भी कितनी सटीक है—

कहाँ काका कविराय, वही सच्चा विद्यार्थी,
जो निकालकर दिखला दे विद्या की अर्थी।

पूज्य पिता की नाक में नकेल डालकर पुत्र महाशय क्या कार्य करते हैं, पिताजी अपनी
हड्डियों को घिस-घिस कर पुत्र को पढ़ाने का खर्चा निकालते हैं, परंतु पुत्र महोदय कालेज
स्टूडेंट बने हुए आनंद की छानते हैं, ऐसे छात्रों पर काका का व्यंग्य—

फादर ने बनवा दिए, तीन कोट छै पैंट,
लल्लू मेरा बन गया कालिज स्टूडेंट।
कालिज स्टूडेंट, हुए होस्टल में भरती,
दिन-भर बिस्कुट चरें, शाम को खायें इमरती।
कहाँ काका कविराय, बुद्धि पर डाली चादर,
मौज कर रहे पुत्र, हड्डियाँ घिसते फादर।

यहीं पर 'नेता' बनने की सलाह देते हुए काका का प्रवचन माननीय है—

कहाँ काका कवि, राय भयंकर तुमको देता,
बन सकते हो उसी तरह बिगड़े दिल नेता।

आज एक छोर से दूसरे छोर तक अँग्रेज़ियत छाई हुई है, लोग अँग्रेज़ी धुन में गाते हैं,
रोते हैं और शोक मनाते हैं, यही नहीं उनको हँसी भी अँग्रेज़ी में ही आती है। लोगों को अँग्रेज़ी
दाँ माने जाने में परम प्रसन्नता का अनुभव होता है। ऐसा ही एक व्यक्ति अपनी वास्तविकता का
उद्घाटन कितने गर्व के साथ कर रहा है—

बुद्ध हैं वे लोग जो समझते हैं मुझे हिंदी का भक्त,
मेरी रगों में दौड़ रहा है अँग्रेज़ी रक्त।

मालूम नहीं?

जिस प्रकार दानवीर कर्ण ने

कवच और कुंडलों-सहित

कुंती की कोख से लिया था जन्म

उसी तरह मैंने भी

इंगलिश सूट धारण किए हुए

लिया था अवतार।

अँग्रेज़ी बंदर नामक फुलझड़ी में अँग्रेज़ी सभ्यता के पोषक संतों पर कितना करारा व्यंग्य
है—

काका या संसार में व्यर्थ भैंस अरु गाय,

मिल्क पाउडर डालकर पी लिप्टन की चाय।
पी लिप्टन की चाय, साहबी ठाठ बनाओ
सिंगल रोटी छोड़, डबल रोटी तुम खाओ।
कहाँ काका कविराय, जीभ में लावौ तेजी,
हिंदीभाषा छोड़, बोल बेटा अँग्रेजी।

इस अँग्रेज़ियत का ही परिणाम है कि देश में तरह-तरह के फ़ैशनों की बाढ़ आई हुई है, अब तो टापलेस नारियाँ ही दिखाई देती हैं, समाज में आधुनिका नारियों का बोलबाला है। अब तो डिमांड भी ऐसी ही नारियों की है, जो फ़ैशन में पगी हों, संस्कृति को उधेड़ने में लगी हों। फ़ैशनपरस्त नारी पर काका की व्यंजना—

बहू वही फ़ार्वर्ड है, जो हो अपटूडेट,
सास-ससुर के सामने पीती हो सिगरेट।
पीती हो सिगरेट, बदन आधा ही ढाँपे,
भौजी भागे दूर, ननदिया थर-थर काँपे।
काका करें विरोध, उड़े अक्कल की बक्कल,
चौंके में घुस जाय पहन बाटा की चप्पल।

आज की नारी फ़ैशन में जितनी कुशल है, गृहस्थी के कामों में उतनी ही फूहड़, चूल्हे चौंके का रोमांस शीर्षक फुलझड़ी में काका ने आधुनिका पत्नी पर करारा व्यंग्य किया है—

आधुनिका पत्नी मिली, पति के पड़ी नकेल,
वाक्शास्त्र में पास थी, पाकशास्त्र में फेल।
पाकशास्त्र में फेल, रसोई कर दी चालू,
स्वेटर बुनने लगी, जल गए सारे आलू।
पुस्तक खोली, पति से बोली, जल्दी आओ,
जले आलुओं के ऊपर बरनाँल लगाओ।

जनसंख्या की वृद्धि आज देश की सबसे बड़ी समस्या है, परंतु काका ने इसको भी अपने ही अंदाज़ से देता है। जनसंख्या की वृद्धि पर जब परिवार-नियोजन का नारा बुलंद हुआ तो काका ने इसकी सिद्धि के लिए रेलयात्रा में पूरी की पूरी बर्थ पर कंट्रोल कर लिया, दूसरे यात्रियों के शोर मचाने पर टीटी महाशय आए हैं तो काका का उत्तर कितना मजेदार है—

नेता सब चिल्ला रहे, पीट-पीटकर ढोल,
जितना भी तुम कर सको, करो बर्थ कंट्रोल।
करो बर्थ कंट्रोल, अर्थ को समझो बाबू,
इसीलिए तो किया बर्थ पर हमने काबू।

बेकारी की समस्या और बेकारों के मनहूसियत-भरे चेहरों की कल्पना कर काका के दिमाग में आया कि पढ़ने-लिखने से तो मिल में मजदूरी ही करना ठीक होता। शिक्षा केवल सफ़ेदपोशी को प्रश्रय दे रही है। हर कोई केवल क्लर्क बनना चाहता है या फटीचर टीचर। इसी विषय पर काका की व्यंग्योक्ति—

पढ़-पढ़कर पत्थर भए, गुन-गुन होंगे कूर,

सो की तनखा मिल रही, बन जा मिल मजदूर।
बन जा मिल मजदूर, मास्टरी में क्या रक्खा,
भूखा रहकर जीवन-भर खाएगा धक्का।
कहँ काका कविराय, हो गए काजी, पाजी,
पढ़ा-लिखाकर हमें कर गए भूल पिताजी।

काका ने जहाँ पर राजनीतिक समस्याओं पर लेखनी चलाई है, वहाँ पर उनका व्यंग्य बहुत अधिक तीखा हो गया है। राजनीति की समस्त उलट-नीतियाँ-पलट नीतियाँ उनके राजनीतिक हास्य में उभरी हैं।

आजकल चुनाव एक ऐसा साधन बन गया है, जिसके माध्यम से सारी खुराफ़ातों को करने की स्वतंत्रता प्राप्त हो जाती है। चुनाव के चक्कर, प्रत्याशियों के रूप, सीटों की लड़ाई और मंत्री पदों की दौड़-धूप पर काका का व्यंग्य नश्वर के समान सिद्ध हुआ है। दलबदलुओं का धंधा अब तेजी से पनप रहा है। आयाराम, फिर गयाराम और अंत में मायाराम, काका ने इस बात को इस प्रकार नोट किया है—

दिन दूनी बढ़ने लगी, जोड़-तोड़ की होड़,
स्वारथ ने सिद्धांत का, दिया झोपड़ा फोड़।
दिया झोपड़ा फोड़, मिल गए अधिक दाम जी,
मिस्टर आयाराम बन गए गयाराम जी।
काका बढ़ते-बढ़ते ऊँचे दाम हो गए,
गयाराम कुछ दिन में मायाराम हो गए।

फिर यह आयाराम-गयाराम जी मिनिस्ट्री में पद प्राप्त करने के लिए तरह-तरह के हथकंडे अपनाने हैं और बार-बार दल बदलने में भी हिचकिचाते नहीं हैं, काका ने नेताओं की इस स्थिति पर करारी चोट की है—

मंत्रीपद की लूट है, लूट सके तो लूट,
अंतकाल पछताएगा, प्राण जाएँगे छूट।
प्राण जाएँगे छूट, मेज़ पर रक्खे पेपर,
बदल पार्टी, इस्तीफ़ा पर कर सिगनेचर।
कहँ काका कवि, स्वतंत्रता का लाभ उठाओ,
राष्ट्रध्वजा फहरा करके फ़ोटो खिंचवाओ।

मंत्री पद प्राप्त कर नेता लोगों को फिर अपनी चिंता होती है। जनता जाए भाड़ में, सात पुशतों के दुख-दारिद्र्य को मंत्री पद दूर कर देता है। परंतु यह मंत्री मंडल किस प्रकार के बनते हैं, यह जानना भी एक आश्चर्यजनक सत्य है। जहाँ बुद्धि और ज्ञान की आवश्यकता नहीं, व्यावहारिक कुशलता के दर्शन नहीं, इसी को काका का मंत्रीमंडल कविता में कितने सटीक ढंग से प्रस्तुत किया गया है—

हमारे प्रधानमंत्री होंगे कविवर फक्कड़ जी
ईंधन मंत्री लक्कड़ जी,
खाद्य मंत्रालय को सुशोभित करेंगे डा० पकोड़ा जी

रक्षा मंत्रालय पर विराजेंगे हथौड़ा जी।

फकाफक जी रेल मंत्री

चकाचक जी जेल मंत्री

शिक्षा विभाग के लिए कविवर बुद्धूजी बिल्कुल फिट हैं।

सूचना और प्रसारण के लिए

सब दोषों से मुक्त

महाकवि भोंपू जी उपयुक्त।

सेवा और परमार्थ के नशे में चूर रहते हैं

साहित्य, संगीत, कला से

दो हजार किलोमीटर दूर रहते हैं।

परिवहन मंत्री जी सुनिश्चित हैं अड़ियल जी

अनुभवी पुराने हैं, ड्राइवरी कर चुके हैं

दो दर्जन कुत्ते और आठ व्यक्ति मर चुके हैं।

चुनाव के चक्कर और नेताओं की कलाबाजियों से हटकर काका की दृष्टि शासन-प्रबंध और सरकार की नीतियों पर भी रुकी है और फिर उन्होंने उसका डटकर मज़ाक उड़ाया है। हमारा शासन-प्रबंध आज कर्ज पर आधारित है। जिधर जाते हैं, हमारा हाथ फैला ही रहता है। इसी संदर्भ में काका का वित्तमंत्री से इंटरव्यू और उनका उत्तर कितना बड़ा व्यंग्य उपस्थित कर रहा है—

श्री मुरार जी से मिले काका कवि अनजान

प्रश्न किया, 'क्या चाँद पर रहते हैं इंसान।'

रहते हैं इंसान, मारकर एक ठहाका,

कहने लगे कि तुम बिल्कुल बुद्धू हो काका।

अगर वहाँ मानव होते, हम चुप रह जाते,

अब तक सौ दो सौ करोड़ कर्जा ले आते।

भाषा विधेयक पर काका का व्यंग्य सारे देश की राजनीति के सार को एक साथ प्रकट करता है—

बोले सीना तानकर कड़घम-झगड़म दास,

सभी टापते रह गए, हुआ विधेयक पास।

हुआ विधेयक पास, साथ जयचंद हमारे,

तब तक अड़ियल नीति देश से टरे न टारे।

खुशख़बरी लंदन वाले डैडी को भेजी,

हिंदी हारी, जीत गई मम्मी अँग्रेज़ी।

सरकार की अँग्रेज़ी भाषा से संबंधित नीति पर काका का एक और व्यंग्य, जिसमें केवल अँग्रेज़ी को महत्ता दी गई है। बेचारी हिंदी तो दर-दर की ठोकें खाने को छोड़ दी गई है—

छोटे-छोटे बच्चों को अँग्रेजी शिक्षा,
वर्तमान सरकार दे रही है प्राइमरी में।
लेकिन मैं तो इससे भी कुछ आगे बढ़कर,
गर्भवती सब माताओं को
अँग्रेजी की पहली पुस्तक
किंग प्राइमर
घोट-पीसकर पिलवा दूँगा।
शिशु पृथ्वी पर आएगा तो
रोएगा भी अँग्रेजी में
हाँसेगा भी अँग्रेजी में
खाँसेगा भी अँग्रेजी में।

यह तो परिस्थितियों, घटनाओं और चरित्रों के माध्यम से प्रस्तुत हास्य के प्रसंग हैं। परंतु काका ने श्रेष्ठ शाब्दिक हास्य की भी सृष्टि की है। उनकी अनेक कविताओं में शब्दों के द्वारा उत्तम कोटि का हास्य प्रस्तुत किया गया है। काका ने अपनी काका कोश, लिंग-भेद, नाम बड़े और दर्शन छोटे, मार के चमत्कार, सँक्षिप्तीकरण, दान आदि कविताओं में शब्दों का अद्भुत चमत्कार दिखाया है और भरपूर हास्य पैदा किया है। काका कोश में प्रस्तुत कुछ शब्दों की परिभाषाएँ देखिए—

अफ़सर माने रौब है, इनकम माने टैक्स,
भौरा माने भगत जी, पूजन माने सैक्स।

भूतपूर्व का अर्थ है, बहुत पुराना भूत,
मात-पिता जिससे डरें, उसका नाम सपूत।
उसका नाम सपूत, मूँग छाती पर दलता,
आजादी के माने समझो उच्छृंखलता।
बदल गए शब्दार्थ, क्योंकि बदली मर्यादा,
चेला माने गुरु, गुरु के माने चेला।

काका की दृष्टि का लेंस इतना विशाल और पावरफुल है कि उसमें सब-कुछ आ जाता है। उनकी हास्य-व्यंग्य की अनेक कविताएँ समाज के अँधेरे कोने में जनता को प्रकाश प्रदान कर रही हैं। अहिंदीभाषी क्षेत्रों में भी हिंदी को लोकप्रिय बनाने में उन्होंने पर्याप्त सहयोग दिया है। जनभाषा में लिखी गई उनकी कविताएँ पढ़-अपढ़, बाबू-लाला, उच्च तथा निम्न वर्ग सभी के लिए मनोरंजन का विषय बनी हुई हैं। वास्तव में भारतेंदु से चलने वाली हास्य-व्यंग्य की धारा का पूर्ण विकसित रूप काका में आकर साकार हुआ है।

16 साहित्य विहार
बिजनौर (उ०प्र०)

—डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

अनुक्रम

हास्यकवि : काका हाथरसी / डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	9
गीता का अमृतबोध / डॉ० आदित्य प्रचंडिया	18
शृंगारिक काव्यप्रवृत्तियाँ और रीतिकाव्य / डॉ० रामानंद शर्मा	22
संत कबीर एवं सहजमार्गीय संतों की साधना-पद्धति / डॉ० निर्मला शर्मा	47
कामायनी में आत्मवादी चिंतन / अशोकदत्त नौटियाल, प्रो० मृदुला जुगरान	55
पर्यावरणीय चेतना एवं साहित्य / डॉ० वंदना अग्निहोत्री	61
पंडित राधेश्याम कथावाचक के नाटकों का इतिवृत्त और पात्रों की प्रस्थिति / डॉ० अशोक उपाध्याय	67
ऋतु-संबंधी हरियाणवी लोकगीतों में हास्य-व्यंग्य / डॉ० बलजीत सिंह	82
नासिरा शर्मा की कहानियों में आधुनिकता-बोध / कु० पूजा	88
छिन्नमस्ता में नारी-अस्मिता की नई पहचान / डॉ० साक्षी अग्रवाल	93
स्त्री-विमर्श के आर्थिक तत्त्व एवं चित्रा मुद्गल की कहानियाँ / कु० संध्या	100
हिंदी-आलोचना में डॉ० रामविलास शर्मा का योगदान / डॉ० रणधीरसिंह	105
बालसाहित्य के विकास में कनउजी लोकसाहित्य का प्रदेय/ डॉ० नागेश पांडेय 'संजय'	111
डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल के नाटकों में समसामयिक समस्या / पाटिल भारती मधुकर	120
डॉ० आदित्य प्रचण्डिया का साहित्यिक योगदान / डॉ० बाबूराम	125
20 वीं सदी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में क्षेत्रीय बोलियों का प्रभाव / प्रा० डॉ० विट्ठलसिंह नंदरामसिंह ढाकरे	128
ललित निबंध-परंपरा के सशक्त हस्ताक्षर डॉ० श्यामसुंदर दुबे / प्रा० डॉ० शिवाजी नामदेव देवरे	132
सामाजिक संक्रमण में साहित्य एक प्रतिजैविक औषधि है / आशा पांडे ओझा	135
डॉ० मनोज सोनकर के काव्य में व्यक्त सामाजिक संवेदना / प्रा० मनोहर एच० पाटिल	143
नासिरा शर्मा की कहानियों में सामाजिक चेतना / दीपक शर्मा	147
सामाजिक विकृतियों के संदर्भ में संतसाहित्य की प्रासंगिकता / डॉ० रणधीरसिंह	152
हमारे प्राच्य गौरव के प्रतीक अंग्रेजी में हिंदी-संस्कृत स्रोत / डॉ० सीमा अग्रवाल	158
सूरदास के काव्य में रसात्मक बिंब / रूपमाला	163

रसखान की काव्य-संपत्ति : स्वच्छंद काव्यधारा और रसखान / महिमाराम त्रिवेदी	169
कवि ग्वाल / राजेशकुमार सिंह	176
गोविंद मिश्र के उपन्यासों में चित्रित नारी / डॉ० सफराम्मा तिरूनेलवेली	184
डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों में निहित दलित चेतना / अंशु बत्रा	189
प्रेमचंद : गुमशुदा साहित्य की खोज का सिलसिला / कृष्णवीरसिंह सिकरवार	194
हिंदी दिवस पर समाचार-पत्रों में हिंदी की दशा-दिशा पर चिंतन /	
डॉ० सुशीलकुमार	204
कनुप्रिया में नारी जीवन के नूतन आयाम / अशोकदत्त नौटियाल	211
माया : प्रभु मिलन की सहायक / डॉ० प्रीति शर्मा	216
दिनकर की कविताओं में राष्ट्रीयता के स्वर / डॉ० सुनिल डहाले	221
संत तुलसीदास नाटक में संवेदना एवं शिल्प / काशीनाथ	225
जैनंद्र कुमार-व्यक्तित्व वैशिष्ट्य एवं जीवन संदर्भ / कु० रीना रानी	229
हिंदी ललित निबंध के विकास में 'सनातन-संदेश' का योगदान / सुधा महला	236
ललित निबंधकार : डॉ० बाबूराम / विजेतारानी	238
स्वातंत्र्योत्तरकालीन हिंदी-व्यंग्य की प्रेरक परिस्थितियाँ /	
पंकजकुमार डी० पटेल	245
प्रयोगवाद एवं नई कविता : परंपरा काव्य और प्रवृत्तियाँ / डॉ० राजकुमार	252
कबीर-साहित्य में चिंतन, कला और समाज-सुधार की महत्ता / डॉ० राजकुमार	258
डॉ० बाबूराम द्वारा विरचित उपन्यास 'एक और अवधूत' की कथ्यगत विशेषताएँ /	
जयकुमार	262
साँझी लोकगीतों में लोकविश्वास / रामबहादुरसिंह	267
वैदिक संस्कृति का केंद्रस्थल : हरियाणा / डॉ० एस०के० आत्रेय	272
प्रवासी महाकवि हरिशंकर आदेश / विजेतारानी	275
सूफीमत और हिंदी साहित्य/ कविता मीणा	278
भूमंडलीकरण और हिंदी का बदलता स्वरूप/ नीलम	281
विचारधारा और साहित्य/ नीलम	284
'नृशंस' कहानी-संग्रह में चित्रित सामाजिक विकृतियों के विविध आयाम /	
डॉ० कृष्णकुमार	290
भारत में सामाजिक परिवर्तन का इतिहास (गांधीवादी अस्पृश्यता निवारण	
कार्यक्रमों के विशेष संदर्भ में) / डॉ० (श्रीमती) राजबाला सिंह	304
'कमरा नंबर 103' में प्यासी भारतीय संवेदनाएँ / डॉ० रेनु यादव	309

गीता का अमृतबोध

डॉ० आदित्य प्रचंडिया, डी० लिट्०

उपनिषदों के बाद ब्राह्मणिक अध्यात्म विद्या के क्षेत्र में सर्वाधिक प्रतिनिधिक और प्रामाणिक ग्रंथ है—‘भगवद्गीता’। भगवान पद्मनाभ के मुख-कमल से निसृत गीता-सागर में अवगाहन से विभिन्न विचार-कोटि के जिज्ञासुओं को अद्भुत भाव-रत्नराशि की उपलब्धि होती है। धनंजय को उपदेश देने के बहाने भगवान पद्मनाभ ने भवसागर के मोहांध जीवों के लिए मुक्ति-मार्ग प्रशस्त किया है। मानव अपने स्वभाव की भिन्नता के कारण निष्काम कर्म द्वारा अथवा अनन्य भक्ति द्वारा अथवा ज्ञान की प्राप्ति द्वारा मुक्ति प्राप्त कर सकता है। मनुष्य अपने सांसारिक कर्तव्य-कर्मों का भली-भाँति पालन करता हुआ ही परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। व्यवहार में परमार्थ के प्रयोग की अद्भुत कला का दिग्दर्शन ‘गीता’ में हुआ है। भगवान को प्राप्त करने के तीन मार्ग—कर्म, उपासना और ज्ञान आरंभ से ही बताए गए हैं, लेकिन ‘गीता’ में परमात्मा के प्राप्त्यर्थ ज्ञाननिष्ठा (सांख्ययोग) और योगनिष्ठा (कर्मयोग) का प्रतिपादन हुआ है। यदि विचारें तो योगनिष्ठा एवं ज्ञाननिष्ठा के अंतर्गत ही उपासना आ जाती है। जब अपने को परमात्मा से अभिन्न मानकर अपने शुद्ध स्वरूप की उपासना की जाती है, तब वह ज्ञाननिष्ठा के अंतर्गत आ जाती है, किंतु जब मनुष्य अपने को परमात्मा से भिन्न समझकर द्वैतभाव से उपासना करता है तब वह एक प्रकार का कर्म हो जाता है और इसीलिए योगनिष्ठा के अंतर्गत आ जाता है। सकाम कर्म के लिए किसी भी निष्ठा में स्थान नहीं है। भगवान ने सकाम कर्मकर्ताओं को हेयबुद्धि से संज्ञायित किया है।

‘गीता’ का आशय है आत्मार्थी को आत्मदर्शन का अद्वितीय उपाय बतलाना। यह अद्वितीय उपाय कर्मफल-त्याग है। इसी केंद्रबिंदु के चहुँ ओर ‘गीता’ की सारी सजावट हुई है। भक्ति और ज्ञानादि उसके आस-पास के तारामंडल रूप में सज्जित हैं। जहाँ देह है वहाँ कर्म तो है ही। उससे कोई मुक्त नहीं है। देह को देवालय बनाकर उसके द्वारा मुक्ति प्राप्त होती है, परंतु कर्ममात्र में कुछ दोष तो है ही, मुक्ति तो निर्दोष की ही होती है। तब कर्मबंधन में से अर्थात् दोषस्पर्श से कैसे छुटकारा हो? इसका समाधान ‘गीता’ में ‘निष्काम कर्म’ से यथार्थ कर्म करके, कर्मफल त्याग करके, सब कर्मों को कृष्णार्पण करके अर्थात् मन, वचन और कर्म को ईश्वर में ‘होम करके’ दिया गया है। पर निष्कामता कर्मफल त्याग करने भर से नहीं हो जाता। यह मात्र मति का प्रयोग नहीं है। यह हृदय-मंथन से ही उत्पन्न होता है। इस त्याग-शक्ति को पैदा करने के लिए ज्ञान चाहिए। बिना भक्ति का ज्ञान हानिकारक है, इसलिए कहा गया है कि भक्ति करो तो ज्ञान मिल ही जाएगा। पर भक्ति आसान नहीं है। ‘गीता’ में भक्त के लक्षणों को स्पष्ट रूप से बताया गया है—‘जो किसी से द्वेष नहीं करता, जो करुणा का भंडार है और ममतारहित है जो निरहंकार, जिसे सुख, दुःख और शीत-उष्ण समान है, जो क्षमाशील है, जो सदा संतोषी है, जिसके

निश्चित कर्म बदलते नहीं, जिसने मन और बुद्धि ईश्वर को अर्पित कर दिए हैं, जिससे लोग उद्वेग नहीं पाते, जो लोगों का भय नहीं रखता, जो हर्ष-शोक-भयादि से मुक्त है, जो पवित्र है, जो कार्य दक्ष होने पर भी तटस्थ है, जो शुभाशुभ का त्याग करने वाला है, जो शत्रुमित्र पर समभाव रखने वाला है, जिसे मान-अपमान समान हैं, जिसे स्तुति से, आनंद और निष्ठा से ग्लानि नहीं होती, जो मौनधारी है, जिसे एकांत प्रिय है, जो स्थिर बुद्धि है, वही भक्त है। यह भक्ति आसक्त स्त्री-पुरुषों में संभव नहीं है। ज्ञान प्राप्त करना और भक्त होना ही आत्मदर्शन है। साधन की पराकाष्ठा जो है, वही मोक्ष है। 'गीता' के मोक्ष का अर्थ परमशांति है। आशारहित होकर कर्म करें, निष्काम होकर कर्म करें, यही गीता का उपदेश है। कर्ममात्र का त्याग 'गीता' के संन्यासी को रुचता ही नहीं। 'गीता' का संन्यासी तो अतिकर्मी है तथापि अति-अ-कर्मी। 'गीता' में वर्णित है कि जो पुरुष मन से इंद्रियों को वश में करके अनासक्त हुआ कर्मद्रियों से कर्मयोग का आचरण करता है, वह श्रेष्ठ है। मनुष्य के अंतर से त्याग होना चाहिए और बाहर से उसे काम करना चाहिए, क्योंकि त्याग से भी अध्यात्म जीवन बनता है। देवता, ब्राह्मण, गुरु अपने से बड़े और ज्ञानी का पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा का पालन ही शरीर-संबंधी तप कहा जाता है। मन की प्रसन्नता, शांतिपूर्वक भगवच्चिंतन करने का स्वभाव, मन का निग्रह और अंतःकरण के भावों की भली-भाँति पवित्रता यही मन की तपस्या कही जाती है। 'गीता' में समविचार को ही श्रेष्ठ माना गया है।

'गीता' के वर्णविभाग का अर्थ यह है कि मनुष्य के बाहरी और भीतरी (आंतरिक) जीवन में क्या भेद होना चाहिए अर्थात् मनुष्य के कर्म कहाँ तक ईश्वरीय नियम पर चल सकता है। शास्त्रविधि से नियत कर्म करना ही योग्य है। कष्टकारक योगाभ्यास करने से इस शरीर को स्वतंत्रता (शांति) नहीं मिलती या संसार को केवल त्यागने से ही कोई योगी नहीं हो सकता। भिन्न-भिन्न देवताओं के पूजन एवं यज्ञकर्म के संबंध में भी 'गीता' के विचार सहनशील हैं, क्योंकि 'गीता' के मत में सब देवता उसी एक ईश्वर के अंश हैं। भगवान कहते हैं कि मैं उसी देवता के प्रति भक्त की श्रद्धा को स्थिर करता हूँ और वह उसी श्रद्धा से युक्त हुआ उसी देवता के पूजन की चेष्टा करता है तथा मेरे चार प्रकार के सदाचारी मनुष्य भजते हैं—दुःखी, जिज्ञासु, कुछ प्राप्ति की इच्छा करने वाले और ज्ञानी। उनमें से जो नित्य समभावी एक को ही भजने वाले हैं, वे ज्ञानी श्रेष्ठ हैं। मैं ज्ञानी को अत्यंत प्रिय हूँ और ज्ञानी मुझे अत्यंत प्रिय हैं। भगवान ने साकार और निराकार दोनों प्रकार की उपासना की सराहना की है, किंतु निराकार की उपासना बड़े कष्ट से सिद्ध होती है, क्योंकि वह बहुत कठिन है। भक्ति की पराकाष्ठा यह है कि भक्त स्वयं भगवान में विलीन हो जाए और अंत में केवल एक अद्वितीय अरूपी भगवान ही रह जाए। यह स्थिति साकार की उपासना द्वारा ही सुलभ हो सकती है। इसलिए निराकार ब्रह्म की उपासना का मार्ग कष्टसाध्य बतलाया गया है।

ज्ञाननिष्ठा और योगनिष्ठा प्राप्त्यर्थ साधन हैं तथा प्राप्त करने पर मनुष्य कैसा हो जाता है? 'गीता' में उल्लिखित है कि ज्ञाननिष्ठा प्राप्त करने पर इस चराचर जगत में जो कुछ प्रतीत होता है, सब ब्रह्ममय दीख पड़ता है। कर्म, कर्म के साधन एवं उपकरण तथा स्वयंकर्ता सब—कुछ ब्रह्म ही ज्ञात होता है। जो कुछ दृश्य है वह मायामय, क्षणिक एवं नाशवान समझ पड़ता है। चर-अचर सब ब्रह्म है। वह ब्रह्म मैं ही हूँ और सब मेरा ही स्वरूप है—ऐसा भाषित होता है। इस

अवस्था की प्राप्ति होने पर उसके लिए ब्रह्म के सिवा अन्य कुछ भी नहीं रह जाता। वह उस विज्ञानंदधन स्वरूप में ही आनंद अनुभव करता है। योगनिष्ठा के तीन मुख्य भेद हैं— 1. कर्मप्रधान योग, 2. भक्तमिश्रित कर्मयोग, 3. भक्तिप्रधान कर्मयोग। समस्त कर्मों में सांसारिक पदार्थों में फल और आसक्ति का सर्वथा त्याग करके अपने वर्णाश्रमानुसार शास्त्रविहित कर्म करते रहना ही कर्मप्रधान योग है। सारे संसार में परमेश्वर को व्याप्त समझते हुए अपने-अपने वर्णोचित कर्म के द्वारा भगवान की पूजा करते रहने को भक्तिमिश्रित कर्मयोग कहते हैं। समस्त कर्मों में ममता, आसक्ति और फलेच्छा का त्यागकर तथा 'यह सब-कुछ भगवान का है, मैं भी भगवान का हूँ, मेरे द्वारा जो कर्म होते हैं, वे भी भगवान के हैं, भगवान ही कठपुतली की भाँति मुझसे सब-कुछ करवा रहे हैं—ऐसा समझते हुए भगवान के आज्ञानुसार, भगवान की ही प्रसन्नता के लिए जो शास्त्रविहित कर्म किया जाता है, उसे भक्तिप्रधान कर्मयोग कहते हैं।

सवाल कौंधता है कि योगनिष्ठा स्वतंत्र रूप से भगवत्-प्राप्ति करा देती है या ज्ञाननिष्ठा? 'गीता' को दोनों ही स्वीकार हैं। वह योगनिष्ठा को भगवत् प्राप्ति अर्थात् मोक्ष का स्वतंत्र साधन भी मानती है और ज्ञाननिष्ठा का सहायक भी। साधन चाहे तो बिना ज्ञाननिष्ठा की सहायता से सीधे ही कर्मयोग से परमसिद्धि प्राप्त कर सकता है अर्थात् कर्मयोग द्वारा ज्ञाननिष्ठा को प्राप्त कर फिर ज्ञाननिष्ठा द्वारा परमात्मा की प्राप्ति कर सकता है। अस्तु, निष्काम कर्म और उपासना दोनों ही ज्ञाननिष्ठा के अंग बन सकते हैं, किंतु ज्ञानयोग में अवैध उपासना है। ज्ञाननिष्ठा, भेद उपासना रूप भक्तियोग का, योगनिष्ठा का अंग नहीं बन सकती। यह अलग बात है कि किसी ज्ञाननिष्ठा के साधक की रुचि अथवा मन आगे चलकर बदल जाए और वह ज्ञाननिष्ठा को त्यागकर योगनिष्ठा पकड़ ले और उसे योगनिष्ठा द्वारा ही भगवत्-प्राप्ति हो। मनुष्य मात्र शास्त्रविहित-अपने-अपने कर्म द्वारा सर्वव्यापी परमेश्वर की पूजा करके सिद्धि प्राप्त कर सकता है। भक्ति के लिए भगवान ने स्त्री, शूद्र तथा पापयोनि तक को अधिकारी बतलाया गया है। जहाँ कहीं भगवान ने किसी भी साधना का उपदेश दिया है, वहाँ ऐसा नहीं कहा है कि यह साधना करने का अधिकार किसी भी ख़ास वर्ण, आश्रम या जाति का ही है, दूसरे को नहीं। यहाँ तक कि ज्ञान, योग का अधिकार संन्यासी एवं गृहस्थ सभी को समान रूप से दिया है। इसीलिए 'गीता' सभी वर्णों और आश्रमों के लिए है।

'गीता' में जीवों के गुण एवं कर्म के अनुसार उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ तीन गतियाँ बतलाई गई हैं। उनमें जो योगभ्रष्ट हो जाते हैं उनकी भी गति का वर्णन किया है। मरने के बाद योगभ्रष्ट स्वर्गादि लोकों को प्राप्त तो करते हैं, पर सुधीर्घकाल तक उन दिव्य लोकों के सुख भोगकर पवित्र आचरण वाले श्रीसंतों के घर में जन्म लेते हैं, अथवा स्वर्ग में न जाकर सीधे योगियों के कुल में जन्मते हैं और वहाँ पूर्व संस्कार अथवा पूर्व अभ्यास के कारण पुनः योग-साधन में प्रवृत्त होकर परम गति को प्राप्त करते हैं। सकामभाव से विहित कर्म एवं उपासना करने वालों की गति का वर्णन इस प्रकार 'गीता' में हुआ है—'वहाँ स्वर्ग के भोगों की प्राप्ति तथा पुण्य के क्षय हो जाने पर उनके पुनः मर्त्यलोक में प्रत्यावर्तित होने की बात कही गई है। वे लोग किस मार्ग से तथा किस तरह स्वर्ग को जाते हैं, इसकी प्रक्रिया भी बतलाई गई है। सत्त्वगुण की बुद्धि वाले मरने पर उत्तम लोक को जाते हैं। रजोगुण वाले मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं और तमोगुण वाले पशु-पक्षी, कीट-पतंग होते हैं। भगवान ने वेदत्रयी—ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद—को अपना

स्वरूप बतलाकर उसके प्रति बहुत आदरभाव व्यक्त किया है। परमात्मा की प्राप्ति के अनेक साधन वेदों में बतलाए गए हैं, किंतु वेदत्रयी-धर्म का आश्रय लेकर सकामकर्म करने वाले पुरुष बराबर जन्मते-मरते रहते हैं, आवागमन के चक्र से नहीं छूटते। 'गीता' में भगवान ने वेदों की निंदा नहीं की है, सिर्फ सकामभाव की अपेक्षा निष्काम भाव को अधिक महत्त्व दिया है और ईश्वर-प्राप्ति के लिए उसे आवश्यक बतलाया है। 'गीता' में कर्म, भक्ति और ज्ञान का समन्वय करके दिखला दिया है कि योगनिष्ठा द्वारा स्थितप्रज्ञ को जो अवस्था प्राप्त होती है, उसमें भेद नहीं है। दोनों में किसी भी अवस्था को प्राप्त करने पर साधक के लिए कोई कर्म अथवा अकर्म नहीं रह जाता, किंतु वे लोक-संग्रह के लिए कर्म करते हैं, वे अपने आश्रम से जिसे प्रमाण बनाते हैं, उसका लोग अनुसरण करते हैं।

इस प्रकार 'भगवद्गीता' 'महाभारत' का मंथित नवनीत है। उसमें सभी उपनिषदों का सार तत्त्व और 'महाभारत' का श्रेष्ठ तत्त्वज्ञान अनुस्यूत है। सरलता, शब्द-रचना की विलक्षणता, वाक्यों की श्रुति-मनोहरता, गंभीर ध्वनि 'गीता' की भाषा के आभूषण हैं। अस्मन् एवं ब्राह्मन् की एकता कैसे हो? यह 'गीता' में निर्दिष्ट है। 'गीता' आत्मा और भौतिक पदार्थ के बीच स्पष्ट विभेदक रेखा खींचती है यद्यपि इन दोनों की संरचना ईश्वर के लिए हुई है। ईश्वर के लिए ब्रह्मन्, पुरुष, ईश्वर, विष्णु, कृष्ण, वासुदेव आदि नामों का प्रयोग हुआ है तो आत्मन् को शाश्वत, अजन्मा, सर्वव्यापक, प्राचीन, अप्रकाशीय और अचिंत्य माना गया है। 'गीता' का अमृतबोध यही है कि ज्ञान और कर्मयोग के अभ्यास द्वारा कर्म के बंधन से मुक्त होकर मनुष्य भक्तियोग द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है। उसके हृदय की समस्त ग्रंथियाँ छिन्न-भिन्न हो जाती हैं और वह मुक्त हो जाता है।

मंगलकलश

394, सर्वोदयनगर, आगरा रोड,

अलीगढ़ 202001 (उ०प्र०)

दूरभाष : (0571) 2410486

मो० 9897144022

शृंगारिक काव्यप्रवृत्तियाँ और रीतिकाव्य

डॉ० रामानंद शर्मा, डी०लिट्०
प्राचार्य, हिंदू कालेज, मुरादाबाद

रीतिकाव्य पर जो आरोप लगाए जाते हैं, उनमें से एक शृंगारिकता का अतिरेक भी है। कहा जाता है कि रीतिकाव्य की शृंगारिकता अश्लीलता का स्पर्श करने लगती है। वस्तुतः यह आरोप एक शताब्दी पूर्व की आर्यसमाजी आदर्शवादिता से उद्भूत हुआ है और उसमें महत्त्वपूर्ण हाथ आचार्य रामचंद्र शुक्ल का है तथा कुछ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि परवर्ती आचार्यों का भी। मार्क्सवादी आलोचकों ने तो इसे चरमोत्कर्ष पर ही पहुँचा दिया और रीतिकाव्य को सामंतवादी काव्य के रूप में प्रस्तुत कर दिया। सचाई यह है कि यह काव्य को काव्यात्मक मानदंडों से न देखने का परिणाम है, एकांगी दृष्टि का दुष्परिणाम है और अभिज्ञान है काव्यपरंपरा को न समझने का।

वस्तुतः अश्लीलता की धारणा युगसापेक्ष है। कोई एक शब्द, वस्तु या व्यक्त रूप एक युग में अश्लील कहा जाता है, जबकि दूसरे युग में नहीं। महाकवि कालिदास के साहित्य में अनेक बार प्रयुक्त होने पर भी कहीं आम्र, आम्रमंजरी या आम्रकलिका शब्द का प्रयोग नहीं मिलता, बल्कि उसके स्थान पर ऐसे पर्याय का प्रयोग मिलता है और बार-बार मिलता है, जिसे आज श्लील नहीं समझा जाता। 'मेघदूत' का संस्कृत पाठ हो अथवा नाटकों में मध्यम श्रेणी के स्त्री-पात्रों द्वारा बोली जाने वाली प्राकृत, सर्वत्र इसी शब्द का प्रयोग मिलता है—

आतम्महरिअपण्डुर जीवितसव्वं वसन्तमास्सा
दिट्ठोसि चूदकोरअ उदुमंगल तुमं पसाएमि।

—शाकुन्तल, 6/2

संस्कृत-साहित्य में नारी के अंग-प्रत्यंगों का कलात्मक एवं आलंकारिक वर्णन मिलता है और मुख, कपोल, अधर, पयोधर, जघनस्थल ही नहीं, मदनमंदिर तक को कवियों ने वर्ण्य माना है। चित्रकला और मूर्तिकला के क्षेत्र में भी रमणियों का अंगसौष्टव चित्रांकन का विषय बना है और अजंता, एलोरा के चित्र ही नहीं, खजुराहो की मादक प्रतिमाएँ भी प्रशंसित होती रही हैं। बौद्धधर्म के प्रभावस्वरूप समागमरत युगनद्ध प्रतिमाएँ भी यत्रतत्र उपलब्ध हो जाती हैं। यदि ये शब्द, ये आलंकारिक वर्णन और चित्र एवं प्रतिमाएँ अपने समय में अश्लील समझी जातीं, तो ये कवि-कलाकार इनमें इतना श्रम कदापि न करते। वस्तुतः शृंगार का स्वरूप सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप सदैव परिवर्तित होता रहा है।

'शृंगार' शब्द का प्रयोग सामान्यतः सजावट, शोभा, अलंकार, भव्यता आदि अर्थों में होता है, किंतु साहित्य के क्षेत्र में इसका प्रयोग अपेक्षाकृत व्यापक अर्थ में किया जाता है। विद्वानों ने

इस शब्द की निरुक्ति कई प्रकार से की है और तदनुरूप ही इसकी व्याख्या भी की गई है। इन निरुक्तियों और व्याख्याओं में न केवल वैयक्तिक रुचि और आस्था ही प्रकट हुई है, बल्कि समय की परिवर्तित परिस्थितियाँ भी उत्तरदायी रही हैं।

‘शृंगार’ शब्द की प्रथम निरुक्ति यह है—‘शृंगं प्राधान्यम् इयति इति शृंगारः’। इस निरुक्ति के अनुसार शृंग कर्म उपपद रहते ऋ गतौ धातु से कर्मण्यण सूत्र से अण् प्रत्यय लगाकर तदन्तर वृद्धि होने पर शृंगार शब्द की निष्पत्ति हुई है। शृंग अर्थात् शिखर, प्रभुत्व। भावना के शिखर पर पहुँचने वाला रस शृंगार कहलाता है। कोशकार अमरसिंह इसकी शुचिता और उज्वलता के पक्षधर हैं तो भरतमुनि इसे उज्वल वेषात्मक, शुचि और मेध्य कहते हैं, उत्तम प्रकृति वाले स्त्रीपुरुष से उत्पन्न स्वीकारते हैं—‘एवमेष आचारसिद्धो हृद्योज्ज्वलवेषात्मकत्वाच्छृंगारो रसः। स च स्त्रीपुंसहेतुक उत्तमयुवप्रकृतिः।’ शुभ मिथुन वाले इस रस में, जो स्त्रीपुंसहेतुक और उत्तमयुवप्रकृति है, शारीरिक क्रियाएँ भी होती हैं, लेकिन वे आत्मानुभूति की अनुगामिनी बनकर ही आती हैं और उन्हें आच्छादित कर लेती हैं। अनंग शब्द का अर्थ भी अंगरहित अर्थात् मन ही है। काम मानसिक व्यापार है, मनोज है, मन्मथ है। इस प्रकार इस रस में शारीरिक नहीं मानसिक भावों की प्रधानता रहती है। शारीरिक क्रियाओं का अभाव नहीं रहता, लेकिन वे मानसिक व्यापार (प्रणय, प्रेम) की अनुवर्तिनी होती है और उसे न केवल परिपुष्ट बनाती है, बल्कि स्थायित्व भी प्रदान करती है।

इसी के समानांतर एक अन्य निरुक्ति भी है जो भावप्रकाश में देखी जा सकती है—

भावनामुत्तमं यत्तु तच्छृंगं श्रेष्ठमुच्यते।

इयन्ति शृंगं यस्मात्तु तस्माच्छृंगार उच्यते।

अर्थात् जो भावों में उत्तम (श्रेष्ठ) है, वही शृंग है और जिसके आश्रय में भावों की श्रेष्ठ स्थिति शृंग तक पहुँचती है, वही शृंगार कहलाता है। भावप्रकाशकार शारदातनय ने परस्पर स्वसंवेद्य, आह्लादविश्रम्भकारिणी एवं उभय प्रार्थनात्मिका रति के प्रेम से अंकुरित, मान से पल्लवित, प्रणय से सकारक, स्नेह से कुसुमित, राग से फलवती और अनुराग से भोगयोग्य होने की जो बात कही है, वह वस्तुतः रति का शृंगत्व के रूप में विकास ही निरूपित किया गया है। यहाँ भी प्राधान्य मानस व्यापारों का ही है, लेकिन प्रथम निरुक्ति की अपेक्षा रति की स्थूलता और साकारता अधिक परिलक्षित होती है।

आचार्य शारदातनय ने जो रति-लता का विकास दिखाया है, वह उनका निजी रूपक नहीं है। ये शब्द किसी-न-किसी रूप में भारतवर्ष के सांस्कृतिक चिंतन में सर्वत्र दिखते रहते हैं। आचार्य रूप गोस्वामी ने राग, जो सामान्यतः भाव या काम का पर्याय ही माना जाता है, की व्याख्या पारिभाषिक शब्द के रूप में की है। वे कहते हैं कि प्रणय के उत्कर्षवश यदि अतिशय दुःख भी सुख रूप होकर चित्त में अनुभूत हो, तो उसे राग कहते हैं—

दुःखमव्यधिकं चित्ते सुखत्वेनैव व्यज्यते।

यतस्तु प्रणयोत्कर्षात्स राग इति कीर्त्यते।

तात्पर्य यह है कि प्रणयोत्कर्ष के कारण दुःख को भी सुख मानने की भावना ही राग है। रसरत्नाकर में संभोग को सात प्रकार का माना गया है—प्रेमाभिलाषा, राग, स्नेह, प्रेम, रति, शृंगार और संभोग। रम्य को देखने की इच्छा प्रेम है, उसके विषय में चित्त की इच्छा अभिलाषा है। बुद्धि का प्रिय के साथ संसर्ग राग है, क्रियाओं में अग्रसर होना स्नेह है, प्रिय के

वियोग को न सह पाना प्रेम है, उसका निरंतर साथ रहना रति है और उसके साथ कामक्रीड़ा करना शृंगार है। इस प्रकार शृंगार सात प्रकार का होता है—

प्रेमाभिलाषो रागश्च स्नेहः प्रेम रतिस्तथा।
 शृंगारश्चेति संभोगः सप्तावस्था प्रकीर्तितः॥
 प्रेमादिदुक्षा रम्येषु तच्चित्तमभिलाषकः।
 रागस्तत्संगबुद्धिः स्यात् स्नेहस्तत्प्रवणक्रिया॥
 तद्वियोगासहं प्रेम रतिस्तत्सह वर्तनम्।
 शृंगारस्तत्समं क्रीडा संभोगः सप्तधाक्रमः॥

तात्पर्य यह है कि जब मन प्रिय के साथ निरंतर घूमता रहे और प्रणयोत्कर्ष इतना हो जाए कि दुःख में भी सुख की अनुभूति होने लगे, तो उसे राग कहा गया है। इस समग्र उद्भरण का आशय यही है कि वह मानस व्यापार है और निरंतर विकसित होता है।

शृंगार शब्द की एक अन्य निरुक्ति इस प्रकार की गई है—‘शृंगं कामोद्रेकम् ऋच्छति इति शृंगारः’। यहाँ ‘शृंग’ शब्द का अर्थ कामोद्रेक किया गया है। यहाँ कामोद्रेकवाची ‘शृंग’ कर्म के उपपद रहते प्राप्त्यर्थक ऋ धातु कर्मण्यण सूत्र से अण् प्रत्यय लगने पर, शृंगार शब्द निष्पन्न हुआ है। आचार्य विश्वनाथ इसी निरुक्ति का समर्थन करते हैं। वे शृंग का अर्थ कामोद्रेक या मन्मथोद्भेद स्वीकारते हैं—

शृंगं मन्मथोद्भेदस्तदागमन हेतुकः।
 उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः शृंगार इष्यते॥

—3/83

शृंग का अर्थ कामोद्रेक या मन्मथोद्भेद तो है ही, लेकिन प्रेम, मान, प्रणय, स्नेह, राग आदि नानाविध अवस्थाओं से विकसित होती हुई रति ही परिपूर्णावस्था को प्राप्त करके शृंग कहलाती है। भोज जब यह कहते हैं कि रति ही इष्ट को प्राप्त कर और परिपुष्ट होकर संभोग कहलाती है—‘रतिरेवेष्टसम्प्राप्तौ पुष्टः संभोग उच्यते’ (सरस्वतीकंठाभरण, 5/51) तो वे इसी का समर्थन करते हैं। भाव तो आचार्य विश्वनाथ का भी यही है, क्योंकि वे परस्पर अनुरक्त (अनुरक्तावन्योन्यम्) के दर्शन, स्पर्श आदि को संभोग नाम देते हैं और यही शब्दावली न्यूनाधिक रूप में रुद्रभट्ट में भी मिलती है, ‘चेष्टा भवति पुनार्योरत्युथानुरक्तयोः’ (शृंगारतिलक, 1/20) अर्थात् परस्पर अनुरक्त स्त्रीपुरुषों की रति (काम) से उत्पन्न चेष्टाएँ ही शृंगार कहलाती हैं। लेकिन परवर्ती विद्वानों ने प्रेम के विकास और परस्पर अनुरक्ति की पूर्णतः उपेक्षा भी की है। शृंगार की सर्वाधिक प्रचलित परिभाषा इस प्रकार है—

पुंसः स्त्रियां स्त्रियाः पुंसि संभोग प्रति या स्पृहा।
 स शृंगार इति ख्यातः क्रीडारत्यादिकारकः।

अर्थात् पुरुष की स्त्री के प्रति और स्त्री की पुरुष के प्रति संभोगविषयक स्पृहा (इच्छा) जो क्रीड़ा रूप रत्यादि का कारक बनती है, शृंगार कहलाती है। इस निरुक्ति और तदनुकूल परिभाषाओं में संभोग को केंद्र में रखा गया है और अप्रत्यक्ष रूप से अनुराग या प्रेम के विकास की उपेक्षा की गई है।

इन निरुक्तियों और उनसे संबद्ध परिभाषाओं को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि

कहीं शृंगार के मूल में प्रेम को रखा गया है तो कहीं शुद्ध संभोग को। कहीं दृष्टि मर्यादित और अनुशासित लक्षित होती है तो कहीं भोगवादी और उच्छृंखलित। इनमें कुछ सामाजिक परिस्थितियाँ भी उत्तरदायी हैं और कुछ वैयक्तिक रुचियाँ भी। समाज सदा-सर्वदा एक जैसा नहीं होता, फलतः दृष्टिभेद होना स्वाभाविक ही है।

शृंगार का स्थायीभाव रति है, फलतः इस रति के स्वरूप पर विचार कर लेना चाहिए। भरतमुनि की दृष्टि में रति एक प्रमोदात्मक भाव है जो इष्टार्थ-विषय की प्राप्ति से उत्पन्न होता है। उनका कथन है कि इसका अभिनय स्मितवदन, मधुर कथन, भ्रूक्षेप, कटाक्षादि से किया जाना चाहिए। इस सन्दर्भ में उन्होंने एक आनुवंशय श्लोक भी प्रस्तुत किया है—

इष्टार्थविषयप्राप्त्या रतिरित्युजायते।

सौम्यत्वादभिनेया सा वाङ्माधुर्यगंचेष्टितः। 7/9

वाक्माधुरी और अंगचेष्टाओं की सौम्यता ही रति का प्राण है। वस्तुतः भरत का दृष्टिकोण अत्यंत विस्तृत था, लेकिन परवर्ती विवेचकों का दृष्टिकोण इतना विस्तृत नहीं रह सका। भोज मनोनुकूल अर्थों में सुखसंवेदन को ही रति कहते हैं—‘मनोऽनुकूलेष्वर्थेषु सुखसंवेदन रतिः’ (सरस्वतीकण्ठाभरणम् 5/138) यही बात शब्दांतर से आचार्य विश्वनाथ भी स्वीकारते हैं—‘रतिर्मनोनुकूलेऽर्थे मनसः प्रवणायितम्’। वस्तुतः स्त्री और पुरुष का एक-दूसरे की ओर आकृष्ट होना नैसर्गिक धर्म है और इस परस्पर स्नेह या आकर्षण को ही काम कहा जाता है—

स्त्रीषु जातो मनुष्याणां स्त्रीणांच पुरुषेषु वा।

परस्पर कृतः स्नेहः काम इत्यभिधीयते।

यह सहज आकर्षण काम है, जिसमें दोनों में से किसी की भी रमणेच्छा का पर्याय होना आवश्यक नहीं है। मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से ज्ञात होता है कि रति चित्त की एक वृत्ति है, जो काम की मूल मनोवृत्ति का आश्रय ग्रहण करती है। यह संपुष्ट होकर मिलनेच्छा या गार्हस्थ्य में भी परिणत हो सकती है और विकृत होकर विनाश या अनर्थ में भी। जब रति नैसर्गिक आत्मीयता से प्रेरित होती है, तब उसमें निवेदन या समर्पण का भाव भी रहता है और वह प्रिय को अनेकता से एकता की ओर ले जाती है। ऐसी समर्पित रति ही अनुकूल परिस्थितियों में पल्लवित-पुष्पित होती हुई शृंगार रूपी महावृक्ष के रूप में परिणत होती है।

रति ही प्रिय के प्राप्त होने पर विभावादि द्वारा परिपुष्ट होने पर शृंगार के रूप में परिणत होती है—रतिरेवेष्टसम्प्राप्तौ पुष्टः संभोग उच्यते (सरस्वतीकण्ठाभरण, 5/51)। यह रति विभावादि से परिपुष्ट कैसे होती है—इसे भी देखना चाहिए। रतिभाव प्रत्येक मानव या प्राणी में वासना रूप (प्रसुप्तावस्था) में विद्यमान रहता है। वासना का अर्थ है सुदीर्घ परंपरा के अभ्यास से निर्मित संस्कार। यह प्रसुप्तावस्था में होता है। इसे जाग्रत करनेवाले कारणों को विभाव कहते हैं। विभाव के तीन रूप हैं—आश्रय, आलंबन और उद्दीपन। जिस व्यक्ति में रतिभाव जाग्रत होता है, वह आश्रय या विषय कहलाता है और जिस व्यक्ति को देखकर जाग्रत होता है, वह आलंबन कहलाता है। मान लीजिए नायिका को देखकर नायक के हृदय में रतिभाव जाग्रत हुआ तो नायक आश्रय है और नायिका आलंबन। आलंबन भावजागरण का कारण होता है, लेकिन जाग्रत भाव को उद्दीपित या तीव्र बनाने वाले कारणों को उद्दीपन कहते हैं। आलंबन की चेष्टाएँ तथा भवन की शून्यता, चंद्रोदय, मधुर संगीत आदि उद्दीपन के अंतर्गत आते हैं। इस उद्दीपित भाव को ब्रीडा, शंका, औत्सुक्य आदि संचारीभाव

परिपुष्ट करते हैं। अनुभावों का कार्य है अभिव्यक्त करना। ये अनुभाव कायिक, वाचिक, आहार्य भी हो सकते हैं और रोमांच, वेपथु (कंप) आदि सात्त्विक भी। अनुभावों एवं सात्त्विक भावों में अंतर यह है कि नम्रमुखी होना, चुंबन लेना आदि शारीरिक चेष्टाएँ हैं, जिन्हें व्यक्ति सरलता से अभिनीत कर सकता है, जबकि रोमांच, अश्रु, वेपथु आदि व्यक्ति के सत्त्व से उत्पन्न होनेवाले धर्म हैं, जिनका अभिनय संभव नहीं है। इस प्रकार आश्रय के हृदय में वासना रूप में विद्यमान रति आलंबन द्वारा जाग्रत और उद्दीपन द्वारा उद्दीपित होती है, संचारी भाव इसे परिपुष्ट करते हैं और अनुभाव एवं सात्त्विक भाव इसे अभिव्यक्त करते हैं या प्रतीतियोग्य बनाते हैं। वासना रूप में विद्यमान रति आलंबन से जाग्रत, उद्दीपनों से उद्दीपित, संचारीभावों से परिपुष्ट एवं अनुभाव-सात्त्विक भावों से अभिव्यक्त होकर रस रूप में परिणत हो जाती है। यही स्थायी रूप रति की रसरूपता है।

शृंगार का यह स्वरूपविवेचन भरतमुनि रचित 'नाट्यशास्त्र' के आधार पर स्थिर किया गया है और परवर्ती रसविवेचक आचार्यों ने इसे पूर्ण समर्थन प्रदान किया है। भरतमुनि का समय ईसा की प्रथम शताब्दी के आसपास माना जाता है और इस मध्य लगभग दो सहस्रावधियाँ व्यतीत हो गयी हैं। भरत ने अपने समाज की व्यवस्थाओं का व्यापक अध्ययन करके, रंगमंचीय आवश्यकताओं और दर्शकों की मनोदशाओं का सूक्ष्म विश्लेषणकर कुछ स्थापनाएँ प्रस्तुत की थीं, जिन्हें विस्थापित करने का प्रयास आज तक नहीं किया गया, बल्कि पोषण एवं समर्थन के ही प्रयास परिलक्षित होते हैं, लेकिन समय के इस सुदीर्घ अंतराल में मानवीय संवेदनाओं में काफ़ी परिवर्तन आ गया है।

वैदिक जीवन अत्यंत सहज एवं सरल था। नैसर्गिकता उसकी प्रधान विशेषता थी। वहाँ न जीवन की जटिलता थी और न आमुषिकता की चिंता। ऐहिकतापूर्ण सहज जीवन में व्यक्ति जैसा चिंतन करता है, उसे उसी रूप में अभिव्यक्त भी करता है, फलतः नैतिक विधानों का प्रश्न ही मस्तिष्क में उत्पन्न नहीं होता। 'ऋग्वेद' के दशम मंडल में दसवें सूक्त में यम-यमी संवाद आया है। यम और यमी विवस्वान् के जुड़वाँ पुत्र-पुत्री हैं। अपने प्रवास के समय वे किसी निर्जन स्थान पर पहुँचते हैं, जहाँ यमी उससे संतानप्राप्तिहित संभोग की कामना करती है और यम उसकी बातों को अस्वीकृत कर मर्यादापालन पर बल देते हैं। यहाँ इसका सार रूप प्रस्तुत है—

- यमी** : हे यम! इस निर्जन प्रदेश में मैं सख्य रूप में तुमसे मिलना चाहती हूँ। संसार रूपी सागर में नौका के समान तैरने के लिए हम प्रजननार्थ संभोग करें।
- यम** : हे यमी! आपका सहयोगी इस प्रकार की कामना से रहित है, क्योंकि आप सहोदरा बहन हैं। हमें यह अभीष्ट नहीं है।
- यमी** : यद्यपि मनुष्यों में इस प्रकार के संयोग त्याज्य हैं, तो भी देवशक्तियाँ इस प्रकार के संसर्ग की इच्छुक होती हैं। मेरी इच्छा का अनुकरण करें। आप मेरे लिए पति रूप में उपयुक्त हैं।
- यम** : हे यमी! हमने पहले भी इस प्रकार का कृत्य नहीं किया है।
- यमी** : हे यम! विधाता ने हमें गर्भ में एक रखकर दंपती के रूप में संबद्ध किया है। एक पत्नी के समान मैं तुम्हें अपना शरीर सौंपती हूँ।
- यम** : कृपया इस भावना से मेरे समीप से चली जाएँ और किसी दूसरे को पति रूप

में वरण करें। आप मुझसे पतित्व की अपेक्षा न रखें, किसी अन्य से संतानोत्पत्ति की इच्छा करें।

यमी : वह कैसा भाई है जिसके रहते बहन अनाथ फिरे? वह कैसी बहन है, जो विवश होकर पलायन कर जाए?

यम : हे यमी! भाई-बहन का संबंध अत्यंत पवित्र होता है और मैं शारीरिक संबंधों की इच्छा नहीं करता। आप मेरी आकांक्षा त्यागकर किसी अन्य पुरुष के साथ प्रसन्नचित्त होओ।

यमी : हे यम! तुम दुर्बल हो। तुम्हारे मन और हृदय के भावों को समझने में मुझसे भूल हुई है।

यम : हे यमी! आप किसी अन्य पुरुष को पति रूप में स्वीकारें, परस्पर इच्छानुरूप आचरण करें और मंगलकारी सुखों को प्राप्त करें!'

उक्त प्रकरण से स्पष्ट है कि वैदिक ऋषि ने कामुकी और विरक्त के वार्तालाप को नैसर्गिक अभिव्यक्ति प्रदान की है। 'विधाता ने हमें गर्भ में दंपती रूप में बनाया है', 'वह भाई कैसा है जिसके रहते बहन अनाथ की तरह भटकती फिरे', 'तुम दुर्बल हो' जैसे मार्मिक प्रहार करने वाली यमी के समक्ष यम केवल यही कहता है कि हम सहोदर हैं, जिनमें इस प्रकार के संबंध वर्जित हैं। तुम किसी अन्य पुरुष के समक्ष समर्पण करके इच्छानुकूल आचरण करो और मंगलकारी सुखों को प्राप्त करो। इस संदर्भ में अथर्ववेद का एक श्लोक भी उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं हो पा रहा है, जिसमें वैदिक ऋषि ईश्वर से प्रार्थना करता है—

तां पूषं छिवतभामरेयस्व परस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति।

या न उरू उशती विश्रयति यस्यामुंशतः प्रहरेम शेषः।^१

(हे परमेश्वर! आज मुझे अपनी पत्नी में बीजवपन करना है। अतः उसको अनुप्राणित कीजिए, जिससे वह मेरी कामना करती हुई अपने नितंबों को फैलाए और मैं अपना शिशु उसके गुह्यांग में प्रविष्ट करूँ।) यहाँ मंत्रद्रष्टा ऋषि की नैसर्गिकता दर्शनीय है, उसमें कृत्रिम सदाचार का भाव भी नहीं है। 'छांदोग्य उपनिषद्' में वामदेव्यसाम की उपासना के विषय में कहा गया है—'स य एवमेतद्दामदेव्यं मिथुने प्रोतं वेद मिथुनी भवति मिथुनान्मिथुनात्प्रजायते सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या न कांचन् परिहरेत्तद्व्रतम्।'^३ अर्थात् जो इसे जानता है, वह मिथुनवान होता है, प्रत्येक मैथुन से संतान को जन्म देता है, संपूर्ण आयु का उपभोग करता है, उज्ज्वल जीवन बिताता है, प्रजा और पशुओं से महान् होता है, महान् कीर्तिवाला होता है, किसी भी स्त्री का परित्याग न करे, यह व्रत है।

इस अंश में 'न कांचन् परिहरेत' की व्याख्या करते हुए शंकराचार्य ने अपने भाष्य में लिखा है—'न कांचन कांचिदपि स्त्रियां स्वात्मतल्पप्राप्तां न परिहरेत्समागमार्थिनीम्' अर्थात् समागम चाहने वाली और बिस्तर पर आयी हुई किसी भी स्त्री को न छोड़े। रामानुज अपने भाष्य में लिखते हैं—'प्रार्थयमानामिति शेषः। प्रार्थयमानसर्वयोषिद्गमनस्य वामदेव्योपासनासंगत्वेन विधानात् परदारगमनप्रतिषेधवचनानि तदतिरिक्तविषयाणि द्रष्टव्यानि' अर्थात् जो परायी स्त्री समागम के लिए व्याकुल हो, उस प्रार्थना करती हुई परकीया के साथ संभोग करने का वामदेव्यसाम की उपासना

का अंग रूप में विधान है।

कहने का आशय यह है कि वैदिककाल में जीवन को सहज रूप में स्वीकृति दी गयी और वैदिक मंत्रों में उसको नैसर्गिक अभिव्यक्ति मिली। यद्यपि प्रेम और काम को यहाँ स्वीकृति प्राप्त रही है और अपनी संतति को भी इस विषय में नियंत्रणमुक्त रखा गया है तथा आर्येतर सुंदरियों को भी अग्राह्य नहीं माना गया है तथापि इसे जीवन का अविच्छिन्न अंग मानकर सहज स्वीकार किया गया है, फलतः मर्यादा का आवरण यहाँ दृष्टिगत नहीं होता।

लौकिक संस्कृत साहित्य में वैदिक साहित्य जैसी नैसर्गिकता नहीं देखने को मिलती और इसका कारण भी स्पष्ट है। नये धर्मों और नवीन विचारधाराओं के उदय के साथ जीवन में जटिलताएँ आनी प्रारंभ हुईं, फलतः अनेक प्रकार के विधि-निषेधों का विधान किया गया। समाज इहलोक के साथ परलोक की ओर भी उन्मुख हो गया, स्वर्ग और मोक्ष की कामना मानव का ध्यान भटकाने लगी, लेकिन इसकी परिणति सदाचार और संयम के रूप में ही हुई। संस्कृत साहित्य में शृंगार संयत रूप में ही सामने आता है। कालिदास जैसा कोई एकाध कवि भले ही कह दे—‘ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः’ (मेघदूत, छंद 44) अर्थात् रस का अनुभव कर लेने वाला ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो खुले हुए कटिप्रदेश वाली को छोड़ने में समर्थ हो, लेकिन प्रायः शृंगार की संयत या अमुखर अभिव्यक्ति ही इन कवियों को स्वीकृत रही।

जब-जब दो भिन्न जातियों, दो भिन्न संस्कृतियों का सम्मिलन होता है तो एक नवीन समृद्ध संस्कृति सामने आती है तथा कला एवं साहित्य को नवजीवन प्राप्त होता है। आभीर घुमक्कड़ एवं युद्धप्रिय जाति थी और उसके जीवनमूल्य आर्यों से भिन्न थे। उनकी दृष्टि में इहलोक प्रधान था और इस लोक को सानंद जीने की भावना उनका लक्ष्य थी। इसके लिए उन्मुक्त जीवन भी उन्हें स्वीकार्य था।

आभीर जाति का उल्लेख तो ‘महाभारत’ में भी मिलता है, लेकिन ईस्वी पूर्व दूसरी शताब्दी में उन्होंने पंजाब के कई अंशों पर अधिकार कर लिया था। क्षत्रप रुद्रसिंह (दूसरी शताब्दी) के लेख से पता चलता है कि उसका प्रधान सेनापति रुद्रभूति आभीर था। तीसरी-चौथी शताब्दी में ये राजस्थान और मध्यभारत के विभिन्न क्षेत्रों में फैल गए। समुद्रगुप्त के प्रयाग वाले स्तंभ लेख से ज्ञात होता है कि आभीर एक शक्तिशाली जाति थी और उसका अधिकार संपूर्ण राजस्थान पर था। ये लोग आर्य-परंपरा से भिन्न स्वच्छंद एवं सानंद जीवनयापन में विश्वास करते थे और संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत एवं अपभ्रंश में अपनी संवेदनाओं को व्यक्त करते थे।

आभीर जीवनशैली से प्रभावित राजा सातवाहन ने इहलौकिक प्राकृत गाथाओं का संकलन कर एक कोश बनाया, जो गाथाकोश (गाथासप्तशती) कहलाता है। इसकी अनेक प्राचीन प्रतियाँ उपलब्ध होती हैं, जिनमें लगभग चार सौ गाथाएँ समान हैं और कुछ परवर्ती भी हैं। यह एक भिन्न संस्कृति की रचना है, जिसमें इहलोक ही नहीं, उसके प्रत्येक क्षण को सानंद जीने की भावना है।

प्राकृत-साहित्य के नाम पर ‘गाथासप्तशती’ और ‘वज्जालगं’ के अतिरिक्त 5-6 सट्टक ही विशेष प्रसिद्ध हैं और इन सभी का विषय शृंगार ही है। ‘गाथासप्तशती’ और ‘वज्जालगं’ क्रमशः हाल और जयवल्लभ द्वारा लोकजीवन में निर्मित करोड़ों गाथाओं में से चयन कर संकलित किए गए हैं और दोनों संकलन इस धारणा में विश्वास करते हैं कि अमृत रूप प्राकृत काव्य को जो पढ़ना-सुनना नहीं जानते और कामतत्त्व की विवेचना करते हैं, वे लज्जित क्यों नहीं

होते?⁴ दोनों में मुख्य अंतर यह है कि 'गाथासप्तशती' में उन्हीं गाथाओं को संकलित किया गया है, जिनका वर्ण्य या ध्वन्यर्थ शृंगार है और यह सात शतकों में विभक्त है, जबकि 'वज्जालगंग' में शृंगार के अतिरिक्त अन्य विषय भी संगृहीत हैं और इसका विभाजन ब्रज्याओं में किया गया है। यद्यपि दोनों में 82 गाथाएँ समान हैं और स्पष्टतः ये शृंगारिक ही हैं। 'वज्जालगंग' की यांत्रिक, मुसल, ज्योतिषिक, कुट्टिनी शिक्षा आदि ब्रज्याओं में काफ़ी शृंगारिक गाथाएँ हैं, यद्यपि इनमें अधिकांशतः दूसरे संकलन में भी उपलब्ध हो जाती हैं। यहाँ दो-तीन गाथाएँ प्रस्तुत हैं—

**1. जंतिय गुलं विमग्गसि न य मे इच्छाइ वाहसे जन्तं।
अरसन्न किं न आणसि न रसेण विना गुलं होई।**

—वज्जा, 538

हे यांत्रिक (कोल्हू चलाकर गुड़ बनाने वाले)! यंत्र (1. कोल्हू, 2. शिश्न) मेरी इच्छा के अनुरूप नहीं चलाते और गुड़ (1. मज्जदूरी रूप में निर्धारित गुड़, 2. आनंद) चाहते हो। हे अरसिक! क्या तुम इतना भी नहीं समझते कि यहाँ रस (1. गन्ने का रस, 2. अनुराग, प्रेम) के बिना गुड़ नहीं मिलता।

**2. चंदणवलयं दिढकंचिबन्धणं दीहरं सुपरिमाणं।
होइ घरे साहीणं मुसलं धन्नाण महिलाणं।**

—वज्जा, 538

चंदन से अवलिप्त, दृढ़ कांचीबन्धन से सम्पन्न और विशाल परिमाण वाला स्वाधीन मुसल धन्य महिलाओं के घर में ही होता है। (समस्त ब्रज्या में मुसल या मूसल शिश्न का प्रतीक है।)

**3. भमिओ चिरं असेसो गामो मह सहियओ सयं वारं।
गेहुक्खालपरिमाणेण मामि मुसलं चिय न दिट्ठं।**

—वज्जा, 547

हे सखि! मैंने समस्त ग्राम सैकड़ों बार घूमा। अपने घर के ऊखल के समान परिमाण वाला मुसल मुझे कहीं दिखाई नहीं दिया। टीकाकार रत्नदेव इसका आशय इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—'परम आत्मभगयोग्यं कस्यापि साधनं न दृष्टामिति' इसको अनुवादक ने इस प्रकार कहा है— "No where have I come across a male organ commensurate with my vaginal passage."⁵

प्राकृत के सट्टकों का वर्ण्य तो शृंगार ही है, लेकिन कथासूत्र के संगठन के कारण शृंगारिकता मर्यादित ही रही है। इन सभी में निकट संबंधिनी नायिका की प्राप्ति के लिए भीषण उद्योग तो दिखाई पड़ता है, लेकिन कवियों ने अपने को प्रायः रूपवर्णन एवं संयोग वर्णन तक ही सीमित रखा है। यत्रतत्र शृंगारगर्भित ऐसी उक्तियाँ भी मिल जाती हैं—

**तन्नो अच्चरियं घणेण सुवहु साह्वसित्ता सदी
खोणी किं न सहेदि सीरमुहओ तं तारिसं फालणां।**

(बादलों की धारासार वृष्टि से भलीभाँति सिंचकर ही धरित्री हल की फाली के कठोर प्रहारों को सहती है।)

सातवीं-आठवीं शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी तक उत्तर भारतीय जीवन पर बौद्ध मतावलंबी सिद्धों का व्यापक प्रभाव रहा। वैदिक कर्मकांड की जटिलता और यज्ञीय हिंसा की

प्रतिक्रिया में जब गौतम बुद्ध ने सहानुभूति एवं सदाचारमय जीवनदर्शन वाले, तृष्णा एवं दुःखों से रहित करुणामय धर्म का प्रचार किया तो राजाओं से लेकर प्रजा तक उसे व्यापक जनस्वीकृति मिली, लेकिन राज्यसंरक्षणों के कारण उसमें कई विकृतियाँ भी आईं और परस्पर मतभेद भी उभरे। ईसा की शताब्दी तक आते-आते यह धर्म हीनयान और महायान दो शाखाओं में विभक्त हो गया। हीनयान में गौतम बुद्ध मानव हैं, उपदेशक हैं, पथप्रदर्शक हैं और उनकी शिक्षाओं का पालन करने से कल्याण प्राप्त होता है, जबकि महायान में गौतम बुद्ध को सर्वशक्तिमान ईश्वर के रूप में माना गया और नानाविध मूर्तियाँ बनाकर उनकी पूजा का विधान किया गया।

ईसा की शताब्दी के लगभग इस धर्म को सातवाहन, कृष्ण एवं शुगवंशीय नरेशों का विरोध सहन करना पड़ा और इसका प्रचार-प्रसार प्रायः रुक गया। गुप्तवंशीय परम भागवत नरेशों ने जब वैदिक धर्म को पुनः प्रतिष्ठित किया तो इसकी अवशिष्ट सामाजिक स्वीकृति भी खिसकने लगी। कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य ने तो इसकी सामाजिक स्वीकृति की चूलें ही हिलाकर रख दीं, फलतः उसे सामाजिक पकड़ बनाने के लिए पुनः सचेष्ट होना पड़ा। इस संकटकाल में उसने यंत्र, मंत्र, अभिचार आदि का सहारा लिया, वाममार्ग और तांत्रिक मतों से समझौता किया और वह मंत्रों की जटिलताओं और साधना की उलझनों में फँसता हुआ सदाचार और सात्विकता से दूर होता चला गया।

सातवीं शताब्दी से पूर्व महायान दो भागों में विभक्त हो गया—पारमिता नय और मंत्रनय। इनमें मंत्र नय शाखा अधिक लोकप्रिय हुई, जिसमें अनेक सूत्र, मंत्र और धरणियों का प्रचलन हुआ। ध्यानी बुद्धों की कल्पना की गयी जो अपनी शक्तियों के साथ समन्वित रहते हैं। नागार्जन मंत्रयान के प्रसिद्ध आचार्य माने जाते हैं। इस शाखा का मत है कि अर्थहीन मंत्र ही वास्तविक शक्ति रखते हैं, जिनके आधार पर साधक अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। इस परिस्थिति में मंत्र, धरणी या गुप्त रूप से जादू-टोना, मोहिनी मंत्र, इंद्रजाल ने बुद्धधर्म की आचारपद्धति को परिवर्तित कर डाला और इसमें दर्शन की अपेक्षा क्रिया-चर्या प्रधान हो गयीं।

मंत्रयान से सहजयान विकसित हुआ, जिसमें भिक्षुओं के संयमित जीवन के विपरीत सहज वासनाओं की पूर्ति को आवश्यक माना गया। नालंदा के प्रख्यात बौद्धाचार्य राहुलभट्ट, जो बाद में सरहपा नाम से प्रसिद्ध हुए, ने ब्राह्मण वंश में जन्म लेकर भी प्रौढ़ावस्था में एक बाण बनानेवाले की सुंदरी कन्या से विवाह करके अरण्यवास स्वीकारा और सहज वासनाओं की पूर्ति की। सरहपा सरल जीवन में भोगों को त्याज्य नहीं मानते, बल्कि उनमें आसक्ति को त्याज्य मानते हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि सुखपूर्वक खाते-पीते और रमण करते हुए इस धर्म में परलोक की साधना की जाती है। उनकी मान्यता है—

विसअ रमन्त ण विसअहिँ लिप्पइ।
उअअ हरन्त ण पाणी च्छुप्पइ॥

अर्थात् विषयों में रमण करते रहो, लेकिन उनमें लिप्त न होओ। पानी निकालते हुए पानी का स्पर्श न करो।

सहजयान के साथ ही एक नवीन शाखा वज्रयान का भी विकास हुआ। इस शाखा में वाममार्ग और तंत्रवाद का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। वज्रयान में पाँच ध्यानी बुद्धों को अपनी शक्ति तारा के साथ संयुक्त रूप में दिखाया गया है। वज्रसत्त्व को प्रायः अपनी शक्ति का आलिंगन

करते हुए दिखाया गया है। इसमें कमल और कुलिश की साधना पर विशेष बल दिया गया। भैरवीचक्रों की आयोजना को प्रमुख माना गया, जिसमें साधक और साधिकाएँ सम्मिलित होते थे और मत्स्य, मांस, मद्य के सेवन के पश्चात् मैथुनसुख भी प्राप्त करते थे। साधिका को प्रायः युवती, डोंबी, भगवती, माया, मुद्रा आदि कहा जाता था, लेकिन उसका अर्थ रमणी ही है, जो भोग का विषय बनती थी। जनसाधारण से अपनी गुह्य साधनाओं को छिपाने के लिए उन्होंने नए शब्द या प्रतीक अवश्य गढ़े, लेकिन कमल, कुलिश और साधिका (डोंबी) क्रमशः योनि, शिश्न और रमणी के ही पर्यायवाची हैं। इस साधना के विषय में स्पष्ट कहा गया है—‘कमल और कुलिश को मध्य में स्थित करके सुरतविलास का जो आनंद लिया जाता है, त्रिभुवन में कौन उससे वंचित रह सकता है और किसकी आशा को वह पूर्ण नहीं करता।’ गुण्डरीपा ने अपने एक छंद में इसे स्पष्ट रूप में इस प्रकार कहा है—

तिअडडा चापि जोइनि दे अंकवाली।
 कमल कुलिश घाण्ट करहु विआली।
 जोइनि तइँ बिन खनहिँ न जीवमि।
 तो मुह चुंबी कमल रस पीवमि।

सिद्ध कण्ठपा कहते हैं—‘जब तक साधक अपनी गृहिणी का उपभोग न करेगा, तब तक पंचवर्ण की स्त्रियों के साथ विहार क्या करेगा? उनका वचन है ‘जिमि लोण विलिज्जइ पाणिएहि तिमि घरणी लइ चित्त’ अर्थात् जिस प्रकार नमक पानी में विलीन हो जाता है, उसी प्रकार गृहिणी के संयोगसुख में खो जाओ। वस्तुतः यहाँ वाममार्गीय भोगविलास ही प्रमुख हो उठा है तथा नवीन शब्द गढ़कर और संसार से छिपाकर उसी की साधना की जाने लगी।

तंत्र और वाममार्गीय साधना को बौद्धधर्म में मिलाने वाले आचार्य असंग माने जाते हैं, जो मूलतः गांधार देश के रहने वाले थे। इसी आधार पर विद्वानों का अनुमान है कि वह मगपुरोहितों की तांत्रिक पूजापद्धतियों से परिचित रहा होगा। जो भी, यह वज्रयान दक्षिण में काफ़ी फूला-फला। आंध्र शासकों ने इसे राज्यसंरक्षण प्रदान किया और उनकी राजधानी धान्य कटक के निकट श्रीपर्वत पर यह साधना अत्यधिक मात्रा में विकसित हुई। आठवीं शताब्दी में रचित ‘मालतीमाधव’ की सौदामिनी नामक बौद्धभिक्षुणी श्रीपर्वत पर ही दीक्षा लेकर आयी है। नागार्जुन दक्षिण के प्रसिद्ध आचार्य थे जो बाद में नालंदा विश्वविद्यालय के महंत बने।

सहजयान और वज्रयान के पारस्परिक स्वरूप पर विचार कर लेना भी आवश्यक हो जाता है। सहजयान में सहज स्वभाव पर विशेष बल दिया जाता था, लेकिन सैद्धांतिक रूप में वे भी सहज को प्रज्ञोपायात्मक मानते थे, जिसमें प्रज्ञा स्त्री रूप है और उपाय पुरुष रूप। सहजयान में सहज वासनाओं की पूर्ति पर ध्यान दिया जाता था, जबकि वज्रयान में इन बातों को विशेष रूप में मुखरित किया गया और सहज वासनाओं की पूर्ति के स्थान पर कमल कुलिश साधना कह दिया गया। सहजयान यदि भोगों का निषेध नहीं करता, उपभोग का समर्थन ही करता है, तो वज्रयान उनके अतिशय, मुखर भोगों को, प्रोत्साहित करता है। वस्तुतः वज्रयान, सहजयान का कोई स्वतंत्र या पृथक् संप्रदाय नहीं था, बल्कि उसकी एक पद्धति थी, जिसने वामपंथ और तांत्रिक बातों को प्रचुर मात्रा में ग्रहण किया और भैरवीचक्रों के माध्यम से मद्य-मांस के साथ मैथुन को अपना लक्ष्य बनाया।

आठवीं-नवीं शताब्दी में पाल शासकों ने बिहार और बंगाल में आधिपत्य स्थापित किया और बौद्धों को राज्यसंरक्षण प्रदान किया, फलतः अनेक वज्रयानी साधक दक्षिण के श्रीपर्वत को छोड़कर यहाँ आ गए। विक्रमशिला विश्वविद्यालय तो स्थापित ही पालशासकों ने किया था, नालंदा में भी बौद्धसाधकों को विशेष संरक्षण प्रदान किया गया। राज्यसंरक्षण पाकर वज्रयानी सिद्धांतों का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। वाममार्ग और शक्तितंत्र ने भी अपना प्रबल प्रताप दिखाया। मगध में प्रस्तर की ही नहीं, धातु की प्रतिमाएँ भी गढ़ी जाने लगीं। शक्तियों सहित देवताओं की सहवास की अश्लील मुद्राओं में निर्मित ये मूर्तियाँ बिहार, बंगाल, उड़ीसा आदि में आज भी उपलब्ध होती हैं। इन प्रतिमाओं के निर्माण में मगध के धीमान एवं विटापाल नामक मूर्तिकारों का विशेष योगदान रहा।

बिहार, बंगाल, उड़ीसा से लेकर असम तक इन बौद्धसिद्धों का व्यापक प्रभाव था, जो दसवीं शताब्दी तक किसी ने किसी रूप में विद्यमान था। नालंदा और विक्रमशिला विश्वविद्यालय तो इनके प्रधान केंद्र थे। तेरहवीं शताब्दी में बख्तियार खलजी ने आक्रमण करके इनके आचार्यों और साधकों को मौत के घाट उतारा और पुस्तकालयों को अग्निसात कर दिया, फलतः ये साधनाकेंद्र उजड़ गए और अवशिष्ट आचार्य और साधक इधर-उधर पलायन कर गए।

परवर्ती कई साधनाओं पर सिद्धों का क्रियात्मक-प्रतिक्रियात्मक प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। एक ओर नाथों की साधना आती है, जिन्होंने वाममार्गीय साधनों-मत्स्य, मांस, मद्य एवं मैथुन-पर रोक लगाते हुए हठयोग को महत्त्व प्रदान किया। रहस्यवाद के रूप में वे आत्मा-परमात्मा के रूपक के लिए पति-पत्नी संबंधों का प्रयोग अवश्य करते थे, लेकिन उन्होंने सात्त्विकता और पावनता को अक्षुण्ण रखा। वज्रयान से कौल, कापालिक साधनाएँ अवश्य प्रभावित रहीं और बौद्धों के दूषण मद्य-मांस-मैथुन इनमें भी प्रचलित रहे।

साहित्य पर सिद्धों का खास प्रभाव नहीं पड़ा। वस्तुतः सिद्धों द्वारा रचित काव्य तो अधिक प्रचलन में नहीं आया और संस्कृत अथवा अन्य भाषाओं के साहित्य पर इनका विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, तथापि एक-दो ग्रंथों में इनकी साधना का आनुषंगिक रूप दिख जाता है। सिद्धों को जनसाधारण अतिमानव और चमत्कारी शक्तियों से संपन्न मानते थे। दसवीं शताब्दी में राजशेखर रचित 'कर्पूरमंजरी' सट्टक में 'अद्भुत सिद्धि' वाले भैरवानंद अपना परिचय इस प्रकार देते हैं—

मंतो ण तंतो ण अ किंपि जाणे झाणं च णो किंपि गुउप्पसादा।
मज्जं पिवामो महिलं रमामो मोक्खं च जामो कुलमग्गलग्गा।
रंडा चंडा दिक्खिदा धम्मदारा मज्जं मंसं पिज्जए खज्जए अ।
भिक्खा भोज्जं चम्मखंडं च सेज्जा कोलो धम्मो कस्स णो भादि रम्मो।

—1/11-23

अर्थात् कौलमार्गी हम लोग मदिरा पीते हैं, स्त्रियों के साथ रमण करते हैं, फिर भी गुरुकृपा से मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। हम लोग मंत्र, तंत्र, ज्ञान, ध्यान कुछ भी नहीं जानते। विधवाओं और कलहकारिणी धर्मपत्नियों को हम धर्म में दीक्षित करते हैं, मद्य पीते हैं और मांस खाते हैं तथा चर्मखंड पर सोते हैं। ऐसा कौल धर्म किस व्यक्ति को रम्य नहीं लगता।

इतना ही नहीं, ग्यारहवीं शताब्दी में कृष्णमिश्र यति रचित 'प्रबोध चंद्रोदय' नाटक के

तृतीय अंक में सोमसिद्धांत तथा अन्य भिक्षुओं के वार्तालाप से भी यही स्पष्ट होता है कि ये मांस-मदिरा, सामाजिक स्त्री, वेश्या और भिक्षुणियों से भी मैथुनरत होते थे। क्षपणक उसे 'विहारदासीभुजंग' कहता है तो वह स्वयं भी भगवान् बुद्ध के वचन इस प्रकार सुनाता है— 'क्षणिकाः सर्वे संस्काराः। नास्त्यात्मा स्थायी। तस्माद्भिक्षुषु दारानाक्रमत्सु नेर्षितव्यम्।' अर्थात् सभी संस्कार क्षणिक हैं, आत्मा भी स्थायी नहीं है, इसलिए यदि भिक्षु स्त्रियों के साथ रमण करें, तो ईर्ष्या मत करना। यहीं यह भी संकेत मिलता है कि बुद्धदेव की प्रसन्नता के लिए भिक्षुओं की सेवा शरीरार्पण से भी की जानी चाहिए।

शृंगारिक काव्य-परंपरा में प्रेम की प्रतिमा राधा को प्रस्तुत करने और उसके माध्यम से शृंगार को नूतन दिशा देने का कार्य गीतगोविंदकार जयदेव का है। इनसे पूर्व एक ओर पंचमकारों से संपन्न भैरवीचक्रों का आयोजन करने वाले वज्रयानियों की पंक्ति थी तो दूसरी ओर भगवल्लीला के नाम पर मधुराभक्ति प्रस्तुत करनेवाली कृष्णभक्तों की परंपरा। वंगनरेश लक्ष्मणसेन (बारहवीं शताब्दी) के सभाकवि जयदेव ने भक्ति का अल्प पुट लगाकर जो विलासितापूर्ण लौकिक शृंगार प्रस्तुत किया और उसे लोकगायन परंपरा के रूप में अर्पित किया, उसकी हलचल दूर तक सुनाई दी। चैतन्य महाप्रभु ने उसे लोकव्यापी ही नहीं, अक्षय भी बना दिया।

वस्तुतः जयदेव का शृंगार शुद्ध लौकिक ही नहीं, विलासिता भी लिये हुए है, लेकिन वे 'हरिस्मरण' की बात कहकर उसे आध्यात्मिक स्वरूप प्रदान करते दृष्टिगत होते हैं। 'गीतगोविंद' की प्रस्तावना में वे स्वयं स्वीकारते हैं—

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकलासु कुतूहलम्।

मधुर कोमलकांतपदावलीं शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम्।

अर्थात् यदि आपका मन हरिस्मरण के प्रति लालायित है और कृष्ण की केलिकलाओं के प्रति कुतूहल है तो मधुर और कोमलकांत पदावली वाली जयदेव की कविता सुनिये। जयदेव ने 'हरिस्मरण' और 'विलासकला' का शब्दशः कथन भले ही किया है, लेकिन वहाँ भक्तिभाव का स्रोत अदृश्य-सा ही है और उद्दाम लौकिक शृंगार का सागर लहराता दिखता है। यहाँ कुछ प्रसंग तो ऐसे भी मिलते हैं, जो सभ्य समाज में संभव नहीं हैं, केवल विलासी समाज में ही सम्भव हैं। रासक्रीड़ा के समय गोपियों के कुचस्पर्श, जघनस्पर्श और नीविस्पर्श तक तो भागवतकार भी पहुँच गए थे, लेकिन जयदेव ने काफ़ी आगे बढ़कर विपरीत रति तक दस्तक दे दी है—

उरसि मुरारेरूपहितहारे घन इव तरलबलाके।

तड्दिव पीते रतिविपरीते राजसि सुकृतविपाके॥

विगलितवसनं परिहृतरशनं घटय जघनमपिधानम्।

किसलयशयने पंकजनयने निधिमिव हर्षनिधानम्।^९

अर्थात् हे पीताभवर्णी राधिके! मेघों में बकुल पंक्ति के समान मालाओं से सुसज्जित तथा पुण्य से प्राप्त श्रीकृष्ण के वक्षस्थल पर विपरीत रति करके बिजली के समान चमकिये। किसलयों पर शयन करने वाले कमलनयन श्रीकृष्ण के ऊपर वस्त्र और करधनी उतारकर निधि के समान आनंदप्रद निर्वस्त्र जाँघों को मिलाइए।

वस्तुतः जयदेव ने मानव की धन्यता का जो मानदण्ड स्वीकार किया है, वह

आध्यात्मिक या शृंगारिक नहीं, नितांत भोगवादी है। उनकी धारणा दर्शनीय है—

ईषन्मीलितदृष्टिमुग्धहसितं सीत्कारधारावदशा—
द्व्यक्ताकुलकेलिकाकुविकसिद्दन्तांशुधौताधरम्।
श्वासोत्कम्पियोधरोपरि परिष्वंगात्कुरंगीदृशो,
हर्षोत्कर्षविभुक्तनिः सहतनोर्धन्यो धयत्याननम्।*

अर्थात् वह पुरुष धन्य है, जो प्रगाढ़ आलिंगन के कारण शांत एवं स्तब्ध उरोजों वाली तथा हर्षातिरेक से शिथिलित शरीर वाली मृगनयनी के कुछ-कुछ बंद नेत्रों और सीत्कार की परंपरा तथा आकुल केलि के कारण फैलती हुई दंतपंक्ति से अलंकृत अधर वाले मुख का पान करता है।

यदि 'गीतगोविंद' के शृंगारवर्णन को सतर्कतापूर्वक देखा जाए तो उसमें आध्यात्मिकता के छद्म आवरण में छिपा हुआ लौकिक शृंगार सामने आ जाता है, जो विलासिता की भूमि पर आधारित है। वस्तुतः जयदेव ने शृंगारवर्णन में नायिकाभेद और कामशास्त्र से भरपूर सहायता ली है और यही कारण है कि उसमें विभिन्न कामदशाएँ, अवस्थानुसार नायिकाभेद, विपरीत रति, सुरतान्त आदि सभी प्रकार के वर्णन मिल जाते हैं। यही कारण है कि वे एक ओर लोकगायन परंपरा से जुड़कर 'श्रीकृष्णकर्णामृत', 'कृष्णगीति' आदि संस्कृत ग्रंथों ही नहीं, विद्यापति पदावली के भी उपजीव्य बनते हैं तो दूसरी ओर रागरागनियों को निबद्ध करने के कारण सूर और तुलसी ही नहीं, हरिदास आदि की परंपरा का भी प्रवर्तन करते हैं। साथ ही वैष्णवभक्तों की नायिकाभेद की परंपरा के भी प्रारंभिक उत्स दिखते हैं। यही वह परंपरा है, जो आध्यात्मिकता के निश्शेष होने पर हिंदी काव्य में भक्ति से रीति में परिणत होती है और राधाकृष्ण के मिलनप्रसंगों को काव्य में प्रमुखता देती है। जयदेव के शृंगार में लौकिकता का प्राधान्य देखकर भी आलोचकों को यह स्वीकारना पड़ा है—'जयदेव के विशद शृंगारवर्णन को देखकर भले ही कुछ लोग उसमें अश्लीलता या भद्देपन (वल्गर एलिमेंट्स) का अनुभव करें, किंतु उनका एक सामयिक सामाजिक महत्त्व भी है। ... शृंगार-सुरा के व्यसनी समाज की चिकित्सा आवश्यक थी, जिसका श्रीगणेश जयदेव ने बड़ी कुशलता से किया है। शृंगार के आसव में थोड़ी-सी भक्तिरस की मात्रा मिलाकर उन्होंने कम से कम उस प्रभाव को हल्का कर देने की पद्धति को आगे बढ़ाया।' निश्चयतः उनका संकेत वज्रयान और शाक्त तंत्रों से उत्पन्न भैरवीचक्रों की अभद्र कामक्रीड़ाओं की ओर ही है।

जयदेव के लगभग दो शताब्दि पश्चात् लोकगायन शैली को आधार बनाकर दरभंगा (बिहार) के विसपी ग्राम के विद्यानुरागी ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न और तिरहूतनरेशों से पारम्परिक रूप से आश्रय प्राप्त कवि विद्यापति (संवत् 1407-97) ने देशी रागरागनियों में राधाकृष्ण की शृंगारिक क्रीड़ाओं का चित्रण किया। उनके सौंदर्यवर्णन में मांसलता है, मिलन और विरह में लौकिकता है। राधा के प्रेम में लौकिक विकास का स्वरूप भी दृष्टिगत होता है, वयःसंधि, नखशिख, दूतीसंप्रेषण, अभिसार, मिलन, मान, विरह आदि शास्त्रीय आधार पर रखे गए हैं। राधा पूर्णतः साधारण नायिका है, लौकिक पात्र है और कृष्ण भी तदनुकूल सौंदर्यप्रेमी एवं कामी नायक। यह सत्य है कि राधा और कृष्ण लौकिक नायक-नायिका के रूप में ही सामने आते हैं, आराध्य रूप में नहीं, लेकिन कवि ने सौंदर्यासक्ति और प्रेमानुभूति का अत्यंत तल्लीनतापूर्ण चित्रण किया

है, फलतः न तो उसमें मनोवैज्ञानिकता का अभाव है और न वह सामाजिक अस्वस्थता का प्रतीक बन सका है। इस प्रेम में वासना का रंग इतना प्रगाढ़ है कि इसे उद्दाम शृंगार के अतिरिक्त कुछ नहीं कहा जा सकता। डॉ० रामकुमार वर्मा का यह कथन अयथार्थ नहीं है—‘विद्यापति ने राधाकृष्ण का जो चित्र खींचा है, उसमें वासना का रंग बहुत ही प्रखर है। सख्य भाव से जो उपासना की गयी है, उसमें कृष्ण तो यौवन में उन्मत्त नायक की भाँति हैं और राधा यौवन की मदिरा में मतवाली एक मुग्धा नायिका की भाँति। राधा का प्रेम भौतिक और वासनामय प्रेम है। आनंद ही उसका उद्देश्य है और सौंदर्य ही उसका कार्यकलाप।¹⁰ विद्यापति के विशेष अध्येता डॉ० रामनाथ झा भी बलपूर्वक इसी मान्यता को पोषित करते हैं—‘इस बात पर जोर देने की आवश्यकता है कि विद्यापति के शृंगाररसपूर्ण गीतों का विषय प्रेम है, भौतिक प्रेम, स्त्रीपुरुष का यौन प्रेम, बिना किसी आध्यात्मिक या रहस्यात्मक दूरस्थ अभिप्राय के। यह उनकी प्रतिभा की महत्ता ही है कि विभिन्न लोग उनके शब्दों का विभिन्न अर्थ निकालते हैं।¹¹ यहाँ आचार्य रामचंद्र शुक्ल का यह व्यंग्य भी स्मरण में आ जाता है—‘आध्यात्मिक रंग के चश्मे आजकल बहुत सस्ते हो गये हैं। उन्हें चढ़ाकर जैसे कुछ लोगों ने ‘गीतगोविंद’ के पदों को आध्यात्मिक संकेत बताया है, वैसे ही विद्यापति के इन पदों को भी।¹² तत्त्वतः राधाकृष्ण का लौकिक एवं उद्दाम शृंगार, जिसमें आलोचकों ने वासनात्मकता के भी दर्शन किए हैं, देशी रागरागनियों के साथ संयुक्त करके लोकसंस्कृति को गायनार्थ समर्पित देना ही विद्यापति का महत्कार्य है। उनके कृतित्व में विशुद्ध कलात्मकता है।

विद्यापति की व्यापक लोकप्रियता का प्रमुख कारण यह है कि बंगाल के प्रमुख वैष्णव संत चैतन्य महाप्रभु, जिन्हें धार्मिक जन विष्णु का अवतार मानते हैं, जयदेव, चंडीदास आदि के साथ विद्यापति के कुछ ललित और पवित्र पदों का अत्यंत भावमग्नता से गायन करते थे और गाते-गाते मूर्च्छित-से हो जाते थे, जिससे विद्यापति के पदों की प्रतिष्ठा बढ़ने लगी और इसके साथ ही बढ़ने लगा विद्यापति के प्रति सम्मान का भाव भी।

मध्यकालीन प्रेमाख्यान काव्य-परंपरा में जिन कवियों पर सूफ़ी विचारधारा का प्रभाव रहा है, उनमें शृंगार का स्वरूप किंचित् भिन्न रहा है। अपरिमित सौंदर्य की राशि वाली नायिका के आकर्षणपाश में बँधकर और सांसारिक विधि-निषेधों की अवहेलना कर नायक उसकी प्राप्ति का भीषण उद्योग करता है और अंत में उसे प्राप्त कर लेता है। इन कवियों ने शृंगार के दोनों पक्षों के चित्र तो खींचे हैं, लेकिन उनको विरह में विशेष रुचि रही है, जबकि मिलन तथ्यात्मक हो गया है। शैयासंग्राम के पश्चात् कवि की रुचि सुरतावसान के चित्रों में रमी है। माँग का छिटकना, बालों का बिखरना, मौक्तिकहार का विच्छिन्न होना, कंचुकी का टूक-टूक होना, पायल का खुल पड़ना, साड़ी का फट जाना, बाली-टड्डे-भुजबंद-कंगन का टूटना आदि का विस्तृत विवरण इन कवियों में मिलता है—

लूटे अंग-अंग सद भेसा। छूटी मंग भंग भे कैसा।
कंचुकि चूर-चूर भै ताने। टूटे हार मोती छहराने।
बारी टाड सलोनी टूटीं। बाँह कंगन कलाई फूटी।
चंदन अंग छूट तस भेंटी। बैसरि टूटि तिलक गा मेंटी।

—पद्मावत

लगभग यही स्थिति कुतबन में भी मिलती है—

नह सत साँग सनाह के लागी। कंचुकी तार-तार होइ भागी।
 बिरी फूट कर गही जो नाहाँ। पहुँची जो टूटि उपरि गइ बाहाँ।
 कसी रकावल अही जो सारी। मैमंत भिरे उहो धरि फारी।
 दूनो उनै माँझ रन रहे। दिनियर आइ बीच होइ गहे।
 —मृगावती

यही नहीं, कासिमशाह के शब्द भी लगभग यही हैं—

छिटकी माँग छिटक गे बारा। टूटा गा गजमुक्त्तन हारा।
 टीका मिलि भा ललित लिलारा। फीका भयो रंग रतनारा।
 टूक-टूक भई कंचुकि चोली। पवन वास भइ कोकिल बोली।
 छुटि गये बंद जो छतियन साजे। खुलि गये पायल पायन बाजे।
 —हंस जवाहर

‘भरी सेज रुधिर सों’ (पुहपावती) जैसे वाक्य भी इनके संभोगवर्णनों में मिलते हैं। कदाचित् इसीलिए समीक्षकों ने यह स्वीकार किया है—‘इन कवियों ने शृंगार के दोनों पक्षों—संयोग और वियोग का विस्तृत वर्णन किया है, लेकिन संयोग वर्णन में इनका मन नहीं रमा है। वह परंपरागत और रूढ़िवादी है। कुछ में तो वह अश्लील भी हो गया है।’¹³ यहाँ यह कह देना भी अप्रासंगिक न होगा कि इन कवियों में न केवल कथासंगठन, बल्कि वर्णनवैविध्य में भी यथा तथ्यता की नितांत अरुचिकर प्रवृत्ति उपलब्ध होती है। पूर्वोक्त उद्धरणों से इसी की पुष्टि होती है।

सूफ़ी काव्य में चौपाई और दोहा दोनों की ही मात्राओं में अस्तव्यस्तता मिलती है और जायसी में भी है। इसका कारण पर्सियन लिपि में लिपिबद्ध होना भी हो सकता है। लिपि बदलने में सम्पादन का ध्यान भी रखा जाना चाहिए था।

यों तो कृष्णभक्ति के उपजीव्य ग्रंथ भागवतपुराण के दशमस्कंध में वर्णित कृष्ण का चरित्र भी काफ़ी शृंगारिक है—वहाँ यमुना तट पर रासक्रीड़ा के समय गोपियों का आलिंगन करने, कर-अलक-जाँघ-नीवि-स्तन आदि का स्पर्श, नखक्षत आदि का उल्लेख मिलता है।¹⁴ गोपियों को चर्वित पान देने का भी कथन है, रुक्मिणी-परिणय को राक्षसविवाह कहा गया है,¹⁵ और परीक्षित तो स्पष्ट रूप से पूछ उठते हैं—‘धर्म की स्थापना और अधर्म के शमन के लिए ईश्वरीय अंश से उत्पन्न, धर्म की मर्यादा के वक्ता, कर्ता और रक्षक श्रीकृष्ण ने परदाराभिमर्श (परनारी स्पर्श) जैसा जुगुप्सित (घृणित) और धर्मविरुद्ध कर्म क्यों किया?’¹⁶ लेकिन मध्यकालीन कृष्णभक्ति के संप्रदायों ने तो इसे चरमोत्कर्ष पर ही पहुँचा दिया। भागवतकार को राधा का अभिज्ञान नहीं था, लेकिन इन भक्तों ने राधा के मातापिता (कीर्तिकुमारी-वृषभानु) और उनके निवासस्थल (वरसाना) की भी खोज कर डाली तथा कुछ ने तो राधा को सर्वेश्वरी मानकर कृष्ण को ही नगण्य बना दिया। ‘राधे-राधे रटो चले आएँगे बिहारी’ जैसे वाक्यों में नायिकाप्रधान लौकिक शृंगार की ही व्यंजना अधिक हुई है और ‘देख्यो दुरो वह कुंज-कुटीर में, बैठो पलोटत राधिका-पाँयन’ में तो यह शृंगार भी अधम धरातल पर अवतीर्ण होते दिखाई देता है।

ब्रज के कृष्णभक्ति संप्रदायों में वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित वल्लभ संप्रदाय और उसके केंद्रबिंदु श्रीनाथ मंदिर का विशेष महत्त्व है। गिरिराज पर्वत पर श्रीनाथ जी का आविर्भाव होने पर वल्लभाचार्य जी ने उसे एक छोटे मंदिर में प्रतिष्ठापित किया और पूजापाठ का कार्य बंगाली

पुजारियों को सौंपा तथा कुंभनदासजी को संप्रदाय में दीक्षा देकर कीर्तनसेवा में नियुक्त किया। बाद में उनके एक भक्त पूरणमल खत्री द्वारा प्रदत्त अर्थराशि से भव्य मंदिर बना और श्रीनाथ जी का स्वरूप उसमें प्रतिष्ठापित कर दिया गया। इसी वर्ष आगरा-मथुरा के मध्य गोघाट पर रहने वाले सूरदास जी को संप्रदाय में दीक्षा देकर कीर्तनसेवा में नियुक्त कर दिया गया। लगभग कुछ मास पश्चात् ही गुजरात के कुनबी (शूद्र) परिवार में उत्पन्न कृष्णदास को दीक्षा दी गई और तत्पश्चात् कीर्तनकार के रूप में प्रसिद्ध परमानंददास को। कुम्भनदास, सूरदास और परमानंददास तो कीर्तनसेवा में संलग्न रहे, लेकिन कृष्णदास ने सेठ-साहूकारों से भेंट एकत्रित करने का दायित्व सँभाला, प्रारंभ में उनका सेवा या कीर्तन से कोई संबंध नहीं रहा। संवत् 1587 में वल्लभाचार्य जी के ब्रह्मलीन होने पर उनके ज्येष्ठपुत्र गोपीनाथ आचार्य के पद पर प्रतिष्ठित हुए, लेकिन आठ वर्ष पश्चात् ही संवत् 1596 में उनका निधन हो गया। उनके ज्येष्ठ पुत्र उस समय बारह वर्ष के ही थे, फलतः संप्रदाय के आचार्यत्व को लेकर खींचतान होना स्वाभाविक था। कृष्णदास पुरुषोत्तम को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित कराना चाहते थे, लेकिन वे अल्पवयस्क थे। फलतः संप्रदाय के प्रचार-प्रसार का कार्य विट्ठलनाथ जी के संरक्षण में ही चला। छः वर्ष पश्चात् जब पुरुषोत्तम अठारह वर्ष के हुए, वे दिवंगत हो गए और विट्ठलनाथ जी को संप्रदाय का आचार्य पद प्राप्त हुआ। विट्ठलनाथजी ने मंदिर की सेवा-व्यवस्थाएँ निश्चित कीं, दैनिक आठ सेवाओं और वार्षिक व्रतोत्सवों की व्यवस्था तथा संप्रदाय के प्रचार-प्रसार के लिए साहित्य, संगीत, पाककला, गृहसज्जा, पुष्पसज्जा आदि का भी समन्वय स्थापित किया।

वल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ की परिस्थिति एवं चिंतन धारा में भी काफी अंतर है, जिसे समझना आवश्यक है। वल्लभाचार्य धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए प्रायः धार्मिक यात्राएँ करते रहते थे। मंदिर का पूजाकार्य उन्होंने बंगाली पुजारियों को सौंप दिया था और कीर्तनकार्य अपने शिष्यों को। आचार्यजी श्रीकृष्ण की बाललीलाओं को विशेष महत्त्व देते थे, क्योंकि वात्सल्यभाव में ही व्यक्ति निस्वार्थ समर्पण कर सकता है। विट्ठलनाथजी के समय तक ब्रज के अन्य संप्रदायों में माधुर्य भाव का प्रभाव काफ़ी फैल चुका था। राधावल्लभ संप्रदाय संयोग शृंगार को ही मान्यता देता था और चैतन्य संप्रदाय के आचार्यों द्वारा मधुर भक्तिरस या उज्ज्वलरस की कल्पना की गयी, जिसमें प्रायः समस्त लौकिक शृंगार का समावेश हो गया। इस सब का प्रभाव श्रीनाथजी के मंदिर पर पड़ना स्वाभाविक ही था।

विट्ठलनाथ जी ने मंदिर की पूजापद्धति और कीर्तनव्यवस्था के लिए अष्टछाप की व्यवस्था की, जिसमें चार अपने पिताजी के शिष्यों—कुंभनदास, सूरदास, कृष्णदास और परमानंददास—को रखा और चार अपने शिष्यों—गोविंददास, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास को। इनमें कृष्णदास को मंदिर का अधिकारी बनाया गया। गीत-संगीत आदि की ही नहीं, नानाविध पक्वान्नों एवं भोगों की भी सम्यक् व्यवस्था की गई, पाककला, पुष्पसज्जा आदि की भी विशेष उन्नति हुई।

वल्लभाचार्य के प्रिय शिष्य कृष्णदास प्रारंभ से ही उद्दंड स्वभाव के थे और उनकी कुटिलता, निर्ममता और रागात्मकता के अनेक आख्यान संप्रदाय के साहित्य में उल्लिखित हैं। अधिकारी बनते ही उनकी कुत्सित प्रवृत्तियाँ जाग्रत हो गईं। उन्होंने बंगाली पुजारियों की झोंपड़ियों में आग लगवा दी और उन्हें गुंडों से पिटाकर भगा दिया, क्योंकि वे पारंपरिक भक्तिभाव के

स्थान पर शृंगारिक साधना के विरोधी थे। रथ, गाड़ी, घोड़ा, ऊँट, बैल, गाय आदि की संख्या में भरपूर वृद्धि की। ठाकुरजी के मनोरंजन के लिए रूपवती स्त्रियों और वेश्याओं का नृत्य प्रारंभ हुआ। आगरा से एक सुंदर वेश्या को नृत्य के लिए नियुक्त किया गया। गंगाबाई नामक एक स्त्री से इनके गुप्त संबंध थे, जिसका विरोध करने पर विट्ठलनाथजी को मंदिर से निर्वासित कर दिया गया।¹⁷ ठाकुरजी को कामशास्त्र, काव्यशास्त्र आदि का ज्ञान कराने के लिए कवियों को नायिकाभेद तथा शृंगारिक छंद लिखने के लिए विवश किया गया। सड़सठ वर्ष की अवस्था में सूरदास को 'साहित्यलहरी' की रचना करनी पड़ी और नंददास को नायिकाभेद के ग्रंथ 'रसमंजरी' की। 'नंदनंददास हित साहित्यलहरी कीन' में 'नंदनंददास' का अर्थ कृष्णदास ही है। इतना ही नहीं, सूरदास जैसे वृद्ध एवं वीतराग व्यक्ति को ऐसे छंद भी लिखने पड़े—

1. नीबी ललित गही जदुराइ।

जबहि सरोज धरयो श्रीफल पर तब जसुमति गई आइ।

2. करि सिंगार दोऊ अरसाने।

प्रथम केलि तमचुर सुनि हरषे पुनि पौढ़े दोऊ लपटाने।

सूरदास के शृंगारवर्णन पर कृष्णभक्ति काव्य के विशेषज्ञ और सूर के प्रमुख आराधक डॉ० मुंशीराम शर्मा 'सोम' की ये पंक्तियाँ दर्शनीय हैं—'सूर ने शृंगार रस का वर्णन किया है और खुलकर किया है, पर वह बीच-बीच में आध्यात्मिक एवं रहस्यात्मक संकेतों द्वारा उसकी लौकिकता पर आवरण भी डालता गया है।'¹⁸ वस्तुतः भागवतकार हों अथवा कृष्णभक्त, वे शृंगारिकता में निमज्जन करने के पश्चात् भी आध्यात्मिक या रहस्यात्मक संकेतों का दामन नहीं छोड़ते, यही उन्हें सामान्य कवियों से भिन्न बनाता है।

एक ओर श्रीनाथ मंदिर में शृंगारिक भजन गूँज रहे थे, रासलीलाएँ चल रही थीं, तो दूसरी ओर राधावल्लभ संप्रदाय में भी संयोग शृंगार और नायिकाभेद पर काव्यरचना हो रही थी। डॉ० विजयेंद्र स्नातक ने 'हित' शब्द का प्रयोग तथा युगल रूप का भावुक वर्णन करने के कारण हिंदी के प्रथम रीतिकार्यरचयिता कृपाराम का संबंध राधावल्लभ संप्रदाय से माना है।¹⁹ चैतन्य संप्रदाय के आचार्यों ने मधुरभक्ति रस या उज्ज्वलरस की व्याख्या प्रस्तुत की, जिससे शृंगार की भक्ति के रूप में प्रस्तुति को शास्त्रसम्मत माना जा सके। उनके नायक कृष्ण साधारण नहीं, अवतार हैं, लेकिन उनका शृंगार पूर्णतः लौकिक है, स्थूल शारीरिक क्रीड़ाएँ और कामव्यापार भी उस उज्ज्वल रस के ही अंग हैं। भाव यह है कि जिस प्रकार श्रीनाथ जी मंदिर ने भक्तिभाव को लौकिक शृंगार या भोग में परिणत करने के लिए उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत किया, उसी प्रकार चैतन्य संप्रदाय के आचार्यों ने उज्ज्वलरस की व्याख्या कर उसे नैतिक एवं शास्त्रीय आधार प्रदान किया। यहाँ यह कह देना भी अप्रासंगिक न होगा कि कृष्णभक्त कवियों द्वारा रचित अनेक छंद और ग्रंथ ऐसे हैं, जो मंदिर-संस्कृति या तद्पोषित कवियों की छाप के कारण ही भक्तिपरक माने जाते हैं। यदि इन्हें रीतिकाव्य में मिला दिया जाये, तो उनकी भिन्नता भी लक्षित नहीं की जा सकेगी।

रीतिकाव्य का प्रधान वर्ण्य शृंगार ही है और इन कवियों का उपजीव्य लौकिक की अपेक्षा शास्त्रीय ही अधिक रहा है। जयदेव और विद्यापति तो आश्रित कवि थे, उनकी विवशता बुद्धिगम्य है, लेकिन जब मंदिर का आश्रय लेने वाले कृष्णभक्तों ने भी राधा और कृष्ण का नाम लेकर विलासितापूर्ण लौकिक शृंगार की प्रस्तुति प्रारंभ कर दी तो रीतिकवियों को नूतन मार्ग के

संधान की आवश्यकता ही नहीं जान पड़ी। जब जगन्नायक को भी काव्यशास्त्र और कामशास्त्र के ज्ञान की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी, उनके मनोविनोद के लिए सुंदर रमणियों ही नहीं, वेश्याओं तक के नृत्य प्रस्तुत किए जाने लगे और उनके भक्त भी जाररस का आस्वादन करने लगे तो भला विलासिता में पोषित नरनायकों को ऐसा न करने का कौन उपदेश कौन देता? रीतिकवि तो ठहरा आश्रित, उसे आश्रयदाता की मनोवृत्ति का ध्यान तो रखना ही पड़ेगा; तथापि रीतिकवियों ने शास्त्रीय पद्धति पर शृंगाररस का अच्छा विकास किया है।

आचार्य भरत मुनि और उनके अनुकरण पर न केवल नाट्यशास्त्र, बल्कि काव्यशास्त्र और रसशास्त्र के आचार्यों ने भी रस के अवयवों का सुंदर और वैज्ञानिक विश्लेषण किया तथा रीतिकवियों ने उन्हें आधार बनाकर सरस छंदों की रचना की। रीतिकवियों ने रस के प्रमुख अवयव विभाव की इतनी विशद व्याख्या की कि उसे स्वतंत्र काव्यांग ही बना दिया। विभाव के तीन भेद माने जाते हैं—आश्रय, आलंबन और उद्दीपन, जिसका आश्रय लेकर रत्यादिभाव जाग्रत होते हैं, उसे आश्रय कहा जाता है और जिसे देखकर भावजागरण होता है, उसे आलंबन। उद्दीपन जाग्रत भाव को उद्दीप्त करता है, वृद्धिगत करता है, जिससे वह विलुप्त न हो जाए। शृंगार के परिप्रेक्ष्य में आश्रय और आलंबन का अर्थ है नायक और नायिका।

रीतिग्रंथों—विशेषतः नायिकाभेद—के प्रणयन का प्रारम्भ मंदिरों के पार्श्ववर्ती कृष्णभक्तों द्वारा ही हुआ और प्रथम उपलब्ध ग्रंथ है—‘हिततरंगिणी’ (संवत् 1598)। कृपाराम को ‘हित’ शब्द के प्रयोग और युगल माधुरी का तन्मयतापूर्ण वर्णन करने के कारण राधावल्लभ संप्रदाय से संबद्ध माना गया है।²⁰ तत्पश्चात् नंददास रचित ‘रसमंजरी’ और केशवदास रचित ‘रसिकप्रिया’ (संवत् 1648) का नाम आता है। केशव को रीतिपरंपरा का प्रवर्तक भले ही मान लिया जाए, लेकिन वे ‘हरिशृंगार’ के प्रतिपादक होने से तत्त्वतः भक्तिमार्ग से विच्छिन्न नहीं हैं। सुंदर कविराय ने ‘सुंदरशृंगार’ (संवत् 1688) में प्रथम बार नायिकाभेद को शुद्ध काव्यशास्त्रीय धरातल पर प्रतिष्ठित किया और तोष रचित ‘सुधानिधि’ (संवत् 1691) में यह दृष्टि विकसित हुई। तत्पश्चात् सभी परवर्ती रीतिकवियों ने नाट्यशास्त्र ही नहीं, काव्यशास्त्र और कामशास्त्र का आधार लेकर इस रसरीति परंपरा को आगे बढ़ाया। रीतिकाल में यह प्रवृत्ति इतनी विकसित हुई कि न केवल सर्वांगनिरूपक ग्रंथ लिखने वाले आचार्यों ने इस पर स्वतंत्र ग्रंथ लिखे, बल्कि एक-दो आचार्यों ने तो रस और नायिकाभेद पर एकाधिक रचनाएँ भी तैयार कीं तथा कुछ ने सर्वांगविवेचक ग्रंथ की सामग्री से ही स्वतंत्र ग्रंथ भी बना डाला। रीतिकाल में इस काव्यप्रवृत्ति पर शताधिक ग्रंथों की रचना हुई। इस काव्यपरंपरा की महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं—मतिराम रचित ‘रसराज’, देवरचित ‘भावविलास’, ‘रसविलास’ और ‘सुखसागरतरंग’, कालिदास त्रिवेदी रचित ‘वधूविनोद’, गुलामनबी ‘रसलीन’ रचित ‘रसप्रबोध’, भिखारीदास रचित ‘शृंगारनिर्णय’, बेनीप्रवीण रचित ‘नवरसतरंग’, पदमाकर रचित ‘जगद्विनोद’, चंद्रशेखर वाजपेयी रचित ‘रसिकविनोद’, ग्वाल रचित ‘रसरंग’ और मोहनलाल मिश्र रचित ‘शृंगारसागर’। अभी भी इस परंपरा की अनेक रचनाएँ अप्रकाशित पड़ी हुई हैं, उदाहरणार्थ कुलपति मिश्र जैसे सशक्त आचार्य की कृति ‘युक्तितरंगिणी’ अप्रकाशित ही है और हिंदी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद के संग्रहालय में उसकी हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है।

रसरीतिपरक ग्रंथ मूलतः तीन प्रकार के हैं—नवरसविवेचक, शृंगारविवेचक और मात्र नायिकाभेदविवेचक। वस्तुतः रसरीति का केंद्रीय विषय नायिकाभेद ही है। इसके विस्तार के लिए

रीतिकवि शृंगारविवेचन को स्वीकृति दे दें अथवा शेष रसों का एक अध्याय में चलता-सा विवेचन कर दें, लेकिन कवि का समस्त अवधान नायिकाभेद पर ही केंद्रित रहता है और वहाँ भी स्वरूपविवेचन पर कम, सरस उदाहरणों की रचना पर अधिक। उन्होंने नायिकाभेद का ढाँचा शास्त्रीय विवेचन के निमित्त नहीं अपनाया, बल्कि सरस शृंगारिक उदाहरणों की रचना के निमित्त स्वीकारा है। फलतः शृंगार एवं नायिकाभेद के भव्य एवं रम्य छंदों की सृष्टि की है। शृंगार को अत्यधिक उद्दीपक बनाने के लिए उन्होंने वयःसंधि, प्रथम मिलन, सुरतांत, विपरीत रति आदि को भी नायिकाभेद में समन्वित कर लिया, लेकिन यह विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया है। शृंगार 'रस' है और उसका पान पात्रों के माध्यम से किया जा सकता है तथा ये पात्र किसी न किसी कथा या आख्यान का अंग होते हैं। प्रसंगानुरूप शृंगारिकता मुखरित करना उनकी विशेषता है। संस्कृत प्रबंधों में जलकेलि, कामोत्सव, वनविहार आदि के माध्यम से शृंगारिकता मुखरित हुई है तो 'पृथ्वीराज रासो' में विभिन्न विवाहों के माध्यम से। जायसी ने नवपरिणीत दम्पति का मादक मिलन दिखाया है, लेकिन अपने दार्शनिक दृष्टिकोण के कारण उसे अनैसर्गिक भी बना दिया है। बेचारे तुलसीदास दास्यभाव के कारण नवविवाहित नायक-नायिका का मिलन दिखाने का अवसर भी नहीं पा सके, फलतः वैवाहिक हास-परिहास अथवा वनगमन के समय पुरनारियों के शृंगारिक हास-परिहास से ही काम चलाते रहे। ये कथासंगठन की विशेषताएँ थीं, जिनका निर्वाह कवि के लिए अनिवार्य था। जब रीतिकवियों ने ढाँचा ही नायिकाभेद का स्वीकार किया है तो उससे विभिन्न नायिकाएँ ही निकलेंगी और वयःसंधि, प्रथम मिलन, सुरत, सुरतांत, विपरीत रति उसे अधिक कामोद्दीप्त बनाते हैं, फलतः वे भी इच्छित-अनिच्छित रूप में उसका अंग बन गए। ध्यातव्य है कि रसरिति के कवियों का मुख्य उद्देश्य शृंगाररस की पोथी तैयार करना ही था जो रसिकसमाज के मध्य आस्वादनीय हो। 'भूषण रसिकसभानि को, रसविलास कवि मानि' (बलभद्र मिश्र) और 'रसिकन को रसिकप्रिया कीन्हीं केसवदास' जैसी उक्तियाँ इसी तथ्य की स्वीकृतियाँ हैं।

रीतिकालीन रसरिति के अंतर्गत मौलिकताप्रदर्शन में रुचि ही न हुई हो, ऐसा नहीं है। देव, भिखारीदास, रघुनाथ बंदीजन और गुलाम नबी 'रसलीन' ने नायिकाभेदों में प्रचुर वृद्धि की। देव ने देश, सत्त्व आदि के आधार पर नायिकाओं का व्यापक विस्तार किया, रघुनाथ और रसलीन ने परकीया और सामान्या के भेदों में अभिवृद्धि की। वात, पित्त और कफ के आधार पर भी नायिकाओं को विभाजित किया गया, लेकिन इनका न नारीमनोविज्ञान से संबंध स्थापित हो पाया और न सुरुचि एवं संस्कृति से तादात्म्य ही। कई आचार्यों ने अंशभेद एवं वयःक्रम का प्रकाशन किया तो कुछ ने कामशास्त्रीय सामग्री अधिक प्रस्तुत की, लेकिन यह 'अनावश्यक विषय का व्यर्थ विस्तार' मात्र बनकर रह गया। अंततः भानुदत्तमान्य भेद ही स्वीकृत हो पाए और कवियों ने भी इस तथ्य को समझा। 'रसिकानंद' में कामशास्त्र का अत्यधिक सार ग्रहण करनेवाले ग्वाल 'रसरंग' में यह सब भूलकर तात्त्विक एवं सारपूर्ण विवेचन में ही लगे।

रीतिकवियों ने नायिकाभेद को ढाँचा बनाकर विभिन्न नायिकाओं का नीरस विवेचन नहीं किया, बल्कि उसके आधार पर सरस, काव्यसौष्टव संपन्न छंदों की रचना की है। उनमें संवेदना का संस्पर्श है, काव्यसौंदर्य की अनुपम छटा है। किसी अज्ञात कवि का एक सवैया दर्शनीय है—

मानी न मानवती भयो भोर, सु सोच में सोड़ गयो मनभावन।
ताहि तें सास कही दुलही, भई बार कुमार को जाहु जगावन।
मान को रोस, जगैबे की लाज, लगी पग नूपुर पाटी बजावन।
सो छबि हेरि हिराड़ रहे हरि, कौन को रूसिबो, काकौ मनावन।

कवि ने इतनी सुरुचि और सहजता से भाव का पल्लवन किया है कि मानवती शब्द का प्रयोग भी स्वाभाविकता में बाधक नहीं है। न कहीं आलंकारिकता है और न आनुप्रासिकता या पदमैत्री का आग्रह, तथापि छंद रम्य भी है और भव्य भी। यह लघु मान का उदाहरण है यह बात बहुत देर में समझ में आती है। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य यही है कि इन कवियों ने नायिकाभेद के छंदों को केवल उदाहरण रूप में नहीं रचा, बल्कि भावात्मक एवं काव्यात्मक सौंदर्य से भी मण्डित किया है। नायिका के सौंदर्य, सौकुमार्य एवं माधुर्य का वर्णन हो अथवा अन्यसंभोगदुखिता, खंडिता एवं उत्कंठिता की हृदयदग्ध व्यंग्योक्तियाँ, भावुकता एवं काव्यात्मकता सर्वत्र उपलब्ध होती है—

भनत 'कविंद' हमें कुंज में बुलाय करि,
बसे कित जाय, दुख दै करि अबस के।
पगनि में छाले परे, नाँधिबे को नाले परे,
तऊ लाल लाले परे, रावरे दरस के॥

आलंबन के अंतर्गत नायिका के पश्चात् सखिदूतिका की गणना की जाती है, लेकिन रीतिकवियों ने उसे विशेष महत्त्व न देकर नखशिख को महत्त्व प्रदान किया है। संस्कृत-काव्य में कथाप्रसंग के सन्दर्भ में रूपवर्णन मिलता है। विवाह के लिए तैयार होते समय पार्वती के एक-एक कर शृंगार होता चलता है और कालिदास तत्तद् अंग का वर्णन करते चलते हैं। आगे चलकर शृंगार के परिप्रेक्ष्य में नायिका के कुछ विशेष अंगों की ओर विशेष दृष्टि गयी। काव्यशास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य और नाटककार राजशेखर ने नायिका के पाँच अंगों को विशेष महत्त्व दिया है—

अंगं लावण्यपुण्यं सवणपरिसरे लोअणे फारतारे
वच्छं थोरत्थणिल्लं तिवलिवलइयं मुट्ठिगे ज्झं च मज्झं।
चक्कारो णिअंबो तरुणिमसमए किण्णु अण्णेण कज्जं
पंचेहिं चेअ बाला मअणजअ महावेजअंतीउ होन्ति।

—कपूरमंजरी, 3/19

(लावण्य से परिपूर्ण शरीर, कानों तक विस्तीर्ण उज्ज्वल नेत्र, स्थूल स्तनों वाला वक्ष, त्रिबलि से संपन्न मुष्टिग्राह्य कटि और गोलाकार नितंब-यौवनकाल में इन पाँच उपादानों से रमणियाँ कामदेव की विजय पताका होती हैं, अन्य आभूषण आदि की आवश्यकता नहीं।) यदि इनमें मुखमंडल और केशपाश को भी जोड़ दिया जाए, तो नारी के सभी प्रमुख सौंदर्याधायक अंग परिगणित हो जाते हैं।

संस्कृतकाव्य में नखशिख की स्वतंत्र परंपरा नहीं मिलती, कथाप्रसंगों में वह परिलक्षित होता है, लेकिन कुछ देवीदेवताओं का पदनख से लेकर शिखापर्यंत भक्तिपूर्ण वर्णन अवश्य मिलता है, जिसमें आंगिक सौंदर्य ही नहीं, वस्त्राभरणसज्जा, स्वभावकथन आदि का उल्लेख पाया

जाता है। कदाचित् इसी से प्रेरित एवं प्रभावित होकर रीतिकवियों ने उसे स्वतंत्र काव्यांग के रूप में स्वीकृति दी। इनमें कहीं-कहीं राधाकृष्ण का नामोल्लेख भी मिलता है, लेकिन भावभूमि प्रायः शृंगारिक ही रही है।

रीतिकाल में शताधिक नखशिख प्राप्त होते हैं, जिनमें बलभद्र मिश्र रचित 'सिखनख', केशव रचित 'नखशिख', सूरति मिश्र रचित 'नखशिख', रसलीन रचित 'अंगदर्पण', मुबारक रचित 'अलकशतक' नृपशंभु कृत 'नखशिख', ग्वालकृत 'नखशिख', चंद्रशेखर वाजपेयी रचित 'नखशिख', सेवक रचित 'नखशिख', कालीदत्त नागर रचित 'छविरत्न' और गोविंद गिल्लाभाई रचित 'शृंगारषोडशी' विशेष प्रसिद्ध हैं। कुछ कवियों ने एक अंग को आधार बनाकर भी ग्रंथ लिखे हैं, जैसे मंडन का 'नयनपचासा' और ग्वाल का 'नयनशतक'। ये रचनाएँ काफी प्रसिद्ध हुईं। इनकी प्रसिद्धि का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि बलभद्र मिश्र के 'सिखनख' पर गोपाल बंदीजन, प्रतापसाहि, मनिराम और चंद्रसेन मोहणोत चार टीकाकारों की टीकाएँ उपलब्ध होती हैं। बाद में रीतिकालीन नखशिख छंदों के संग्रहण-संकलन की प्रवृत्ति भी प्रारंभ हुई और मुंशी गिरिधारीलाल कायस्थ ने 'नखशिख : संग्रह' और परमानंद सुहाने ने 'नखशिख : हजार' ग्रंथ प्रकाशित कराए, जिनमें शताधिक रीतिकवियों के नखशिखपरक छंद संगृहीत हैं।

रीतिकालीन नखशिख वर्णन नाजुकखयाली, मौलिक कल्पना, आलंकारिकता और अद्भुत सूझ के लिए प्रसिद्ध रहे हैं, लेकिन जहाँ कवियों ने चमत्कार या बहुज्ञता प्रदर्शन से दूर रहकर अंगवर्णन किए हैं, वे अत्यंत सफल रहे हैं। बिहारी और देव के अनेक छंद इसके उदाहरण रूप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। अंगों के रूढ़ उपमान और अलंकारातिशय से यह विषय बोझिल अवश्य है, लेकिन जहाँ सहजता है, संवेदना है, वहाँ सरस काव्य की सृष्टि भी हुई है। उदाहरणार्थ—

साँझ समै अलबेली तिया, दियरा करिके अपने घर आवै।
पौन बहै अति ही सियरो, तब आँचल में 'सुखदेव' दुरावै।
देखि उरोज सिरीफल दीपक, आपने ही हिय ते ललचावै।
कीजे कहा गहिबे को नहीं कर, याही ते मानहु सीस धुनावै।

इसी प्रकार—

अमिय हलाहल मद भरे, सेत स्याम रतनार।
जियत मरत झुकि-झुकि परत, जिहि चितवत इक बार।

आलंबन के पश्चात् उद्दीपन का स्थान आता है। जाग्रत स्थायीभाव को उद्दीप्त या तीव्र करनेवाले विभाव को उद्दीपन कहा जाता है। इसे दो भागों में विभाजित किया जाता है—विषयनिष्ठ या आलंबन की हासविलासमयी विविध चेष्टाएँ तथा बाह्य या प्राकृतिक वातावरण। रीतिकवियों ने उद्दीपन के अंतर्गत बाह्यप्रकृति को कम महत्त्व दिया है, ऋतुवर्णन का व्यापक विस्तार किया है। यों तो संस्कृत-काव्यों में प्रसंगानुरूप ऋतुओं के रम्य वर्णन सर्वत्र मिलते हैं, लेकिन कविकुलगुरु कालिदास के 'ऋतुसंहार' की परंपरा अधिक समृद्ध नहीं रही। रीतिकवियों ने ऋतुवर्णन को स्वतंत्र काव्यांग के रूप में विकसित किया।

यों तो केशवदास ने भी ऋतुओं के प्रति आकर्षण दिखाया है, लेकिन वे श्लेष की कठिनता में उलझकर रह गए हैं। ऋतुवर्णन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नाम सेनापति का है, जिन्होंने ऋतुपरक

62 छंदों की रचना की, जो उनके एकमात्र ग्रंथ 'कवित्तरत्नाकर' की तृतीय तरंग में संकलित हैं। सेनापति का ऋतुवर्णन जनजीवन की अनुभूतियों से संपन्न है। तत्पश्चात् देव, श्रीपति राय, किशोर, कालिदास त्रिवेदी, दिनेश, द्विजदेव, रघुनाथ बंदीजन, पद्माकर और ग्वाल का नाम आता है। ग्वाल प्रारंभ से ही अपने ग्रंथों में ऋतुपरक छंद रखते रहे और 'रसरंग' में इनकी संख्या लगभग 70 है। बाद में उन्होंने सभी का एकत्र संकलन कर दिया, जिनकी संख्या लगभग सवा सौ है। इस प्रकार ग्वाल सर्वाधिक ऋतुपरक छंदों की रचना करने वाले कवि हैं और अमीरी ठाटों का विशद चित्रण करनेवाले कवि के रूप में विख्यात हैं। एक ओर सेनापति लोकजीवन की अनुभूतियों को वाणी देनेवाले कवि हैं, तो दूसरी ओर ग्वाल राजसी विलासों को अभिव्यक्ति देनेवाले। विषय की लोकप्रियता को देखकर षड्ऋतुहजार जैसे ग्रंथों के रूप में संकलन भी तैयार किये गये।

रीतिकवियों के ऋतुपरक छंदों पर प्रायः रूढ़िबद्धता का आरोप लगाया जाता है, लेकिन जब शताधिक कवि एक ही विषय को लेकर रचना करते हों और उनका लोकजीवन से अधिक संस्पर्श न रह गया हो, तो रूढ़िबद्धता का आना स्वाभाविक ही है, तथापि इन छंदों में सरसता भी है और स्वाभाविकता भी। सहजता की दृष्टि से कवि किशोर का एक सवैया दर्शनीय है—

फूलन दै अबै टेसू कदंबन, अंबन बौरन छावन दै री।
री मधुमत्त मधुवृत पुंजन, कुंजन सोर मचावन दै री।
क्यों सहिहै सुकुमारी 'किसोर', अली कल-कोकिल गावन दै री।
आवत ही बनिहै घर कंतहि, बीर बसंतन आवन दै री।

वियोगिनी की नारीसुलभ सुकुमार भंगिमा भी दर्शनीय है—

केधों उन बन, घन घेरि न उमड़ आये,
केधों कीच भूतल में प्रगटी नहीं नई।
केधों दबि दादुर रहे डेराइ ब्यालन के,
केधों पापी पपिहा पिया की टेर ना दई।
'घासीराम' केधों बक बाजन को त्रास मान्यो,
केधों वहि देस बीर! पावस हू ना ठई।
केधों काम स्यामजू के तन तें निकरि गयो,
केधों मेघ जूझे, केधों बीजुरी सती भई।

निम्न छंद में अनुरणात्मक शब्दों का रम्य प्रयोग पावस की शोभा को वृद्धिगंत कर रहा है—

झूम-झूम चलत चहूँधा घन घूम-घूम,
सूम-सूम भूमि छवै-छवै धूम से दिखात हैं
तूल के से पहल, पहल पर उड़े आवें,
महल-महल पर सहल सुहात हैं।
'ग्वाल' कवि भनत परत तम सम केते,
छम-छम-छम डारें बूदें दिन-रात हैं।
गरज गये हैं एक गरजन लागे देखो,
गरजत आवें एक गरजत जात हैं।

हिंदीभाषी क्षेत्र के हृदयप्रदेश में रीतिकाव्य के मूल्यांकन में उपेक्षा का भाव अवश्य रहा,

जिसके मूल में तत्कालीन आर्यसमाजी आदर्शवाद सन्निहित रहा, लेकिन इस क्षेत्र के बाहर यह काव्य पर्याप्त सत्कृत एवं प्रशंसित होता रहा है। हिंदीकाव्य में एकमात्र यही काल है, जिसने संस्कृत-काव्य से प्रेरणा एवं प्रोत्साहन ग्रहण ही नहीं किया, बल्कि उसे प्रेरित एवं प्रभावित भी किया है और इतना किया कि इसके दोषों का भी अनुकरण किया गया।

कविवर बिहारी का भागिनेय कुलपति मिश्र पंडितराज जगन्नाथ के पास काव्यशास्त्र सीखने आया था और पंडितराज सुंदर कविराय के साथ शाहजहाँ के आश्रय में रहे भी थे। फलतः पंडितराज रीतिकाव्य से परिचित ही नहीं, प्रभावित भी हुए²¹ यही कारण है कि पंडितराज जगन्नाथ के अनेक श्लोकों पर रीतिकालीन छंदों की छाया दिखती है। उदाहरणार्थ—

नीलांचलेन संवृतमाननमाभाति हरिणनयनायाः।

प्रतिबिम्बित इव यमुनागम्भीरनीरान्तरेणांकः।

(नील वर्ण की साड़ी के अंचल से ढका हुआ मृगाक्षी का मुख, यमुना के गंभीर जल में प्रतिबिम्बित चंद्रमा-सा प्रतीत होता है।)

पंडितराज का उक्त श्लोक बिहारी के निम्न दोहे की छाया मात्र है—

छिप्यो छबीलो मुँह लसै, नीले अंचल चीरा।

मनो कलानिधि झलमलै, कालिंदी के तीरा।

इसी प्रकार—

श्यामं सितं च सुदृशो न दृशोः स्वरूपं

किंतु स्फुटं गरलमेतदथामृतं च।

नो चेत् कथं निपतनादनयोस्तदैव

मोहं मुदं च नितरां दधते युवानः।

(श्याम और श्वेत सुनयना के नेत्रों का स्वाभाविक रूप नहीं है, किंतु यह स्पष्ट है कि यह विष और अमृत रूप है। यदि ऐसा न होता, तो इनके पतन मात्र से तत्काल ही युवकगण मूर्च्छा और हर्ष को कैसे प्राप्त हो जाते, क्योंकि यह कार्य तो अमृत और विष का ही है।)

जगन्नाथ जी के इस श्लोक के मूल में रीतिकाव्य का निम्न प्रख्यात दोहा है—

अमिय हलाहल मद भरे, स्वेत स्याम रतनार।

जियत मरत झुकि-झुकि परत, जिहि चितवत इक बार।

दोहे में यथासंख्य अलंकार है और श्वेत-श्याम-रतनार का उल्लेख है तथा तीनों के गुणधर्म भी बताए गए हैं, जबकि श्लोक में केवल दो का उल्लेख है। स्पष्टतः श्लोक में वह चमत्कार नहीं है, जो दोहे की महत्ता का मूल रहस्य है।

यदि पंडितराज जगन्नाथ के काव्य पर दृष्टिपात करें तो रीतिकाव्य की समस्त दुर्बलताएँ उसमें भी यथावत् रूप में उपलब्ध होती हैं। छंदों का पुनः प्रयोग, एक ग्रंथ में न्यूनाधिक संशोधन कर नए आश्रयदाता को समर्पण, शृंगार की अधिकता और भक्तिभाव का स्वल्प पुट आदि बातें इनमें भी उसी प्रकार उपलब्ध होती हैं जैसी रीतिकवियों में।

नखशिख या ऋतुवर्णन का संस्कृत-काव्य में नितांत अभाव तो नहीं रहा, लेकिन इन विषयों पर योजनाबद्ध रूप में स्वतंत्र कृतियाँ रीतिकाव्य के पश्चात् और उसके प्रभावस्वरूप ही सामने आई हैं। रीतिकवियों में बलभद्र मिश्र का 'सिखनख' सर्वाधिक प्राचीन है, जो संवत् 1640

से पूर्ववर्ती है। तत्पश्चात् उनके अनुज केशवदास का नखशिख और शिखनख आता है। बाद में सुंदर कविराय आदि ने इसे लिया। संस्कृत में प्राचीनतम कृति उत्प्रेक्षा कवि रचित 'सुंदरीशतक' है, जिसका रचनाकाल संवत् 1653 है।²² बाद में नीलकंठ दीक्षित (रचनाकाल संवत् 1690-1727) में 'अधरशतक' लिखा और विश्वेश्वर पांडेय (रचनाकाल संवत् 1760-80) ने 'रोमावली शतक', 'वक्षोजशतक' और ऋतुवर्णन ग्रंथ लिखे।²³ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भ्रमवश मुबारक रचित 'अलकशतक' को 'रोमावलीशतक' की परंपरा की कड़ी माना है।²⁴ वस्तुतः मुबारक (हिंदी) विश्वेश्वर (संस्कृत) से 70-80 वर्ष पूर्ववर्ती हैं।

भारतीय काव्य में शृंगारिक काव्य की अजस्र परंपरा निरंतर प्रवाहित होती रही है, लेकिन कृष्णभक्ति के आविर्भाव से उस पर नायिकाभेद का प्रभाव पड़ा। बाद में कामशास्त्र ने भी उसे प्रभावित किया। यही परंपरा जयदेव, विद्यापति, सूर, नंददास से होती हुई रीतिकवियों को प्राप्त हुई। राधा को विशुद्ध आध्यात्मिक स्वरूप तो भक्त कवियों द्वारा भी प्राप्त नहीं हो पाया, तो रीतिकवियों द्वारा कैसे प्राप्त होता, जो शृंगारिक भी थे और आश्रित भी। रीतिकाव्य में शृंगार का अधिकांशतः चित्रण नायिकाभेद के परिप्रेक्ष्य में हुआ है, फलतः वयःसंधि, प्रथम मिलन, सुरतांत आदि भी उसका अंग बन गये हैं, लेकिन शास्त्रीय विवेचन होने के कारण रचयिता सभी बातों के स्पष्टीकरण के लिए विवश थे। रीतिकाल हिंदी-काव्य का एकमात्र ऐसा काल है जहाँ कवि ने कला के लिए कला की साधना की। यही दृष्टि रखने के कारण कविकुलगुरु कालिदास, 'कुमारसंभव' में शिव और पार्वती का मिलन लौकिक धरातल पर चित्रित कर सके। रीतिकालीन शृंगारवर्णन को भी इसी दृष्टि से देखा जाना चाहिए। परंपरा का सम्यक् ज्ञान न रखनेवाला व्यक्ति तो उसके मूल्यांकन का अधिकारी ही नहीं है।

संदर्भ

1. डॉ० रामानंद शर्मा : कामसूत्र, पृ० 814-15
2. अथर्ववेद, 14/2/682
3. छान्दोग्य उपनिषद्, 2/13/2
4. अमिअं पाउअकव्वं पठिउं सोउं अ जे ण आणन्ति।
कामस्स तत्तन्तिं कुणन्ति ते कह ण लज्जन्ति॥ गाथा, 1/2, वज्जा, छंद-2
5. प्रो. माधव वासुदेव पटवर्धन : वज्जालगंग, पृ० 349
6. रामचंद्र दीनानाथ शास्त्री : रम्भामंजरी, 3/10
7. जयदेव : गीतगोविंद, सर्ग-5
8. जयदेव : गीतगोविंद, सर्ग-12
9. डॉ० परमानंद शास्त्री : संस्कृत गीतिकाव्य का विकास, पृ० 288-89
10. डॉ० रामकुमार वर्मा : हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० 481
11. डॉ० रामनाथ झा : विद्यापति, पृ० 45
12. रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 65
13. वेदप्रकाश गर्ग : हिंदी सूफ़ीकाव्य, पृ० 19
14. भागवतपुराण, 10/29/46
15. वही, 10/52/18, 53/41, 54/18

16. वही, 10/33/27-29
17. डॉ० गणपतिचंद्र गुप्त : हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (प्रथम खण्ड), पृ० 247-64
18. डॉ० मुंशीराम शर्मा : भारतीय साधना और सूरसाहित्य, पृ० 341
19. डॉ० विजयेंद्र स्नातक : हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 155
20. डॉ० विजयेंद्र स्नातक : हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 155
21. डॉ० गणेश त्र्यंबक देशपांडे : भारतीय साहित्यशास्त्र, पृ० 162
22. बलदेव उपाध्याय : संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० 312
23. बाबूलाल शुक्ल : शृंगारमंजरी (भूमिका), पृ० 12-16
24. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, पृ० 189-90

शोधपीठ

बी-9, जिगर कालोनी

मुरादाबाद 244001 (उ०प्र०)

दूरभाष : 0591-2436766, 094125-06917

संत कबीर एवं सहजमार्गीय संतों की साधना-पद्धति

डॉ० निर्मला शर्मा

वरिष्ठ प्रवक्ता (हिंदी)गर्ल्स कॉलेज, सहारनपुर (उ०प्र०)

साधना का अर्थ

साधना का अर्थ है—उद्देश्यपूर्ति का ज़रिया, पूजा, अर्चा¹ आदि आराधना का रूप है जो देवता को प्रसन्न करने के लिए की जाती है। इस अर्थ में साधना देवता को प्रसन्न करने का उपाय है—इदं तु ते भक्तिनम्रं सतामाराधनं विपुः²

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि साधना अर्थात् दिव्यसेवा में तत्पर व्यक्ति सर्वोच्च उद्देश्य को प्राप्त करता है—‘आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्।’³ इसी को अभ्यासयोग की भी संज्ञा दी गई है—‘अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जया।’⁴

संत कबीर की साधना-पद्धति में सहज साधना का रूप

संत कबीर की साधना हठयोग, सहज साधना और भक्ति साधना का सम्मिलित रूप है, लेकिन यहाँ सहज साधना के रूप का अध्ययन ही अपेक्षित है।

सहज साधना/ सहजयोग

डॉ० राजदेवसिंह के अनुसार ‘सहज’ का ‘सहजा’ रूप में ऋग्वेद में जो सबसे पुराना प्रयोग मिलता है, तबसे लेकर अब तक ‘सहज’ अनेक धर्मों, साधना-पद्धतियों और विचार-धाराओं में अपने सामान्य और पारिभाषिक अर्थों में प्रयुक्त होते हुए भी मूलतः निसर्ग सिद्धि, जन्मजात, स्वाभाविक, प्रकृत आदि अर्थों का संकेतक रहा है।⁵

कबीर ने हठयोग की कष्टदायी साधनाओं की उपेक्षा करके, मध्यम मार्ग खोजकर, उसे ‘सहज साधना’ का नाम दिया है। ‘सहज’ का मुख्य उद्देश्य यह है कि मनुष्य संसार में रहकर भी सच्चे अर्थों में प्रगति करे। सहज साधना में न तो पूर्ण रूप से सांसारिक कार्यों को ग्रहण ही किया जाता है और न उनका परित्याग ही किया जाता है। अतः मध्यम मार्ग (सहज साधना) अपना भी सरल कार्य नहीं है।

कबीर ने सहज साधना को उत्तम योग कहा है। उनकी सहज-साधना भक्ति, योग और ज्ञान की त्रिवेणी है। उनका ज्ञान पुस्तकीय ज्ञान नहीं है। सत्संगति एवं आत्मानुभूति से प्राप्त ज्ञान है। उन्होंने सहज शब्द का मूलतः स्वभावतः या स्वाभाविक अर्थ में प्रयोग किया है। उनके सहज योग में विशुद्ध प्रवृत्तिमार्ग एवं निवृत्तिमार्ग दोनों का समावेश है।

कबीरदास का कहना है कि ‘सहज’, ‘सहज’ कहकर उसकी बात तो सब कहते हैं, परंतु वास्तव में उस सहज के स्वरूप को कोई पहचानता नहीं है। जो व्यक्ति सहज रूप में ही, स्वाभावतः ही, विषयों की आसक्ति छोड़ देता है, सच्चे रूप से वही सहज अवस्था को प्राप्त

होता है। अर्थात् सहज शब्द से अभिहित उस निर्गुण परम तत्त्व का साक्षात्कार करता हुआ वह 'सहज समाधि' की अवस्था में स्थित रहता है। जैसे—

सहज सहज सब कोउ कहै, सहज न चीन्है कोइ।
जिन्ह सहजै विषिया तजी, सहज कहीजै सोइ।⁶

वे इस स्थिति को सहज दिनचर्या का अंग बना लेने पर जोर देते हैं। इसकी प्रेरणा उन्हें महागुरु रामानंद से प्राप्त हुई। इस विषय में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के विचार हैं—'सो जिस दिन से महागुरु रामानंद ने कबीर को भक्ति-रूपी रसायन दी, उस दिन से उन्होंने सहज समाधि की दीक्षा ली, आँख मूँदने और कान रूँधने के टंटे को नमस्कार कर लिया, मुद्रा और आसन की गुलामी को सलामी दे दी। उनका चलना ही परिक्रमा हो गया, काम-काज ही सेवा हो गए, सोना ही प्रणाम बन गया, बोलना ही नाम-जप हो गया और खाने-पीने ने ही पूजा का स्थान ले लिया। हठयोग के टंटे दूर हो गए, खुली आँखों से ही उन्होंने भगवान के मधुर मादक रूप को देखा, खुले कानों से ही अनहद नाद सुना, उठते-बैठते सब समय समाधि का आनंद पाया और अत्यंत उल्लास के आवेग में उन्होंने घोषित किया—'

संतो, सहज समाधि भली।
साँई ते मिलन भयो जा दिनते सुरत न अंत चली।
आँख न मूँदूँ कान न रूँदूँ, काया-कष्ट न धारूँ।
खुले नैन मैं हँस-हँस देखूँ, सुंदर रूप निहारूँ।
कहूँ सो नाम सूँतूँ सो सुमिरन, जो कुछ करूँ सो पूजा
गिरह-उद्यान एकसम देखूँ, भाव मिटाऊँ दूजा।।
जहँ-जहँ जाऊँ सो परिकरमा, जो कुछ करूँ सो सेवा।
जब सोऊँ तब करूँ दंडवत, पूजूँ और न देवा।।
शब्द निरंतर मनुआ राता, मलिन बचन का त्यागी।
ऊठत-बैठत कबहुँ न बिसरै, ऐसी तारी लागी।।
कहै कबीर यह उनमुनि रहनी, सो परगट कर गाई।
सुख-दुख के इक परे परम सुख, तेहि में रहा समाई।।⁸

भक्त का धीरे-धीरे सहज भाव से पुत्र, कलत्र, धन वासना आदि सभी से संबंध छूट गया है। अब भक्त कबीर, भगवान राम से एकाकार होते हुए उन्हीं में समा गए हैं। यही वस्तुतः 'सहज' रूप है। यथा—

सहजै-सहजै सब गए, सुत बित कांमणि काम।
एकमेक है मिल रह्या, दासि कबीरा राम।⁹

कबीर का कहना है कि सहज साधक एवं सहज-समाधि या सहज-साधना उसी को कहना चाहिए, जो सहज भाव से स्वाभाविक रूप से जीवन में प्रवृत्त रहते हुए ही भगवत स्वरूप नाम का साक्षात्कार कर लेता है, इसी प्रवृत्ति के कारण जिन्हें ईश्वर स्वयं वरण कर लेता है—

सहज-सहज सब कोउ कहै, सहज न चीन्है कोइ।
जिन्ह सहजै हरिजी मिलै, सहज कही जै सोइ।।¹⁰

अतः कर्ता, भोक्ता, वैराग्य आदि सभी का अहंकार छोड़कर सहज भाव से जीना ही

सहज स्वरूप है।

साधना के विकास में कबीर ने मन को उत्कृष्ट साधन माना है। उनका कहना है कि इस मन के द्वारा व्यक्ति गोरखतुल्य सिद्ध योगी बन सकता है, अघोरपंथी साधु बन सकता है, परमपद को प्राप्त कर सकता है तथा स्वयं सृष्टिकर्ता भी बन सकता है—

मन गोरख मन गोविंद, मन ही औघड़ होई।
जो मन राखै जतन करि, तौ आपै करता सोई।¹¹

कबीर ने मन की तीन दशाएँ बताई हैं—1. भ्रांतदशा, 2. निभ्रांति दशा और 3. विलय दशा। विकल या भ्रांतदशा में मन बहुत चंचल होता है, वह मस्त हाथी की भाँति भागता रहता है। कबीर का कहना है कि विषयों के नशे में चूर मनरूपी हाथी को अपने अंदर ही घेरकर कुचल दो। यह जब-जब विषय-वासनाओं की ओर भटके, ईश्वर से विमुख हो, तब-तब इसे साधुभाव एवं वैराग्य के अंकुश से मोड़कर, जब-जब विषय-वासनाओं की ओर भटके, ईश्वर से विमुख हो, तब-तब इसे साधुभाव एवं वैराग्य के अंकुश से मोड़कर ईश्वराभिमुख करते रहो—

मैमंता मन मारिरे, घट ही माहें घेरि।
जब ही चालै पीठिदे, अंकुश दै दै फेरि।¹²

अविकल या निभ्रांतिदशा में मन एकाग्र हो जाता है और संस्कारों की क्रियाशीलता समाप्त हो जाती है। अतः मन अंतर्मुखी हो जाता है। मन की इस अवस्था का वर्णन करते हुए कबीरदास कहते हैं कि हमने ऐसे व्यक्ति को अपना मित्र बना लिया है, जिसने लाल रंग का वस्त्र (अंगरखा) पहन रखा है, अथवा जिसके गले में लाल निशान है। इस रंग को मिटाने की चेष्टा में संसार के समस्त धोबी धोते-धोते हार गए, परंतु यह लाल रंग नहीं गया—

एक जू दोस्त हम किया, जिस गलि लाल कबाड़।
सब जग धोबी धोई मरै, तौ भी रंग न जाइ।¹³

मन की तीसरी अवस्था विलय की है। इसी अवस्था को समाधि भी कहा गया है। इस दशा में मन पूर्णरूपेण विकारमुक्त होकर स्थिर हो जाता है। निर्विषय, निरालंब तथा आत्मस्वरूप हो जाता है। मन की इस दशा को कबीर ने घुले हुए नमक और पानी के समान बताया है। यथा—

मन लागा उनमन सौं, उनमन मनहि बिलग।
लूँण बिलगा पाणियाँ, पाणी लूँण बिलग।¹⁴

अतः मन और परमतत्त्व का तदाकार पानी के समान एकाकार हो गया है, जिसके दर्शन में ही वह आह्लाद एवं मंगल का अनुभव कर रहा है। अब इस तत्त्वदर्शन से जीव कभी भी अलग नहीं होगा—

मनवा तौ अधर बस्या, बहुतक झीण होई।
आलोकत सचुपाइया, कबहु न न्यारा सोई।¹⁵

कबीर की सहज साधना बड़ी ऊँची साधना है। इसमें समस्त भौतिक गुणों का विलयन हो जाता है और अंत में 'शब्द' के साथ तदाकार होकर साधक राममय हो जाता है। इस साधना में कबीर अपनी निष्ठा व्यक्त करते हुए कहते हैं कि इसमें पारंगत होने पर वे संसार में लौटकर आने की आवश्यकता नहीं समझते—

बहुरि हम काहेकौ आवहिंगे।

बिछरै पंचतत्त्व की रचना तब हम रामहि पावहिंगे।
पिरथी का गुन पानीं सोखा पानीं तेज मिलावहिंगे।
तेज पवन मिलि पवन सबद मिलि सहज समाधि लगावहिंगे।

अतः कबीर ने इस सहज समाधि के साधन रूप में जिस योग विशेष की चर्चा की है उसे 'सुरति शब्द योग' नाम दिया है। सुरति वस्तुतः चेतन आत्मा के ज्ञान की धारा है।¹⁷

सहजमार्गीय संतों की साधना-पद्धति

सहजमार्गीय संतों की साधना-पद्धति महर्षि पतंजलि के राजयोग का संशोधित एवं परिवर्तित रूप है, जो बाद में सहजमार्ग के नाम से जानी गई। राजयोग का शाब्दिक अर्थ है—'योगों का राजा' अर्थात् सभी योगों में श्रेष्ठ। राजयोग में विकास की मुख्य विधि है—'ध्यान की कला'। योग के इतिहास में महर्षि पतंजलि ने तत्कालीन पद्धतियों को वर्गीकृत किया और यौगिक अभ्यास की एक समाहित पद्धति का निर्माण किया, जिसे 'अष्टांग योग' कहते हैं। अष्टांग योग में योग के आठ अंग माने गए हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

सहजमार्गीय संतों की साधना-पद्धति के अध्ययन हेतु गुरु-परंपरा को समझना अति आवश्यक है। सहजमार्गीय संतों में आदिगुरु हैं श्री रामचंद्रजी महाराज (1879-1931) फतेहगढ़ (उ०प्र०)। उनको प्यार से 'लालाजी' कहा जाता है। आदिगुरु लालाजी महाराज ने प्राणाहुति की प्राचीन-पद्धति को पुनः प्रतिष्ठित किया। दूसरे गुरु श्री रामचंद्रजी महाराज (1899-1983) शाहजहाँपुर (उ०प्र०) हैं। उन्होंने अपने गुरु लालाजी महाराज की साधना-पद्धति का विकास करते हुए परंपरागत राजयोग की प्रारंभिक कठिन साधना के चरणों को समाप्त किया तथा सहजमार्ग साधना-पद्धति को पूर्णता प्रदान की। तीसरे गुरु श्री पार्थसारथी राजगोपालाचारी (1927) वर्तमान गुरु हैं। इन्हें प्यार से 'चारीजी' कहा जाता है। इन्होंने 37 वर्ष की अवस्था में अपने गुरुदेव श्री रामचंद्रजी महाराज से शाहजहाँपुर में भेंट की और फिर सदा-सदा के लिए उन्हीं के चरणों में समर्पित हो गए।

फतेहगढ़ के महात्मा श्री रामचंद्रजी महाराज ने इस धरती पर एक नए आध्यात्मिक युग का प्रारंभ किया। उन्होंने राजयोग की पद्धति को संशोधित एवं परिवर्धित करके ऐसा आसान और स्वाभाविक मार्ग प्रस्तुत किया, जिससे जनसामान्य ने लाभ उठाया। उन्होंने इंद्रियों के दमन पर नहीं, वरन् इंद्रियों के उचित नियमन पर बल दिया, ताकि वे अपनी मूल अवस्था में आ जाएँ—जैसी वे हमारे प्रथम बार मानव-शरीर धारण करने के समय थीं। इतना ही नहीं, उन्होंने निम्नवृत्तियों को भी स्वाभाविक तरीके से नियंत्रित किया, जिससे शरीर की सारी संरचना दिव्य हो जाए और ईश्वर-प्राप्ति में सफलता मिल जाए। इस पद्धति में अंतर्निहित एक निश्चित लक्ष्य है—साक्षात्कार, और इसके लिए ध्यान का सही तरीका सिखाया जाता है। इस पद्धति में ध्यान का विषय केवल निराकार परमतत्त्व है, क्योंकि उससे निम्नतर श्रेणी के विषयों पर ध्यान करने से उपलब्धियाँ भी कम ही होंगी और निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकेगी।

महर्षि पतंजलि ने योग के जो आठ अंग बताए, सहजमार्गीय साधना में सातवें अंग 'ध्यान' से प्रारंभ किया जाता है। श्री चारीजी महाराज स्पष्ट करते हैं कि सहजमार्ग पद्धति में जो करने को कहा जाता है, वह बस इतना कि आराम से बैठ जाएँ, आँखें बंद कर लें और ध्यान करें। जैसे-जैसे अभ्यासी ध्यान में प्रगति करता जाता है, शरीर विश्रान्ति और प्रशान्ति की मुद्रा अपना लेता है, जिसमें वह आवश्यक अवधि के लिए रह सके। इस प्रकार आसन स्वाभाविक रूप से

लग जाता है। ज्यों-ज्यों इस विधि से ध्यान में प्रगति होती है, साँस की गति धीमी हो जाती है और उसका एक स्वाभाविक चक्र बन जाता है, जो वैसे अस्तित्व के लिए स्वाभाविक है। इस प्रकार प्राणायाम भी स्थापित हो जाता है। जैसे-जैसे अभ्यासी ध्यान में आगे बढ़ता है, उसका हृदय स्वतः ही शुद्ध होता जाता है और मानसिक प्रक्रियाएँ भी शुद्ध होती जाती हैं, जिनका परिणाम कर्म की शुद्धता होता है। इस प्रकार पतंजलि योग के पहले दो अंग 'यम' और 'नियम' भी स्वाभाविक रूप से स्थापित हो जाते हैं। ध्यान का दूसरा परिणाम यह होता है कि मन को एक निश्चित वस्तु पर ध्यान करने का अभ्यास हो जाता है और जैसे-जैसे मन की क्षमता बढ़ती जाती है, एकाग्रता स्थापित हो जाती है, जिसकी क्षमता बढ़ जाने पर एक ऐसी स्थिति आती है, जब एकाग्रता स्वाभाविक स्थिति बन जाती है। इस प्रकार योग के 'प्रत्याहार' तथा 'धारणा' की स्थितियाँ भी स्थापित हो जाती हैं। इस तरह पतंजलि के अष्टांग योग के सातवें अंग 'ध्यान' से प्रारंभ करने पर सुयोग्य गुरु के मार्गदर्शन में अभ्यासी को बिना अत्यधिक शारीरिक या मानसिक प्रयास के पहले छः अंग स्वाभाविक रूप से स्थापित हो जाते हैं। सहजमार्ग की राजयोग पद्धति में आठवें अंग 'समाधि' से बहुत सराकार नहीं होता। समाधि वह दशा है, जहाँ मानव चेतनापूर्ण निश्चलता में खो जाता है तथा अस्तित्व की उस दशा में मनुष्य लगभग पत्थर जैसा बन जाता है। गुरुदेव का मानना है कि ऐसी समाधि जरूरी नहीं है। इसकी जगह अस्तित्व की अन्य एक दशा दी जाती है, जिसे 'सहजसमाधि' कहते हैं। इसमें यद्यपि व्यक्ति चेतना की ऐसी दशा में रहता है, जिसे परामानवीय या अतिमानवीय कह सकते हैं। उसका निम्नस्तरीय या साधारण मन सब जानता होता है कि उसके आस-पास क्या हो रहा है, परंतु वातावरण का किसी भी प्रकार से उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस तरह बाहरी संसार का अस्तित्व समाप्त नहीं होता, किंतु समाधि ऐसी होती है, जिसमें विश्व या ब्रह्मांड का सब कुछ समाहित हो जाता है। यह अवस्था पारंपरिक रीति से सिखाई जाने वाली समाधि की अपेक्षा उच्चतर अवस्था है।¹⁸

इससे ज्ञात होता है कि सहजमार्गीसाधना ध्यान से प्रारंभ होती है, जिसमें सद्गुरु की सहायता सर्वोपरि मानी जाती है। यह पद्धति ऐसी अनोखी पद्धति है, जिसका विकास विशेषतः सामान्य गृहस्थ के लिए किया गया है। इस पद्धति के संतों का मानना है कि समस्त क्रियाओं का विधिवत संचालन मनुष्य को साधुता की ओर अग्रसर करता है तथा उसके भीतर छिपी हुई प्रत्येक क्षमता एवं श्रेष्ठता को उजागर करता है। इसमें यद्यपि ब्रह्मचर्य की शिक्षा नहीं दी जाती, फिर भी क्रियाओं के संयमित तथा नियंत्रित करने की प्रेरणा दी जाती है। यह पद्धति किसी जाति, लिंग या अन्य किसी प्रकार के भेद को नहीं मानती। यह सभी के लिए सभी समयों पर उपलब्ध है। इसमें सम्मिलित होने की योग्यता मात्र अभ्यास में भाग लेने की इच्छा है।

सहजमार्गी संतों का कहना है कि मानव-तंत्र की शुद्धि का कार्य मन से प्रारंभ होना चाहिए, क्योंकि सही चिंतन ही सही कर्म की ओर अग्रसर करता है। मन की शुद्धि का कार्य संप्रेषण की प्रक्रिया द्वारा गुरुदेव द्वारा किया जाता है। योग्य गुरु यौगिक प्राणाहुति की शक्ति से अभ्यासी के मन की निम्न प्रवृत्तियों को निर्बल कर देता है और उसके हृदय के अंतरतम में दैवी प्रकाश का बीजारोपण करता है। इस प्रक्रिया में इच्छा शक्ति का प्रयोग किया जाता है। यह प्राणाहुति कोई मानसिक ऊर्जा नहीं है, बल्कि गुरु की व्यक्तिगत यौगिक यौगिक आध्यात्मिक ऊर्जा है। जिसे अभ्यासी के हृदय में संप्रेषित किया जाता है। प्रारंभ में अभ्यासी इसका प्रभाव

अनुभव नहीं करता, परंतु थोड़े समय के अभ्यास के पश्चात् ही वह इसका अनुभव करने लगता है। जिसका आभास उसे अंगों की क्रियाओं तथा मन की वृत्तियों में सूक्ष्म परिवर्तन के रूप में होने लगता है।

यह प्राणाहुति ही है, जो सहजमार्ग को अन्य योग-पद्धतियों तथा मनुष्य के विकास की अन्य विधियों से अलग करती है। जब अभ्यासी के हृदय के भीतर प्राणाहुति दी जाती है, तब अभ्यासी अपने से ऊँची एक शक्ति से भर जाता है। इसलिए उसकी आध्यात्मिक प्रगति अधिक गतिशील हो जाती है। स्पष्ट ही आध्यात्मिक उन्नयन का यह काम, जो अभ्यासी अपने प्रयत्नों द्वारा दशकों में भी प्राप्त न कर पाता, प्राणाहुति द्वारा कम-से-कम समय में प्राप्त कर लेता है।

प्राणाहुति का स्थान सफाई के बाद है। इसलिए सहजमार्ग में प्रारंभ में अभ्यासी को प्रारंभिक तीन या इससे भी अधिक सिटिंग देकर गुरु अथवा प्रशिक्षक द्वारा उसकी सफाई की जाती है। सफाई के बिना प्राणाहुति व्यक्ति का नुकसान भी कर सकती है। गुरुदेव का कहना है कि यदि एक चोर को बिना सफाई प्राणाहुति दी जाए, तो वह एक बड़ा चोर बन सकता है। इसलिए सहज मार्ग में पहला कार्य सफाई है। यदि आप बर्तन में दूध खरीदना चाहते हैं, तो क्या उसे पहले साफ़ नहीं करते? तो, पहले चीजों को हटाने और फिर उसी चीज का उत्थान करने से परिवर्तन होता है।¹⁹ वैसे भी योग का अर्थ है—जोड़ना। दो चीजें जोड़ने के लिए जब तक वे समान नहीं होंगी, जुड़ नहीं सकतीं। ईश्वर सूक्ष्म है। इसलिए उस सूक्ष्म से जुड़ने के लिए व्यक्ति को भी सूक्ष्म बनना होगा सूक्ष्मता के लिए पहला आवश्यक तत्व है—सफ़ाई, जिसे शुद्धिकरण या निर्मलीकरण भी कहते हैं।

सफ़ाई कैसे की जाती है? सायंकाल जब दैनिक जीवन के कार्य पूर्ण हो जाते हैं, तब गुरुदेव सलाह देते हैं कि प्रत्येक अभ्यासी रोज़ आधे घंटे के लिए आँखें बंद करके बैठे और यह कल्पना करे कि सद्गुरु की कृपा हमारे भीतर प्रवाहित हो रही है और दिनभर के इकट्ठे संस्कारों (छापाँ) को हटाए लिए जा रही है। इस तकनीक का सतर्कतापूर्वक किया गया अभ्यास यह सुनिश्चित करता है कि अभ्यासी पूर्व संस्कारों को साफ करने के साथ-साथ नए संस्कार नहीं जोड़ रहा है। अतः सहज मार्ग में पहला काम सफ़ाई है।

सफ़ाई के पश्चात् ध्यान की स्थिति आती है। ध्यान का अर्थ है—‘किसी एक चीज के बारे में निरंतर सोचना या विचार करना। ध्यान एक अभ्यास है। ध्यान बिजली के बल्ब की भाँति चालू होने और बंद होने जैसा नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिससे कुछ समय बाद परिणाम मिलने की आशा की जाती है। ध्यान के अभ्यास की गहराई हृदय में विकसित निष्ठा पर निर्भर है।²⁰ ध्यान का अभिप्राय एक पूर्ण विचार है, जिस पर लगातार, बिना रुके सोचना है। यह पूर्ण विचार एक कुआँ खोदने जैसा है, खोदते जाओ, जब तक कि पानी न मिल जाए। कुआँ खोदते हैं तो शुरुआत में कुछ कंकड़ कुछ कचरा निकलता है और तब पुरानी चीजें बाहर आती हैं, फिर चट्टान की कोई परत बाहर निकलती है, फिर रेत निकलती है और आखिर में पानी निकलता है। इसके लिए धैर्य की जरूरत होती है, प्रयास की जरूरत होती है, बल्कि कड़े प्रयास की जरूरत होती है। निःसंदेह इसमें समय लगता है। धैर्य के साथ-साथ काम करने की भी जरूरत होती है।²¹

ध्यान के लिए एक ही स्थान और एक ही समय का सुझाव दिया गया है। यह इसलिए कहा गया है कि उस स्थान में प्रवेश करते ही स्वतः ध्यान की मनोदशा प्राप्त हो जाए। सहजमार्ग

प्रणाली में अभ्यासी को यह सोचते हुए हृदय पर ध्यान करने की सलाह दी जाती है कि हृदय में ईश्वरीय प्रकाश विद्यमान है, परंतु उसे निर्देश दिया जाता है कि वह प्रकाश को किसी विशेष रूप या आकृति में, जैसे बिजली का बल्ब या मोमबत्ती आदि के रूप में देखने की चेष्टा न करे, क्योंकि उस हालत में वहाँ दीख पड़ने वाला प्रकाश वास्तविक न होकर स्वयं उसकी ही सृजनात्मक कल्पना का विकास मात्र होगा। अभ्यासी को प्रकाश का केवल एक सुझाव मात्र लेकर चलने को कहा जाता है, जिसके मूल में दैवत्य का विचार निहित हो।²² ध्यान की अवधि एक घंटा कही गई है। न इससे ज्यादा न कम। ज्यादा इसलिए नहीं कि दिमाग पर जोर पड़ता है और कम इसलिए नहीं कि इससे कम में प्रगति नहीं हो सकती। 'प्रगति तभी शुरू होती है, जब हम सही ढंग से ध्यान करने लगते हैं। ध्यान की यही विशेषता है कि यह अनंत संभावनाओं के द्वारा खोलता है, लेकिन यह हमारे ऊपर निर्भर करता है कि हम इसे कैसे शुरू करते हैं?' इसीलिए गुरुदेव कहते हैं कि प्रतिदिन ध्यान करो। धीरे-धीरे मन की स्थिति को नियंत्रित करने की हमारी क्षमता बढ़ती जाती है।²³

रात्रि में सोने से पहले एक प्रार्थना करनी होती है, जो इस प्रकार है—

हे नाथ! तू ही मनुष्य-जीवन का वास्तविक ध्येय है।

हम अपनी इच्छाओं के गुलाम हैं, जो हमारी उन्नति में बाधक हैं।

तू ही एकमात्र ईश्वर और शक्ति है,

जो हमें उस लक्ष्य तक ले चल सकता है।

प्रार्थना द्वारा अभ्यासी स्वयं को परमात्मा से जोड़ता है इस प्रार्थना में कोई माँग नहीं है, वरन् अपने लक्ष्य के विषय में बताते हुए अपनी बाधा का उल्लेख करके ईश्वर से लक्ष्य-प्राप्ति की प्रार्थना की गई है। यह प्रार्थना ध्यान से पहले भी बोली जाती है, सिर्फ़ एक बार, जिससे परमात्मा से संबंध जुड़ जाए।

इसके अतिरिक्त रात्रि नौ बजे सार्वभौमिक प्रार्थना की जाती है। बाबूजी महाराज का कहना है कि 'हर अभ्यासी रात में ठीक नौ बजे जहाँ कहीं भी हो अपना सारा काम छोड़कर पंद्रह मिनट के लिए ध्यान में बैठ जाए और चिंतन करे कि विश्व के सभी भाई-बहनों में श्रद्धा और प्रेम भर रहा है तथा मालिक के प्रति उनकी सच्ची श्रद्धा दृढ़ हो रही है।'²⁴ इस प्रार्थना का महत्त्व विशेष है, क्योंकि इसमें सारी मानवता के लिए प्रार्थना की जाती है। बुद्धिमत्ता इसी में है कि हम पूरी मानवता को अपने स्तर तक उठाएँ।

इस सबके साथ साप्ताहिक सत्संग अनिवार्य है। यह भाईचारा बढ़ाने के लिए तथा मिलकर सामूहिक कार्य करने की क्षमता बढ़ाने के लिए अति आवश्यक है। चारीजी समझाते हैं कि 'एक व्यक्ति के अकेले में बैठकर ध्यान करने की अपेक्षा जब सौ दो सौ लोग बैठकर ध्यान करते हैं, तो उसमें दिव्यता को या दिव्य कृपा को अपनी और आकर्षित करने की क्षमता अधिक होती है। मिला-जुला प्रयास एक प्रयास के गुणज से कहीं अधिक प्रभावकारी होता है।'²⁵

इस प्रकार राजयोग संशोधित प्रणाली सहजमार्ग साधना के निम्नलिखित सोपान मानती है—1. प्रारंभिक तीन सिटिंग, जिनमें गुरु द्वारा अथवा प्रशिक्षक द्वारा अभ्यासी की मानसिक शुद्धि (सफाई) की जाती है; 2. ध्यान; 3. प्रार्थना—(1) ध्यान से पूर्व बोली गई प्रार्थना (2) रात्रि को सोते समय चिंतन-मनन के साथ की गई प्रार्थना (3) सार्वभौमिक प्रार्थना (रात्रि नौ बजे);

4. साप्ताहिक सत्संग।

सहजमार्ग साधना का कवच : सतत स्मरण

सहजमार्ग साधना का कवच है—सतत स्मरण। सतत स्मरण का अर्थ है—हर समय, हर पल परमात्मा (मालिक) की याद में रहना। सतत स्मरण अपने-आपमें एक वरदान है, क्योंकि यह याद करने वाले को खुद आपके समीप ले आता है।

संक्षेप में संत कबीर और सहजमार्गी संतों की साधना-पद्धति में भले ही हठयोग और राजयोग का वैभिन्न्य दृष्टिगत होता हो, परंतु भक्ति की अनन्यता तथा साधना की सहजता दोनों को एक ही बिंदु पर लाकर खड़ा कर देती है। दोनों का लक्ष्य एक ही आत्म-साक्षात्कार अथवा ब्रह्म में लय होना।

संदर्भ

1. संस्कृत हिंदी कोश, वामन शिवराम आपटे, पृ० 1095
2. वही, पृ० 158
3. श्रीमद्भगवद्गीता 7/18
4. वही, 12/9
5. संतों की सहज साधना, डॉ० राजदेवसिंह, पृ० 72
6. कबीर ग्रंथावली, श्यामसुंदर दास, सहज कौ अंग, साखी 1
7. कबीर, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० 122
8. वही पृ० 202
9. कबीर ग्रंथावली, श्यामसुंदर दास, सहज कौ अंग, साखी 3
10. वही, साखी 4
11. वही, मन और अंग, साखी 10
12. वही, साखी 9
13. वही, साखी 11
14. वही, परचा कौ अंग, साखी 16
15. वही, मन कौ अंग, साखी 14
16. कबीर वाणी, डॉ० पारसनाथ तिवारी, पृ० 91-92
17. वही, पृ० 92
18. सहजमार्ग के सिद्धांत, भाग 1, पृ० 24-25
19. वही, पृ० 52
20. मकड़ी का जाला, भाग 1, पृ० 134
21. वे, हुक्का और मैं, पृ० 61
22. रामचंद्र की संपूर्ण कृतियाँ (बाबूजी) भाग 1, पृ० 286-87
23. सहजमार्ग के प्रमुख तत्त्व, भाग 1, पृ० 19
24. रामचंद्र की संपूर्ण कृतियाँ, भाग 2 (बाबूजी), पृ० 167
25. सहजमार्ग के प्रमुख तत्त्व, भाग 1, पृ० 63

बसंत विहार

निकट-बी-28, दिल्ली रोड, सहारनपुर 247001

कामायनी में आत्मवादी चिंतन

प्रो० मृदुला जुगरान
अशोकदत्त नैटियाल

सृष्टि-रचना की प्रभातकालीन बेला से ही मानव को इस दृश्यमान जगत को देखकर उत्सुकता व कौतुहल का आभास हुआ होगा। कौतुहल की स्थिति ने उसके मन-मस्तिष्क में किसी अव्यक्त सत्ता को स्थापित किया, जिसके अनुसंधान-हेतु मानव-मन आज भी विकल है। मानव-मन सदैव से इस प्रश्न के उत्तर के लिए जिज्ञासु रहा है कि मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? जितने कौतुहल एवं गहनता से उसने इस प्रश्नों पर चिंतन किया, उतना ही वह उनमें उलझता चला गया और आज तक यह ज्ञात नहीं हो पाया कि क्या मनुष्य ने अपने वास्तविक सत्य को प्राप्त कर लिया है?

हमारा संपूर्ण आर्षवाङ्मय इसके लिए निरंतर प्रयत्नशील रहा है। वेद, पुराण, उपनिषद्, मीमांसा, दर्शनादि सभी ने इस विषय पर विस्तृत चिंतन, मनन एवं विवेचन के माध्यम से जीवन के इस निगूढ़ सत्य (तत्त्व) पर प्रकाश डाला है।

मानव में अंतर्निहित शाश्वत शक्ति या सार्वभौम चेतनतत्त्व ही आत्मा कहा जाता है।¹ आत्मतत्त्व को भारतीय विद्वान मनीषियों ने प्राचीनकाल से ही अपने ज्ञान एवं साधना का विषय बनाया है, कालांतर में आधुनिक साहित्य-जगत में उसे एक वाद या दृष्टिकोण के रूप में देखा जाने लगा और आत्मवाद नाम दे दिया गया। कवियों की लेखनी भी इससे अछूती नहीं रही। काव्य या साहित्य सोद्देश्य ही रचा जाता है, केवल मनोरंजन उसका कर्म नहीं है। यदि उसमें गूढ़तत्त्व छिपा हुआ हो, तो उस काव्य की महत्ता कालजयी हो जाती है।

आत्माप्रकाश एवं चेतना से युक्त एक अत्यंत सूक्ष्म बिंदु है। यास्क ने 'आत्मा' शब्द की निरुक्ति इस प्रकार की है—'आत्मा तते वाप्ति वापि वाप्त इत स्याद् यावद् व्याप्तिभूत इति।'² अर्थात् आत्मा शब्द अत् धातु (सतत चलना) या अप् धातु (व्याप्त होना) से बना है। आत्मा को आत्मा इसलिए कहा गया है कि यह सदैव चलती रहती है या सदैव समस्त जीवों में व्याप्त रहती है।

कठोपनिषद् में भी यह मान्यता है कि आत्मा यद्यपि सभी में विद्यमान है, परंतु सामान्य व्यक्ति उसे देख नहीं पाता। जबकि सूक्ष्म बुद्धि वाले उसे देख लेते हैं। ग्रहण कर लेते हैं—

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोऽऽत्मा न प्रकाशते।

दृश्यते त्वग्रयाबुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः³

भारतीय मत के अनुसार साहित्य एक सृजनात्मक आवश्यकता तो है ही, साथ ही उसका उद्देश्य आत्म-साक्षात्कार भी है। अतः सृजन एवं कला के साथ साहित्य मानव-जीवन के लिए उपयोगिता का पक्षधर है। स्वाध्याय एवं सृजन के माध्यम से आत्म-साक्षात्कार की यह अंतर्त्यात्रा

प्राचीन वाङ्मय से लेकर भक्तिकालीन काव्य में दृश्यमान होती है। वस्तुतः अखंड भारत की उन्नति के दो ही कारण स्वीकार किए जा सकते हैं, जिनको क्रियान्वित कर आज भी हम अपना खोया गौरव प्राप्त कर सकते हैं। आज की भौतिकवादी दृष्टि वहाँ नहीं पहुँच पाई है। इनमें से पहला कारण—भारत की आध्यात्मिक सत्ता व दूसरा कारण—उसकी कृषि-व्यवस्था। आध्यात्मिक एवं कृषि-दर्शन से ही भारत आज भी विश्वगुरु के पद पर आसीन है। कृषक के सम्मान (अन्नमयकोश) से ही सच्चिदानंद परमात्मा (आनंदमयकोश) तक पहुँचा जा सकता है। आज का ज्वलंत प्रश्न यह है कि साहित्य कैसा रचा जाए? इसका उत्तर है अपनी प्राचीन परंपराओं एवं विरासत की रक्षा कर ही कल्याणकारी समाज की स्थापना हो सकती है। हमारी विरासत का अर्थ संचय करना नहीं है, बल्कि धर्ममूलक अर्थ और काम का निर्वहन करते हुए मोक्ष ही इसका उद्देश्य रहा है। मोक्ष से अभिप्राय अमरलोक में जाना नहीं, अपितु संसार में आनंदमयी अवस्था को प्राप्त कर लेना ही मोक्ष है।

साहित्य एवं काव्य के माध्यम से जीवात्मा को उसके स्वरूप का बोध कराने का कार्य जिन महान कवियों द्वारा किया गया है, वे स्वयं परमात्मा में विलय थे। कबीर आदि संत उसी परंपरा में आते हैं। वे स्वयं भारत की आत्मा थे। अतः यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि आज की विनाशकारी मानव-सभ्यता के वातावरण में कवियों एवं साहित्य-मनीषियों का अपनी परंपरा की ओर लौटना सृजन के प्रति एक न्यायोचित कदम है।

आधुनिक कवियों में आध्यात्म का मूल आधार छायावाद की महानतम एवं कालजयी कृति 'कामायनी' को माना जा सकता है, जिसके आनंदवाद के दर्शन ने निराला, पंत एवं महादेवी की काव्य-चेतना को परोक्ष एवं प्रत्यक्ष रूप में प्रभावित किया। प्रसादजी की काव्य रचने की शक्ति श्रेय सत्य के साथ जुड़ी हुई है। उनकी काव्य-प्रतिभा, समष्टि-चेतना, युगानुभूति व आत्मानुभूति में समानतः जीवित रहती है।⁴

कामायनी का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि संपूर्ण कामायनी आत्मवाद की भित्ति पर स्थित है। संपूर्ण कामायनी पर प्रत्यभिज्ञा-दर्शन (आत्मा द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार) का प्रभाव है। मन ही मानव के बंधन एवं मोक्ष का कारण है, मन को निर्मल निर्झर की भाँति निर्विकार बनाने से ही आत्मानंद की प्राप्ति होती है। 'छायावाद युग में निर्झर अथवा प्रपात पर जितनी कविताएँ लिखी गईं, उतनी शायद ही किसी और युग में लिखी गई होंगी। निर्झर शिलाखंडों के गतिरोध को तोड़ते हुए घन-बन अंधकार को पार करके वेग से अनंत जलनिधि की ओर चल देता है।'⁵

आत्मा एवं परमात्मा का संबंध चिरंतन है। प्रत्यभिज्ञा-दर्शन के अद्वयवाद से प्रभावित प्रसादजी ने मनु के माध्यम से जीवन के उद्गम की रहस्यमयता का वर्णन इस प्रकार किया है—

किस गहन गुहा में अति अधीर

झंझा प्रवाह-सा निकला यह जीवन विक्षुब्ध महासमीर।⁶

मानव की यह नश्वर काया पंचभूतों से निर्मित है। मृत्यु के उपरांत ये सभी तत्त्व मूलतत्त्वों से मिल जाते हैं—

ले साथ विकल परमाणु पुंज, नभ, अनिल, अनल, क्षिति और नीर।⁷

आत्मा मूलतः निर्विकारी है, किंतु शरीर के साथ रहने एवं कर्मों के बंधन के कारण वह मलिन हो जाती है। आत्मा, परमात्मा से अभिन्न है, लेकिन इस संसार में आकर मानव अपनी

मूलभूत श्रेष्ठता को विस्मृत कर बैठता है। वह अकारण ही अभिमानी बन जाता है एवं विनाश और निर्माण के स्थूल कार्यों में लिप्त रहता है—

प्राणी कटुता को बाँट रहा, जगती को करता अधिक दीन
निर्माण और प्रतिपद विनाश में दिखलाता अपनी क्षमता
संघर्ष कर रहा—सा सबसे, सबसे विनाश सब पर ममता⁸

मानव के विडंबनापूर्ण जीवन के कारण इच्छा, क्रिया व ज्ञान की संतुलनहीन स्थिति उत्पन्न होती है—

ज्ञान दूर कुछ किया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मन की
एक दूसरे से न मिल सकें, यह विडंबना है जीवन की।⁹

ज्ञान, इच्छा व क्रिया मिलकर एक त्रिकोण बनता है। यही त्रिकोण शैवागमों का त्रिपुर है। तीनों (ज्ञानलोक, क्रियालोक, इच्छालोक) इसके तीन ज्योतिर्बिंदु हैं। इन तीनों के ही संतुलन से जीव तुरियावस्था तक पहुँचता है और उस क्षण से मन की स्थिति इस प्रकार हो जाती है—

स्वप्न स्वाप जागरण भस्म हो
इच्छा, क्रिया, ज्ञान मिल लय थे
दिव्य अनाहत पर निनाद में
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।¹⁰

प्रसादजी जीवात्मा एवं परमात्मा के अभेद संबंध में आस्था रखते हैं। सामान्य जीव इस अभेद तत्त्व से अनभिज्ञ ही रहता है। जीव में ईश्वर की समस्त शक्तियाँ विद्यमान होने पर भी वह इहलौकिकता में निरंतर लिप्त होने के कारण इन शक्तियों को विस्मृत करके चेतनशून्य हो जाता है। चेतन-शक्ति को संकुचित करने वाले तत्त्व प्रसादजी ने शैव-दर्शन से लिए हैं, जिनका पारिभाषिक नाम कंचुक (आवरण) है। इन कंचुकों के न्यून या समाप्त हो जाने पर आनंदानुभूति होने लगती है। काम के शब्दों में—

संकुचित असीम अमोघ शक्ति
या कभी अपूर्ण अहंता में हो रागमयी-सी महाशक्ति
व्यापकता नियति प्रेरणा बन अपनी सीमा में रहे बंद
सर्वज्ञ ज्ञान का क्षुद्र अंश विद्या बनकर कुछ रचे छंद।¹¹

प्रसादजी का विचार है कि आत्मा, परमात्मा में अभेद संबंध तो है ही, किंतु श्रद्धा (सत्य के प्रति निष्ठा) की उपेक्षा के कारण मनु (मानव) को काम द्वारा दिया गया अभिशाप उसके मन में बैठकर अब तक उसे द्वयता की ओर प्रेरित कर रहा है। यही द्वंद्व संस्कार रूप में मानव-चेतना में स्थिर होकर उसके मन को अस्थिर कर रहा है। आनंदमयी देव प्रवृत्ति के प्रभाव से जहाँ एक ओर मानव-मन में ममता व आत्ममोह का विकास होता है, तो साथ ही भौतिकवादी आसुरी प्रवृत्तियों के कारण शरीर मोह का भी विकास होता है—

मुझमें ममत्वमय आत्ममोह स्वातंत्र्यमयी उच्छृंखलता
हो प्रलय भीत तन रक्षा में पूजन करने की व्याकुलता
वह पूर्व द्वंद्व परिवर्तित हो मुझको बना रहा अधिक दीन।¹²

मनु, जो कि मानव-मन के प्रतीक हैं, परमात्मा से भिन्नत्व एवं विलगता की अनुभूति

कर खिन्न हो जाते हैं। चिंता एवं आशा के बीच में झूलते हुए अनेक प्रकार से उस अभेदत्व को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। इसी कारण जीव कभी अपने अस्तित्व को ही सर्वत्र मानता है और कभी पंचतत्त्व से निर्मित एक परमतत्त्व बनकर रमण करने की कामना करता है।

एक ओर अहं प्रधान होने से वह विनाश की ओर उन्मुख होता है, किंतु वहीं दूसरी ओर हृदय-वृत्तियों के द्वारा उन्नयन होने के फलस्वरूप वह त्रिलोक की अनुभूति करता हुआ, शरीरस्थ पंच कोशों को पार करता हुआ, आनंदमय कोश तक पहुँचने में सफल होता है। इस सफलता के लिए आवश्यक होती है श्रद्धा। श्रद्धा से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है।

वस्तुतः श्रद्धा-भावना उसे उदात्त स्तर पर आरूढ़ करके शिवत्व (आनंद) से मंडित करती है। इस आनंदमयी स्थिति में पहुँचकर अपने-पराए की भ्रामात्मक, भेदकमूलक प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है—

चिरमिलित प्रकृति से पुलकित
वह चेतन पुरुष पुरातन
निज शक्ति तरंगायित था
आनंद-अंबुनिधि शोभन¹³

सार रूप में कहा जा सकता है कि प्रसादजी ने अपनी काव्य-प्रतिभा के माध्यम से कामायनी में सत, चित और आनंद की त्रिवेणी का संगम करके जीवन को आत्मशोधन के माध्यम से आनंद से परिपूर्ण करने का संदेश दिया है।

मन जब पवित्र भावों से, आस्था से परिपूर्ण होता है, तो सहज ही स्थितप्रज्ञ स्थिति को प्राप्त हो जाता है। श्रद्धाभाव की शरण में पहुँचकर आत्म-साक्षात्कार सुलभ है। ऐसी अवस्था में साधक बाह्य से किंचित-मात्र विचलित नहीं होता—

मनु बैठे ध्याननिरत थे उस निर्मल मानस-तट में
सुमनों की अंजलि भरकर श्रद्धा थी खड़ी निकट में।¹⁴

कबीर ने इस उन्मयावस्था का चित्रण बार-बार किया है, जो ब्रह्म के ध्यान में निमग्न एकाग्र चित्त की अवस्था है। जिस प्रकार शक्ति शक्तिमान से पृथक् नहीं रहती, लहरें सागर से अलग नहीं होतीं, इसी प्रकार प्रकृति पुरुष से भिन्न नहीं है। आनंदमय शिव की समता शैव-दर्शन में आनंद-सागर से की गई है। मुंडकोपनिषद् में लिखा है—‘वह मनोमय तथा प्राणमय सूक्ष्म शरीर को ले जानेवाला पुरुष हृदय को आश्रित कर अन्नमय कोश में स्थित है। उसका विज्ञान (अनुभव) होने पर ही विवेकी पुरुष, जो आनंदस्वरूप अमृत ब्रह्म प्रकाशित हो रहा है उसका सम्यक् साक्षात्कार करते हैं। तब इस जीव की हृदय-ग्रंथि टूट जाती है, संशय नष्ट हो जाते हैं, कर्म क्षीण हो जाते हैं। (मुंडकोपनिषद् 2/2/7-8) डॉ० नगेंद्र ने लिखा है कि मनु इसी आत्मरूप को प्राप्त होते हैं, जो स्वप्रकाशानंद हैं। वे शिवरूप हो जाते हैं और श्रद्धा शक्तिरूप। शैव-दर्शन की भाँति कामायनी में भी शिवशक्ति की कल्पना आनंदसागर और उसकी तरंगावली के रूप में की गई है।’ (डॉ० नगेंद्र, कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ, पृ० 61) कामायनी का उच्चतम आदर्श है—‘मानव-जाति एक इकाई के रूप में बदल जाए—

मनु ने कुछ-कुछ मुस्क्याकर
कैलाश ओर दिखलाया,

बोले देखो कि यहाँ पर
कोई भी नहीं पराया।¹⁵

पुरुष एवं प्रकृति में तादात्म्य होने पर अहं का इदं में पर्यवसान हो जाता है। जैसे सागर से भिन्न लहरों का कोई अस्तित्व नहीं है, वैसे ही इस विश्वात्मक सत्ता से पृथक् प्राणियों का कोई अस्तित्व नहीं है—

चेतन-समुद्र में जीवन लहरों-सा बिखर पड़ा है
कुछ छापा व्यक्तिगत अपना निर्मित आकार खड़ा है।¹⁶

इस विस्तार की वास्तविक लक्ष्यपूर्ति तभी होती है जब व्यष्टि का स्व समष्टि का स्व हो जाए। श्रद्धा जगत की मंगलकामना कामायनी महाशक्ति जगदंबा हो जाती है—

चेतन का साक्षी मानव हो निर्विकार हँसता-सा
मानस के मधुर मिलन में गहरे-गहरे धँसता-सा
सब भेद-भाव भुलवाकर दुख-सुख को दृश्य बनाता
मानव कह रे! यह मैं हूँ, यह विश्व नीड़ बन जाता।¹⁷

कामायनी में गुरुदेव रवींद्रनाथ की 'तत्रैक भवति विश्वनीडम्' की सुंदर कल्पना है। यहाँ मानव को चेतन का साक्षी बताया गया है। अतः चित्ति शक्ति का स्मरण ही जीवात्मा में उल्लास का कारण बनेगा। उसे विस्मरण करना मानव की सबसे बड़ी भूल है। यह दृश्य-जगत विशेष परिस्थितियों में कुछ समय के लिए है, पुनः उसी आनंदसागर में विलय को प्राप्त हो जाएगा। कामायनी की समाप्ति अभेदवाद पर होती है, जिसमें चैतन्य के महाविलास में जीवात्मा तद्अवस्था को प्राप्त कर अखंड आनंदमय हो जाती है—

समरस थे जड़ या चेतन
सुंदर साकार बना था
चेतनता एक विलसती
आनंद अखंड घना था।¹⁸

अस्तु, कामायनी आनंद की भावभूमि पर आनंद का जयघोष करनेवाली विश्व की सर्वोत्तम रचना है, जो कविता की सर्वोत्तम कसौटी भी है।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य कोश (भाग 1), संपा० धीरेंद्र वर्मा, पृ० 80
2. यास्क, निरुक्तम, संपा० डॉ० उमाशंकर शर्मा, पृ० 33
3. कठोपनिषद्, संपा० डॉ० विजेंद्रकुमार शर्मा, पृ० 56
4. छायावादी काव्य कुछ नए संदर्भ (संस्करण 2000), प्रो० मृदुला जुगरान, पृ० 84
5. छायावाद, नामवर सिंह, पृ० 27
6. कामायनी (इड़ा सर्ग), जयशंकर प्रसाद, पृ० 60
7. वही, पृ० 60
8. वही, पृ० 60
9. वही (रहस्य सर्ग), पृ० 124
10. वही, पृ० 124

11. वही, (इड़ा सर्ग) पृ० 66
12. वही, पृ० 63
13. वही, (आनंद सर्ग) पृ० 128
14. वही, पृ० 128
15. वही, पृ० 128
16. वही, पृ० 129
17. वही, पृ० 129
18. वही, पृ० 131

प्रगति विहार कॉलोनी
निकट राधा स्वामी सत्संग व्यास
श्रीनगर गढ़वाल 246174 (उत्तरखंड)
मो० 09536464562, 08439260974

पर्यावरणीय चेतना एवं साहित्य

डॉ० वंदना अग्निहोत्री

विभागाध्यक्ष-हिंदी

मा०जी०क०शा०स्ना० कन्या महा० इंदौर (म०प्र०)

प्रकृति-जगत् और मानव-जीवन का अनादिकाल से घनिष्ठ संबंध है। मानवता का विकास प्रकृति के विशाल प्रांगण में हुआ है। प्रकृति के साथ मानव का सुख-दुखात्मक संबंध अटूट रहा है। मानव को सच्चा सुख, शांति और आनंद प्रकृति की गोद में ही मिलता है। प्रकृति-नटी के बहुरंगी रूप मानव को सदा आकर्षित करते रहे हैं। भारतीय चिंतन में मानव प्रकृति-जगत में जन्म लेता है। उसका जीवन प्रकृति-जीवन का ही अंग है। इसी कारण भारतीय कवि मानव और प्रकृति के आंतरिक और घनिष्ठ संबंध को कभी नहीं भूलता।¹

पर्यावरण चेतना अर्थात् प्रकृति का ऐसा संतुलन, जो प्रकृति तथा मानव-हितों का संवर्धन करे। जब क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर, इन पाँच तत्त्वों को इनके मूल रूप में स्वीकार किया जाएगा और इसी के साथ नदी, पहाड़, वन तथा विधि द्वारा निर्मित समस्त प्राणिमात्र के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाया जाएगा, तभी मनुष्य के लिए स्वच्छ हवा, शुद्ध जल पवित्र अन्न, रहने को सुखद घर और पहनने को पर्याप्त कपड़े उपलब्ध होंगे। शिक्षा का प्रसार पर्यावरण-चेतना को जाग्रत करने में सहायक होगा और इसके साथ ही मनुष्य में इच्छाशक्ति भी बलवती होगी, जिससे पर्यावरण के हित में ठोस निर्णय लिए जा सकेंगे।

जिसमें हित की भावना हो वह ही साहित्य है—‘सहित त भावः साहित्यः या हितेन सहितम् इति साहित्यम्’ अर्थात् जिसमें पर्यावरण के हित की भावना होगी, वह साहित्य है।

साहित्य के प्रारंभ से ही हमें पर्यावरण-चेतना देखने को मिलती है। क्रौंच पक्षी के वध को देखकर महर्षि वाल्मीकि द्वारा विश्व के सबसे पहले महाकाव्य के प्रथम श्लोक का वह उद्घोष, जो उन्होंने जीव-हत्या के विरुद्ध व्याघ्र के लिए किया था—

मा निषाद प्रतिष्ठात्वमगमः शाश्वतीः समाः।

यत्क्रौंचमिथुनाद्रेकम् वधी काममोहितम्।²

यह पर्यावरण के प्रति जागरूकता है। महर्षि वाल्मीकी के इस श्लोक से विश्व में पर्यावरण एवं परिस्थिति की संतुलन के प्रति प्रथम जागरूकता है। चार वेदों में से अथर्ववेद का ‘प्रथिवीसूक्त’ तो पर्यावरण चेतना के संदेशों से भरा पड़ा है। जिसमें पृथ्वी, जल, पवन, अग्नि, गगन आदि से संसारवासियों को सुखी रखने के लिए अनेकानेक मंगलकामनाएँ की गई हैं।

प्रसाद और कालिदास के काव्य में भी पर्यावरणीय चेतना के दर्शन होते हैं। दोनों का दृष्टिकोण मानवीय एवं संवेदनात्मक है। इन दोनों प्रकृति-प्रेमी कवियों के महाकाव्यों का आरंभ,

विकास और पर्यावसान प्रकृति की गोद में हुआ। इनके काव्य में प्रकृति के विभिन्न रंग-रूपों का भव्य चित्ताकर्षक वर्णन है। इन दोनों कवियों ने मानव के चारों ओर व्याप्त अनंत प्रकृति, असंख्य तारागण, विशाल अंबर, अपार समुद्र, वन, लता, पादप, नदी, पर्वत, पशु-पक्षी आदि को सजीवता, चेतनता एवं मानवीकरण से मंडित किया है। ये सभी मानव के समान सुख-दुख की अनुभूति से व्याप्त हैं। प्रकृति मानव-जगत से संपृक्त होकर सजीव हो उठी है। इन दोनों कवियों का हृदय प्रकृति के साथ अद्वैत रखता है। प्रत्येक उपकरण में उन्हें विराट्-स्वरूप के दर्शन होते हैं। प्रकृति-संबंध के विषय में प्रसाद का विचार इस प्रकार है—‘प्रकृति-सौंदर्य ईश्वरीय रचना का एक अद्भुत समूह है अथवा उस बड़े शिल्पकार के शिल्प का एक छोटा-सा नमूना है।’¹³

दोनों कवियों ने प्रकृति-जीवन और मानव-जीवन को एक ही धरातल पर चित्रित किया है। दोनों के काव्यों में प्रकृति पीठिका मनोभावों एवं घटनाओं की पूर्व सूचना देने के लिए प्रयुक्त हुई है। दोनों कवियों ने पर्यावरण-चेतना से संबंधित प्रकृति के चित्रों को अपने काव्यों में प्रस्तुत किया है। कामायनी में पर्वत, समुद्र, घाटी, उषा, संध्या, रात्रि, नदी आदि का अंकन है। कालिदास ने भी रघुवंश और कुमारसंभव में पर्वत-शिखर, तपोवन, प्रभात, वसंत, समुद्र, हिमालय, संध्या, रात्रि, नदी का चित्रण किया है।

कालिदास मेघदूत में मेघ के माध्यम से अपनी प्रिया को संदेश देते हुए कहते हैं कि हे मेघ जब तुम आम्रकूट पर थककर पहुँचोगे, तो वहाँ का जामुनी जलपान करना। आम्रकूट भी आदर सहित तुम्हें शिखर पर ठहराएगा।¹⁴

मानव के प्रकृति से खिलवाड़ करने के कारण पर्यावरण निरंतर प्रदूषित होता जा रहा है। पर्यावरण के प्रदूषित होने का एक बड़ा कारण निरंतर बढ़ती जनसंख्या भी है। हमारे साहित्यकारों की इस पर भी दृष्टि गई है—

यदि जनसंख्या की तुलना में, इस विश्व में पौधे कम होंगे

तो इतना याद रखना सजन, न तुम होंगे न हम होंगे।

महाकवि सूरदास और तुलसीदास के काव्य में भी प्रकृति-प्रेम का वर्णन किया गया है। वृंदावन, गैया, गोवर्धन आदि में पर्यावरण के चित्र दिखाई देते हैं। श्रीकृष्ण माता यशोदा से बलदाउ भैया की शिकायत करते हुए कहते हैं—

मैया री मोहि दाऊ टेरत

मोको बनफल टोरि देत हैं आपन गैया घेरत।¹⁵

प्राकृतिक विपत्तियों पर भी उन्होंने लिखा है—

गहरात महरात दावानल आयो है

घेर चहुँ ओर कर सारे अंदोर बने,

धरनि अकास चहुँ पास छायो हैं।¹⁶

तुलसीदासजी ने भी अपने काव्य में प्रकृति-चित्रण कर स्वस्थ पर्यावरण की कामना की है—

तुलसी बिरवा बाग में सींचे से कुम्हिलाय,

राम भरोसे छोरि दे, परबत में हरियाय।¹⁷

रीतिकालीन कवि बिहारी ने भी, जिन्होंने अधिकांशतः नायक-नायिका का सौंदर्य वर्णन

किया है, प्रकृति के ऐसे चित्र वर्णित किए हैं, जिनमें प्राकृतिक प्रकोप से बचने के लिए शत्रु तक समीप बैठे हैं। प्रचंड ग्रीष्म के ताप से बचने के लिए पशु, पक्षी एवं सरीसृप को एक स्थान पर बैठा हुआ दिखाया गया है—

कहिलाने एकत बसत, अहि मयूर मृग बाघ
जगत तपोवन सो किया, दीरघ दाघ निर्दाघा⁸
राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी प्रकृति के सुखद और आनंद देने वाले रूपों का चित्रण किया है—

चारु चंद्र की चंचल किरणें खेल रही हैं जल-थल में
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है अवनि और अंबरतल में।
पुलक प्रकट करती है धरती, हरित तृणों की नोंकों से
मानो झूम रहे हैं तरु भी, मंद पवन के झोंकों से।⁹
सुकुमार कवि पंत ने तो प्रकृति को अपने से एक क्षण के लिए भी अलग नहीं किया है—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया।
बाले तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचना।¹⁰
कवि अपने युग की प्रकृति का चितेरा तो है ही, वह उसे परिमार्जित कर सुसंस्कृत भी बनाता है। विदेशी संक्रामक संस्कार के प्रभाव से समाज में कृत्रिमता बढ़ रही है। कवियों का ऐसा विश्वास है कि वह कृत्रिमता व्यष्टि एवं समष्टि दोनों के लिए अहितकर सिद्ध होगी। वे जीवन में स्वाभाविकता लाने के लिए व्यग्र हैं। आज फूलों की जगह काँटों को अधिक महत्त्व दिया जा रहा है। आज कैक्टस अधिक पसंद किए जा रहे हैं। पर्यावरण के लिए अधिकाधिक मात्रा में पेड़-पौधों और जंगलों का होना आवश्यक है। पंतजी ने गुंजन में लिखा है—

वन की सूखी डाली पर सीखा कलि ने मुस्काना
सीख ना पाया अब तक, सुख से दुःख को अपनाना।¹¹
प्रसादजी ने 'चित्राधार' में पर्यावरण के प्रति चिंता व्यक्त की है। आम के पेड़ों में मंजरियाँ लग चुकी हैं। हवा उनकी ओर आती हुई दीख पड़ती है। उसे भय होता है कि कहीं उसके स्पर्श से मंजरियाँ हिलकर गिर न पड़ें, वह सिहर उठता है और कहता है—

क्यों इतनों इतरात् चले आवत हो इतको
नेकहु रखत विचार नहीं हो अपने हित को।¹²
उसी प्रकार फल और छाया देनेवाले आम के पेड़ों को काटते देख उनके प्रति सहानुभूति और काटनेवाले मूर्खों के प्रति घृणा उमड़ पड़ती है। आज सड़कों एवं भवनों के निर्माण हेतु हज़ारों की संख्या में वृक्ष कटवाए जा रहे हैं, लेकिन उनके बदले में नए वृक्ष लगाने का प्रयास नहीं किया जा रहा है—

छाया देत काहु को पथिक जौन तापित है,
सुंदर सुस्वादु फल देन निज डारते,
स्वारथ में मूढ नर थोड़े निज लाभ हेतु
तऊ ताहि काटते हैं कुमति-कुठार ते।¹³

कवियों का रोष थोड़े समय में समाप्त भी हो जाता है और वह पर्यावरण के प्रति आशावादी भी हो जाते हैं। पतझड़ पर वसंत की विजय देख भोलाभाला कवि कौतुहल में पड़ जाता है। वह समझ नहीं पाता है कि वसंत का जादू कैसा है कि देखते-देखते पेड़ों की सूनी डालियाँ कोमल किसलयों, सुकुमार पुष्पों और फलों से लद गई—

पात बिन कीन्हों, जिन्हें पतझर रोष करि
तिन सब द्रुमन सुमन पूर कीने तू।¹⁴

‘ले चल वहाँ भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे’ प्रसादजी की यह कविता कोलाहलपूर्ण अवनी को छोड़कर उस पार चले जाने की आकांक्षा है। दूसरी ओर ‘जागो जीवन के प्रभात में चल रहा यह सुखद मलय वात जागो अब जीवन के प्रभात में’ कवि ने एक ओर पर्यावरण के प्रति निराशावादी विचार व्यक्त किए हैं तो दूसरी ओर आशावादी भावनाओं को भी वर्णित किया है।

प्रसाद के ‘पावस प्रभात’ में नीरदमाला सी घिरी श्रावण-राका-रजनी का स्मरण चित्र है। चपल मलयानिल का झाँकी-दर्शन है, बीच-बीच में पपीहे की ‘पी-कहाँ’ की ध्वनि सुना दी जाती है—

घूँघट खोल उषा ने झाँका और फिर
अरुण अपांगों से देखा, कुछ हँस पड़ी
लगी टहलने प्राची प्रांगण में तभी¹⁵

आज बड़ी-बड़ी इमारतों के निर्माण एवं निरंतर कटते जंगलों के कारण न तो मलयानिल है, न ही पपीहे की ‘पी-कहाँ’ की अवाज और न ही आँगन में उषा की धूप। न पेड़ों के झुरमुट हैं और न ही कलकल निनाद करते झरने, जिनसे आतंक फैलाती गरमी से कुछ राहत मिल सके—‘विस्तृत तरु-शाखाओं के बीच में, छोटी-सी सरिता थी। जल भी स्वच्छ था, ऐसे बिंब अब कहाँ।’

मानव-जीवन का विराट् सौंदर्य उसके सपनों में होता है। एक स्वप्न अनेक सुंदर स्वप्नों को जन्म देता है, किंतु आज पर्यावरण की जो भयावह स्थिति है, उससे मानव का स्वप्न तो क्या उसका अस्तित्व तक खतरे में आ गया है।

मानव बस्तियाँ, उद्योग, ऊर्जा-उत्पादन की प्रकृति आदि पर्यावरण-प्रदूषण के प्रमुख स्रोत हैं। पहले जब सब-कुछ ठीक था, तब प्रकृति के गीत गाए जाते थे। आज विपरीत परिस्थिति में भी पर्यावरण-चेतना के हित में प्रतिबद्ध साहित्यकार कान को घुमाकर पकड़ रहे हैं, किंतु बात वही कह रहे हैं। केवल पर्यावरण-चेतना पर ही दो सौ से अधिक गजल लिखने वाले डॉ॰ शरद मिश्र कहते हैं—

हरियाली चारों ओर थी पहले की सृष्टि में
सब कुछ हरा-भरा दिखा करता था दृष्टि में
जल-मृदा वन विनाश और ध्वनि का प्रदूषण
अंतर बहुत पड़ा है आज वृष्टि में।¹⁶

मानव निरंतर प्रकृति पर कठोर प्रहार करता आ रहा है और पर्यावरण की उपेक्षा कर रहा है। इनसे व्यथित होकर कवियों ने अपनी पीड़ा को व्यक्त किया है। श्री लक्ष्मीशंकर बाजपेयी

दुःखी होकर कहते हैं—

कोई बहुत गहरी पीड़ा
समाई है तुम्हारे हृदय में
तभी तो पास बैठकर महसूस होता है
कि धीर-गंभीर और शांत समझे जानेवाले समुद्र
कितनी बैचेनी, कितना हाहाकार है
तुम्हारी लहरों में।¹⁷

साहित्यकारों ने व्यंग्य के माध्यम से भी पर्यावरण के प्रति जागरूकता लाने का प्रयास किया है—

यह सूचना पाया चमन, हजार साल पर
नर्गिस नहीं खिलाएगी अब फूल बहार पर
जबसे किया तेंदुओं, चीतों, शेरों का सफ़ाया
तबसे नज़र टिकी हुई है गेंडों की खाल पर
पकड़े जाने पर ऐंठकर बोला था शिकारी
हमको भरोसा है अपने नेता की ढाल पर।¹⁸

मनुष्य पर बनावटीपन का आवरण चढ़ा हुआ है और वह विकास की दौड़ में प्रकृति से दूर जा रहा है। अपने अस्तित्व को खोते हुए मानव को देखकर डॉ० कुँवर बेचैन ने लिखा है—

क्रीमती क़ालीन जबसे मेरे घर में आ गया
बेहिचक घर आने-जाने की अदा जाती रही।
बाथरूमों की नई कल्चर में इतना बंद हूँ
खुलके बारिश में नहाने की अदा जाती रही।¹⁹

साहित्यकारों ने यदि चुटीले व्यंग्यों का प्रयोग किया है, तो पर्यावरण की रक्षा के लिए सीधे-सपाट लहजे में प्रार्थना भी की है। बिटिया को पालने में झुलाने के बजाए बाहों में झुलाकर लोरी गाने का निवेदन भी किया गया। आज पर्यावरण चेतना के संबंध में समुचित चिंतन का अभाव है। विकास की योजनाएँ तो बन रही हैं, किंतु उनकी गति अत्यधिक धीमी है। समय आ गया है कि हम संपूर्ण मानव-जाति को पर्यावरण के प्रति सचेत करें, अन्यथा पर्यावरण की उपेक्षा हमें प्राकृतिक सौंदर्य की अनुभूति से दूर कर देगी और हम ड्राइंग रूम में कैनवास पर बने प्राकृतिक चित्रों में खोखली अनुभूति ढूँढते नज़र आएँगे।

साहित्यकारों की पर्यावरण-चेतना हमेशा से जाग्रत रही है। हमें उनके दिशा-निर्देशक सिद्धांतों पर विश्वास कर दृढ़ता से विचार करना है। साहित्यकार सदैव एक स्वस्थ-सुखद भविष्य की कल्पना करते हैं—

बेला कहती रात, उजाले आएँगे
सच है मेरी बात उजाले आएँगे
सीख रही है उषा अँधेरों से लड़ना
रवि के लिए हठात उजाले आएँगे।²⁰

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पर्यावरण-चेतना के लिए प्रकृति को केवल

कल्पना और भावना के अनुसार नहीं, बल्कि बौद्धिक दृष्टिकोण से देखा जाना आवश्यक है। मानव-जीवन में प्रकृति का सहयोग अनिवार्य है। उसके बिना मनुष्य का जीवन आनंद एवं मंगलपूर्ण नहीं हो सकता है। 'वह उसे आनेवाली विपत्तियों के प्रति समयांतर संकेत दिया करती है। उसे उसकी ओर से सँभल जाने का अवसर दिया जाता है, किंतु मोहवश जब उसके संकेतों की उपेक्षा होती है, तब वह विद्रोह कर सृष्टि में प्रलय मचा डालती है।'²¹

संदर्भ

1. चित्राधार, जयशंकर प्रसाद, पृ० 128
2. वाल्मीकि रामायण, महर्षि वाल्मीकि, बालकांड, द्वि०सं०, पृ० 33
3. चित्राधार, जयशंकर प्रसाद, पृ० 128
4. मेघदूत, कालिदास, पृ० 120
5. सूरसागर, सूरदास, पृ० 55
6. सूरसागर, सूरदास, पृ० 102
7. कवितावली, तुलसीदास
8. बिहारी सतसई, बिहारीदास, पृ० 80
9. पंचवटी, मैथिलीशरण गुप्त, पद 01
10. गुंजन, सुमित्रानंदन पंत
11. वही
12. चित्राधार, जयशंकर प्रसाद, पृ० 102
13. वही, पृ० 103
14. प्रसाद की काव्य-प्रकृति, डॉ० कामेश्वरप्रसाद सिंह, पृ० 248
15. वही, पृ० 231
16. पर्यावरण के लिए, डॉ० शरद मिश्र, पृ० 05
17. समुद्र, लक्ष्मीशंकर बाजपेयी
18. काग के भाग बड़े सजनी, डॉ० कुँवर बेचैन, पृ० 35
19. आँधियों के पेड़, डॉ० कुँवर बेचैन, पृ० 35
20. सीस पगा न झगा तन पे, डॉ० कुँवर बेचैन, पृ० 15
21. प्रसाद की काव्य-प्रकृति, डॉ० कामेश्वरप्रसाद सिंह, पृ० 548

194 सुखदेव नगर, एरोडूम रोड
इंदौर (म०प्र०) 452001
मो० 09926477787

पंडित राधेश्याम कथावाचक के नाटकों का इतिवृत्त और पात्रों की प्रस्थिति

डॉ० अशोक उपाध्याय

अध्यक्ष, हिंदी विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली

पंडितजी के नाटक आध्यात्मिक निष्क्रियता की रूढ़िवादी परंपरा की शृंखलाओं से विमुक्त होकर स्वतंत्रता की ओर उन्मुख सामाजिक व्यवस्था के उल्लासमय जीवन का प्रतीक हैं। 'अतीत की घटनाओं के सामाजिक परिवेश में चाहे वे पौराणिक हों, ऐतिहासिक हों या अर्द्ध-ऐतिहासिक, दो पर्त होते हैं, जिनमें एक का संबंध कथानक के देशकाल और दूसरे का लेखक के देशकाल से होता है। लेखक की ऐतिहासिक चेतना जहाँ अत्यंत सचेत भाव से कथानक के देशकाल का सजीव और सटीक चित्रण करने का प्रयत्न करती है, वहाँ उसकी युग-चेतना प्रच्छन्न रूप से अतीत के ताने-बाने में वर्तमान के सूत्र बुनती रहती है। वास्तव में सर्जक कलाकार इसी अर्थ में इतिहास से भिन्न होता है कि वह अतीत का अनुसंधान तथा आलेखन मात्र न कर उसका पुनः सृजन करता है और इस पुनः सृजन की प्रक्रिया में कारणभूत होता है उसका अपना दृष्टिकोण।' गौरवमय अतीत की पौराणिक गाथाओं का संरक्षण तथा वर्तमान के धरातल पर भविष्य के नवनिर्माण के संकेत पंडितजी के नाटकों में व्यापक रूप से निहित हैं। जनता से सीधे संपर्क साधने में समर्थ इनका दृश्य रूप मानवीय संवेदना के ज्ञात स्रोतों के अवगाहन में पूर्णतया समर्थ प्रतीत होता है। जनसंरक्षण, जनजागृति तथा जनसंघर्ष का अखंड संकल्प इनका अभीष्ट है। वीर अभिमन्यु, श्रवणकुमार, परमभक्त प्रह्लाद, श्रीकृष्ण अवतार, ईश्वरभक्ति, उषा-अनिरुद्ध विवाह, द्रौपदी-स्वयंवर, महर्षि वाल्मीकि, शांति के दूत भगवान श्रीकृष्ण, भारतमाता और कृष्ण-सुदामा राधेश्यामजी के प्रसिद्ध नाटक हैं। इनके इतिवृत्त का संक्षिप्त रूप निम्नलिखित है—

वीर अभिमन्यु

इस नाटक के इतिवृत्त का केंद्र है—भीष्म पितामह की शरशैया के उपरांत व्याकुल कौरवपक्ष को प्रोत्साहित करने के लिए सेनापति द्रोणाचार्य के द्वारा कूटनीति से अर्जुन को संसप्तक त्रिगर्तराज के साथ युद्ध में भेजकर चक्रव्यूह को भेदकर रण-निर्मंत्रण देकर पांडवपक्ष के किसी वीर के वध का प्रण और अभिमन्यु द्वारा अपने पिता की अनुपस्थिति में चक्रव्यूह बेधने की प्रतिज्ञा। युधिष्ठिर इत्यादि पांडवों की आचार्य चुनौती को स्वीकार करने से उत्पन्न चिंता, अभिमन्यु का आश्वासन, उत्तरा के प्रति उसका अगाध प्रेम, सुभद्रा का अपने पुत्र को रण-प्रोत्साहन, युद्धभूमि में जयद्रथ इत्यादि कौरव महारथियों की पराजय तथा अंत में गले मिलने के छल से चारों तरफ़

से अभिमन्यु को घेरकर सप्त महारथियों द्वारा उसका वध, पांडवपक्ष का शोक, उत्तरा का स्वप्न और विलाप, अर्जुन का पुत्र-शोक, जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा, श्रीकृष्ण का सभी को आश्वासन, भगवान शंकर से पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति, सूर्य पर माया का बादल आच्छादित करके आचार्य द्रोण के द्वारा संरक्षित जयद्रथ के सामने आते ही बादल फटकर सूर्य के प्रकाशित होते ही अर्जुन द्वारा उसका काटा गया सिर पिता के हाथों में गिराकर उसका वध तथा परीक्षित का राज्याभिषेक भी इसके दृश्यों में समाहित हैं। इसमें पारसी रंगमंच की परंपरा के अनुरूप राजाबहादुर तथा सुंदरी का 'कॉमिक' भी है। राजाबहादुर दुर्योधन का चाटुकार खुशामदी सभासद है। उसका एक मित्र है खप्परसिंह और बुढ़ापे में ब्याहकर लाई गई पत्नी का नाम सुंदरी है। नकलनबीसी, भाँड़पन तथा बहुरूपियापन दिखाकर वह अपना काम चलाता है। सुंदरी पांडवों की पक्षधर है और श्रीकृष्ण का गुणगान करती है। अपने पति को सुधारने के लिए चोर-सिपाही का तमाशा दिखाती है। राजाबहादुर भी उससे बदला लेने के लिए अपने दूसरे मित्र करमचंद के साथ मिलकर साधु और मुर्दे का तमाशा दिखाकर दर्शकों का मनोरंजन करता है। बंगलौर के प्रो० जंबूनाथन जी ने इस कॉमिक को 'बहादुर सुंदरी' के नाम से अलग से प्रकाशित कराया था।²

इस नाटक के मुख्य नारी-पात्र हैं—सुभद्रा, उत्तरा, सुंदरी, योगमाया और चंपा। श्रीकृष्ण की बहिन सुभद्रा अर्जुन की पत्नी और अभिमन्यु की माता है। वात्सल्यमयी, साहसी और कर्तव्यनिष्ठ क्षत्रिय नारी के रूप में उनका दायित्वपूर्ण आचरण सभी के लिए अनुकरणीय है। उनकी प्रदत्त एवं अर्जित प्रस्थिति उच्चस्तरीय एवं प्रतिष्ठापूर्ण है। राजा विराट की सुपुत्री, अभिमन्यु की विरह-विदग्धा पत्नी एवं कर्तव्यपालक गर्भवती क्षत्रिय नारी के रूप में उत्तरा की प्रदत्त एवं अर्जित प्रस्थिति भी उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है। बूढ़े राजाबहादुर की पत्नी सुंदरी की प्रदत्त प्रस्थिति सामान्य स्तरीय प्रतीत होती है, किंतु राजाबहादुर की पत्नी के रूप में उसकी कर्तव्यनिष्ठता से परिपूर्ण अर्जित प्रस्थिति उच्चस्तरीय बन गई है। इसकी सहेली चंपा भी प्रदत्त एवं अर्जित प्रस्थिति की दृष्टि से पारिवारिक समकक्षता के कारण उच्चस्तरीय मानी जा सकती है। पांडवपक्ष के श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, अभिमन्यु तथा परीक्षित की प्रदत्त एवं अर्जित प्रस्थिति कर्तव्यनिष्ठता एवं धर्म की प्रतिष्ठा हेतु अधर्म के विनाश के दायित्व से परिपूर्ण होने के कारण उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण बन गई है। स्वामिभक्त दारुक की प्रदत्त प्रस्थिति सामान्य है। श्रीकृष्ण के सारथी के रूप में उसकी अर्जित प्रस्थिति सामान्य प्रतिष्ठापूर्ण है। सामान्य प्रदत्त प्रस्थिति से युक्त राजाबहादुर की अर्जित प्रस्थिति खुशामद करके राजाबहादुर का खिताब प्राप्त करने के कारण उच्चस्तरीय प्रतीत होती है। कौरवपक्ष के महारथी कर्ण, शल्य, दुर्योधन, शकुनी, जयद्रथ, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और दुःशासन की उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण प्रदत्त प्रस्थिति उस समय अर्जित प्रस्थिति के रूप में निम्नस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण हो जाती है, जब उनके द्वारा छल से अकेले और अस्त्र-शस्त्रविहीन अभिमन्यु का वध एक साथ मिलकर किया जाता है। युद्धभूमि में इस प्रकार का दुष्टकृत्य बहुत बड़ा सामाजिक दोष है।

श्रवणकुमार

इसके इतिवृत्त का मुख्य बिंदु है—अयोध्यानगरी में सरयू-तटवासी नेत्र-ज्योतिविहीन श्रेष्ठ दंपती शांत्वान ऋषि और ज्ञानवती के पुत्र माता-पिता की भक्ति के लिए प्रसिद्ध श्रवणकुमार के

द्वारा महर्षि वशिष्ठ के परामर्श से उन्हें पुनः नेत्रज्योति से परिपूर्ण बनाने के लिए प्रयाग, काशी, बदरिकाश्रम इत्यादि पवित्र तीर्थ-स्थानों की श्रद्धापूर्वक यात्रा कराना। वह अपने इस सेवाधर्म का निर्वाह उन्हें ठाकुर अर्थात् आराध्यदेव की मूर्ति के समान काठ की काँवर में बिठाकर करता है। श्रवणकुमार अपना सर्वस्व दान करके तीर्थ-यात्रा के लिए प्रस्थान करता है। उसकी पत्नी विद्या के भाई का नाम नंदकिशोर है। वह अपने दुष्ट स्वभाव के मित्र भानुशंकर एवं लक्ष्मीदेवी के पुत्र चंपकलाल के अनौचित्यपूर्ण परामर्श से अपनी बहिन को माँ की बीमारी का बहाना करके अपने घर बुलाकर ले जाता है। विद्या अपनी माता को स्वस्थ देखकर आश्चर्यचकित रह जाती है। उसके प्रभाव से नंदकिशोर और उसकी पत्नी बिजली का बुरा स्वभाव परिवर्तित हो जाता है। जंगल में श्रवणकुमार को खोजते समय विद्या के द्वारा अश्लील आचरण करने के लिए तत्पर चंपकलाल को कुष्ठ रोगी होने का शाप दिया जाता है। चंपकलाल को अपनी दुर्दशा पर पश्चात्ताप होता है। वह अपनी पत्नी चमेली के अत्याचारों से दुःखी माता-पिता भानुशंकर एवं लक्ष्मी से क्षमा माँगकर उनके संरक्षण में चला जाता है। चमेली महंत चेतनदास के चक्कर में फँसकर अपना सर्वस्व नष्ट कर लेती है और अंत में उसकी हत्या करके, स्वयं भी आत्महत्या कर लेती है। सत्पुरुष बेचरदास का पुत्र रामजीदास भी चेतनदास और चमेली की कुसंगति में फँसकर जीवन के सत्य को समझकर पिता का शरणागत हो जाता है। विद्या पति के वियोग में संतप्त होकर अग्नि-समाधि लेकर जीवन समाप्त करने के लिए तत्पर हो जाती है। अग्निदेव स्वयं प्रकट होकर उसे पति से मिलन का आशीर्वाद देते हैं। बद्रीनारायण के मंदिर में उसकी श्रवणकुमार से भेंट होती है। वहीं तीव्र शीत से बर्फ में गलने के कारण उसका प्राणांत हो जाता है। तीर्थयात्रा-समाप्ति के उपरांत श्रवणकुमार अपने माता-पिता के साथ अयोध्या में सरयूतट पर वापस लौटता है और उनको पिलाने के लिए सरयू से जल लेने जाता है। तभी राजा दशरथ अपने सेनापति सत्यकीर्ति के साथ वहाँ आकर पानी लेने के लिए तत्पर उस ऋषि-पुत्र का शब्दभेदी बाण द्वारा संहार कर देते हैं। ऋषि शांत्वन् और उनकी पत्नी ज्ञानवती उन्हें क्रमशः पुत्र-वियोग में मृत्यु तथा ठीक समय पर दाह संस्कार न होने का शाप देते हैं। अंत में महर्षि वशिष्ठ, भगवान शंकर एवं विष्णु के द्वारा उनके हृदय की पीड़ा की शांति हेतु सभी मृतकों के सशरीर स्वर्ग में दर्शन कराए जाते हैं। भगवान विष्णु श्रवणकुमार को 'श्रवण नक्षत्र'³ के नाम से विख्यात होने का वरदान देते हैं।

इस नाटक के नारी-पात्र हैं—ज्ञानवती, विद्या, लक्ष्मी, चमेली, बिजली, नंदू की माँ, रसिका, मालती, ललिता और स्त्री-वेश में यमुना। इनमें यमुना की प्रदत्त एवं अर्जित प्रस्थिति त्रय-ताप विनाशिनी के रूप में उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है। शेष सभी स्त्रियों के घर-परिवार तथा राजा दशरथ की राजधानी अयोध्या की समृद्धि के आधार पर यह प्रतीत होता है कि इनकी प्रदत्त प्रस्थिति उच्चस्तरीय है। ज्ञानवती वात्सल्यमयी माता एवं तपस्विनी पतिव्रता नारी के रूप में अर्जित प्रस्थिति उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण बन गई है। अपने पुत्रों के अपराध क्षमा करके उन्हें गले लगाने वाली नंदू की माँ एवं लक्ष्मी की अर्जित प्रस्थिति सामान्यपूर्ण है। विद्या के उपदेश के प्रभाव से कुमार्ग से सन्मार्ग पर आकर भूल सुधारने के कारण बिजली भी सामान्य प्रतिष्ठापूर्ण प्रस्थिति से युक्त प्रतीत होती है। उसकी सहेली रसिका, मालती और ललिता की अर्जित प्रस्थिति सामान्य है। चंपक की पत्नी और दुराचारी महंत की प्रेमिका चमेली का आचरण सर्वथा निंदनीय है, इसीलिए उसकी अर्जित प्रस्थिति निम्नस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है। पुरुष-पात्रों में सबसे दुराचारपूर्ण कृत्य

महंत चेतनदास ने किए हैं। चमेली और उसके अवैध संबंध सभी प्रकार से निंदनीय हैं। महंत होने के कारण उसकी प्रदत्त प्रस्थिति उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है, परंतु उसकी हास-परिहासमयी दुराचारपूर्ण अर्जित प्रस्थिति निम्नस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण होती है। राजा दशरथ, सेनापति सत्यकीर्ति, महर्षि विशिष्ट, श्रवणकुमार तथा उसके पिता शांतवन की प्रदत्त एवं अर्जित प्रस्थिति उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है। चंपकलाल, नंदकिशोर और रामजीदास बिगड़कर सुधरने वाले वर्ग के प्रतिनिधि हैं। इनकी प्रदत्त प्रस्थिति उच्चस्तरीय तथा अर्जित प्रस्थिति उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण बन गई है। वृद्ध गृहस्थ भानुशंकर की प्रदत्त एवं अर्जित प्रस्थिति उच्चस्तरीय है।

परिवर्तन

इस नाटक के इतिवृत्त का आधार है—पंडित श्यामलाल का परिवार और इनका दुराचारी मित्र बिहारीलाल। श्यामलाल की सदाचारपूर्ण मनोवृत्ति की पत्नी का नाम है लक्ष्मी तथा पुत्री का नाम है विद्या। बिहारीलाल के पुत्र का नाम है ज्ञानचंद। उसने अपने भोग-विलासपूर्ण जीवन में व्यवधान की आशंका से इसे छात्रावास में रहने के लिए भेजकर पत्नी की मृत्यु हो जाने के उपरांत चंदा नामक वेश्या से अवैध संबंध स्थापित कर लिए हैं। अत्यंत स्वामिभक्त सज्जन व्यक्ति शंभू दादा श्यामलाल का नौकर है और बिलायत से पढ़कर आया रमजानी बिहारी का नौकर है। बिहारी समृद्ध व्यक्तियों को चंदा के रूप-जाल में फँसाकर धन ऐंठने की कला में भी कुशल बन चुका है। वह धन-संपत्ति हड़पने के लिए श्यामलाल को अपने घर सत्यनारायण की कथा में आमंत्रित करके चंदा के सम्मोहन में उलझाने का सफल प्रयत्न करता है। श्यामलाल उस पर मोहित हो जाता है। रमजानी द्वारा उसका आमंत्रण पाकर वह उसकी आसक्ति के वशीभूत उसी का होकर रह जाता है। इस प्रकार आदर्श पति, पिता एवं सज्जन पुरुष श्यामलाल वेश्यागामी, मदिरासेवी महाव्यसनी के रूप में परिवर्तित होकर अपनी समस्त संपत्ति चंदा के नाम कर देता है। स्वामिभक्त शंभूदादा के परामर्श से उसकी पत्नी लक्ष्मी वियोगी नामक पुरुष के वेश में चंदा को आकर्षित करके अपने प्रेम के प्रभाव में संलिप्त कर लेती है। बिहारी चंदा की कुमंत्रणा से श्यामलाल को विष देकर मार देने की योजना बनाता है। रमजानी को डॉ० के० डब्ल्यू० भट्टाचार्य के चिकित्सालय में भेजा जाता है। चंदा के दुर्भावनापूर्ण स्वभाव से परिचित होने के कारण डॉक्टर उसकी रिपोर्ट गुप्तचर विभाग में कर देता है। गुप्तचर विभाग का एक अधिकारी उसके आवास में रसोइया बनकर प्रविष्ट हो जाता है। वियोगी द्वारा रोकने का यथासंभव प्रयत्न करने पर भी चंदा अपने जन्मदिन पर श्यामलाल को विष मिलाकर रखा गया मदिरा का प्याला पीने के लिए प्रोत्साहित करती है। जैसे ही वह इसे पीने के लिए तत्पर होता है, वैसे ही रसोइया वेशधारी गुप्तचर अधिकारी सीटी बजाकर अन्य पुलिसकर्मियों की सहायता से अवरुद्ध करके न्यायालय में दंडित होने के लिए प्रस्तुत करता है। इस दुष्टतापूर्ण आचरण के कारण चंदा बहुत दुःखी होती है। बिहारी का दयालु स्वभाव का पुत्र ज्ञानचंद वकील वियोगी की सहायता से उसको धोखा देकर संपत्ति हस्तगत करके हत्या करने के प्रयास के अभियोग से उन्मोचित कराता है। इस घटना का प्रभाव श्यामलाल पर भी पड़ता है। वह वैराग्य धारण करके उत्तराखंड का आश्रय लेता है। ज्ञानचंद और विद्या का विवाह हो जाता है। लक्ष्मी के समझाने-बुझाने से विरक्त श्यामलाल भी इस विवाह में सपत्नीक कन्यादान करता है। चंदा लक्ष्मी की छोटी बहिन सरस्वती है। श्यामलाल के धन से कन्या-विद्यालय खोला

जाता है। इस विद्यालय का लक्ष्य है—‘पुत्रियों को सावित्री, दमयंती, गार्गी और गांधारी बनाने का उपाय करना।’⁴

इस नाटक में श्यामलाल, लक्ष्मी, विद्या और ज्ञानचंद की प्रदत्त प्रस्थिति उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है। श्यामलाल का चंदा के साथ भोग-विलास तथा वस्तुस्थिति का ज्ञान होने पर वैराग्य धारण करना, पत्नी के साथ विद्या का कन्यादान एवं कन्या पाठशाला के लिए संपत्ति दान करना उसकी अर्जित प्रस्थिति को सामान्य प्रतिष्ठापूर्ण बना देते हैं। लक्ष्मी, विद्या और ज्ञानचंद की अर्जित प्रस्थिति श्रेष्ठ कर्तव्यपालन के कारण उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है। नौकर शंभूदादा की प्रदत्त प्रस्थिति सामान्य है और स्वामिभक्त सेवक के रूप में मालिक एवं उनके परिवारजनों को बचाने के सफल प्रयासों के फलस्वरूप उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण बन गई है। हास-परिहासपूर्ण व्यक्तित्व से युक्त रमजानी की प्रदत्त प्रस्थिति बिलायत में पढ़कर आने के कारण उच्चस्तरीय सेवक के रूप में परिलक्षित होती है किंतु चंदा देकर डॉक्टर के यहाँ विष लाने के कार्य से उसकी अर्जित प्रस्थिति निम्नस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण प्रतीत होती है। चंदा लक्ष्मी की बचपन में अलग हुई बहिन सरस्वती है। इस दृष्टि से उसकी प्रदत्त प्रस्थिति उच्चस्तरीय बन गई है, किंतु वेश्या के रूप में श्यामलाल को विष देने तथा संपत्ति हड़पने के घृणित प्रयास तथा प्रायश्चित्त के कारण उसकी अर्जित प्रस्थिति सामान्य प्रतिष्ठापूर्ण बन गई है। पत्नीविहीन बिहारी की प्रदत्त प्रस्थिति उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है, लेकिन धनलोलुप और वेश्यागामी, दुराचारी पुरुष के रूप में उसकी अर्जित प्रस्थिति निम्नस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण ही है।

परमभक्त प्रह्लाद

इस नाटक में भागवती कुम्हारी के आवे में भगवान की कृपा से बिल्ली के खिल्लू और मिल्लू नामक बच्चों के जलने से बचने के कारण दैत्यराज हिरण्यकशिपु के सुपुत्र राजकुमार प्रह्लाद के परमभगवद् भक्त बनने की कथा है। खुशामदी दरबारी वैश्य लोभीलाल का बेटा प्रमोद भी उसका अनुगामी घनिष्ठ मित्र है। दैत्यराज ने ब्रह्मा के अद्भुत वरदान का लाभ उठाकर स्वयं को जाग्रत जगत का चमत्कार जगदीश घोषित कर दिया है। उसके घोर अत्याचारों से पीड़ित जनता उसका विरोध करती है। राजपंडित संडामर्क पांडेय, लोभीलाल तथा सेनापति ब्रजदंत से मंत्रणा करके वह इस जनविद्रोह को दबाने का प्रयास करते हुए बालक राजकुमार प्रह्लाद को पाठशाला में पढ़ने भेज देता है। यहाँ भी प्रह्लाद का हृदय पविर्तन नहीं होता। वह अपने पिता को किसी प्रकार भगवान मानने के लिए तैयार नहीं होता है और निरंतर भगवद्-भजन में तल्लीन रहने लगता है। इसके कारण क्रोधित दैत्यराज को उसकी पत्नी श्यामलता शांत करने का प्रयास करती है। फिर भी वह नहीं मानता और प्रह्लाद को बंदीगृह में डालकर सर्प विष तथा ऊँचे पर्वत की चोटी से गिराकर मरवाने का प्रयत्न करता है। भगवान विष्णु एवं शंकर की कृपा से उसकी प्राण-रक्षा होती रहती है। दैत्यराज की बहिन दुंडा भी उसे जलाने का प्रयास करते स्वयं अग्नि में जलकर भस्म हो जाती है। अंततः वह जैसे ही तलवार से प्रहार करके उसे मारना चाहता है, वैसे ही भगवान विष्णु नरसिंह रूप में लौहस्तंभ के भीतर से प्रकट होकर अपने नाखूनों से उसका वध करके प्रह्लाद को राजमुकुट प्रदान करते हैं। हास्य एवं उपहास-जनित प्रवृत्ति से परिपूर्ण लोभीलाल स्वयं संडामर्क पांडेय भी अपनी पत्नियों के प्रभाव से सुधर जाते हैं।

कुम्हारी भागवती इस नाटक का प्राण है। उसकी प्रदत्त प्रस्थिति सामान्य है। भगवान की

भक्त होने के कारण उसकी अर्जित प्रस्थिति राजकुमार प्रह्लाद के परमभक्त प्रह्लाद बनाने के संदर्भ में उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण बन गई है। उसने ठीक ही कहा है कि 'यह ऊँचे महल अपने-अपने स्थान से हिल जाएँगे, यह आकाश के तारे अगणित सूर्य बनकर अन्यायियों की सेवा को भस्म करने के लिए क्षणमात्र में धरातल पर उतर आएँगे। उस समय मेरे जगदीश यदि सच्चे जगदीश हैं तो चतुर्भुजी मूर्ति में आएँगे और अपने भक्तों को बचाएँगे।'⁵ भक्तिरस में निमग्न प्रह्लाद की माता श्यामलता की प्रदत्त तथा अर्जित प्रस्थिति उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है। उनकी पतिपरायणता एवं पुत्र के प्रति वात्सल्यभाव सभा के लिए सम्माननीय है। हिरण्यकशिपु की बहिन दुंडा उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण प्रदत्त प्रस्थिति से परिपूर्ण है। प्रह्लाद के प्रति उसका द्वेषपूर्ण आचरण तथा अग्नि में जलाने का प्रयास करते हुए स्वयं जल जाने से उसकी अर्जित प्रस्थिति निम्नस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण बन गई है। ऐसी नारी देश और समाज के लिए अभिशाप है। पांडेयजी की पत्नी शीला तथा लोभीलाल की पत्नी चंचल उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण प्रदत्त एवं अर्जित प्रस्थिति से परिपूर्ण होकर यथासंभव अपना दायित्व पालन करती हैं। दैत्यराज हिरण्यकशिपु जन्म से प्रदत्त उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण प्रस्थिति का अधिकारी है। भगवान विष्णु से विरोध, निरीह प्रजा पर अत्याचार तथा प्रह्लाद की हत्या के दोषों के कारण उसकी अर्जित प्रस्थिति निम्नस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है। परम भक्त प्रह्लाद और प्रमोद प्रदत्त तथा अर्जित प्रस्थिति की दृष्टि से उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण हैं। इनका आचरण सभी के लिए अनुकरणीय है। प्रह्लाद की आस्तिकता तथा प्रमोद की प्रगतिशील विचारधारा प्रशंसनीय है। दैत्यराज के सेवक वक्रमूर्ति की प्रदत्त प्रस्थिति सामान्य स्तरीय है, लेकिन क्रूर स्वामी के क्रूर कर्मों में सहायक होने के कारण उसकी अर्जित प्रस्थिति निम्नस्तरीय हो गई है।

श्रीकृष्ण अवतार

इस नाटक के इतिवृत्त का आधार है—श्रीकृष्ण का जन्म और कंस-वध। कंस के अत्याचारों से पीड़ित देवता और ऋषि-मुनि भगवान विष्णु से क्षीरसागर में जाकर इस महाकष्ट से त्राण पाने के लिए प्रार्थना करते हैं। विष्णु उन्हें आश्वस्त करते हुए बताते हैं कि कंस जब अपनी छोटी बहिन का विवाह वसुदेव के साथ करके वर-वधू के रूप में उन दोनों को विदा करने स्वयं जाएगा, तभी आकाशवाणी से उसे चेतावनी दी जाएगी कि देवकी का आठवाँ पुत्र उसका वध करके जगत का उद्धार करेगा। इस प्रकार वसुदेव और देवकी के पुत्र के रूप में उनका सोलह कलाओं का अपनी समस्त शक्तियों के साथ अवतार होगा। कंस आकाशवाणी को सुनकर क्रोधित हो जाता है। वह वसुदेव और देवकी को इस शर्त के साथ कारागार में डाल देता है कि वे दोनों अपनी सभी संतानें जन्म लेते ही उसे भेंट कर देंगे। महाराज उग्रसेन के द्वारा जब उसके इस कृत्य का विरोध किया जाता है, तब वह उन्हें भी उन दोनों के साथ कारागार में बंद करके स्वयं को मथुरा का महाराज घोषित कर देता है। वसुदेव अपनी आठवीं संतान भगवान विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण को बचाने के लिए भाद्रपद कृष्णपक्ष अष्टमी की अर्द्धरात्रि में जन्म लेते ही यमुनापार नंद-यशोदा के यहाँ पालन-पोषण हेतु छोड़कर उनकी कन्या लेकर उसी क्षण वापस आ जाते हैं। कंस जब उस कन्या को पत्थर पर पटककर मारता है, तब महामाया रूपी वह कन्या आकाश में जाकर उसे सूचित करती है उसका काल गोकुल में पैदा हो चुका है। पूतना, शकटासुर, तृणावर्त इत्यादि राक्षसों का वध करने के उपरांत श्रीकृष्ण बाँसुरी बजाकर, गोपियों को रिझाते हुए माता यशोदा तथा नंद बाबा को अपार वात्सल्य-सुख प्रदान करते हैं। रोहिणीनंदन बलराम, मनसुखा तथा

श्रीदामा के साथ मिलकर माखन-चोरी की लीला करते हुए कंदुक-क्रीड़ा के माध्यम से कालीदह में कालिया नाग का मर्दन करते हैं। प्रियतमा राधा तथा उनकी सखी विशाखा और ललिता के साथ रासलीला का आयोजन उनके द्वारा किया जाता है। गोवर्द्धन पर्वत की पूजा के द्वारा देवराज इंद्र का अभिमान चूर्ण करना तथा ब्रह्माजी के भ्रम को दूर करने के लिए ब्रह्मलोक में छिपाए गए ग्वाल-बाल एवं गाय-बछड़ों को यथावत् ब्रजमंडल में प्रस्तुत करना इत्यादि महान कार्यों से आर्तकित होकर कंस उन्हें अक्रूर के माध्यम से मथुरा में बुलाता है। यहाँ उनके द्वारा कुवलयापीड हाथी, चाणूर इत्यादि को परास्त करके कंस का वध करके अपने माता-पिता देवकी एवं वसुदेव को मुक्त कराने के उपरांत महाराज उग्रसेन को नारद के माध्यम से राजमुकुट पहनाकर पुनः मथुरा का राजा बनाया जाता है।

इस नाटक में महाप्रभु भगवान श्रीकृष्ण, रोहिणीनंदन बलराम, देवकी के पति वसुदेव तथा गोकुल मुखिया नंद की प्रदत्त प्रस्थिति उनके जन्म एवं पारिवारिक प्रतिष्ठा के कारण उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है। यही उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण प्रस्थिति मथुरा के वृद्ध शासक महाराज उग्रसेन की है। इनकी अर्जित प्रस्थिति भी विभिन्न सद्गुणों तथा अन्याय और अत्याचार का विरोध करने के कारण उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है। कंस की प्रदत्त प्रस्थिति मथुरा के युवराज के रूप में उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है, लेकिन उसके द्वारा किए गए स्वार्थ, अन्याय, अत्याचार और स्वेच्छाचार⁶ के कारण छतियाँ तोड़कर, गले फाड़कर, सर उठाकर, त्राहि-त्राहि कर रहे⁷ जनसमाज ने उसकी अर्जित प्रस्थिति को निम्नस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण बना दिया है। नारद, बह्मा तथा देवराज इंद्र का संबंध देवलोक से है। भगवान विष्णु लोकरक्षक तथा धर्मसंस्थापक आराध्यदेव हैं। श्रीकृष्ण इन्हीं की सोलह कलाओं के अवतार हैं। अतः इन सभी की प्रदत्त एवं अर्जित प्रस्थिति उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है। हरिभक्त तथा कंस के संबंधी अक्रूर की प्रदत्त प्रस्थिति हरिभक्त के रूप में उपलब्ध होने के कारण उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण बन गई है। श्रीकृष्ण के सखा मनसुख और श्रीदामा ब्रजमंडल के उच्चस्तरीय परिवारों से संबंधित हैं। अतएव इनकी प्रदत्त प्रस्थिति उच्चस्तरीय है। श्रीकृष्ण के संसर्ग से इनके महत्त्व में भी श्रीवृद्धि हुई है; जिससे इनकी अर्जित प्रस्थिति भी उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण प्रतीत होती है। मल्लविद्या में कुशल चाणूर एवं मुष्टिक की प्रदत्त प्रस्थिति सामान्य प्रतिष्ठापूर्ण है। कंस के दरबार में रहकर उनके द्वारा किए गए निष्कृष्टतापूर्ण कार्यों ने उनकी अर्जित प्रस्थिति को निम्नस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण बना दिया है। वृषभानुकुमारी राधा, देवकी, नंद की पत्नी यशोदा तथा महामाया की प्रदत्त एवं अर्जित प्रस्थिति उनकी लोकव्यापी ख्याति के अनुरूप उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है। ब्रजमंडल के सम्मानित परिवारों की सुपुत्री ललिता और विशाखा राधा की सखियाँ हैं; इसलिए इनकी प्रदत्त प्रस्थिति उच्चस्तरीय है। श्रीकृष्ण की रासलीला में विशेष सहचरी होने के कारण इनकी अर्जित प्रस्थिति का उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण होना स्वाभाविक प्रतीत होता है।

ईश्वरभक्ति

अंधेरे में भी भक्ति की किरणें पहुँचाकर सोते हुए मनुष्य समाज को जगाने⁸ के लिए लिखे गए इस नाटक में अयोध्या के राजा नाभाग और रानी सुकेशी के पुत्र अंबरीश और उसके सौतेले छोटे भाई मणिकान्त की कथा है। नाभाग चतुर आस्तिक और स्थिर विचारसंपन्न राजकुमार को अयोध्या का राजा बनाना चाहते हैं, लेकिन इन दोनों राजकुमारों में अंबरीश को तो एकमात्र

अपने आराध्य की सेवा तथा भक्ति की चिंता है। मणिकांत नास्तिक है। उसके विचारों में अस्थिरता और स्वार्थप्रियता है। उसकी माता सुकेशी उसे राजा बनाने के लिए प्रयत्नशील है। यह तभी संभव है जब अंबरीष के पक्ष में राय देनेवाली जनता उसके पक्ष में अपनी राय परिवर्तित कर ले। कथावाचक जी द्वारा 'हास्य कौतुक' लिए प्रयुक्त सेठ लक्ष्मीदास उसका मित्र है, जो कि तीर्थयात्रा से लौटने के उपरांत धार्मिक बाह्याचारों से विशुद्ध होकर घंटाकर्ण नाम धारण करके नास्तिक बन जाता है। मणिकांत उसे पाँच लाख रुपए का लालच देकर अपने पक्ष में जनता की राय कराने के तत्पर करता है। वह जनता में उसका प्रचार करते हुए महिला सभा में नकली श्रीमती सौभाग्यवती श्री आर्य महिला जी बनकर उनका सभापतित्व करके अपना पक्ष प्रस्तुत करता है। घंटाकर्ण का यह तरीका उसकी पत्नी लीला को उचित प्रतीत नहीं होता। वह घरेलू नौकर टैनी की सहायता से इसका पर्दाफाश कर देती है। मृत्युकाल में अपने पुत्र भगवान के नाम को पुकारने के कारण भगवान विष्णु के पार्षद उसे बैकुण्ठलोक ले जाते हैं। सुदर्शनचक्र, अंबरीष और उनकी पत्नी पद्मा के प्रभाव से मणिकांत का हृदय-परिवर्तन हो जाता है। वह अपनी पत्नी उमा के साथ संन्यासी बनकर तपस्या करने का निर्णय लेता है। भूदेव शास्त्री राजतिलक का मुहूर्त निकालते हैं। सुकेशी आत्महत्या करती है। अंबरीष की प्रार्थना से प्रसन्न होकर भगवान विष्णु सुकेशी को जीवनदान देते हैं। दुर्वासा ऋषि द्वादशी का पारण करते समय क्रुद्ध होकर अंबरीष को नष्ट करने के लिए कृत्या को प्रकट करते हैं। सुदर्शनचक्र प्रकट होकर कृत्या का विनाश करते हुए दुर्वासा के पीछे पड़ जाता है। ब्रह्मलोक, शिवलोक और विष्णुलोक में अपनी रक्षा के लिए विनती करते हुए वह अंत में अंबरीष की शरण में जाकर सुदर्शनचक्र के कोप से मुक्त होते हैं।

देवाधिदेव भगवान विष्णु, भगवान शंकर, भगवान ब्रह्मा, देवरूप में भगवान विष्णु का चक्रसुदर्शन, देवरूप में विष्णु का वाहन भूदेवशास्त्री, अंबरीष, मणिकांत, नाभाग, घंटाकर्ण, लक्ष्मीदास, दुर्वासा, देवराज इंद्र, प्रसिद्ध देवता वरुण, वायु, अग्नि, धर्म और सत्य की प्रदत्त प्रस्थिति उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है। धन के लालची महाजन घंटाकर्ण की अर्जित प्रस्थिति निम्नस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है। शेष सभी की अर्जित प्रस्थिति गुण एवं कर्म के अनुसार उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण ही प्रतीत होती है। कोठारी की प्रदत्त प्रस्थिति सामान्य स्तरीय तथा अर्जित प्रस्थिति अकाल पीड़ित प्रजाजनों की सहायता न करने के कारण निम्नस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण बन गई है। घंटाकर्ण के सेवक टैनी और दुर्वासा के शिष्य रुद्रदत्त सामान्य स्तरीय प्रदत्त तथा अर्जित प्रस्थिति से युक्त हैं। प्रजाजन कल्लूमल, लल्लूमल, डल्लूमल और मल्लूमल की प्रदत्त एवं अर्जित प्रस्थिति सामान्य स्तरीय है। यह उस वर्ग के प्रतीक हैं जो कर्ज में जीवन आरंभ करने के उपरांत कर्ज में ही प्राण त्याग देते हैं। लक्ष्मी, पद्मा, उमा, सुकेशी, लीला और भक्ति की प्रदत्त प्रस्थिति उच्चस्तरीय प्रभावपूर्ण है। सुकेशी पुत्रमोह में अनुचित का विवेक भूलकर मणिकांत को राजा बनाने के कार्य में असफल होने से हताश होकर आत्महत्या कर लेती है। इस कारण से उसकी अर्जित प्रस्थिति निम्नस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण हो गई है। शेष सभी की अर्जित प्रस्थिति भी उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है। अकालपीड़ित स्त्री और पुरुष निम्नस्तरीय प्रदत्त एवं अर्जित प्रस्थिति से परिपूर्ण हैं।

ऊषा-अनिरुद्ध

शिवभक्त वाणासुर की पुत्री ऊषा के साथ परम वैष्णव भगवान श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के विवाह की पौराणिक गाथा को नाटक के रूप में पंडितजी ने 'ऊषा-अनिरुद्ध' के नाम से

प्रस्तुत किया है। भगवान शिव और माता पार्वती के आशीर्वाद से वाणासुर को पुत्री की प्राप्ति होती है। उसका नाम ऊषा रखा जाता है। अनिरुद्ध भगवान श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का पुत्र है। एक रात्रि को स्वप्न में ऊषा को अनिरुद्ध के दर्शन होते हैं। वह उसके रूप पर मुग्ध होकर प्रेमातुर होने के कारण विरह-व्यथित हो जाती है। उसकी सखी चित्रलेखा पुरुष रूप में भगवान श्रीकृष्ण के मुख्य आयुध सुदर्शनचक्र को धोखा देकर पलंग-सहित आकाश-मार्ग से अनिरुद्ध को ऊषा के महल में ले जाती है। ऊषा और अनिरुद्ध कुछ समय तक प्रेमालाप में निमग्न रहते हैं। महल की ध्वजा गिरते ही वाणासुर को इस विषय में सूचना मिल जाती है और वह अपने सैनिकों के साथ जाकर अनिरुद्ध को बंदी बना लेता है। बलराम, श्रीकृष्ण, सुदर्शनचक्र तथा गरुड़ के साथ वाणासुर नगर में जाकर अनिरुद्ध की वाणासुर के प्रहार से रक्षा करते हैं। सुदर्शन चक्र और शिव के त्रिशूल के साकार स्वरूप का युद्ध होता है। श्रीकृष्ण वाणासुर को शिव एवं विष्णु की एकरूपता का रहस्य समझाते हैं। दोनों पक्षों में समझौता हो जाता है और ऊषा तथा अनिरुद्ध का विवाह हो जाता है। वाणासुर और विष्णुभक्तों के प्रभाव से जनता के दो वर्ग बन गए हैं। शैवमत राजधर्म होने के कारण जन-प्रतिष्ठा और कट्टर मतवाद से जुड़ गया है। वैष्णव दल की मूर्खता का स्वरूप महंत माधोदास के 'हास्य कौतुक' से प्रकट हुआ है। कृष्णदास सभी को संगठित होकर एक साथ रहने के लिए 'शिवस्य हृदये विष्णुः विष्णोस्तु हृदये शिवः' का दृष्टान्त सुनाकर समझाता है।

भगवान शंकर, भगवान श्रीकृष्ण, इनके नाना महाराज उग्रसेन, बड़े भाई बलराम, प्रद्युम्न के पुत्र-पौत्र अनिरुद्ध, पुरुष रूप में सुदर्शनचक्र, महाराज उग्रसेन के प्रतिष्ठित सभापति उद्धव, शिवभक्त प्रतापी राजा वाणासुर तथा पुरोहित की प्रदत्त एवं अर्जित प्रस्थिति उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है। गरुड़ और सुबुद्धि सामान्य स्तरीय प्रदत्त प्रस्थिति का परिणाम हैं। श्रीकृष्ण के वाहन के रूप में और अनिरुद्ध को नागपाश से मुक्ति प्रदान करने के कारण उसकी अर्जित प्रस्थिति उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण बन गई है। सुबुद्धि भोले, सीधे और विश्वासपात्र द्वारपाल के रूप में अपनी अर्जित प्रस्थिति को अनिरुद्ध के महल का रक्षण करके सामान्य स्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण बनाने में सफल रहता है। महंत माधोदास, गोमतीदास, सरयूदास और कौशिकीदास की प्रदत्त एवं अर्जित प्रस्थिति निम्नस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है। वृद्ध विष्णुभक्त विष्णुदास की सामान्य स्तरीय प्रदत्त प्रस्थिति भगवान विष्णु की भक्ति के लिए उसके द्वारा किए गए आत्म-बलिदान के कारण अर्जित प्रस्थिति के रूप में उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण प्रतीत होती है। उसके पुत्र कृष्णदास की प्रदत्त प्रस्थिति भी सामान्य स्तरीय है, लेकिन शैव-वैष्णव संगठन की एकता स्थापित करके उसने अपनी अर्जित प्रस्थिति को उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण बना लिया है। धूम्राक्ष, पिंगाक्ष, बज्रमूर्ति और बक्रशक्ति वाणासुर के सैनिक हैं। इनकी प्रदत्त और अर्जित प्रस्थिति सामान्य स्तरीय ही मानी जाएगी। भगवान शिव की पत्नी पार्वती, श्रीकृष्ण की पटरानी रुक्मिणी, अनिरुद्ध की माता रुक्मावती, वाणासुर की पुत्री ऊषा, उसकी सहेली चित्रलेखा, चंचला, शारदा, सरस्वती, माधुरी, प्रभा, प्रतिभा और मनोरमा की प्रदत्त एवं अर्जित प्रस्थिति भी विषयवस्तु की दृष्टि से उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है।

द्रौपदी स्वयंवर

इस नाटक के इतिवृत्त का प्रारंभ स्यमंतकमणि से होता है, जिसे यादव तपस्वी सबाजित के द्वारा सूर्य देवता की तपस्या करके प्राप्त किया गया था। दरिद्रता की विनाशक आठ भार स्वर्ण प्रतिदिन प्रदान करने वाली इस मणि को पहनने के कारण उसका रूप सूर्य के समान तेजस्वी

और दीप्तिमान हो जाता था। इस मणि को उसके भाई प्रसेनजित ने छीन लिया और श्रीकृष्ण के आते ही वहाँ से भाग गया। उसने श्रीकृष्ण पर यह झूठा आरोप लगाया कि उनके द्वारा यह मणि छिनवाई गई है। श्रीकृष्ण इस मणि को लाने की प्रतिज्ञा करके प्रसेनजित की खोज में जाते हैं। उसे एक सिंह मार डालता है। त्रेता युग में भगवान राम का एक सेनानायक जांबुवंत इस युग में भी जीवित है। वह उस सिंह को मारकर मणि छीन लेता है और श्रीकृष्ण का अपने आराध्य के रूप में परिचय प्राप्त करके अपनी पुत्री जांबुवती के साथ उनका विवाह करके मणि उनको सौंप देता है। सत्राजित भी इस मणि को अपनी पुत्री सत्यभामा के साथ उनका पाणिग्रहण करके उन्हें सौंप देता है। हस्तिनापुर की रंगभूमि में कौरव और पांडवों के अस्त्र-शस्त्र संचालन की परीक्षा होती है। नकुल और दुःशासन के बीच मल्लयुद्ध होता है। सहदेव तथा विकर्ण तलवार-युद्ध का प्रदर्शन करते हैं। भीम और दुर्योधन का गदा-युद्ध शत्रुता की स्थिति में पहुँचता दिखाई देता है। अर्जुन की वाण-संचालन कला से सभी प्रसन्न होते हैं और उसे परीक्षण में सर्वोपरि स्थान प्रदान करते हैं। दुर्योधन तथा शकुनि पुरोचन द्वारा वारणावत में बनाए गए लाक्षागृह में पांडवों को माता कुंती सहित जलाने का प्रयास करते हैं, किंतु योगमाया और विदुर के प्रयासों से उनकी प्राण-रक्षा होती है। भीम चक्रानगरी में एक ब्राह्मण के क्लेश का निवारण करने के लिए बकासुर नामक राक्षस का वध करते हैं। अर्जुन गंधर्वराज अंगारपर्ण को परास्त करके दूर की वस्तुओं को सुगमता से दृष्टिगोचर कराने वाली चाक्षुषी विद्या प्राप्त करते हैं। पांचाल नरेश द्रुपद द्वारा आयोजित स्वयंवर में चंदेरी नरेश शिशुपाल, मगधराज जरासंध, युवराज दुर्योधन, कर्ण, शकुनि, धृष्टद्युम्न इत्यादि की उपस्थिति में भगवान श्रीकृष्ण की सहमति से ब्राह्मण वेशधारी अर्जुन मत्स्य-बेध करके द्रौपदी का वरण करते हैं। विदुर और कुंती इस कार्य से बहुत प्रसन्न होते हैं। महाराज धृतराष्ट्र भी यथावसर निर्णय लेते हुए युधिष्ठिर को खांडवप्रस्थ का स्वामी बना देते हैं। श्रीकृष्ण मुर नामक दैत्य तथा उसके सात पुत्रों का विनाश करके भौमासुर का वध कर देते हैं और वहाँ पर कारागार से मुक्त की गई सोलह हजार एक सौ कन्याओं को द्वारिका भेजकर उसके पुत्र भगदत्त को राजा बना देते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण, नारद, सूर्य, बलराम, जांबुवान, अक्रूर, इंद्र, भीष्म, धृतराष्ट्र, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, द्रुपद, धृष्टद्युम्न, दुर्योधन, दुःशासन, विकर्ण, महात्मा विदुर, धौम्य, व्यास और अंगारपर्ण की प्रदत्त एवं अर्जित प्रस्थिति उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है। सत्राजित और प्रसेनजित निम्नस्तरीय प्रदत्त प्रस्थिति के पात्र हैं। कर्ण सूत-पुत्र के रूप में सामान्य स्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण प्रदत्त प्रस्थिति से परिपूर्ण है। पुरोचन, भौमासुर, मुर और बक की प्रदत्त प्रस्थिति निम्नस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है। यही इनकी अर्जित प्रस्थिति का स्वरूप है। प्रसेनजित की अर्जित प्रस्थिति भी निम्नस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है। कर्ण की अर्जित प्रस्थिति उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है। शकुनि की अर्जित प्रस्थिति उसके बुरे आचरण के अनुरूप निम्नस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण प्रतीत होती है। सत्राजित की पुत्री सत्यभामा की प्रदत्त प्रस्थिति उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण बन गई है। राधा, जांबुवती, द्रौपदी, गांधारी, कुंती, भूमि और अंगारपर्ण की पत्नी कुंभीनसी की प्रदत्त एवं अर्जित प्रस्थिति उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है।

महर्षि वाल्मीकि

यह नाटक मध्यवर्गीय कृषक क्षेत्रपाल के रत्नाकर डाकू से महर्षि वाल्मीकि के रूप में प्रतिष्ठित होने की कथावस्तु पर आधारित है। सदैव परिश्रम और ईमानदारी से खेती में संलग्न

क्षेत्रपाल छद्मवेशी राक्षस जागीरदार क्रूरसेन के चंगुल में फँसकर उसका कर्जदार हो जाता है। उसके इस कुकृत्य में कालकूट नामक चाटुकार भी सम्मिलित है, जोकि उसके सचिव की हैसियत से धन वसूलने के साथ-साथ उसकी वासनाओं की पूर्ति के लिए विभिन्न साधन जुटाता रहता है। धन, दौलत, माल, खज़ाना सब अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए हैं, बेटे-पोतों के वास्ते जोड़-जोड़कर रखने के लिए नहीं। जब जोवन है, जवानी है, हाथ गर्म है, तो क्यों न संसार में जन्म लेकर स्वर्ग का सुख भोगा जाए? स्वर्ग में क्या है? सुरा है, अप्सराएँ, पुष्प हैं, रत्न हैं, जब यही सब वस्तुएँ यहाँ भी सहज ही प्राप्त हो सकती हैं—और जीते-जी ही प्राप्त हो सकती हैं, तो फिर मरकर स्वर्ग जाने की कल्पना वृथा है। बस यहीं स्वर्ग है, यहीं इंद्रलोक है।⁹ वह क्षेत्रपाल की पुत्री शांता को अपनी कामवासना का साधन बनाना चाहता है। उसका पुत्र वीरभद्र इसका विरोध करता है और शांता को संरक्षण देकर अपनी पत्नी बना लेता है। अत्याचारों से पीड़ित क्षेत्रपाल जंगल में जाकर रत्नाकर डाकू के रूप में स्थापित हो जाता है। क्रूरसिंह की पुत्री किशोरी के विवाह-मंडप में रत्नाकर और क्रूरसिंह आमने-सामने होते हैं। डाकू विवाह-मंडप को उजाड़ देते हैं। क्रूरसिंह और कालकूट को रत्नाकर, वीरभद्र, अजित एवं किशोरी की अनुनय-विनय के उपरांत छोड़ दिया जाता है। कालकूट रत्नाकर के साथ किशोरी और अजित को लेकर जंगल में आ जाता है। यहाँ किशोरी का विवाह अजित के साथ हो जाता है। कालकूट अपने मालिक की पहली पत्नी के पुत्र धर्मपाल को वीरभद्र के रूप में पहचानकर अपना हृदय परिवर्तन करके क्रूरसिंह की सेवा त्याग देता है। नारद की कृपा से रत्नाकर की प्रतिशोधमयी मनोदशा परिवर्तित हो जाती है। उनके द्वारा उसे यह भी ज्ञात होता है कि वह महर्षि च्वयन और सुकन्या की संतान हैं। एक भील ने उसे उनके यहाँ से चुरा लिया था। नारद उसे 'रामनाम' का बीजमंत्र रटने का परामर्श देते हैं। इसे वह 'मरा-मरा' के रूप में रटता रहता है। नारद की कृपा से मिट्टी के ढेर वाल्मीकि में छिपे हुए रत्नाकर को निराकार राम के साक्षात् दर्शन होते हैं। नारद मेघ-मल्हार गाकर भक्ताराज के शरीर को स्वच्छ करते हैं और भगवान अपने भक्त को हृदय से लिपटा लेते हैं। क्रूरसिंह अपनी अपराधपूर्ण प्रवृत्ति के कारण अयोध्यानरेश कल्माषपाद से दंड प्राप्त करता है। महर्षि वाल्मीकि नदी के किनारे व्याकुल क्रौंच को देखकर निषाद को शाप देते हैं; जोकि कविता के साकार रूप में अवतरित प्रथम छंद के रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। त्रेता युग में भगवान राम का अवतार होता है। रावण की मृत्यु के उपरांत अयोध्यानरेश के रूप में उनकी प्रतिष्ठा होती है। उनके द्वारा गर्भवती सीता का त्याग किया जाता है। महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में सीता को शरण मिलती है। लव और कुश का जन्म होता है। अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर उनकी भेंट राम से होती है। राजदरबार में वह उन दोनों बालकों के साथ उपस्थित होते हैं और भगवान राम की गौरवगाथा 'रामायण' महर्षि वशिष्ठ इत्यादि के समक्ष उन्हें समर्पित करते हैं।

इस नाटक सामान्य स्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण प्रदत्त प्रस्थिति के पात्र हैं—क्षेत्रपाल, कालकूट वीरभद्र, अजित, रूपकुमार, गोमती और शांता। क्षेत्रपाल डाकू रत्नाकर के रूप में अर्जित प्रस्थिति की दृष्टि से निम्नस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण हो जाता है, लेकिन महर्षि वाल्मीकि के रूप में उसकी अर्जित प्रस्थिति गर्भवती सीता के शरणदाता एवं रामायण के रचयिता के रूप में निश्चित रूप से उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण बन जाती है। गोमती और शांता की अर्जित प्रस्थिति भी सामान्य स्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है। यही प्रस्थिति वीरभद्र, अजित और रूपकुमार की है। कालकूट का दुराचरण उसे

निम्नस्तरीय बना देता है, लेकिन हृदय-परिवर्तन द्वारा सन्मार्ग का आश्रय लेने के कारण वह पुनः सामान्य स्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण प्रस्थिति उपार्जित कर लेता है। भगवान राम, लव, कुश, वशिष्ठ, नारद, कल्माषपाद, सरस्वती और क्रूरसिंह की पुत्री किशोरी की प्रदत्त तथा अर्जित प्रस्थिति उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है। जागीरदार के रूप में क्रूरसिंह की प्रदत्त प्रस्थिति उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है; परंतु उसके कुकर्मों ने उसे निम्नस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण अर्जित प्रस्थिति से परिपूर्ण बना दिया है।

शांति के दूत : भगवान श्रीकृष्ण

भगवान श्रीकृष्ण युधिष्ठिर की सभा में समस्त पांडवजनों तथा अन्य शुभचिंतकों के समक्ष यह प्रस्ताव रखते हैं कि वे दुर्योधन को युद्ध से विरत करके संधि करने के लिए हस्तिनापुर जाएँ और इस संभावित महायुद्ध को रोकने का प्रयत्न करें। कई सुझाव आते हैं और यह तय होता है कि द्रौपदी की लज्जाहरण का प्रतिशोध आवश्यक है; फिर भी दुर्योधन यदि सुधर जाए और राज्य बाँटने पर सहमत हो जाए तो सबसे उत्तम रहेगा। भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, सात्यकि और द्रौपदी आदि इससे सहमत नहीं होते हुए भी श्रीकृष्ण के अंतिम प्रयत्न को मान लेते हैं। परशुराम, नारद और कण्व भी आते हैं। इनका मत है कि अत्याचारों के निराकरण के लिए अत्याचारी का विनाश भी अपरिहार्य हो गया है। कृष्ण हस्तिनापुर में विदुर की पत्नी पद्मावती के हाथ से केले के छिलके अत्यंत प्रेम के साथ खाकर महाराज धृतराष्ट्र की राजसभा में पहुँचकर संधि-प्रस्ताव प्रस्तुत करते हैं। शकुनि के प्रलोभनों के प्रति विरक्ति प्रदर्शित करते हुए श्रीकृष्ण उन्हें युद्ध की विभीषिका से परिचित कराते हैं। दुर्योधन का यह कथन कि 'पाँच गाँव क्या सुई की नोंक के बराबर भी ज़मीन नहीं दूँगा।'¹⁰ पांडवों के जन्म तथा वनवास इत्यादि पर भी प्रश्न किए जाते हैं। श्रीकृष्ण सभी प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर देते हैं, लेकिन दुर्योधन के आगे किसी की नहीं चलती है। वह श्रीकृष्ण को कुरुक्षेत्र में ललकारते हुए युद्ध करने की चेतावनी देकर वापस जाने के लिए विवश कर देता है।

यहाँ पर भगवान श्रीकृष्ण, नारद, परशुराम, कण्व, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, भीष्म, कृतवर्मा, सात्यकि, धृतराष्ट्र, विदुर, दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि, द्रौपदी और पद्मावती की प्रदत्त एवं अर्जित प्रस्थिति उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है। कर्ण, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य की प्रदत्त प्रस्थिति पूर्ववृत्त के आधार पर सामान्य स्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण प्रतीत होती है, परंतु इनकी अर्जित प्रस्थिति उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण ही है।

कृष्ण-सुदामा

भगवान श्रीकृष्ण और उनके दरिद्र मित्र सुदामा की प्रगाढ़ मित्रता का वर्णन इस नाटक में हुआ है। सुदामा श्रीकृष्ण के सहपाठी हैं। श्रीकृष्ण द्वारिकाधीश हैं और वह दरिद्र ब्राह्मण। उनके पास न अच्छा घर है, न अच्छी तरह खाने को है और न ही पहनने के लिए अच्छे वस्त्र हैं। उनकी पत्नी सुशीला उन्हें श्रीकृष्ण के पास सहायता-प्राप्ति हेतु जाने के लिए प्रेरित करती है। सुदामा किसी प्रकार थोड़े से चावल काँख में बाँधकर अपने मित्र से मिलने द्वारिका जाते हैं। वहाँ श्रीकृष्ण और उनकी पत्नी सत्यभामा एवं रुक्मिणी उनका खूब आदर-सत्कार करते हैं। भाभी की भेंट के नाम पर गाँठ में बँधे चावल निकालकर जब वह दो मुट्ठी खा लेते हैं, तब रुक्मिणी उनका हाथ पकड़ लेती हैं। वास्तविकता यह है कि दो मुट्ठी चावल खाकर भगवान ने द्विजराज को दो लोकों

की संपत्ति दे दी थी। श्रीकृष्ण तीनों लोकों की संपत्ति उन्हें देना चाहते हैं। रुक्मिणी किसी प्रकार उन्हें समझाकर रोकती हैं। वापस घर लौटकर सुदामा आश्चर्यचकित रह जाते हैं। दो लोक संपत्ति उनके घर-परिवार की मानसिकता परिवर्तित कर देती है, फिर भी वह इस संपत्ति को लोककल्याण के लिए प्रयुक्त करने के उद्देश्य से अपने महल में मोहन मंदिर की स्थापना का संकल्प लेते हैं।

यहाँ भगवान श्रीकृष्ण और रुक्मिणी की प्रदत्त एवं अर्जित प्रस्थिति उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है। सत्यभामा की प्रदत्त प्रस्थिति निम्नस्तरीय रही है, परंतु श्रीकृष्ण की पटरानी के रूप में उनकी अर्जित प्रस्थिति उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण है। सुदामा तथा उनकी पत्नी सुशीला की प्रदत्त प्रस्थिति निम्नस्तरीय है। इनकी अर्जित प्रस्थिति भगवान श्रीकृष्ण की कृपा से उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण बन गई है।

भारत माता

मुकुट, गदा, शंख इत्यादि से सुसज्जित भारत माता का सुंदर स्वरूप सभी को प्रिय लगता है। धर्म, कर्म एवं व्यापार के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान के विविध रूपों से सुशोभित इसकी भूमि तथा चारों दिशाएँ सभी को प्रसन्नता प्रदान करने वाली हैं। परिश्रम, सत्य व्यवहार, वैज्ञानिक विचार, नियमित रूप से प्रत्येक संस्कार, नए-नए आविष्कार तथा विदेशों में उनका प्रचार इसी स्वर्गादपि गरीयसी महिमा का प्रसार है। समय के प्रभाव से इसका यह शृंगार छिन्न-भिन्न हो जाता है और वृष्टिशा की देवी धर्मदेव की पुकार सुनकर सात समुद्र पार से इसके पुनर्जागरण के लिए रिपन, ह्यूम, कॉटन, बेडरवर्न, केयर हार्डी, हार्नीमैन, पोलक, मार्ले, माटेग्यू, बीसेंट, एंड्रयूज आदि के साथ आती है। राजा राममोहनराय, स्वामी दयानंद सरस्वती, सर सैयद अहमद खान, महाशय ईश्वरचंद्र विद्यासागर, भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र, दादाभाई नौरोजी, जस्टिस महादेव, गोविंद रानाडे, गोपालकृष्ण गोखले, फीरोजशाह मेहता, बालमुकुंद गुप्त, पी०सी० राय, जे०सी० बोस, भंडारकर आदि उसे जाग्रत करने का प्रयत्न करते हैं। इंडियन नेशनल काँग्रेस के उमेशचंद्र बनर्जी, मालवीयजी, सुरेंद्रनाथ बनर्जी, मुहम्मद रहीमतुल्ला सयानी, श्रीशंकरन नायर, श्री लालमोहन घोष इत्यादि ने भी इस दिशा में सार्थक प्रयास किए, किंतु सफलता नहीं मिली। मालवीयजी, मोतीलाल नेहरू, श्री विजय राघवाचार्य, मौलाना अबुलकलाम आज़ाद, मौलाना मुहम्मद अली, श्रीमती सरोजिनी नायडू के साथ-साथ महात्मा गांधी ने सत्याग्रह तथा भारत छोड़ो आंदोलन प्रारंभ जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, सीमांत प्रांत के गांधी अब्दुल गफ्फार खान तथा अन्य काँग्रेसी महारथी गिरफ्तार हुए और अंततः 15 अगस्त 1947 ई० को देश को आज़ादी मिली। सभी दिशाओं में गांधीजी का जयघोष हुआ। भारतमाता फिर से पूर्ण जाग्रत और सुसज्जित रूप में दिखाई देने लगीं। फिर भी मालवीयजी जैसे विचारशील नेताओं के मन में यह चिंता रही कि 'भारत की वर्तमान परिस्थितियों में रामराज्य का आदर्श क्या होगा? कहीं लोग इसका अर्थ कट्टर हिंदूधर्म का शासन न समझ बैठें।'¹¹ जहाँ तक सामाजिक प्रस्थिति का प्रश्न है—इस नाटक के सभी मुख्य पात्र उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापूर्ण प्रदत्त एवं अर्जित प्रस्थिति से परिपूर्ण हैं।

सामाजिक प्रस्थिति के साथ एक और महत्वपूर्ण शब्द जुड़ा है—प्रतिमूर्ति। इसका आकलन व्यक्ति के उन कार्यों से होता है, जो प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से परिवार तथा सामाजिक जीवन को प्रभावित करते हैं। इन सबके माध्यम से निर्धारित अभिमत ही प्रतिमूर्ति है। इसके दो

मुख्य रूप हैं—एक स्थिर और दूसरा परिवर्तनशील। पंडित राधेश्यामजी के नाटकों का उद्देश्य अस्त का विनाश करके सत् के कल्याणकारी रूप की प्रतिष्ठा करना है। उन पर स्वामी दयानंद सरस्वती और महात्मा गांधी की सुधारवादी विचारधारा का व्यापक प्रभाव था, जोकि उनके नाटकों में पात्रों के माध्यम से व्यापक रूप में प्रदर्शित हुआ है। ‘वीर अभिमन्यु’ नाटक के राजा बहादुर की प्रतिमूर्ति में अंत में धर्मराज युधिष्ठिर के पक्ष में जाने की घोषणा से परिवर्तित हुई है। शेष सभी पात्रों प्रतिमूर्ति स्थिर है। ‘श्रवणकुमार’ में दुराचारी चंपकलाल के आचरण में सुधार होने के कारण उसकी प्रतिमूर्ति परिवर्तनशील बन गई है। ‘परिवर्तन’ में बिगड़कर बनती हुई परिवर्तनशील प्रतिमूर्ति के महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं—श्यामलाल और चंदा। एक बिगड़े हुए धनाढ्य व्यक्ति के रूप में सुधरकर भला आदमी बन जाता है, तो दूसरी वेश्या से त्यागशील नारी का रूप धारण कर लेती है। शंभूदादा स्वामिभक्त सेवक के रूप में स्थिर प्रतिमूर्ति के श्रेष्ठ पात्र हैं। ‘परमभक्त प्रह्लाद’ में प्रह्लाद और प्रमोद की प्रतिमूर्ति परिवर्तनशील है। वे दोनों कुम्हारी की भक्ति के प्रभाव से राजभक्त से विष्णुभक्त परम वैष्णव तथा लोकसेवक के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। हिरण्यकशिपु और श्यामलाल कभी न बदलने वाले स्वभावयुक्त स्थिर प्रतिमूर्ति के पात्र हैं। अंबरीष की प्रतिमूर्ति स्थिर है। दुर्वासा, मणिकांत, सुकेशी और घंटाकरण महाजन के आचरण में सुधार होने के कारण इनकी प्रतिमूर्ति भी परिवर्तनशील है। ‘श्रीकृष्ण अवतार’ में इंद्र और ब्रह्मा की मनोवृत्ति में होने के कारण उनकी प्रतिमूर्ति भी परिवर्तनशील है। ‘ऊषा-अनिरुद्ध’ में वाणासुर की प्रतिमूर्ति परिवर्तनशील है, क्योंकि वह कट्टर शैव होते हुए भी वैष्णव अनिरुद्ध से अपनी पुत्री का विवाह करके शिव एवं विष्णु की समन्वित भक्ति का पोषक बन जाता है। ‘महर्षि वाल्मीकि’ में परिवर्तनशील प्रतिमूर्ति का श्रेष्ठ उदाहरण है—क्षेत्रपाल, जोकि पहले सामान्य कृषक, फिर रत्नाकर डाकू और अंत में महर्षि वाल्मीकि के रूप में लोकप्रतिष्ठा अर्जित कर लेता है। धार्मिक रुचि से परिपूर्ण होने पर पंडित राधेश्याम जी के अधिकांश पात्र स्थिर प्रतिमूर्ति से युक्त हैं, लेकिन समय तथा समाज की आवश्यकता को परखते हुए उन्होंने परिवर्तनशील प्रतिमूर्ति पात्रों पर भी यथेष्ट दृष्टिपात किया है। ज्ञातव्य है कि ‘शांति के दूत भगवान श्रीकृष्ण’ और ‘कृष्ण-सुदामा’ एक अंक के नाटक हैं। ‘भारतमाता’ दो अंक का नाटक है तथा शेष सभी नाटकों की विषयवस्तु तीन अंकों में विभाजित है। उन्होंने अपने नाटकों का सामाजिक यथार्थ निम्न पंक्तियों में इस प्रकार स्पष्ट किया है—

अवस्था आज है, आर्य्य बल हमको बढ़ाना है
अनार्यों के प्रबल दल को, इसी बल से घटाना है
अलौकिक कुछ नहीं इसमें, जो है लौकिक ही लौकिक है
कि सामाजिक के पर्दे में, ये लीला राजनैतिक है।¹²

संदर्भ

1. डॉ० नगेंद्र, साहित्य का समाजशास्त्र, पृ० 131, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र० संस्करण, 1982
2. पं० राधेश्याम कथावाचक, मेरा नाटककाल, पृ० 69
3. पं० राधेश्याम कथावाचक, श्रवणकुमार, पृ० 96, श्री राधेश्याम पुस्तकालय, बरेली, 16 वीं बार, 1990
4. पं० राधेश्याम कथावाचक, परिवर्तन, पृ० 149, श्री राधेश्याम पुस्तकालय, बरेली, प्रथम बार, 1925
5. पं० राधेश्याम कथावाचक, परमभक्त प्रह्लाद, पृ० 12, श्री राधेश्याम पुस्तकालय, बरेली, 16 वीं बार, 1990 ई०

6. पं० राधेश्याम कथावाचक, श्रीकृष्ण अवतार, पृ० 12, श्री राधेश्याम पुस्तकालय, बरेली, नवीं बार, 1976 ई०
7. वही, पृ० 12
8. पं० राधेश्याम कथावाचक, ऊषा अनिरुद्ध, पृ० 98 से उद्धृत, श्री राधेश्याम पुस्तकालय, बरेली, सोलहवीं बार, 1990 ई०
9. पं० राधेश्याम कथावाचक, महर्षि वाल्मीकि, पृ० 14, श्री राधेश्याम पुस्तकालय, बरेली, सोलहवीं बार, 1990 ई०
10. पं० राधेश्याम कथावाचक, शांति के दूत—भगवान श्रीकृष्ण, पृ० 44, श्री राधेश्याम पुस्तकालय, बरेली, तृतीय बार, 1968 ई०
11. पं० राधेश्याम कथावाचक, भारतमाता, पृ० 78, श्री राधेश्याम पुस्तकालय, बरेली, सातवीं बार, 1960 ई०
12. पं० राधेश्याम कथावाचक, द्रौपदी स्वयंवर, पृ० 44 श्री राधेश्याम पुस्तकालय, बरेली, सोलहवीं बार, 1990 ई०

6/7 खन्ना भवन,
सुभाष नगर, बरेली
मो० 09927373723

ऋतु-संबंधी हरियाणवी लोकगीतों में हास्य-व्यंग्य

डॉ० बलजीत सिंह

सहायक प्रवक्ता (हिंदी विभाग)

आर०के०एस०डी० कॉलेज, कैथल (हरियाणा)

लोकगीत लोकसाहित्य की एक सशक्त पद्यात्मक विधा है। महादेवी वर्मा के कथनानुसार, 'सुख-दुःख की आवेशमयी, अवस्था का विशेषकर गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है।'¹ समस्त जनमानस में चेतन-अचेतन रूप में, जो भावनाएँ गीतमय होकर अभिव्यक्त होती हैं, उन्हें लोकगीत कहते हैं। गीतों की सृष्टि के संबंध श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने कहा है—'कहाँ से आते हैं इतने गीत? स्मरण-विस्मरण की आँख-मिचौनी से, कुछ अट्टहास से, कुछ उदास हृदय से। कहाँ से आते हैं इतने गीत? जीवन के खेत में उगते हैं ये गीत। कल्पना भी काम करती है, रसकृति और भावना भी, नृत्य का हिलोरा भी, पर ये सब खाद हैं। जीवन के सुख-दुःख ये हैं लोकगीत के बीज।'²

पाश्चात्य विद्वान ग्रीम के अनुसार—'लोकगीत स्वतः जन्म होता है।'³ वी० विलियम्स के मत में—'लोकगीत न तो नया होता है और न पुराना। वह तो जंगल के वृक्ष के समान है, जिसकी जड़ें भूतकाल की ज़मीन में गहरी धँसी हुई हैं, परंतु जिनमें निरंतर नई-नई डालियाँ, पल्लव और फल उगते रहते हैं।'⁴ रामनरेश त्रिपाठी का मतव्य है कि ग्रामगीत (लोकगीत) प्रकृति के उदगार हैं। इनमें अलंकार नहीं केवल रस है, छंद नहीं केवल लय है, लालित्य नहीं केवल माधुर्य है। ग्रामीण मनुष्य के, स्त्री-पुरुषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गान ग्रामगीत हैं।'⁵

लोकगीत लोककंठ की मौखिक परंपरा की धरोहर हैं। इसलिए इन्हें लोकमानस की विविध चितवृत्तियों का कोश कहा जाता है। लोकगीत साधारण जनमानस की अंतरतम संवेदनाओं की लयात्मक अभिव्यक्ति हैं। लोकगीतों का निर्माण विभिन्न अवसरों पर हुआ है। ये लोकमानस की निश्छल अभिव्यक्ति और लोकप्रतिभा से ओत-प्रोत हैं। लोकगीत भावाकुल हृदय की सहज, सरल, अनायास अभिव्यक्ति हैं। ये समूची संस्कृति के पहरेदार हैं।

जीवन का कोई भाव, पहलू और कार्य ऐसा नहीं है, जिसका चित्रण लोकगीतों में नहीं है। अतः इनके वर्गीकरण का कार्य कुछ कठिन हो जाता है। डॉ० चिंतामणि ने इसका मूल कारण माना है, 'लोकगीतों का वर्ण्यविषय इतना अधिक व्यापक है कि उनका वर्गीकरण करना कठिन हो जाता है।'

हरियाणवी लोकगीतों का विभाजन ऋतु, त्योहार, जाति और प्रवृत्ति के आधार पर किया जा सकता है।

ऋतु गीत

ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमंत, शिशिर और बसंत समय-समय पर अपनी छटा बिखेरती हैं। ऋतु प्रकृति का श्रृंगार है। प्रकृति की यह लीला लोकजीवन को पूर्णयता प्रभावित करती है, जैसे तो सभी ऋतुओं के गीत गाए जाते हैं, परंतु विशेष महत्त्व वर्षा (सावन) और बसंत (फाल्गुन) और कार्तिक में गाए जानेवाले गीतों का होता है। जीवन का कोई भाव पहलू और कार्य ऐसा नहीं है जिसका चित्रण लोकगीतों में न होता हो। लोकगीतों के भीतर आपार हर्ष व आह्लाद की मनोहर झाँकी देखने को मिलती है। गाँव में वर्ष-भर के उत्सव विभिन्न संस्कारों, ऋतुओं तथा जातियों के लोकगीतों की संयोजना के साथ ही मनाए जाते हैं, किंतु विशेष उत्सव व अवसर तो ऐसे होते हैं जिन पर हास्य-व्यंग्य का एकाधिकार होता है।

इन लोकगीतों के रचयिता अज्ञात हैं। ये लोकगीत सामाजिक, पारिवारिक एवं सांस्कृतिक पक्षों को उजागर करने वाले महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं। इनमें समाज के अन्य वर्गों के साथ-साथ नारी समाज की वेदना प्रमुख रूप से प्रस्फुटित हुई है। यौवन की उमरों के साथ जीवन की सादगी, मस्ती, प्रेम और शिक्षाप्रद बातें आदि इनके प्रमुख गुण हैं। लोकगीतों में जहाँ वादविवाद, मनोविनोद, हँसी-खुशी के छोटें तथा अन्याय भावना के प्रति तीव्र व्यंग्य किया गया है, वहाँ एक नाटकीय अभिव्यंजना भी दिखाई देती है।

सावन के गीतों में हास्य-व्यंग्य

अन्य मासों की अपेक्षा सावन मास का विशेष महत्त्व है। इस महीने में वर्षा की झड़ी लग जाती है। नदी-तालाब सब जल से भर जाते हैं और इसी मास में तीज का त्योहार बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। तीज के विषय में एक उक्ति प्रचलित है, 'आई तीज बो गई बीज' अर्थात् तीज से सभी त्योहार प्रारंभ हो जाते हैं। इस त्योहार पर हरियाणा में 'कोथली' और 'संधोर' का प्रचलन है। सुसराल में लड़की 'तीज' से पहले अपनी कोथली (मिठाई और वस्त्र आदि) का बड़ी बेसब्री से इंतजार करके व्याकुल हो जाती है। इस गीत में उसकी व्याकुलता का बड़ा मार्मिक चित्रण है—

नीमा के निंबौली लागी सामणिया कद आबैगा।

मरियों री वो बसंता नाई कोथली कद ल्यावैगा।⁶

प्रस्तुत गीत में लड़की इंतजार में इतनी व्याकुल हो जाती है कि गुस्से और खीज के कारण नाई के भी मरने की आकांक्षा करती है।

आश्विन (आसुज) मास के गीतों में हास्य-व्यंग्य

हरियाणा के लोकगीतों का सामाजिक पक्ष अत्यंत वैशिष्ट्यपूर्ण है। इस मास के श्राद्ध गीतों में ब्राह्मण समुदाय के पाखंडों पर तीक्ष्ण व्यंग्य किया गया है—

आए कनागत फूले बाँस
बाम्मण कूदै नौ-नौ हाथ
गए कनागत टूटी आस
बाम्मन रोवै चूलहै पास
गए कनागत सूखी डांडी
बाम्मण मारै सिर में हांडी।⁷

कार्तिक (कातक) मास के गीतों में हास्य-व्यंग्य

सावन जहाँ मस्त महीना है, वहाँ कार्तिक शांत और धर्मपरायणता का द्योतक है। इस महीने में प्रातःकालीन स्नान का बड़ा महत्त्व है। हरियाणा में नदी और तालाब आदि पर मुँह-अँधेरे महिलाएँ कार्तिक स्नान के लिए जाती हैं। इस समय देवी-देवताओं के धार्मिक गीतों की गुंजार वातावरण को सुमधुर बना देती है। यथा—

राम और लक्ष्मण दशरथ के बेटे दोनों बण मैं जा हेरी मन्न राम मिले भगवान
छोटा सा लड़का गरु चरावै पाणी प्यावै श्री राम हे जी, कोए राम मिले भगवान
फट गई धरती समा गई सीता खड़े लखावै श्रीराम

कार्तिक की पूर्णिमा को गंगास्नान का विशेष महत्त्व माना जाता है, लेकिन हरियाणावासी ऐसे गंभीर अवसरों पर भी परिहास का स्थान ढूँढ लेते हैं। एक पत्नी अपने पति से गंगा जाने की अनुमति माँगती है, तो पति कहता है कि भैंस हाथल है। वह दूध नहीं देगी। पत्नी इस बाधा से निपटने की विधि बताती है। प्रस्तुत गीत में नाटकीय बानगी देखते ही बनती है—

मन्नै तै पिया गंगा नुहा दे जा रैया सै संसार-हाँ ओ जा रैया सै संसार।
तन्नै तै गोरी क्यूकर नुहा द्यूँ हाथल पड़ री भैंस हारै हाथल पड़री भैंस
एक जतन पिया मैं बतला द्यूँ—

खूँटी पै मेरा दाम्मण लटके चूँदड़ी छाप्पेदार, हाँ जी चूँदड़ी छाप्पेदार
डिब्बे मै मेरी नाथ धरी सै पहर काढिए धार, हाजी पहर काढिए धार
बाहर तै एक मोडिया आया बेबे भिच्छा गाल-होए बिच्छा गाल
बेबे तो तेरी नाहण गई सै जीजा काढै धार, हारै जीजा काढै धार
खुंटा पड़वागी जेवड़ा तुड़वागी भैंस भाजगी बाहर-भैंस भाजगी बाहर
डंडा लेके पाच्छै हो लिया लेण गया था भैंस, लेण गया था भैंस
गाती खुलगी पल्ला उड़ गया मुंछ लिकड़गी बाहर-रै मुंछ लिकड़गी बाहर
गलियाँ मै चर्चा होरैया देखो मुच्छड़ नार, रै देखो मुच्छड़ नार
कोट्टै चढ़के रूक्का मारैया कोए मत भेजो न्हाण, हाँ जी कोए मत भेजो न्हाण।⁸

उपर्युक्त गीत को हम परिहास का एक अच्छा उदाहरण कह सकते हैं। केशवदास के अनुसार—‘जिस हास्य में पति-पत्नी का प्रेम परिजनों तथा पड़ोसियों के भी हास्य का कारण बन जाए। जिसका वर्णन बुद्धि बल भी नहीं कर सकता, जिस हास्य की सीमा न हो, वह परिहास है।’⁹

फाल्गुन (फागण) मास के गीतों में हास्य-व्यंग्य

फाल्गुन मास बड़ा ही मस्त होता है, अर्थात् शीत गया बसंत आया। इस महीने में होली फाग का त्योहार बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। फागण को मस्ताना फागण के नाम से विभूषित किया जाता है जिसमें मादकता रसिकता और कामोदीपक का वातावरण होता है, दूसरे होली का रंगीला-रसीला त्योहार बस हर्ष, आह्लाद एवं ठिठोली की सीमा नहीं रहती।¹⁰

इस महीने में नवयौवनाओं की तो बात ही क्या, फागण का जादू वृद्धाओं तक को रसीली चटको-मटको बना देता है। इस लोकगीत में सच कहा है—

काची अंबली गदराई सामण मै

बुड्डी री लुगाई मस्ताई फागण में।

होली का यह त्योहार सामाजिक व्यंग्य-विनोद का भी जीवंत अखाड़ा है। व्यंग्य तथा हास्य लगभग हर गीत में समाया हुआ है, क्योंकि फाग के गीतों की मूल प्रकृति ही हास्य की माया का सृजन करती है। हास्य-व्यंग्य में उपालंभ में भी प्रगाढ़ प्रेम का ही एक रूपांतरण होता है। इस बहाने खरी-खरी सुनाकर मन का मैल निकाल लिया जाता है। जिस प्रकार गोपियों ने उलाहने दे-देकर उद्धव की ज्ञान-गरिमा को भुलवा दिया था। ठीक उसी प्रकार एक पारिवारिक उपालंभ-संबंधी गीत फागुन में घर में पति की अनुपस्थिति, प्रियतम का बिछोह उन्हें बिच्छू की तरह डंक मारता है। पिया बिन सूनी सेज सूली-सी लगती है। जब मस्ताने फागुन की मधुर चाँदनी रात, प्रियतमा के हृदय में गुदगुदी पैदा करने लगती है, तब वह फागुन को लजमारा (बेशर्म) कहकर अपने सौभाग्य के साथ किए गए व्यंग्य को उपालंभ का रूप देकर अपने पति से क्या कहती है—

ज्यब साजन ही परदेस गए, मस्ताना फागण क्यूँ आया
ज्यब सारा फागण बीत गया, तै घर मै साजन क्यूँ आया
छम-छम नाचै सब नर-नारी मै बैठी दुखा की मारी
मेरे मन मैं ज्यब अंधेर मच्चा तै चाँद का चाँदन क्यूँ आया
मन की तो अरथी बँधी पड़ी आख्याँ मै लागी हाय झड़ी
ज्यब फूल मेरे मन का सूख्या, लजमारा फागण क्यूँ आया।¹¹

इस लोकगीत में परस्य व्यंग्य किया गया है। इस प्रकार के व्यंग्य से दूसरे व्यक्तियों को निशाना बनाया जाता है। इसमें कोई घुमाव-फिराव नहीं होता, अपितु जिस व्यक्ति की आलोचना है, उस पर सीधा आक्रमण किया जाता है। जैसे प्रस्तुत लोकगीत में एक नायिका अपने पति पर और फिर 'फागन मास' पर सीधा प्रहार करती है—

माँ ढकनी री लेके मैं आग नै गई एजे माँ बाबा नै धूनां रमाया मेरी माई
ऐ माँ एकेक मन मे मेरी इसी-इसी आई
माँ हो ल्यूँ मोड़िये की साथ मेरी माई।¹²

इस लोकगीत में आत्म-व्यंग्य है। इस व्यंग्य में रचनाकार ने अपनी पीड़ा और आक्रोश को अपने ही ऊपर ढालकर मजाक बनाया है। प्रस्तुत लोकगीत में नायिका अपने ही बारे में अपनी माँ से इस प्रकार बताती है कि जो आत्म-व्यंग्य का उदाहरण है।

इस लोकगीत में लड़की अपनी माँ को भागने का भय (त्रास) दिखाकर अपनी माँ के सामने हँसी-मजाक में ससुराल जाने की इच्छा भी व्यक्त कर देती है। होली पर तो कहा जाता है—'जो करें शरम, उसके फूटे करम'। बेटी की धमकी को समझकर माँ हँसकर कहती है कि तेरी ससुराल वाले जब तुझे लेने आएँगे तो मैं उन्हें क्या जवाब दूँगी। बेटी कहती है कि मेरे स्थान पर लकड़ी का पुतला भेज देना। यह गीत हास्य-व्यंग्य प्रधान है—

ए बेटी एक एक लनीहार तेरा सुसरा ए आवै
ए बेटी उस नै कै दयूँगी जवाब मेरी जाई।
ए माँ काठ के पुतले का दामान सिमाइए,
ए माँ लीलगर के जाइए, उसका चूँदड़ रंगाइए,

ए माँ काठ के कठपुतले नै बहल में बैठाइए
 ए माँ झुक-झुक देख तेरा लाडला जमाई,
 ए माँ काठ के कठपुतले की सेज बिछाई।
 ए माँ टस-टस रोके तेरा लाडला जमाई।¹³

इस गीत में लड़की के स्थान पर लकड़ी के कठपुतले को भेजना तथा जमाई के प्रलाप का प्रसंग कितना हास्य और व्यंग्यपूर्ण व सजीव और कल्पनात्मक है।

एक विवाहिता बेटी जो पीहर में आई हुई है। वह फागण की मस्ती में मस्त होकर अपने सुसराल जाना चाहती है, लेकिन लज्जावश वह साफ़-साफ़ नहीं कह पाती और अपनी माँ से कहती है—माँ मेरी कमर में दर्द हो गया, कभी पेट में दर्द, कभी कहीं। तो माँ कहती है तेरे ससुर, जेठ, देवर आदि को बुला दूँ तो लड़की कहती है कि अगर तुम मुझे जिलाना चाहती हो तो मेरे कंत अर्थात् पति को बुला भेजो—

मरी री मेरी माँ, मरी री मेरी माँ
 मेरी पसली में दरद हुआ री मेरी माँ
 कह तो बेटी तेरे सुसरे नै बुलाद्यूँ—
 नहीं री मेरी माँ, नहीं री मेरी माँ, उस बुड्ढे का काम नहीं री मेरी माँ।¹⁴
 कह तो बेटी तेरे कंत नै बुलाद्यूँ—
 जीयो री मेरी माँ, जीयो री मेरी माँ, मेरी पसली का दरद गया री मेरी माँ।¹

फागुन का महीना मौजमस्ती का महीना है। ऐसे अनोखे वातावरण में वृद्धाओं के मन भी मस्त हो जाते हैं और मचल उठते हैं। नव-नवेली छम्मक-छल्लो की तरह उनके पैर थिरकने लगते हैं। देह मरोड़े मारने लगती है और हृदय के बोल इन स्वरों में प्रकट होने लगते हैं—

छौरे मारूँगी मरोड़ा देही तोड़ गेरूँगी रे
 ज्यब आज्यगा तेरा ताऊ हांडी रोड़ गेरूँगी रे
 इसी गजब की बहू बनूँगी ज्यब सोल्हा सिंगार करूँगी
 गाबरूआँ मैं रूक्का पड़ज्या, बुढ़या तक भी मार करूँगी।¹⁵

ऊपर के लोकगीतों में जहाँ घरेलू वाद-विवाद, मनोविनोद, हँसी-खुशी के छींटे तथा अन्य मान-मर्यादाओं के प्रति व्यंग्य कसा गया है, वहाँ एक नाटकीय व्यंजना भी दिखाई देती है। ये लोकगीत सामाजिक, पारिवारिक एवं सांस्कृतिक पक्षों को उजागर करने वाले महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं। इनमें समाज के अन्य वर्गों के साथ-साथ नारी-समाज की वेदना प्रमुख रूप से प्रस्फुटित हुई है। यौवन की उमंगों के साथ जीवन की सादगी, मस्ती, आपसी प्रेम और शिक्षाप्रद बातें इनके प्रमुख गुण हैं।

हास्य और व्यंग्य के द्वारा जितना समाज का सुधार किया जा सकता है, उतना अन्य किसी भी साधन के द्वारा नहीं हो सकता। प्रसिद्ध हास्य-लेखक जी०पी० श्रीवास्तव के शब्दों में—‘बुराई रूपी पापों के लिए इससे बढ़कर कोई दूसरा गंगाजल नहीं है। यह वह हथियार है, जो बड़े-बड़ों के मिजाज चुटकियों में ठीक कर देता है। यह वह कोड़ा है, जो मनुष्यों को सीधी राह से बहकने नहीं देता। मनुष्य ही नहीं, धर्म और समाज को भी सुधारने वाला है।¹⁶

लोकगीतों के द्वारा बाल-विवाह, अनमोल विवाह, दहेज-प्रथा, सास-ससुर की कठोरता, खान-पान, रीति-रिवाज, रूढ़िगत प्रथाओं, सामाजिक अन्याय, अत्याचार आदि सभी को दूर किया जा सकता है। अतः हम कह सकते हैं कि हरियाणा के लोकगीत भारतीय संस्कृति के उद्गीत हैं, क्योंकि एक ही गन्ने की प्रत्येक पोरी में मिठास का गुण होता है। मिसरी की डली छोटी हो या बड़ी अंततः मिसरी ही कही जाती है।

संदर्भ

1. महादेवी वर्मा, विवेचनात्मक गद्य, पृ० 14
2. देवेन्द्र सत्यार्थी, धरती गाती है, पृ० 178
3. A Folk Song compose itself, (V. Williams, Encyclopaedia Britannica, Vol.9, P.43)
4. A Folksong is neither neitor old, it is like a forest tree with its roots deeply busied in the past, but which continuously foots forth new branches, new leaves new fruit (V. Williams, Encylopaedia Britannica, Vol.9, P.443)
5. रामनरेश त्रिपाठी, कविता कौमुदी, ग्रामगीत, भाग-5 पृ० 1-2
6. जगदीशनारायण, भोलानाथ शर्मा, हरियाणा प्रदेश के लोकगीतों का सामाजिक पक्ष, पृ० 107
7. वही, पृ० 113
8. राजाराम शास्त्री, हरियाणा का लोकगीत, पृ० 43
9. केशवदास, रसिकप्रिया, पृ० 38
10. बैरिस्टर यादव, हिंदी लोकसाहित्य में हास्य-व्यंग्य, पृ० 19
11. डॉ० भीमसिंह मलिक, हरियाणा लोकसाहित्य सांस्कृतिक संदर्भ, पृ० 17
12. वही, पृ० 23
13. वही, पृ० 18
14. वही, पृ० 255
15. डॉ० बाबूराम, हरियाणवी लोकगीत, हरियाणा का लोक साहित्य, सं० डॉ० लालचंद गुप्त मंगल, पृ० 34
16. जी०पी० श्रीवास्तव, हास्यरस, प्रथम संस्करण, पृ० 12

गाँव व डाकखाना सेरधा
ज़िला कैथल (हरियाणा)
मो० 9315413408

नासिरा शर्मा की कहानियों में आधुनिकता-बोध

कु० पूजा (शोधछात्रा)

प्रो० आदित्य प्रचण्डिया (शोध-निदेशक)

हिंदी विभाग, दयालबाग

एजुकेशनल इंस्टीट्यूट दयालबाग, आगरा 5

नासिरा शर्मा वर्तमान हिंदी कथासाहित्य की प्रतिष्ठित महिला रचनाकारों में से एक हैं। कथा-साहित्य के अतिरिक्त आप साहित्य की अन्य विधाओं—रिपोर्ताज, कविता, लेख, निबंध एवं नाटक आदि पर भी निरंतर लिखती रही हैं, किंतु कथा-साहित्य के क्षेत्र में आपको विशेष प्रसिद्धि और सफलता मिली है। नासिरा शर्मा ने मानव-जीवन की व्यापक भूमि को लेकर अपने कहानी-संसार का निर्माण किया है। उनका व्यक्तित्व एक उन्मुक्त और जीवंत कथा-लेखिका का है। उन्होंने जो अनुभव किया उसको अत्यंत सहज रूप में स्पष्ट भी किया है। उनकी कहानियाँ एक ओर स्त्रीवादी भी हैं, तो दूसरी ओर आधुनिक भी। वे स्त्री के प्रति हमेशा संवेदनशील हैं और आधुनिक इस अर्थ में हैं कि वर्तमान वैज्ञानिक सत्य को उन्होंने खुली आँख से स्वीकार किया है तथा वर्तमान को आधुनिकता प्रदान की है। उन्होंने अपनी कहानियों में जिन समस्याओं को उठाया है उनकी कोई सीमा नहीं है। उनकी रचनाओं में सवाल और समस्याएँ व्यापकता लिए हैं।

आधुनिकता-बोध का अर्थ है—वर्तमान का बोध। आधुनिकता अतीत से अनुप्राणित, वर्तमान के प्रति सचेत एवं सक्रिय तथा भविष्य के प्रति उन्मुख जीवन-दृष्टि है। नवीन परिस्थितियों के संदर्भ में अपने आपका संस्कार करते चलना ही आधुनिकता है। रामधारीसिंह दिनकर के अनुसार—‘आधुनिकता एक प्रक्रिया का नाम है। यह प्रक्रिया अंधविश्वास से बाहर निकलने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया नैतिकता में उदारता बरतने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया बुद्धिवादी बनने की प्रक्रिया है। आधुनिक वह है, जो मनुष्य की ऊँचाई उसकी जाति या गोत्र से नहीं; बल्कि उसके कर्म से नापता है।’ आधुनिकता की काल-सीमा-निर्धारण करना कठिन है, क्योंकि वह काल-सापेक्ष और कालजयी भी है।

नासिरा शर्मा की कहानियों का दायरा इतना विस्तृत असीम और इतना अधिक आयाम वाला है कि साहित्य की कोई विधा इससे अछूती नहीं रह सकती। उनकी कहानियों में आधुनिकता-बोध दिखाई देता है। उनकी कहानियों की पृष्ठभूमि में स्त्री की न केवल छाया रही, बल्कि उनके लेखन में स्त्री, मुख्यतः मुस्लिम नारी एक प्रतिबिंब के रूप में नज़र आती है। कहानियों का महत्त्वपूर्ण पहलू आधुनिकता-बोध भी है, इनमें वर्गीय मुस्लिम महिलाओं की मनोवृत्तियाँ घुटन के माहौल में व्यक्ति मानसिकताओं के बीच से उभरी हैं, जिन्हें पढ़कर-समझकर पाठक अपना दृष्टिकोण स्वयं बनाता है।

विजातीय का आशय—दूसरी जाति या वर्ग से है। अंतर्जातीय प्रेम-विवाह भी दांपत्य जीवन के विघटन और अकेलेपन का मुख्य कारण रहा है। भावुकता में किया गया प्रेम-विवाह असफल होकर विघटित हो जाता है। अंतर्जातीय अंतरधर्मीय प्रेम-विवाह से संबंधित कहानियों के विवेचन में मुख्य रूप में विजातीयता एवं अकेलापन ही है नासिरा शर्मा का कहानी संग्रह 'पत्थर गली' की प्रथम कहानी 'बावली' में विजातीयता में अकेलापन दिखाई देता है यथा—'मैं तो एक बावली ठहरी, प्यास के रिश्तों के नाम पर अपने को बाँटने वाली मेरे दिल के दलानों में थके प्यासे परिंदे अपनी प्यास बुझाते रहेंगे, दुःख बाँटते रहेंगे, मगर आखिरी साँस तक जीने और मरने का साथ न निभा पाएँगे। मैं पानी से भरी बावली, कहाँ जाऊँगी? मुझे तो अंतिम साँस तक खुले आसमान और ज़मीन के सीने में धँसे जाता है।'² इस प्रकार कहा जा सकता है कि जहाँ विजातीयता होती है, वहाँ मनुष्य अकेलापन महसूस करता है। 'बावली' इतनी चिंतित हो जाती है कि उसे रात में अकेलापन काटने लगता है। यथा—'वह रात मेरे लिए पहाड़ बन गई थी। लगा था, किसी ने दौड़ते-दौड़ते मुझे रोक लिया है। मेरी जिंदगी फिर मज़दार में होगी और यह दूसरा रास्ता भी अधूरा चलकर मुझे छोड़ना पड़ेगा। सारी रात बिस्तर पर बेचैन तड़पती रही थी, यह सब क्या हो रहा है।'³ बावली अपने अकेलेपन के जीवन से इतनी दुःखी है कि वह हमेशा दुःख में ही तड़पती रहती है।

कहीं-कहीं दो जातियों में इतना आक्रोश हो जाता है कि विजातीयता एक विश्व युद्ध का रूप धारण कर लेती है। जैसे—हिंदुस्तान तथा पाकिस्तान का बाँटवारा आज भी लोगों में वैमनस्य पैदा कर देता है। 'पत्थर गली' की द्वितीय कहानी 'सरहद के इस पार' में विजातीयता अधिक देखने को मिलती है। यथा—मारो सारे हिंदुओं को, गले दबा दो इनके। साले कहते हैं कि तुम पाकिस्तानी हो, जाकर पूछो इनसे, तुम्हारे बाप-दादा कहाँ हैं? मेरे बाप-दादा इसी धरती के आगोश में गढ़े हैं। सबूत चाहिए तो जाकर देखो हमारे कब्रिस्तान, सबके सब मौजूद हैं।'⁴ इस प्रकार पाकिस्तानियों के बीच हो रहे आक्रोश को यहाँ दर्शाया है। 'खुदा की वापसी' कहानी संग्रह की 'दूसरा कबूतर' कहानी में पुरुष द्वारा दो नारियों को छले जाने की कथा है, जिसमें विजातीयता को परिलक्षित किया गया है। यथा—'रुकइया ने रोते बच्चे को उठाकर सीने से लगाया और उसका माथा चूमा। फिर जाने कैसा दर्द कलेजे में उठा और वह फूट-फूटकर रोने लगी। उसको अपना सारा भविष्य अँधेरे में डूबता नज़र आया। तलाक़ के बाद तीन बच्चों और माँ-बाप के सहारे पूरी जिंदगी गुज़ारने की जद्दोजहद ने उसे सर से पैर तक लरजा दिया। शौहर की बेवफ़ाई से ज़्यादा उसको दूसरे सवाल परेशान कर रहे थे। सादिया जवान है। ख़ूबसूरत है। बेहद पढ़ी-लिखी है। उसे शहाब किसी कीमत पर नहीं छोड़ेगा।'⁵ सादिया को विजातीय विवाह करने के कारण ये दिन देखने को मिलते हैं। 'इंसानी नस्ल' कहानी संग्रह की 'अपराधी' कहानी में राममनोहर त्यागी को रिटायर हुए अभी साल भर हुआ था कि उन्हें अपने जीवन में अकेलापन महसूस होने लगता है यथा—'चिंता की बात है, मगर उन्हें भी अपने को बदलना होगा। पढ़ने का उन्हें शौक नहीं, टी॰वी॰ देखते नहीं, बागवानी करना उन्हें पसंद है तो हमारे पास कुल पंद्रह गमले हैं, फ़ील मुझे भी बहुत होता है उनका अकेलापन।'⁶ राममनोहर का बेटा धुरेंदर अपने पिताजी के प्रति संवेदनशील है।

आस्था का स्वरूप मानव की सोच पर निर्भर करता है यदि उसकी सोच विस्तृत है तो आस्था का स्वरूप विराट होगा। आस्था वास्तव में यदि देखा जाए तो पूर्वजों के अनुभवों पर

आधारित संस्कार हैं, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होते रहे हैं और कुछ मनुष्य स्वयं अपने अनुभवों, कल्पना, चिंतन आदि से ग्रहण करता रहता है। जहाँ आस्था है वह नैतिक मूल्य आवश्यक होंगे। आस्था का दूसरा रूप नैतिक मूल्य पर आधारित है। नैतिकता समाज की आधारशिला है। नैतिक शब्द का अर्थ-आचरण से संबंधित है। नैतिक शब्द 'नीति' से बना है। समाज, धर्म और राज्य द्वारा निर्मित नियमों और अनुकूल आचरण से संबंधित मूल्य ही नैतिक मूल्य हैं। भारतीय समाज में नैतिक मूल्यों के प्रति विशेष आदर रहा है। नैतिकता मूल्य का संबंध मानव के चरित्र और आचरण से होना है। आज जीवन के हर क्षेत्र में मूल्यों में बड़ी तीव्रता से परिवर्तन आ रहा है। इस युग के कथाकार ने पुराने मूल्यों को नकारकर नए मूल्यों की स्वीकार किया है। डॉ० गंगाप्रसाद 'विमल' के अनुसार—'पुरानी पीढ़ी के साथ नई-नई पीढ़ी के संबंधों के मूल्यों में काफ़ी गड़बड़ी-सी प्रतीत होती है। संबंधाभाव और संबंधहीनता की स्थितियाँ विस्तार से देखी गई हैं।' 'पत्थर गली' कहानी-संग्रह की प्रथम कहानी 'बावली' अपने नैतिक मूल्यों को किस प्रकार समझती है। यथा—'कब तक अपने को खुशकिस्मत समझती रहोगी? दिमाग़ उससे भी एक हाथ आगे बढ़कर कहता है। 'सलमा! एक बार, सिर्फ एक बार तजुबे की खातिर, हर रिश्ते की बागडोर अपनी तरफ़ से छोड़कर देखो तो—फिर तुम्हें अंदाज़ा होगा कि सोना कितना खरा है। बिना कसौटी पर कसे पीतल भी सोना ही लगता है।'⁸ मूल्य को चरित्र की कसौटी पर कसा जा सकता है। मर्यादा, मान, सम्मान आदि मनुष्य के चरित्र की आधारशिला हैं। नैतिकता ही आस्था को उत्पन्न करती है। 'शामी काग़ज़' कहानी-संग्रह की आबे-तौबा कहानी में सूसन विवाहित होते हुए भी दूसरे व्यक्ति से शारीरिक संबंध स्थापित कर अपने जीवन के नैतिक मूल्य का बोध इस प्रकार करती है—'सोचने लगी थी कि आख़िर गुनाह क्या होता है? पराया मर्द क्या होता है? तन का सुख बिना किसी दायित्व के किया जाए तो कौन-सी अद्भुत स्वर्गीय अनुभूति देता है। बदन वास्तव में किताब है और किताब का पूरा पढ़ना जरूरी है।'⁹ सूसन धीरे-धीरे अपने दायित्व को समझने लगी। 'इब्ने मरियम' कहानी-संग्रह की 'तीसरा मोर्चा' कहानी में कश्मीर (भारत) की बिगड़ती परिस्थितियों में भी हिंदू-मुस्लिम के परस्पर प्रेम को दर्शाते हुए मारने और भागने वालों के अतिरिक्त तीसरा वर्ग ऐसा भी है, जो वहाँ की विडंबनाओं से जूझकर परिस्थितियों का सामना करने और सुधारने का दम रखते हैं। यथा—'वह जवान औरत तने से सर टकराकर रो पड़ी। रहमान और राहुल ने अजीब शर्मिंदगी-भरी बेबसी से एक-दूसरे को देखा, जैसे कह रहे हों, धर्म का तंग दायरा ही घुटन का अहसास नहीं दे रहा है, बल्कि सियासत की बढ़ती सत्ता में इंसानियत खड़ी विलाप कर रही है। दोनों की नज़रें झुक गईं।'¹⁰ इस प्रकार इंसानियत ने आस्था और नैतिक मूल्यों के प्रति इंसान को सचेत किया है।

आर्थिक विवशता एक ऐसी परिस्थिति है, जो मनुष्य में तनाव और भटकन पैदा कर देती है। आर्थिक विवशता में व्यक्ति दुःखी तथा चिंतित रहता है, जिससे उसके व्यवहार में तनाव आने लगता है। जब एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से अलग रहना चाहता है तब भटकन की स्थिति देखने को मिलती है। 'पत्थर गली' कहानी-संग्रह की 'बावली' कहानी में बज्जो की अम्मा आर्थिक विवशता से दुःखी हो जाती है—'बड़े बहनोई नईम भाई कम-से-कम बज्जो के कुछ माँगने या ले जाने के वक्त बेचैन होकर कहते तो थे कि अरे! यह कन्या-तकल्लुफ़ है, हरबार लड़की के आने पर दहेज थोड़ा दिया जाता है।'¹¹ लड़की के विवाह होने पर बज्जो की अम्मा को आर्थिक

विवशता के कारण चिंतित रहना पड़ता है। 'पत्थर गली' कहानी में फ़रीदा को आर्थिक विवशता के कारण चिंता लगी रहती है। वह हमेशा तनाव और भटकन महसूस करती है। यथा—'फ़रीदा जो केवल सत्रह वर्ष की लड़की है। उसके अंदर से वह कोमल, षोडशी कब की मर चुकी है, वहाँ तो सिर्फ एक सफेद बालों की दुखियारी औरत बैठी है, जिसे परिवार की मर्यादा बचानी है। दुःख-दर्द बाँटने हैं, समस्याएँ हल करनी हैं, और इस सबके बाद उफ तक भी नहीं करनी है।'¹² नारी को यह जब महसूस करना पड़ता है। जब बच्चों की अम्मा तथा फ़रीदा में आर्थिक विवशता के कारण तनाव तो उत्पन्न होता है, साथ ही भटकन की स्थिति भी पैदा हो जाती है। यह सब बावली महसूस करती है।

आधुनिक समाज में मानव में की अमानवीयता को देखा जा सकता है, जिसके कारण मूल्यभ्रंशता उत्पन्न होती जा रही है। मूल्यहीनता को प्रश्रय देने वाला मनुष्य चरित्र का विकास है। मूल्यहीनता की स्थिति को निर्मित करते हुए प्रेम की तीव्रता आकांक्षाओं से आक्रांत विकृति के शिकार तथा अनास्थावादी चरित्र भी इसी कोटि में आते हैं 'पत्थरगली' कहानी-संग्रह की बावली कहानी में यह विशेषता दिखाई देती है। यथा—'दुल्हन के कपड़े-लत्ते, जेवर बगैरह खरीदे जा चुके थे। सबको सजाती हुई सलमा सोच रही थी कि दुनिया के सारे रिश्ते क्या झूठे होते हैं? हर रिश्ता कुछ माँगता है जब न दो तो टूट जाता है।'¹³ सलमा अपने विवाह के संबंध में सोचती है कि अमानवीयता और मूल्यभ्रंशता ही सलमा के जीवन में देखने को मिलती है। इस प्रकार के उक्त उदाहरणों में अमानवीयता का अनुभव होता है, साथ ही मूल्यभ्रंशता भी होती है, जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परस्पर विरोधी मूल्य एक-दूसरे से टकरा-टकरा कर टूट रहे हैं और मूल्यों की कड़ी तोड़ रहे हैं तथा मूल्यभ्रंशता की ओर उत्तेजित हो रहे हैं। 'पत्थरगली' कहानी-संग्रह की सिक्का कहानी में अमानवीय और मूल्यभ्रंशता को देखा जा सकता है—'तुम्हारे दिल में इतनी जगह भी न थी कि फूलों से लदी टोकरियाँ उसमें समा सकतीं। तुम सब कुछ पाकर उदास थे। तुम्हारी उदासी मेरे बजूद में नशतर चुभो रही थी। मैं तुम्हें कैसे समझाती कि फूल खरीदना और रौंदना सब जानते हैं, मगर अहसास की डाल पर फूल खिलता देखना और उस आवाज की सुंगंध महसूस करना सबका भाग्य नहीं, जो पल की सार्थकता को पा सके।'¹⁴ एक वेश्या नारी के माध्यम से अमानवीयता और मूल्यभ्रंशता को बताया है। सबीना के चालीस चोर कहानी-संग्रह की तक्षशिला कहानी में पुरुष प्रधान समाज में नारी को एक भोग्या के अतिरिक्त कुछ नहीं समझा जाता, किंतु प्रस्तुत कहानी की नायिका इस तथ्य को पूर्ण कर दिखाती है कि नारी केवल भोग्या नहीं। उसका शोषण करना अब इतना सरल नहीं यथा—'औरत खुले आसमान के नीचे अपनी पहचान बनाने में व्यस्त है। यह संघर्ष बहुत सुंदर है। जैसे इस तस्वीर का वातावरण रंग और आसमान। मगर यह संघर्षरत औरत के नीचे अभी सख्त ज़मीन नहीं है, जिस पर विश्वास के साथ खड़ी हो सके। जैसे इस इमारत के खंडहर के पास छत नहीं है। आज की औरत के पास न छत है, न ज़मीन, सिर्फ दीवारें....सिर्फ दीवारें हैं उन पर छत कौन डालेगा। क्या कोई मर्द? तब वही शोषित बेचारी औरत होगी। औरत को यह काम स्वयं करना होगा। मर्द तो अपना हथियाया अधिकार इतनी जल्दी वापस नहीं करेगा। निगार, इन दरिदों, इन हब्शी भेड़ियों से यूँ डरकर कहाँ तक भागेगी?'¹⁵

आज समाज में सब-कुछ परिवर्तित होने लगा है। उसी के कारण विघटन और वैषम्य की समस्या उत्पन्न हो रही है। डॉ० पुष्पपाल सिंह लिखते हैं—'आज मानवीय रिश्ते उसी रूप में

मान्य नहीं रहे जैसे पहले थे। संयुक्त परिवार के विघटन और रोजी-रोटी की तलाश में परिवार के सदस्यों का बाहर जाकर बस जाना आदि के परिणामस्वरूप परिवार के सदस्य अपनी इकाइयों तक ही अपने को सीमित रखने लगे। मानवीय संवेदना पर अर्थ का स्वार्थ हावी होकर बहुत सारे आत्मिक संबंधों को बेमानी बना रहा है। यथा—‘माँ-बाप, पिता-पुत्र, पुत्री, भाई-बहन पति-पत्नी, भाई-भाई आदि के बीच दूरियाँ आ गईं, जिसके कारण ये संबंध टूटने लगे।’¹⁶ समकालीन कहानी में इन संबंधों के विषय में बहुत अधिक लिखा गया है। ‘पत्थरगली’ कहानी-संग्रह की ‘सरहद के इस पार’ कहानी में भारत और पाकिस्तान के विघटन तथा वैषम्य को स्पष्ट किया गया है यथा—‘अँग्रेजों ने हमें फ़साद की शक्ति में पाकिस्तान तोहफ़े में दिया है और हम इस जख़्म को जब तक जीएँगे, पालते रहेंगे, करें भी क्या? कर ही कुछ नहीं सकते हैं। अपाहिज जो ठहरे...। रेहान ने बुझते अधजले काग़ज़ों को डंडी से हिलाया। पूरी गली में जले छोटे-बड़े काग़ज़ के टुकड़े उड़ रहे थे।’¹⁷ हर व्यक्ति विघटन और वैषम्य को झेल रहा है। इस प्रकार नासिरा शर्मा ने मानव-जीवन की व्यापक भूमि को लेकर अपने कहानी-संसार का निर्माण किया है, जो पाठक को पढ़ने के लिए उत्तेजित करता है। उनके साहित्य से पाठक को आधुनिकता-बोध का ज्ञान होता है। उन्होंने आधुनिकता-बोध से संबंधित सभी समस्याओं को अपनी कहानियों में नियोजित किया है, जो पाठक को आधुनिकता-बोध के प्रति सजग बनाती है। नासिरा शर्मा की कहानियों में विजातीयता एवं अकेलापन, आस्था और नैतिकबोध, आर्थिक विवशता एवं उत्पन्न तनाव और भटकन, अमानवीय और मूल्यभ्रंशता, विघटन और वैषम्य आदि के अभिदर्शन सहज रूप में हो जाते हैं।

संदर्भ

1. रामधारीसिंह ‘दिनकर’, आधुनिकबोध, हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, 1973, पृ० 19
2. नासिरा शर्मा, पत्थरगली, (बावली), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1986, पृ० 26
3. वही, पृ० 21
4. नासिरा शर्मा, पत्थरगली, (सरहद के पार), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1986, पृ० 29
5. नासिरा शर्मा, खुदा की वापसी, (दूसरा कबूतर), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली 1998, पृ० 121
6. नासिरा शर्मा, इनसानी नस्ल, (अपराधी), प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ० 22
7. शशी गुप्ता, प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यास, नए नैतिक मूल्य, नमन प्रकाशन, 1999 पृ० 7
8. नासिरा शर्मा, शामी कागज़, (आबे तौबा), सरस्वती प्रेस, नई दिल्ली 1980 पृ० 13
9. वही, पृ० 170
10. नासिरा शर्मा, इब्ने मरियम, (तीसरा मोर्चा), किताबघर, नई दिल्ली 1994, पृ० 96
11. नासिरा शर्मा, पत्थर गली, (बावली), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1986 पृ० 15
12. वही, पृ० 153
13. वही, पृ० 21
14. नासिरा शर्मा, पत्थर गली, (सिक्का) राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1986 पृ० 171
15. नासिरा शर्मा, सबीना के चालीस चोर (तक्षशिला), किताबघर, नई दिल्ली, 1997, पृ० 41
16. शशि गुप्ता, प्रेमचंदोत्तर, हिंदी उपन्यास, नए नैतिक मूल्य, नमन प्रकाशन, दिल्ली 1999, पृ० 32
17. नासिरा शर्मा, पत्थरगली, (सरहद के इस पार) राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 1986 पृ० 38

छिन्नमस्ता में नारी-अस्मिता की नई पहचान

डॉ० साक्षी अग्रवाल

प्रवक्ता (हिंदी विभाग)

एम०एल० एंड जे०एन०के० गर्ल्स कॉलेज, सहारनपुर

‘छिन्नमस्ता’ में प्रभा खेतान ने अपनी सहज सरल शैली में नारी की चिर-परिचित छवि में आए परिवर्तन का विस्तृत विवेचन किया है। ‘छिन्नमस्ता’ में नायिका प्रिया न केवल समाज में व्याप्त कुरीतियों व नारी शोषण के विरुद्ध विद्रोह करती है, अपितु परिवार में भी नारी की हीन स्थिति के विरुद्ध संघर्ष करती दिखाई देती है। रूढ़ मारवाड़ी समाज से टकराकर स्वयं को भावनात्मक स्तर पर लहूलुहान करते हुए भी वह अपने अस्तित्व को नए सिरे से परिभाषित करती है। वह न केवल अपने अस्तित्व को ऊँचा उठाती है, वरन् समाज व परिवार द्वारा उपेक्षित अपनी सौतेली सास व नंद का सहारा बनकर समाज के प्रति अपनी प्रतिबद्धताओं का पालन भी करती है। नौकरों के प्रति उसके मन में व्याप्त दया व सहानुभूति की भावना स्त्री की मानवीय गरिमा को ऊँचा उठाती है, क्योंकि अस्मिता का यह अर्थ नहीं है कि व्यक्ति स्वयं को स्वतंत्र समझकर केवल स्वयं के लिए जिए। ‘अस्मिता जनित गौरव का संबंध व्यक्ति, जाति, समाज और राष्ट्र किसी से भी हो सकता है। वस्तुतः अस्मिता आस्था, गौरव और संकल्प का बोधक शब्द है।’¹ अस्मिता के प्रति जागरूकता व्यक्ति को दिग्भ्रमित व दिशाहीन होने से बचाती है।

‘छिन्नमस्ता’ में प्रिया का जन्म एक उच्च मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ था। उसके पिता उसे लक्ष्मी मानते थे, किंतु माता उसे अपने जीवन का अभिशाप समझती थीं। वह बच्चे नहीं चाहती थीं, किंतु पुत्र की लालसा में मातृत्व उन पर जबरन थोपा गया था। अतः वह प्रिया को स्नेह नहीं करती थीं। प्रिया सात भाई-बहनों में पाँचवीं संतान थी, जिसके पैदा होने के बाद से ही माँ अस्वस्थ रहने लगी। माँ अपनी अस्वस्थता का कारण प्रिया को ही मानती थीं, इसीलिए उससे घृणा करती थीं। ऊपर से सभी भाई-बहनों के सुंदर होने के बावजूद प्रिया साँवले रंग की हृष्ट-पुष्ट लड़की थी। प्रिया के बाबूजी द्वारा प्रिया को उनके पास लिटाने पर वह कर्कश स्वर में चिल्लाती हुई कहती है, ‘क्या करूँ, मुझे नहीं सुहाती यह। जब से जनमी है, मेरा तो शरीर ही टूट गया। खाट पकड़ ली मैंने।’²

जब ज्योतिषी प्रिया के मेधावी होने की भविष्यवाणी करता है, तब भी वह चिढ़ती हुई कहती है, ‘कर चुकी नाम! भाटा-पत्थर तो है, मुँह में बोली तो है नहीं। जिसका मन हो मार जाता है, जिसका मन हो चोटी खींच लेता है।’³ बात-बात पर प्रिया को डाँटने, बोकी-भाटा, मिलिट्री घोड़ा आदि कहने में माँ को आनंद मिलता। प्रिया माँ के प्यार को पाने के लिए घंटों उनके कमरे

के बाहर खड़ी रहती, परंतु वह दिन कभी नहीं आया। केवल पिता व दाई माँ ही प्रिया को स्नेह करते थे। प्रिया स्वयं के अतीत का स्मरण करते हुए सोचती है, 'मुझे गोद में लेते ही दाई माँ के स्तनों में दूध उतर आया। वही मेरा सर्वस्व थी। मैं उसका पल्ला एक मिनट के लिए नहीं छोड़ती। वह बेचारी बाथरूम भी जाती, तो मेरा रोना शुरू हो जाता। मेरे लिए माँ, यानी दाई माँ। मुझे अपनी माँ की न गोद याद है, न उसका कोई स्पर्श। मेरा नाम ही था दाई की बेटी, वैसी ही काली।'⁴

सब बच्चे मिलकर प्रिया को परेशान करते। कभी उसकी चोटी ग्रिल से बाँध देते, कभी उसे पानी की हौज में फेंक देते और सिर को भी पानी से बाहर नहीं निकालने देते। तब दाई माँ ही प्रिया की सहायता करती और कहती, 'का जाने सब हमार बिटिया क पीछे लगत रहत हई। उ सरोज बाई और बुल्ली बाबू को कोई कभी नहीं छेड़ते। सारा दोष तो बहूजी का है। कहाँ से पियार करिहे, खाट पकड़ राखिन हैं। बेटा के बदले बेटी जो हो गईल।'⁵ माँ तो प्रिया के बीमार होने पर डॉक्टर को भी नहीं बुलाना चाहती। दाई माँ के आग्रह करने पर वह कहती है, 'तो क्या करूँ ? तेरी बेटी तो घोड़े-सी मजबूत है। ठीक हो जाएगी। मुफ्त में आते हैं क्या डॉ गांगुली? फीस नहीं लगती।'⁶

सब परिवार वालों के साथ जब प्रिया हंडरूफाल घूमने जाती है तो प्रिया को ज़बरन माँ की गाड़ी में बैठाया जाता है क्योंकि 'सरोज मानती नहीं, बिल्लू तो बांदरा है, तंग करके रख देता।'⁷ डर के कारण प्रिया बाथरूम के लिए भी नहीं कह पाती, जिस कारण वह उल्टी कर देती है वह भी माँ के ऊपर। तब प्रिया की चिंता के बजाए माँ के चेहरे पर घृणा-जुगुप्सा का भाव था। गाड़ी रोककर माँ के कपड़े बदलवाए जाते हैं, गाड़ी धोई जाती है, परंतु प्रिया की ओर किसी का ध्यान भी नहीं जाता। माँ प्रिया के साथ सदैव क्रूर अमानवीय व्यवहार ही करती है। हालाँकि पति की मृत्यु के पश्चात् वह इतने बड़े परिवार को स्वयं सँभालती है। मकान बनाकर किराए पर चढ़ा देती है। परिवार की मान-मर्यादा ज्यों-की-त्यों बनाए रखने के लिए सब खर्च-आडंबर पहले के समान किए जाते हैं, परंतु वह प्रिया को कभी स्नेह की दृष्टि से नहीं देखती। माँ का यह भेदभाव भरा स्वभाव जहाँ प्रिया को दुःखी करता है, वहीं उसके बाल-मन में विद्रोह के बीज भी बोता है।

पिता की मृत्यु के पश्चात् नौ वर्ष की अल्पावस्था में बड़े भाई द्वारा बलात्कार किए जाने के कारण प्रिया को मासिक धर्म साढ़े नौ वर्ष की अवस्था में शुरू हो जाता है, जिसके लिए उसे ही ज़िम्मेदार ठहराते हुए अपशब्द कहे जाते हैं। तब प्रिया मन-ही-मन सोचती है, 'इसमें मेरा अपराध क्या है अम्मा? तुम बोलो मेरा अपराध क्या है? पर बिना अपराध के भी अपराधबोधा और यह कैसी निर्मम सजा मुझे मिल रही है।'⁸ प्राचीन समाज में मासिक धर्म को अपवित्र माना जाता था। उस स्त्री के साथ अछूतों जैसा व्यवहार किया जाता था। उसे अलग कमरे में बंद कर दिया जाता था। प्रिया के साथ भी ऐसा ही हुआ। मासिक धर्म के दिनों में भाई-बहन उसे 'अछूत कन्या' कहकर चिढ़ाते। सैनेटरी नैपकिन के स्थान पर कपड़े का प्रयोग किया जाता था, वह भी एक ही। प्रिया अपनी बहन सरोज के साथ मिलकर इसके विरुद्ध आवाज़ उठाती है तथा माँ को सैनेटरी नैपकिन का प्रयोग करने के लिए मनाती है।

प्रिया का पूरा बचपन यातनाओं से भरा था। किसी भी समस्या के होने पर प्रिया को

चुप रहने के लिए समझाया जाता है। उसकी दाईं माँ उससे कहती है, 'अरी मोर बिटिया, नाहीं! तोहार क्वारपन खतम हो गईल... कच्ची कली... नाहीं बिटिया, नाहीं!.. हमार कहा मान और जिंदगी में ई सब बात कभी किसी से जिन कहियो। आपन पति परमेसर से भी नाहीं।' भाभी के बीमार होने अथवा मायके जाने पर भैया प्रिया व सरोज के कमरे में सोते। प्रिया कहती है, 'मैं वे रातें नहीं भूल पाती। रात को चुपके से रेंगकर मेरी ओर उनका आ जाना। उनका बदन मेरी पीठ से सटा रहता। हल्की फुसफुसाहट—'प्रिया! एई प्रिया..' फिर कुछ हरकतें। मैं साँस रोके पत्थर-सी पड़ी रहती। मेरा कलेजा धकधक करता और मेरा रोम-रोम किसी रक्षक को पुकारता। 'ओह! मुझे बचा लो, भगवान! तुम मुझे बचा लो। मुझे बचा लो!' आधे घंटे, पौने घंटे किसी कड़ी चीज की रगड़ में पीठ पर झेलती रहती। साँसों की तेजी और फिर थक-हारकर पुरुष का स्खलन। चिपचिपा, लिसलिसा सीमेन, कभी मेरे कुर्ते में, कभी चद्दर में लगा रह जाता।¹⁰ तीन-चार महीनों में दसों बार यही घटना घटती। इसी प्रकार कई वर्षों तक इस शारीरिक व मानसिक प्रताड़ना को झेलने के पश्चात् जब प्रिया भाई को आत्महत्या करने की धमकी देती है तब वह ऐसा पुनः न करने की कसम खाते हैं। लेकिन फिर वह प्रिया को फीस के पैसे नहीं देते। उच्च मध्यमवर्गीय परिवार की बेटा होने के बावजूद प्रिया को छोटी-छोटी जरूरतों का मोहताज होना पड़ता। खाने-पीने की महँगी वस्तुएँ प्रिया की थाली में नहीं परोसी जातीं, लेकिन प्रिया को घर अब सुरक्षित लगने लगा था। धीरे-धीरे उसने घरवालों से पैसे लेना बंद कर दिया। फ्रीस के पैसे प्रारंभ में सहेली से उधार लेकर दिए। बाद में एक नर्सरी स्कूल में नौकरी कर ली तथा एक मारवाड़ी महिला को अँग्रेजी पढ़ाने लगी, जिससे उसका खर्च निकल जाता था।

प्रिया को अपने परिवार से कभी स्नेह व सम्मान नहीं मिला। इसी कारण प्रेम की तलाश में वह एक प्रोफेसर से शारीरिक संबंध स्थापित कर लेती है, परंतु वह भी प्रिया को इस्तेमाल करके छोड़ देता है जिस कारण प्रिया सभी पुरुषों से घृणा करने लगती है। प्रिया इस विषय पर सोचती है, 'जन्म से औरत..असहाय औरत। उसे न पिता छोड़ता है और न भाई! अपनी नारी देह में, स्वयं में क्षत-विक्षत होकर रह जाती है। वह कभी किसी पराए पुरुष को प्यार नहीं कर पाती और न ही सृजन के सबसे सुंदर रूप किसी और के बीज की रक्षा अपने गर्भ में कर पाती है। मानव-जाति के लिए यह प्रसार जरूरी है। पर क्या समाज स्त्री की रक्षा करता है? क्या पुरुष की कामुक हवस का शिकार होने से मासूम लड़कियाँ बच पाती हैं?'¹¹

अपनी माँ, भाभी व जीजी जैसी घुटनभरी जिंदगी न जीने की इच्छा रखते हुए भी विद्रोही स्वभाव वाली प्रिया विवाह भी केवल यही सोचकर करती है कि अब उसे सुरक्षा प्राप्त होगी। आम की चूसी हुई गुठली की तरह कोई उसे फेंकेगा नहीं। उसे लगता है, 'चलो बाबा, नरक से छुट्टी मिली।' परंतु उसका यह स्वप्न भी शीघ्र ही टूटकर बिखर जाता है। नरेंद्र प्रिया से नौकरों की तरह बात करता, हिसाब माँगता, मारता-पीटता, बात-बात पर उसे अपमानित करता। पत्नी के बजाए उसे एक सेक्रेटरी की आवश्यकता थी, जो नौकरों के समान उसके आदेशों का पालन करती रहे। प्रिया नरेंद्र को सुहागरात के समय ही अपने अतीत के विषय में सब बता देना चाहती थी, 'नरेंद्र मैं कुँआरी नहीं..मैं पहले ही टूट चुकी हूँ। हर पुरुष ने मुझे चोट मारी है, आहत किया है। मेरा घायल मन। नरेंद्र! हम जीवनसाथी हैं.. मैं तुमसे सब-कुछ कह देना चाहती हूँ.. एक पूरी बेबाक ईमानदारी के साथ।'¹² मगर नहीं वह पढ़ा-लिखा आदमी बीस मिनट में अपनी भूख

मिटाकर करवट बदलकर सो गया। केवल रात में ही नहीं, दिन में, शाम को, वक्त-बेवक्त कभी भी, वह प्रिया का यौन शोषण करता, जबकि प्रिया केवल शारीरिक संभोग नहीं वरन् प्रेम चाहती थी। दोनों की सोच के फ़र्क को वह प्रिया की फ़िलॉसफ़ी कहकर टाल देता। नरेंद्र को ब्लू फ़िल्में देखकर उसी के समान हरकतें करने में आनंद मिलता, किंतु प्रिया पति का प्यार भरा स्पर्श चाहती थी। सैक्स की जीवंत कलाबाज़ियों का भौंडा प्रदर्शन देखकर प्रिया का जी भन्ना जाता। वह नरेंद्र से कहती, 'नरेंद्र! एक दिन देख लिया, हो गया न?' तब नरेंद्र उत्तर देता, 'अरे वाह! क्या बात करती हो? ऐसे थ्रिल क्या रोज़-रोज़ मिलते हैं?'¹³ प्रिया सोचती, 'औरत के शरीर का बेहूदा प्रदर्शन देखकर क्या कोई औरत उत्तेजित हो सकती है? शायद होती हो। शायद मैं ही कहीं ग़लत हूँ, पर उस पश्चिमी भोगवादी समाज में औरत क्या रह गई है... महज एक जिंस।'¹⁴

पति की वहशी भूख के कारण प्रिया को औरतपन से घृणा हो गई। अपनी कोमल भावनाओं को कुचलने में ही उसे आनंद मिलने लगा। सैक्स के प्रति अरुचि उसके बचपन के हादसे का परिणाम थी। अब वह सभी पुरुषों से नफ़रत करती थी। प्रिया और नरेंद्र दो दिशाओं के समान थे, जो आपस में कभी मिल नहीं सकते थे तथा जिनमें संवाद की कोई गुंजाइश नहीं थी। पिता के देहांत के बाद तो नरेंद्र लड़कियों को घर भी लाने लगता है। तब प्रिया अपना कमरा ही अलग कर लेती है, परंतु फिर भी नरेंद्र की तानाशाही कम नहीं होती। प्रिया जब व्यापार करना चाहती है, तो नरेंद्र को यह भी अच्छा नहीं लगता। वह उसे घर में चुपचाप पड़े रहने के लिए कहता है, लेकिन प्रिया अपने दुःख को भूलने व एकाकीपन को कम करने के लिए साहस बटोरकर व्यापार करना प्रारंभ कर देती है। माँ बनने के बाद भी उसकी संवेदनशीलता में कोई अंतर नहीं आता। मन बहलाने के लिए किया गया व्यापार ही जीवन की सार्थकता लगने लगता है। रोज़ नए लोगों से मिलना उसके जीवन के कैनवास को बढ़ाता। वह स्वयं कहती है, 'मैंने दुःख झेला है, पीड़ा और त्रासदी में झुलसी हूँ। जिस दिन मैंने त्रासदी को ही अपने होने की शर्त समझ लिया, उसी दिन, उस स्वीकृति के बाद मैंने खुद को एक बड़ी ग़ैरज़रूरी लड़ाई से बचा लिया। कुछ के प्रति मेरा यह समर्पण था। सारे जुल्मों के सामने.. सलीब पर लटकते मैंने पाया कि मैं अब पूरी तरह जिंदगी की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार हूँ।'¹⁵

परंतु नरेंद्र प्रिया की व्यापारिक सफलता से भी ईर्ष्या करता था। प्रिया को ऑफ़िस की कुर्सी पर बैठा देखकर वह कहता है, 'ओह हो! सीगल एक्सपोर्ट की मैनेजिंग डाइरेक्टर हैं? अब आपको मुझसे पैसे माँगने की ज़रूरत ही क्या रही और अब आपको क्यों हमारी लाई हुई चीज़ें पसंद आएंगी? श्रीमती जी पैसा जो कमा रही हैं।'¹⁶ वह चुपचाप प्रिया की सारी प्रॉपर्टी व गहने अपने नाम करा लेता है। प्रिया को तो पता भी तब चलता है, जब नरेंद्र उसे तलाक़ की धमकी देते हुए कहता है कि वह व्यापार छोड़ दे अन्यथा उसे कुछ मिलने वाला नहीं है। साथ ही व्यापार बंद कराने की धमकी भी देता है, 'ज़्यादा बकझक की तो व्यापार भी बंद करवा दूँगा। क्या लगता है? ज़ा-सा रिजर्व बैंक को एक चिट्ठी भर की देर है।'¹⁷ प्रिया पर मानो बिजली गिर पड़ी। वह सोचती है, क्या कोई इतना नीचे गिर सकता है? कुएँ की भी कोई ज़मीन होती है, पर नरेंद्र की नीचता अंतहीन थी। प्रिया को लगा कि नरेंद्र के साथ उसके संबंध बड़े नैगेटिव रूप ले चुके हैं, परंतु वह साहस का परिचय देते हुए कहती है, 'यदि मेरा व्यापार डूबा..तो मैं इनकम टैक्स, सेल्स टैक्स, एक्साइज, तुम्हारे सारे बखेड़ों का खुले बाज़ार में भंडा फोड़ूंगी और देखती हूँ कि

तुम कैसे बचते हो?'¹⁸

इस पर नरेंद्र उसे मार डालने की धमकी देता है तो प्रिया उसे बताती है कि वह थाने में एफ०आई०आर० करके आई है और अगर वह मर भी गई तो नरेंद्र व उसका अग्रवाल हाउस भी साबुत नहीं बचेगा। उसके ऐसा कहने व करने पर माँ व भाई प्रिया को ही गलत ठहराते हैं। भाई को नरेंद्र से समय-समय पर रुपया उधार मिल जाता था। अतः वह कहते हैं, 'क्या बोलूँ नरेंद्र बाबू? हम लोगों का सर नीचा हो गया। समाज में हम लोग अब मुँह दिखाने लायक नहीं रहे।'¹⁹ माँ भी नरेंद्र का ही पक्ष लेते हुए बोलती है, 'प्रिया तू..? तेरी इतनी हिम्मत..चंडाल..तू जनमते ही मर क्यों नहीं गई? मेरी इज्जत लेने के लिए ही पैदा हुई है?'²⁰

परंतु प्रिया अपनी समस्त संपत्ति के साथ-साथ बारह वर्षीय पुत्र संजू को भी पिता के ही पास छोड़कर अपने अस्तित्व की स्थापना के लिए निकल पड़ती है। यह सोचकर कि उसे भी पिता के ही संस्कार व विचार मिले हैं। अतः वह भी पिता के समान ही बनेगा, वह अपने मातृत्व को भी छोड़ देती है। शेष बचे जीवन को अपनी इच्छानुसार जीने की जिद उसे सामाजिक बँधे-बँधाए नियमों को तोड़ने की हिम्मत देती है। प्रिया अपना अलग घर लेकर रहने लगती है तो सौतेली सास व नंद नीना भी उसी के पास आ जाते हैं। अब वह व्यापार में ही मन लगाती है तथा स्वयं को स्थापित भी करती है। 'अब वह जान चुकी थी कि औरत को ईमानदारी, वफ़ादारी, प्यार व समर्पण के शाब्दिक भ्रम में रखा जाता है, ताकि वह इन्हीं में खोई रहे। कभी इस गुफा से निकल न पाए, युगों से चली आ रही इन परंपराओं का पालन करती रहे।'²¹ लेकिन वह इस अँधेरी गुफा से बाहर निकलती है व समाज की कठिनाइयों का सामना करते हुए आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करती है, क्योंकि आर्थिक रूप से पराधीन होना नारी-शोषण का सबसे बड़ा कारण है। प्रिया स्वयं की स्थिति का विश्लेषण करती हुए सोचती है, 'आज यहाँ अपने परिचित माहौल से दूर, सारे सहारे जब निचुड़ जाते हैं, तब प्याज़ के छिलकों की तरह कोई पत-दर-पत खोलता चला जाता है, तब हमारा अपना वास्तव, वह जो कुछ भी बाहरी दुनिया के साथ संघात के दौरान मैंने आत्मसात् किया था, सतह पर तैर आता है। ज़रूरत है उसे पहचानने की। कितना चमत्कृत करता है खुद की नियति का स्वीकार, उस समय, जब आपको लगता है कि अब आप परिस्थितियों के हाथों की कठपुतली मात्र नहीं हैं? उस विराट की प्रक्रिया में कैसे हमारे छोटे-छोटे प्रयास मिटते चले जाते हैं, यह भाव ही हमें कितना बड़ा आत्मविश्वास देता है?'²²

इस प्रकार प्रिया अपने सड़े हुए संबंधों को उतार फेंकती है। वह चिड़िया के समान पंख फैलाकर खुले आकाश में उड़ना चाहती है। ज़मीनी रिश्ता अब उसे अपने भ्रमजाल में नहीं बाँध सकता। वह कई बार टूटी है। बोकी, भाटा, भंगन, चांडाल आदि समस्त विशेषणों से मुक्त होकर व्यापार की बाह्य दुनिया में वह अपना आधिपत्य स्थापित करती है, जो उसे समाज में नई पहचान व आंतरिक शक्ति प्रदान करता है। सामाजिक विकृतियों व सांस्कृतिक रूढ़िवादियों को तोड़ वह समाज में मनचाहा स्थान प्राप्त करती है। 'इंडिया टुडे' में उसका फोटो छपता है—'ए ग्रेट बिजनेस इंटरप्राइजर मिसेज प्रिया अग्रवाल'²³—मानो यह सम्मान उसे समाज व परिवार से प्राप्त समस्त यातनाओं, मानसिक पीड़ाओं व अपमानों का प्रतिशोध है।

अस्तु, प्रभाजी ने अपने उपन्यास 'छिन्नमस्ता' में नारी की अस्मिता के प्रश्न के साथ नारी मन की चुनौतियों को प्रस्तुत कर पाठक के मन को छुआ है तथा समाज को जाग्रत करने

का प्रयास किया है। उच्च मध्यमवर्गीय मारवाड़ी समाज की स्त्री, (जिसकी दुनिया पापड़, मँगोड़ी, अचार, हीरे के सैट बनवाने-तुड़वाने तक ही सीमित होती है) द्वारा समाज में व्याप्त रूढ़िवादी परंपराओं व विकृतियों से टकराकर अपनी अस्मिता को बचाए रखने के प्रयास का सुंदर चित्रण 'छिन्नमस्ता' में किया गया है। प्रिया ने आजीवन संघर्ष किया। भाई के अत्याचार के विरुद्ध, श्वसुर की दूसरी पत्नी को स्वीकार कर सामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध तथा पति की अमानवीयता व शोषण के विरुद्ध विद्रोह कर वह सड़ी-गली सामाजिक कुरीतियों को तोड़ने का प्रयास करती है। अपने इस संघर्ष में वह पग-पग पर भावनात्मक रूप से आहत भी होती है, परंतु कभी अपने साहस को नहीं छोड़ती। 'जीवन की तमाम विसंगतियाँ प्रभाजी की नायिका को बल व साहस प्रदान करती हैं। वह समझौते के लिये पुरुष पात्र के पास गिड़गिड़ाती नहीं, अपितु अपना रास्ता खुद तय करती है। अपने अस्तित्व की पहचान की ललक में प्रभाजी की संपूर्ण चेतना व करुणा अंततः अस्तित्व की जागरूकता का बिगुल बन जाती है। उनके नारी पात्र अपने 'स्व' की स्थापना के लिए आपको अपने साथ चलने के लिए मजबूर करते हैं। पुरानी सड़ी-गली मान्यताओं को छोड़कर एक नवीन सामाजिक व्यवस्था को बनाने के लिए वह कृत संकल्प हैं।'²⁴

संदर्भ

1. प्रसाद के नाटक और भारतीय अस्मिता, सं० डॉ० सुरेशचंद्र गुप्त, पराग प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1990
2. छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, पृ० 28, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2004
3. वही, पृ० 28
4. वही, पृ० 27
5. वही, पृ० 29
6. वही, पृ० 51
7. वही, पृ० 101
8. वही, पृ० 49
9. वही, पृ० 18
10. वही, पृ० 54
11. 'छिन्नमस्ता', प्रभा खेतान, पृ० 119
12. वही, पृ० 133
13. वही, पृ० 152
14. वही, पृ० 152
15. वही, पृ० 10
16. वही, पृ० 215
17. वही, पृ० 166
18. वही, पृ० 176
19. वही, पृ० 173

20. वही, पृ० 172
21. महिला उपन्यासकार', डॉ० मधु संधु, पृ० 47
22. छिन्नमस्ता, पृ० 23
23. वही, पृ० 14
24. प्रभा खेतान का औपन्यासिक संसार', डॉ० उषा कीर्ति राणावत, पृ० 177, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2005

द्वारा अवंतिका बुक डिपो
मतिया महल
सहारनपुर 247001 (उ०प्र०)
मो० 09837782800

स्त्री-विमर्श के आर्थिक तत्त्व एवं चित्रा मुद्गल की कहानियाँ

कु० संध्या शोधछात्रा

हिंदी एवं पत्रकारिता विभाग

दी०द०उ०गो० विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ०प्र०)

विगत कुछ वर्षों से देश में औद्योगिकरण तेज गति से हुआ है। साथ ही देश की जनसंख्या में भी वृद्धि हुई है, लेकिन इधर कल-कारखानों में कार्य करने वाली स्त्री मजदूरों की संख्या कम हो रही है, यह एक चिंता का विषय है। शिक्षा के क्षेत्र में स्त्रियों ने विगत बीस वर्षों में संतोषजनक वृद्धि की है। कहीं वे नाममात्र की डायरेक्टर बनाई गईं, तो कहीं वैज्ञानिक। किंतु वास्तविकता यह है कि उद्योग-प्रबंध में स्त्रियों को अभी तक कोई स्थान नहीं मिला है। पुरुष प्रधान समाज इस सच्चाई को अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए कैसे झुठलाता है। आए-दिन यह बात कहीं-न-कहीं सुनने को अवश्य मिल जाती है कि स्त्रियों के नौकरी में आने से पुरुषों को काम नहीं मिलता है। विवाह, घर-परिवार और नौकरी के बीच झूलती-जूझती, उलझती, टूटती, बाँधती और आत्मविश्वास प्राप्त करती हुई स्त्री को कितने संघर्ष करने पड़ते हैं तथा उसे दोहरी भूमिका का निर्वाह करते हुए किस प्रकार से अपनी शक्ति एवं समय खर्च करना पड़ता है। इस समस्या का यथार्थांकन चित्रा मुद्गल ने अपनी कहानियों में बखूबी किया है। जिनकी नायिकाएँ अर्थ के लिए संघर्ष करती हुई दांपत्य और नौकरी के बीच सामंजस्य बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील हैं, जिससे वे अपने परिवार की खुशहाली बरकरार रख सकें। नौकरीपेशा स्त्री और धन के लिए अथक् प्रयत्नशील स्त्री की छवि चित्रा मुद्गल के कहानियों में विस्तार से उभरी है, वह कहीं अविवाहित रहकर अपने परिवार का पालन-पोषण कर रही है, तो कहीं अपने मासूम बच्चे को शिशुपालन गृह में छोड़कर घर की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए प्रयत्नशील है, कहीं भाड़ी-खटका करके, तो कहीं जमादारिन का काम करके धनार्जन कर अपने परिवार का भरण-पोषण करती है।

आज के युग में लोगों के लिए धन ही भगवान और ईमान हो गया है। आज की युवा-पीढ़ी के लिए अर्थ की अहमियत इतनी अधिक है कि व्यक्ति के गुण, संस्कार और प्रतिभा का कोई मोल नहीं रह गया है। भौतिक सुख-सुविधाओं के पीछे भागती युवा-पीढ़ी अपने व्यक्तित्व को छिछला और मूल्यहीन बना रही है। इसका उदाहरण लेखिका के 'लाक्षागृह' और 'ट्रेन छूटने तक' कथा में मिलता है। 'लाक्षागृह' कथा में सिन्हा सुनीता से इसलिए शादी करना चाहता है, ताकि सुनीता उसके परिवार का आर्थिक बोझ उठा सके। सिन्हा के सहयोगी उसे सुंदर

लड़की से विवाह के लिए प्रेरित करते हैं, किंतु पैसों का आकांक्षी सिन्हा कहता है—‘छोड़ यार। तालीवाली ही सही। घर की हालत तुझसे छिपी नहीं। आठ सौ रुपए कमाने वाली कहाँ मिलेगी।’¹ लेकिन जब वह यह सुनता है कि सुनीता नौकरी छोड़ रही है, तब अपने उद्देश्यों को पूरा न होते पाकर उत्तेजित हो उठता है और सुनीता से फ़ोन पर कहता है—‘तुम बदशक्ल ही नहीं, बेअक्ल भी हो। शादी के बाद भी तुम्हें नौकरी करनी है, पारिवारिक ज़िम्मेदारी मैं अकेला नहीं ढो सकता।’² वहीं सुनीता अपने भविष्य के लिए रखी जमापूँजी भी सिन्हा के झूठे प्रेमपाश में पड़कर गवाँ बैठती है, किंतु जब सत्य उसके सामने आता है तो अपने आत्मसम्मान का सौदा नहीं करती और विवाह से इंकार करती है।

‘ट्रेन छूटने तक’ कहानी में शुभा अपने पिता की मृत्यु के बाद घर की आर्थिक ज़िम्मेदारी सँभालती है। उसकी माँ, भाई के बार-बार फेल होने पर भी उसकी पढ़ाई नहीं छुड़वाती है। शुभा की माँ नहीं चाहती है कि उसकी बेटी शादी करे। उसका भाई पिछले नौ महीने से नौकरी करता है, किंतु माँ को घरखर्च के लिए एक पैसा नहीं देता। उल्टा रुपयों की आवश्यकता पड़ने पर स्वयं माँ से ही माँग लेता है। शुभा जब माँ से शिकायत करती है तो माँ उसे ही डाँटती है—‘तुम्हें तो सुरेश की जलन खाए जा रही है।’³

‘बलि’ कहानी में ठाकुर बलभद्रसिंह अपनी पुत्री के लिए पैसे वाले जमींदार घराने में विवाह की आकांक्षा रखते हैं। तेरह वर्षीय करुआ की बलि अपना सामंती रौब बनाए रखने के लिए चढ़ा देते हैं। वह अपनी एकलौती बेटी शिवकला कुँवर का विवाह किसी बड़ी रियासत में करना चाहते हैं। बलभद्रसिंह स्पष्ट रूप से कहते हैं—‘हमारे कुल में लगन-ब्याह रियासतों की भाँवरे होती हैं, वर-वधू का गठजोड़ नहीं। बत्तीसों गुण अनुकूल होने के बावजूद बिटिया का हाथ किसी ऐरे-गैरे कुल में देना हमारे लिए संभव नहीं।’⁴ यहाँ लेखिका ने स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है कि जमींदारों के लिए जितनी अपनी रियासतें महत्त्वपूर्ण हैं, उतनी अपनी संतानों की सुख संतुष्टि नहीं। बलभद्रसिंह की पुत्री का विवाह मंगल हेतु करुआ के परिवार को साढ़े तीन एकड़ साग-भाजी उगाने की जमीन और तीन सौ रुपया महीना देने वाली फलवारी के पट्टे के बदले उसके जान को कीमत के रूप में वसूलते हैं।

आर्थिक रूप से कमज़ोर ग़रीबों का जीवन कितना बेबस, दयनीय और तंगहाल होता है, इसका वर्णन लेखिका की ‘लेन’ कहानी में प्रस्तुत है। महेंदरी का पति दिनभर रिक्शा चलाता है। अथक् परिश्रम के बावजूद उसके परिवार को दो वक्त का भरपेट दाना नसीब नहीं होता। महेंदरी अपने घर को चलाने के लिए कोठीवालों के कुछ घरों में जमादारिन का काम करती है। उसके बदले लोग उसे पाँच रुपए भी देने में कतराते हैं। यथा—‘वे चाहते हैं कि वह अभी तीन रुपए महीने पर तीसों दिन उनका पखाना धोती रहे और कूड़ा फेंकती रहे। तीन रुपए भला होते क्या हैं? किलो भर आलू भी नहीं मिलता आज के जमाने में।’⁵ यहाँ चित्रा मुद्गल ने बढ़ रही महँगाई की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट कराया है, जिसके कारण ग़रीबों की स्थिति और भी दयनीय हो रही है। ऐसी तंगहाली में महेंदरी डेढ़ रुपए भी खर्च करने में घबराती है। उसके घर का आलम यह है कि घर के तांबे-पीतल के हंडे-बटुए भी बिक चुके हैं। उसके घर के बच्चे महीनेभर से एक साथ चावल-दाल खाने के लिए तरसते हैं।

उसी प्रकार ‘त्रिशंकु’ कहानी में सीताबाई अपने बच्चों को पालने के लिए भाड़ी-खटका

करती है। पति फैक्टरी में नौकरी करते हुए अपने पैसों से दारू पीकर पड़ा रहता है। विरोध करने पर पत्नी की पिटाई करता है। यहाँ तक सीताबाई के पास अपने सिर पर लगी चोट पर पट्टी बँधवाने के लिए तक पैसा नहीं है। वह चोट पर हल्दी चूना रखकर अपना उपचार करती है। पति के अमानवीय कुकृत्य से डरकर सीताबाई अपनी बेटी कमला को जोशी मैडम के घर सेवा-टहल में लगा देती है। वहीं उसका बेटा बंडू घर के वातावरण और तंगहाली से ऊबकर बालश्रमिक बनकर पैसा कमाना चाहता है।

‘केंचुल’ कहानी में कमला अपने बच्चों को पालने के लिए दारू की भट्टी लगाती है। उसको कर्ज देने वाला साहूकार जब उसकी बेटी सरना से अश्लील हरकत करता है, तो भी उसका विरोध नहीं कर पाती। उसी प्रकार कमला की बेटी सरना अपनी माँ का अधिक सहयोग करने के लिए सुबह साग-भाजी की फेरी और शाम को स्टेशन पर बाटी लगाती है। वह अपनी माँ को आश्चर्य करती है कि ‘चार घंटे की मेहनत के पिच्छू तीन-चार रुपयों का मुनाफा कम थोड़े ही है।’⁶ यहाँ लेखिका ने इस बात को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया है कि जहाँ स्त्रियाँ परिवार के प्रति अधिक जिम्मेदार होती हैं, वहीं विष्णू जैसे घर के मुखिया दारू के नशे में घर को फूँक सिर्फ तमाशा देखते हैं।

‘लिफाफा’ कहानी में लेखिका ने युवाओं में बेरोजगारी की समस्या से उत्पन्न हताशा, कुंठा एवं निराशा को चित्रित किया है। नौकरी की तलाश में दर-ब-दर भटकने के बाद भी अशोक जैसे प्रतिभावान युवक को जब नौकरी नहीं मिलती है, तो वह अपने परिवार में उपेक्षित होता है। बेरोजगार होने के कारण वह मानसिक रूप से हताश होकर बेरोजगारी का कारण लड़कियों को मानता है। एक उदाहरण देखने योग्य है—‘रही लड़कियों की बात, तो अपने-आप में एक सिफारिश हैं... भला उन्हें सिफारिश की क्या जरूरत? जमाना ही लड़कियों का है। घर, सड़क, दफ्तर, बाग-बगीचे, रेलवे प्लेटफॉर्म, फुटपाथ, बाजार, दुकानें, जहाँ देखो वहीं लड़कियाँ ही लड़कियाँ उमड़ी चली आ रही हैं टिड्डियों के दल-सी। यह युवकों में जो बेकारी की बाढ़ आ गई है, लड़कियाँ ही जिम्मेदार हैं।’

उसका मानना है कि यदि लड़कियाँ घर में चूल्हा-चौका निपटातीं तो लड़के निठल्ले बेरोजगार नहीं घूमते रहते। वह लड़कियों को घर की शोभा मानता है। जो पैरों में पायल पहनकर, सिर पर पल्लू डाले, माँग में चुटकीभर सिंदूर लगाकर पति, सास, ससुर की सेवा टहल करें। ऐसी व्यर्थ की धारणा को लेखिका कोई स्थान नहीं देती हैं। यहाँ लेखिका कहती हैं कि अर्थ कमाकर देने वाला स्त्री हो या पुरुष उसको समाज और परिवार दोनों सम्मान देते हैं। अपने ही घर में पहले लड़की उपेक्षित होती थी, लेकिन नौकरी मिलने के बाद उसको घर-परिवार में सम्मान मिलता है। यहाँ अनु और रेखा जैसी कार्य-कुशल स्त्रियों को प्रतिष्ठित किया है, जो आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होकर अपनी क्षमता और प्रतिभा को प्रसारित कर रही हैं।

‘सौदा’ कहानी में भोली-भाली ग्रामीण परिवेश में पली-बढ़ी गेंदा जैसी मासूम लड़की शहरी नौकरी के आकर्षण में फँसकर धोखे और षड्यंत्र का शिकार हो जाती है। चंदू नामक ड्राइवर नौकरी का लालच देकर उसे शहर में लाता है—‘बोला हमारे संग शहर चल, अपने सेठ के घर नौकर रखवाय देंगे। पाँच सौ रुपिया तनख्वाह मिली। रहना-खाना घर पर ही, अपने लिए बचा-बुचू के माई को मनीआर्डर करवाती रहना... हमहु सोचे पैसा पाय के भाई की रिस जाती

रहेगीपचास रुपिया दिया। बोला, अपने संग हम ठेला में लिवाय चलेंगे। हम..।⁸ चंदू उसे शहर लाकर नौकरी का झाँसा देकर लालूदलाल के हाथ चार हजार में बेच देता है।

‘भूख’ एवं ‘चेहरे’ कहानियों में भिक्षाटन की समस्या को उजागर किया गया है। आज गरीबी और आर्थिक दयनीयता के कारण लोगों में भिक्षावृत्ति की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। लोग भीख को धंधे के रूप में अपनाकर अपना भरण-पोषण करते हैं। घर के अभाव में रेलवे प्लेटफार्म, सिनेमाघरों एवं विद्यालयों जैसे सार्वजनिक स्थलों में उठते-बैठते, मल-मूत्र करते, स्थानों को गंदा करते हैं। चित्रा मुद्गल ने भिखारियों द्वारा होनेवाले गोरखधंधों को अभिव्यक्त किया है, जिनमें युवा भिखारिनें अपने बच्चों द्वारा लोगों की जेब कटवाती हैं। इनके इशारों पर जेब कटी का धंधा धड़ल्ले से चल रहा है। वर्तमान समय में भीख माँगना मजबूरी नहीं है, न उसका ताल्लुक पेट भरने से है और न तन ढकने से है। भीख माँगना एक पेशा हो गया है।

‘भूख’ कथा में चित्रा मुद्गल ने भिक्षावृत्ति के अमानवीय पक्ष को दर्शाया है। लक्ष्मा पति की मृत्यु के बाद बच्चों को पालने के लिए मेहनत तो करना चाहती है, किंतु उसे कोई काम नहीं देता। जो औरत अनाज के कचरे में से अपने बच्चों के लिए घुघरी बनाने के लिए अन्न के दाने चुनकर लाती है उसके कलेजे की लाचारी और पीड़ा निश्चित ही उसकी छाती पर धँसी अवमानना की कीलों से कम गहरी और छरछराहट पैदा करती हुई न होगी। लक्ष्मा की बेबसी स्तब्ध करने वाली है। लक्ष्मा के सामने अपने तीन बच्चों के भरण-पोषण की समस्या है। आर्थिक अभाव के कारण लक्ष्मा बच्चों के साथ आत्महत्या करने की सोचती है। सब तरफ से हताश परेशान लक्ष्मा अपने छोटू को इसलिए भिखारिन को दे देती है कि ‘बच्चे बच सकते हैं। उपाय है—अगर छोटू को उस भिखमंगी औरत को किराए पर दे तो? छोटू का पेट भरेगा—ही भरेगा, दो रुपए ऊपर से जो मिलेगा। उसमें किल्लो-भर मोटा चावल आ जाएगा। बड़े और मँझले के पेट में भी दाने पड़ जाएँगे।⁹ किंतु बच्चे को भूखा रखकर अपने धंधे को खूब चलाती है और बच्चे की भूख से जान चली जाती है।

माँ की ममता अखंड और अपनी सभी संतानों पर एक समान होती है, किंतु ‘अभी भी’ कहानी में कमाऊ पुत्र की ऊँची तनख्वाह और बैंक-बैलेंस की क्षमता ने माँ के हृदय में भी संध लगाकर इस जनमान्यता को गलत साबित किया है। बीजी अपनी पुत्रवधू शिल्पा को अपने झूठे ममत्व और दुलार में इसलिए फाँसे रखती है ताकि वह मुकेश के पैसों को हड़प सके। शिल्पा के देवर, सास और नंद भी उसके पैसों से ही अपनी सुख-सुविधा जुटाना चाहते हैं। पाँच लाख की रकम टूटते-टूटते उसके पास मात्र सवा-डेढ़ लाख की रकम बचती है, जिसे वह अपने बेटे किशु के भविष्य के लिए रखना चाहती है, परंतु उस पर भी उसके देवर और अनिल की गिद्ध दृष्टि लग जाती है।

पूर्व पति की जमापूँजी शिल्पा के दैहिक और मानसिक शोषण का कारण बनती है। अंततः शिल्पा झल्लाकर जब पैसा देने से इंकार करती है, तो उसका देवर मिट्टी का तेल उड़ेलकर उसकी हत्या करने की कोशिश करता है। तब उसकी सास का असली चेहरा भी सामने आ जाता है—‘बस कर बेहया... बाप तो नौकरी करवाने ले जा रहा था, नौकरी करती तो साल-डेढ़ साल के भीतर ही किसी संगी-साथी से दीदे लड़ा मेरे बेटे की सारी कमाई डकार ले जाती डायन! तुम सबों का ऊँचा-नीचा सोच होशियारी बरती मैंने, घर का पैसा घर की ही चुनाई में

लगे आबरू ऊपर बनी रहे...।¹⁰ इस प्रकार धन के लालच में स्त्री के शोषण को चित्रा मुद्गल ने 'अभी भी' कहानी में बहुत ही संजीदगी के साथ प्रस्तुत किया है।

उसी प्रकार 'मुआवजा' कहानी में शैलू अपने पति से छः वर्षों से अलग रह रही थी, किंतु उसकी अचानक मृत्यु हो जाने पर उसका पति मृत्यु से प्राप्त मुआवजा के लिए हक जताने पहुँच आता है। शैलू के माता-पिता अपनी बेटी की इच्छा पूरा करने के लिए प्राप्त मुआवजे की रकम को वनिता आश्रम को दान करना चाहते हैं, परंतु उसका पति मुआवजे के कागज़ात प्रमाण पत्रों सहित एयर इंडिया के मुख्यालय में दाखिल कर देता है और उसके माता-पिता से फ़ोन पर स्पष्ट रूप से कहता है—'मुआवजे की रकम 'वनिता आश्रम' को दान करने का अधिकार आप लोगों को कैसे मिल गया? मैं शैलू का पति हूँ, उसकी किसी भी प्रकार की संपत्ति पर मेरा अधिकार पहले बनता है, चाहे तिजोरी में रखूँ या कूड़े में झोंक दूँ।'¹¹ इस प्रकार पति होने का दावा कर उसके मुआवजे की मिली राशि को हड़पना चाहता है।

निष्कर्षतः, आर्थिक स्वावलंबी होने के कारण भी नौकरीपेशा स्त्री का जीवन सामान्यतः बिखरा हुआ है। चित्रा मुद्गल की कहानियों में नायिकाओं का जीवन संघर्षमय है। वहीं वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनकर अपने घर-परिवार का सहयोग करती हैं तथा कहीं अर्थ के लिए संघर्षशील हैं। कहीं-कहीं अर्थ के लिए अपने ही पारिवारिक संबंधियों—माँ, भाई, पिता, सास, पति आदि द्वारा मानसिक और शारीरिक शोषण की शिकार होती हैं, लेकिन हार नहीं मानती हैं। अपनी प्रतिभा और क्षमता के बल पर पुरुषों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर चलती हैं। इस प्रकार चित्रा मुद्गल ने स्त्री-विमर्श के आर्थिक तत्त्वों को अपनी कहानियों में वैविध्यतापूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है।

संदर्भ

1. आदि-अनादि, भाग 1, चित्रा मुद्गल, पृ० 239
2. वही, पृ० 241
3. वही, पृ० 45
4. वही, भाग 3, चित्रा मुद्गल, पृ० 206
5. वही, भाग 2, चित्रा मुद्गल, पृ० 139
6. वही, भाग 1, चित्रा मुद्गल, पृ० 59
7. वही, भाग 2, चित्रा मुद्गल, पृ० 27
8. वही, पृ० 232
9. वही, भाग 2, पृ० 103
10. वही, भाग 3, चित्रा मुद्गल, पृ० 19-20
11. वही, भाग 2, पृ० 252

सुपुत्री श्री हरिप्रसाद
म०नं० 1175, आवास विकास कालोनी
कुनराघाट, गोरखपुर 273008 (उ०प्र०)
मो० 09455671156

हिंदी-आलोचना में डॉ॰ रामविलास शर्मा का योगदान

डॉ॰ रणधीरसिंह

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष

स्नातकोत्तर हिंदी-विभाग

दयालसिंह पी॰जी॰ कॉलेज, करनाल

आलोचना की प्रवृत्ति मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। हम भिन्न-भिन्न वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करना, उन्हें जानना, भली प्रकार समझना और समझाना चाहते हैं। दृश्यमान जगत् की समस्त वस्तुओं के संबंध में हमारी रुचि-अरुचि, आकर्षण-विकर्षण तथा अन्य अनेक प्रतिक्रियाएँ प्रकट होती हैं। वस्तु के यथार्थ के रूप में जिज्ञासा, उसे जानकर उसके प्रति बौद्धिक और मानसिक प्रतिक्रिया, उस का मूल्य-मापन चेतन मानव का स्वभाव है। यही वस्तु को समझना, समझाना उसके संबंध में निर्णय देना उसकी समीक्षा या समालोचना है। साहित्य समीक्षा से अभिप्राय है—साहित्य या साहित्यिक रचनाओं का ज्ञान, रसास्वादन, उनकी परख, उनकी उत्पत्ति, स्वरूप, तत्त्व, भेद, अंग-प्रत्यंग, गुण-दोष, प्रभाव और महत्त्व तथा सब प्रकार का मूल्यांकन। यदि हम इसे सही परिभाषित करें तो कह सकते हैं कि साहित्य-आलोचना गद्य-साहित्य की वह विधा है जिसमें साहित्यिक-रचनाओं के अंतर-बाह्य गुणों, भावों, विचारों, कला-कौशल आदि सब तत्त्वों का निष्पक्ष भाव से सम्यक् अनुभव, विवेचन तथा उनके महत्त्व के संबंध में ऐसा विधेयात्मक निर्णय दिया जाता है, जिससे साहित्य और साहित्यकार तथा पाठक का पथ-प्रदर्शन होता है।

साहित्य के जन्म के साथ ही आलोचना का आरंभ हो गया होगा। आरंभ में आलोचना का स्वरूप सुधारवाद या निंदा के रूप में प्रकट की गई उक्ति का रूप ही होगा। इसी प्रशंसा निंदात्मक उक्ति-रूप आरंभिक आलोचना का विकास कालांतर में सूक्ति-रुचि समीक्षा के रूप में हुआ। साहित्य के विकास के साथ विविध समीक्षा प्रणालियों तथा समीक्षा-भावों का विकास हुआ। हमारे प्राचीन संस्कृत-साहित्य में सैदांतिक तथा व्यावहारिक समीक्षा की एक सुदीर्घ परंपरा मिलती है। व्यावहारिक समीक्षा अनेक रूपों में प्रचलित और विकसित हुई है जैसे सूक्ति रूप समीक्षा, प्रभाववादी समीक्षा, सौष्टववादी या सौंदर्यवादी समीक्षा, रसवादी समीक्षा, तुलनात्मक समीक्षा, ऐतिहासिक समीक्षा, मनोवैज्ञानिक समीक्षा, काव्यशास्त्रीय आलोचना, समाजशास्त्रीय आलोचना या मार्क्सवादी आलोचना, व्याख्यात्मक आलोचना प्रणाली, सुधार या सुझावपरक आलोचना, हिंदी की शोधपरक समीक्षा—इस प्रकार हिंदी में आलोचना साहित्य का खूब विकास हुआ है और हो रहा है।

डॉ॰ रामविलास शर्मा मार्क्सवादी चिंतक और समीक्षक हैं। अंग्रेजी के अध्येता और

शिक्षक होते हुए भी उन्होंने हिंदीभाषा और साहित्य के गौरव की रक्षा के लिए निरंतर संघर्ष किया जिसका आरंभिक दस्तावेज है 'फिराक और हिंदी' शीर्षक प्रसिद्ध लेखमाला। शर्मा जी का अध्ययन विस्तृत और गंभीर है तथा उनकी दृष्टि प्रगतिशील, साहित्यिक एवं शोधपरक है। साहित्य एवं समीक्षा को वे इसी दृष्टि से देखते और व्याख्यायित करते हैं। डॉ० शर्मा को हिंदी का सर्वाधिक विवादास्पद एवं विध्वंसात्मक समीक्षक भी कहा गया है, जो इस अर्थ में सार्थक है कि प्रगतिशील चेतना के विरोधी स्वरो को उन्होंने गंभीर किंतु आक्रामक जवाब दिया है। हिंदी-समीक्षा की प्रगतिवादी धारा के स्वरूप को विश्लेषित एवं संश्लेषित करने में उन्हें जहाँ भी दिक्कतें आई हैं-वहाँ उन्होंने गंभीर आक्रामक रुख अपनाया है। डॉ० भारती और पंत जी की उनकी समीक्षाओं को इसी संदर्भ में देखना युक्तियुक्त है। शर्मा जी प्रगतिशीलता के प्रति प्रतिबद्ध हैं और उसे मानव के विकास के लिए आवश्यक मानते हैं। उनका क्षेत्र व्यावहारिक समीक्षा है और इस क्षेत्र में उनका योगदान उल्लेखनीय है। वास्तव में उनका सिद्धांत विश्लेषण भी व्यावहारिक धरातल पर हुआ है, इसीलिए उसमें एक ताजगी तथा उत्तेजन है।

डॉ० शर्मा मार्क्सवादी समाजवाद की राजनीति से पृथक् उसके साहित्यिक स्वरूप के विश्लेषक हैं। उनका समीक्ष्य है हिंदी-साहित्य। उसकी सांस्कृतिक-सामाजिक पृष्ठभूमि का वे अपनी प्रगतिशील दृष्टि से पुनर्मूल्यांकन करते हैं, जो समाजवादी चिंतन की अपनी विशिष्टता है। वे कहते हैं- 'फरहाद ने कोह काटकर नहर निकाली थी। साहित्य की अमर सरिता भी आर्थिक और राजनीतिक उत्पीड़न के महापर्वत को काटकर प्रवाहित की जाती है। अपनी कुदाल फेंककर इस पर्वत की एक चट्टान के नीचे बैठा हुआ साहित्यकार कल्पना की आकाश-गंगा से धरती के हृदय को सरस नहीं बना सकता।" जीवन को बनाने वाली परिस्थितियों के संघर्ष से अलग हटकर किया गया साहित्यिक प्रयास उनकी दृष्टि से साहित्य नहीं बनता। उपयोगिता के भयावह पहलुओं का उद्घाटन कर इसकी कितनी भी आलोचना क्यों न की जाए, किंतु आर्थिक और राजनीतिक धरातल आज के यथार्थ के ठोस धरातल हैं, इसे नजरअंदाज करना आज के संघर्ष से हटना कहा जाएगा। यथार्थ की इन दो शक्तियों के कारण ही समाज में वर्ग-संघर्ष है और इस संघर्ष में सर्वहारा या जनसाधारण सदा से उत्पीड़ित है। इस संघर्ष में साहित्यकारों एवं कलाकारों के भी दो वर्ग रहे हैं। इनके नाम चाहे जो भी रहे हों, किंतु एक, सर्वहारा वर्ग का पक्षधर और दूसरा, साधन संपन्नवर्ग का पक्षधर रहा है। प्रगतिशील दृष्टि के अनुसार-चूँकि वर्ग-संघर्ष सामाजिक व्यवस्था के आरंभ से ही उद्भूत है, अतएव चिरंतन है और इसलिए वह पक्षधरता भी अनिवार्य है। सर्वहारा का पक्षधर बनकर ही साहित्यकार प्रगतिशील शक्तियों को विकासमानता दे सकता है। इसी परिप्रेक्ष्य में हिंदी-साहित्य को समीक्षित करने का शर्मा जी का प्रयास हिंदी के लिए एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

अपनी जमीन से जुड़े बिना कोई साहित्य यथार्थवादी नहीं हो सकता और उसकी प्रगतिशीलता कोरी फ़ार्मूलाबद्ध हो जाएगी। भारतेंदु, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, आचार्य शुक्ल, प्रेमचंद तथा निराला पर उन्होंने इसी दृष्टि से विचार किया है। इन रचनाकारों-समीक्षकों पर प्रस्तुत उनकी समीक्षा-पुस्तकें आधुनिक हिंदी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास बनाती हैं। व्यक्ति-जीवन से जुड़े मानसिक, आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिवेश का उसके तथा उसके साहित्यिक विकास पर किस तरह प्रभाव पड़ता है, इस दिशा में उनकी पुस्तक 'निराला की साहित्य साधना'

(प्रथम खंड) और 'नयी कविता और अस्तित्ववाद' में संकलित 'मुक्तिबोध पुनर्मूल्यांकन' प्रबंध के कतिपय अंश द्रष्टव्य हैं। व्यावहारिक धरातल पर प्रगतिशील समाजवादी सिद्धांतों के प्रयोग पर केंद्रित रहने के कारण उन्होंने साहित्य तत्त्वों को भी उसी प्रसंग में व्याख्यायित किया है। एंगेल्स की साहित्यिक टिप्पणियाँ इस दिशा में उनका मार्गदर्शन करती हैं। प्रगतिशीलता के बारे में उनकी स्पष्ट राय है कि साहित्यकार जनसाधारण का पक्षधर बनकर ही प्रगतिशील हो सकता है।² इसके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की प्रगतिशीलता उन्हें स्वीकार्य नहीं है। जनसाधारण की आशाओं-आकांक्षाओं तथा संघर्ष को अभिव्यक्ति देने वाला साहित्य समाज के इतिहास से पृथक् अपना कोई अस्तित्व नहीं रखता। उन्हीं के शब्दों में- 'साहित्य के मूल्य स्थायी हैं, निरपेक्ष रूप से नहीं, सापेक्ष रूप से, देशकाल से परे नहीं, देशकाल की सीमाओं में निरंतर विकास करती हुई संचित सांस्कृतिक निधि के रूप में।'³ अर्थात् देशकाल की सीमा में सीमित समाज की यथार्थ अभिव्यक्ति के रूप में ही साहित्य के मूल्य स्थायी किंतु सतत विकासशील हैं। इसी आधार पर अपने प्राचीन साहित्य की जाँच की जानी चाहिए और साहित्यिक मूल्यों की प्रगतिशीलता का निदर्शन होना चाहिए। डॉ० शर्मा ने वाल्मीकि⁴ एवं भवभूति⁵ को इसी संदर्भ में परखा है। साहित्य के मूल्यों की समाज-सापेक्ष परीक्षा करके ही उन्हें सार्थक एवं प्रासंगिक बनाया जा सकता है, अन्यथा संदर्भ-च्युत होकर वे मात्र कलात्मक मनोरंजन एवं रहस्यात्मक अभिव्यक्ति बनकर ही रह जाते हैं।

वस्तुवादी होने के कारण शर्मा जी साहित्य को इंद्रियगोचर अभिव्यक्ति ही मानते हैं। अतींद्रिय अथवा अगोचर की संभावना में उनका विश्वास नहीं है। उनका कहना है- 'रूप और शब्द के बिना न तो संसार की सत्ता संभव है न साहित्य की।' मनुष्य और प्रकृति की यह रूपात्मक एकता साहित्य का भी मूलाधार है। इंद्रिय-बोध का परिष्कार इंद्रिय-बोध के सहारे कला की सृष्टि-यह अटल नियम मनुष्य के सामाजिक विकास के आदिकाल से चला आ रहा है। मनुष्य के इंद्रिय-बोध में आदिकाव्य से लेकर आज तक मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ।⁶ यानी इंद्रिय-बोध का मूल स्वरूप और प्रक्रिया वही रहने पर भी सामाजिक विकास के साथ उसमें गुणात्मक परिवर्तन हुआ है। डॉ० शर्मा लिखते हैं कि 'मनुष्य का इंद्रिय-बोध उसके सामाजिक विकास के साथ आरंभ नहीं हुआ, वह अपरिष्कृत रूप में उसके साथ पहले से था। इसलिए उसे सामाजिक परिस्थितियों का सीधा बिंब मानना गलत है। साथ ही इंद्रिय-बोध का विकास सामाजिक विकासक्रम में ही संभव हुआ है, इसलिए वह समाज-निरपेक्ष नहीं है।'⁷ स्पष्ट है कि अपनी प्रगतिशील दृष्टि के अनुरूप शर्मा जी इंद्रिय-बोध के समाज-सापेक्ष स्वरूप की अभिव्यक्ति को ही साहित्य का विषय मानने के पक्षधर हैं। शब्द और चित्र द्वारा प्रभाव डालने के कारण साहित्य का प्रभाव सर्वाधिक होता है। अपनी रूपमयता के कारण वह चिंतनात्मक निष्कर्षों को भी रूपात्मक बनाकर अभिव्यक्त करता है, इसलिए किसी विचारधारा का फ़ार्मूलाबद्ध चित्र होना उसके लिए संभव नहीं है। लेकिन सामाजिक परिष्करण द्वारा ही वह प्रगतिशील एवं सार्थक होता है। यही कारण है कि मार्क्सवादी साहित्य में चित्र का नहीं, उसके पीछे छिपे हुए कथ्य का ही महत्व है।

डॉ० रामविलास शर्मा साहित्य का निर्णायक तत्त्व विषयवस्तु या कथ्य को ही मानते हैं। जिसके पास उच्च विचार या भावावेश एवं यथार्थ का ज्ञान नहीं, वह केवल कला के बल पर

उच्चकोटि का सृजन नहीं कर सकता। मूल वस्तु होने पर ही कलात्मक रूप दिया जाता है।⁸ अपनी पुस्तक 'आस्था और सौंदर्य' में जहाँ उन्होंने सौंदर्य की वस्तुगत सत्ता का ज्ञायजा सामाजिक विकास के संदर्भ में लिया है और कहा है कि सौंदर्य न तो विषयीगत है, न ही विषयगत, बल्कि दोनों के संघात में है, वहीं यह भी स्वीकार किया है कि 'साहित्य भी शुद्ध विचारधारा का रूप नहीं। उसका भावों और इंद्रिय-बोध से घनिष्ठ संबंध है। इससे स्पष्ट है कि ललित कलाओं को विचारधारा के रूप में गिनना सही नहीं है।'⁹ इससे स्पष्ट है कि शर्मा जी साहित्य में प्रगतिशीलता के पक्षधर होते हुए भी उसे किसी विचारधारा का पिछलग्गू बनाने के विरुद्ध हैं। समाज-सापेक्ष कलात्मक अभिव्यक्ति स्वतः प्रगतिशील चेतना की वाहक होती है।

डॉ० शर्मा साहित्य की विश्लेषणात्मक समीक्षा में सिद्धहस्त हैं। किसी साहित्य के गुण-दोष की पूरी व्याख्या वे अपनी समाज-सापेक्ष दृष्टि से करते हैं। उनका आग्रह विचारवादियों की तरह केवल विचारों पर ही नहीं, भावों पर भी है। 'निराला की साहित्य-साधना' (दूसरा-खंड) इस दृष्टि से उनकी साहित्यिक साधना की एक बड़ी उपलब्धि है। निराला की कला पर भी वहाँ विस्तार से विचार हुआ है। यह बात और है कि मौलिकता के आग्रहियों को वहाँ कोई नवीनता न मिले, पर यह नहीं भूलना चाहिए कि शर्मा जी नवीनता की अपेक्षा साहित्य की प्रगतिशील सार्थकता को अधिक महत्त्व देते हैं।

व्यक्तिवादी रुझान जब कला के नाम पर सामाजिक संघर्ष से हटकर मानसिक संघर्ष को ही अभिव्यक्ति देने लगता है तो ऐसे साहित्य की सार्थकता क्षरित होती है। मुक्तिबोध की वैयक्तिकता की आलोचना उन्होंने इसी तर्क पर की है।¹⁰ वे शब्दार्थ को भी उसके सामाजिक अर्थ पर निर्भर मानते हुए कहते हैं- 'शब्द संकेत मात्र हैं और अर्थ-विशेष के द्योतक इसलिए होते हैं कि सब लोग वैसा मानते हैं।'¹¹ यानी शब्दों का प्रयोग चाहे प्रतीकात्मक हो या बिंबात्मक अथवा व्यंग्यात्मक, उसे सामाजिक अर्थ पर ही निर्भर होना होगा अन्यथा केवल चौंकाने के अतिरिक्त उसकी कोई अर्थ-संहिति नहीं बैठ सकेगी। जैसा पहले स्पष्ट कर चुके हैं, शर्मा जी साहित्य में किसी विचारधारा की सुस्पष्ट अभिव्यक्ति के ही आग्रही नहीं हैं, इसलिए मार्क्स-दर्शन की अविकल निष्पत्तियों की खोज वहाँ नहीं करते। उनका इष्ट है-जनता की पक्षधरता और गतिशील सार्थकता। इसीलिए अस्तित्व-दर्शन से प्रभावित साहित्य की सामाजिक उद्भ्रांतता की वे आक्रामक आलोचना करते हैं। नई कविता के परिवेश की व्याख्या करते हुए वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि वह जिस परिवेश की अभिव्यक्ति है वह साम्राज्यवादी प्रक्रियाओं की देन है। उन्हीं के शब्दों में- 'साम्राज्यवाद के इस आर्थिक प्रभुत्व के साथ उसके सांस्कृतिक प्रभाव-विस्तार का सुनियोजित प्रयत्न किया गया। इस प्रभाव का एक पक्ष था, शिक्षा और राजनीति के क्षेत्र से प्रगतिशील विचारधारा को यथासंभव बाहर रखना, अँग्रेजी भाषा की स्थिति को और भी मजबूत बनाना। दूसरा पक्ष था ऐसी विचारधाराओं का प्रसार करना, जो स्वाधीन राष्ट्रों के आत्मविश्वास को समाप्त कर दें, मनुष्य के बारे में ऐसी धारणाओं का प्रसार करना, जिनसे मानव-प्रगति में विश्वास टूट जाय। भारत में इन नई परिस्थितियों में नयी कविता के आंदोलन का जन्म हुआ।'¹² यहाँ शर्मा जी का विरोध उसके उस आंदोलनात्मक रूप से है, जो प्रगतिशील चेतना के विकास में बाधक है।

डॉ० शर्मा आत्मरति से संबद्ध किसी भी व्यक्तिवादी विचारधारा को प्रगतिशीलता के

लिए खतरा मानते हैं। अस्तित्ववाद से उनका विरोध इसी स्तर पर है कि यह दर्शन व्यक्ति को आत्मग्रस्त कर उसकी मानसिक चेतना का विस्तार उन कल्पनाजन्य संभावनाओं तक कर देता है कि अंततः उसे नियतिवादिता की निराशजन्य स्थिति को स्वीकार करने के अतिरिक्त वहाँ और कोई मार्ग नहीं दिखता। उन्हीं के शब्द प्रमाण हैं—‘मनुष्य जितना ही अपनी आत्मगत संभावनाओं के प्रति सचेत होता है, अपनी दुनिया की वास्तविकता के प्रति प्रबुद्ध होता है, उतना ही अपने भाग्य का निर्माण करता है। मनुष्य के लिए सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि वह अपने लिए रास्ता चुने और यह दायित्वबोध उसके लिए वेदना का कारण बन जाता है।¹³ इसी आत्मगतता के लिए उन्होंने मुक्तिबोध की आलोचना की है और डॉ० नामवर सिंह की पुस्तक कविता के नये प्रतिमान को भी अंतर्द्वंद्व-ग्रस्त पाया है।¹⁴ वास्तव में शर्मा जी और नामवर जी के बीच सारा विरोध उस ‘सूक्ष्मता’ को लेकर है, जो वैयक्तिक रूझान के अनुभूति आदि का नवीन संस्करण मात्र है। शर्मा जी निर्भ्रत वस्तुवादी हैं और साहित्य में इंद्रियगोचर समाज-सापेक्ष अनुभवों की स्पष्ट अभिव्यक्ति चाहते हैं। जहाँ भी वे इसमें बाधा पाते हैं, तीव्र रूप से आक्रामक हो जाते हैं। इस दृष्टि से उनकी पुस्तक ‘नई कविता और अस्तित्ववाद’ आद्यंत द्रष्टव्य है। किंतु शर्मा जी जहाँ भी प्रगतिशील तत्त्व पाते हैं, उसको उद्घाटित करते हैं।

डॉ० रामविलास शर्मा ने निश्चय ही हिंदी साहित्य के अनेक प्रमुख लेखकों का पुनर्मूल्यांकन किया और भारतेन्दु, प्रेमचंद, रामचंद्र शुक्ल, निराला जैसे चार महारथियों की पूर्ण समीक्षा लिखकर एक तरह से आधुनिक हिंदी साहित्य का ‘क्रमबद्ध आलोचनात्मक इतिहास’ ही लिख दिया। अपने समसामयिक साहित्यकारों में डॉ० शर्मा ने सहृदयता के साथ जिन प्रिय लेखकों की गंभीर समीक्षा प्रस्तुत की उनमें वृंदावनलाल शर्मा, अमृतलाल नागर, केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने नई प्रयोगशील कविता से प्रीति न होते हुए भी अज्ञेय, शमशेर तथा मुक्तिबोध के काव्य का भी तलस्पर्शी विश्लेषण किया है। इस प्रकार एक अथक् जागरूक आलोचक की तरह उन्होंने अपने समकालीन साहित्य से भी जीवन्त संपर्क बनाए रखा। वस्तुतः डॉ० शर्मा एक साधक समीक्षक हैं। उन्होंने अपनी प्रतिभा से साहित्य में अवांछनीय तत्त्वों की सफ़ाई करके विधेयात्मक मूल्यों की प्रतिष्ठा का सफल प्रयास किया है। हिंदी में ऐसी बेलाग, दो टूक, खरी आलोचनाएँ बहुत कम लिखी गई हैं। इसके अतिरिक्त हिंदी-आलोचना की भाषा के निर्माण में उनका योगदान महत्त्वपूर्ण है। हिंदी आलोचना में जो धारदार एवं व्यावहारिक भाषा उन्होंने दी है, उससे एक नई प्रगतिशील संभावना का उद्घाटन हुआ है। शास्त्रीय दुरूहता से मुक्त बोल-चाल के पारदर्शी गद्य में जटिल बात को सुलझाकर कहने की कला में डॉ० शर्मा बेजोड़ हैं। उनके हाथों आलोचना जनसामान्य के लिए भी पठनीय बन सकी है।

संदर्भ

1. डॉ० रामविलास शर्मा, प्रगति और कल्पना, पृ० 1
2. डॉ० रामविलास शर्मा, प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ, पृ० 4
3. डॉ० रामविलास शर्मा, स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य, पृ० 23
4. डॉ० रामविलास शर्मा, स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य (‘मा निषाद प्रतिष्ठा त्वम् 1’ निबंध)
5. वही (भवभूति की करुणा)
6. वही, पृ० 24-25

7. वही, पृ० 25
8. डॉ० रामविलास शर्मा, गतिशील साहित्य की समस्याएँ, पृ० 8-9
9. वही, आस्था और सौंदर्य, पृ० 30
10. वही, नयी कविता और अस्तित्त्ववाद, पृ० 68
11. डॉ० रामविलास शर्मा, स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य, पृ० 71
12. डॉ० रामविलास शर्मा, नई कविता और अस्तित्त्ववाद, पृ० 231-232
13. वही, पृ० 179
14. वही, (नई कविता : नए प्रतिमानों की खोज)

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
स्नातकोत्तर हिंदी-विभाग
दयालसिंह पी०जी० कॉलेज
करनाल (हरियाणा)

मो० 08295366333, 09416188620

बालसाहित्य के विकास में कनउजी लोकसाहित्य का प्रदेय

डा० नागेश पांडेय 'संजय'

बालसाहित्य का अपना एक समृद्ध एवं वृहद इतिहास है। मानव-मन में संवेदना एवं सभ्यता के जन्म के साथ ही बालसाहित्य की सृष्टि हो गई होगी। किसी माँ के मुख से कोई लाड़-भरी लोरी निकली होगी। किसी बाप के घुटनों पर झूलते हुए बालक पर उमगते प्यार के रूप में कोई तुकबंदी फूटी होगी। धूल में सने उछलते-कूदते बच्चों के उछाह से कोई खेल-गीत झरा होगा।

बालसाहित्य की सर्जना का शुभारंभ यों ही अप्रत्यक्ष रूप से हुआ होगा, और फिर जैसा कि सामान्य साहित्य में भी, लोकसाहित्य, साहित्य का आदि रूप है, वही बालसाहित्य का भी मूल स्रोत बना होगा, इसमें संदेह नहीं।

लोकसाहित्य की रचना लोकपरंपराओं, धारणाओं, विश्वासों और अनुभवों के आधार पर हुई और इसने मौखिक यात्रा के रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखा। यह अलिखित साहित्य है।

गुणाढ्य को लोकसाहित्य का प्रथम संग्रहकर्ता माना जाता है। जयप्रकाश भारती ने लिखा है—'गुणाढ्य लोककथाओं के प्रथम और महान संग्रहकर्ता हैं। उन्होंने जो आधारभूमि तैयार की है, उसी पर बालसाहित्य का भवन खड़ा हुआ है।' (बालसाहित्य इक्कीसवीं सदी में, पृ० 27)

हिंदी की विभाषाओं में 'खनन-खनन दुई कौड़ी पावा/कौड़ी ले हम गंगा नहावा' (अवधी), 'अटकन-बटकन दही चटाकन (ब्रज), चंदा मामा आ रे आवा, पारे आवा, नदिया किनारे आवा (भोजपुरी), चेऊँ-मेऊँ हुर्र बिलइया (कनउजी) जैसी लोकरचनाएँ तो आज भी हिंदी बालसाहित्य में प्रचलित हैं। हाँ, उस समय की धर्म, चमत्कार, जादू-टोना, भूत-प्रेत, अवतार-कथाएँ अवश्य ही अब विज्ञान के इस युग में परिवर्तन की दरकार के चलते नए संदर्भ, नए रूप धारण कर चुकी हैं।

लोकसाहित्य का मूल ध्येय मनोरंजन और सुखद निष्कर्ष के माध्यम से समाज में आशा, विश्वास के साथ-साथ जीवन-निर्माण के मूल्यों को भी हस्तांतरित करना है।

गद्य-पद्य दोनों ही विधाओं में कहानी, कविता, नाटक, पहेलियाँ जैसी समस्त विधाएँ लोकसाहित्य में बिखरी पड़ी हैं।

एक बात और, लोकसाहित्य को कभी भी किसी एक भाषा, एक क्षेत्र का साहित्य मानकर चलना बड़ी भूल है। लोकसाहित्य को सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता। परिवर्तित रूप

में वह वह केवल क्षेत्र की ही नहीं, अपितु प्रदेश और देश की सीमाओं को भी लाँघ जाता है और यही कारण है कि आज लोकसाहित्य के रूप में उपलब्ध विभिन्न विभाषाओं और देशों के साहित्य में बहुत साम्य है। डॉ० सत्येंद्र ने एक स्थान पर लिखा है कि लोकगीतों की भाँति लोककथाएँ भी किसी सीमा को स्वीकार नहीं करतीं। अंचलों की बात को जाने दीजिए, कथाएँ देशों और महादीपों की सीमाएँ पार कर गई हैं।

बालसाहित्य को आधुनिक युग की संकल्पना मानने वाले कुछ समीक्षक लोकसाहित्य को बालसाहित्य ही नहीं मानते हैं। उनका तर्क है—यह साहित्य विशेष रूप से बच्चों के लिए नहीं लिखा गया। ऐसा सोचना तर्कपूर्ण नहीं लगता। हिंदी बालसाहित्य की आधारभूमि के रूप में इन रचनाओं को अनदेखा नहीं किया जा सकता। एक लंबे समय तक लोकसाहित्य ने बाल लोकसाहित्य के रूप में बालसाहित्य के अभाव की पूर्ति की है।

फिलहाल, बाल लोकसाहित्य दो रूपों में है—

1. माताओं के लिए
2. बालक/बालिकाओं के लिए

माताओं के लिए जहाँ लोरी-प्रभाती की रचना हुई है, वहीं बालकों के लिए विशेष रूप से खेल-गीतों का सृजन हुआ। बल्कि कई-कई बार यह खेलगीत बालकों ने खेल-खेल में ही गढ़ लिए। जो कहानियाँ सृजित हुईं, उनका आधार लोकविश्वास और परंपराएँ हैं। सृजन का आधार मूलतः बालमनोरंजन ही रहा है अथवा नीति और शिक्षा के उद्देश्य से उन्हें मौखिक रूप में बालकों को परोसा गया।

मुझे बहुत आश्चर्य होता है कि विद्वानों ने समूचे लोकसाहित्य से आँखें मूँदकर, कैसे उसे अशिष्टों-असभ्यों और ग्रामीणों का साहित्य कह दिया? वह भी उस साहित्य को, जिसकी नींव पर आज साहित्य का विशाल प्रासाद खड़ा है।

‘लोक’ शब्द स्वयं में अति विस्तृत है। पृथ्वीलोक, पाताललोक, स्वर्गलोक की धारणाओं से स्पष्ट है कि लोक शब्द केवल ग्राम्य सभ्यता का वाचक तो कदापि नहीं है। लोकसाहित्य का क्षेत्र विस्तृत है। लोकसाहित्य को केवल ग्राम्य साहित्य समझना भूल है। आचार्य हजारीप्रसाद दिवेदी ने कहा है, ‘लोक शब्द का अर्थ केवल देहातों से नहीं लगाया जाना चाहिए। लोक तो नगरों और देहातों में बसी वह समस्त जनता है, जो स्वतः स्फूर्त ज्ञान रखती है।’

हिंदी की विभाषाओं खासकर ब्रज, अवधी और भोजपुरी में बच्चों का प्रचुर लोकसाहित्य है।

कनउजी लोकसाहित्य में बालसाहित्य के आधुनिक स्वरूप का मूल विद्यमान है। ये रचनाएँ न केवल बालकों के विशुद्ध मनोरंजन का खज़ाना थीं, बल्कि उनके मन, उनके जीवन, उनकी मनोदशाओं, उनकी संवेदनाओं और उनकी मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति का माध्यम भी थीं।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कन्नौज, औरैया, मैनपुरी, इटावा, फर्रुखाबाद, हरदोई, शाहजहाँपुर, कानपुर, पीलीभीत जिलों में बहुतायत से बोली जानेवाली कनउजी में कहानियों और खेलगीतों का प्रचुर भंडार है, जिनके बहाने गए ज़माने के बच्चों को ऐसी नटखट मस्ती सुलभ हुई है, जिसका कोई सानी नहीं था।

आइए, सबसे पहले एक खेलगीत और उसके रोचक प्रभाव का स्मरण करें, जिसमें दो

पालों में क्या नटखट अंदाज़ में वार्तालाप होता है—

मेरी रोटी किन्ने खाई?

चूहा ने।

चूहा मेरे साथ गओ थो,

बिल्ली ने।

बिल्ली मेरे साथ गई थी,

हाथी ने।

हाथी मेरे साथ गओ थो,

और इस तरह से सवाल-जवाब का क्रम देर तक चलता है। अचानक जब सारे बच्चे 'हमने खायी-हमने खायी' कहकर भागते हैं और बच्चा उनको पकड़ने दौड़ता है, तो खेल देखते ही बनता है। मनोरंजन का मनोरंजन और खेल का खेल। पूरा व्यायाम, वह भी हँसते-हँसते। ये बच्चों का असली हास्य-योग था, जिसे देखकर बड़ों की भी तबीयत बाग़-बाग़ हो जाती थी। प्रफुल्ल मन के सारे स्नायुतंत्र झंकृत हो उठते थे। अब न तो बच्चों को ऐसी नटखट मस्ती सुलभ है और ऐसी लोकरचनाएँ तो विलुप्त होने के कगार पर हैं।

याद आते हैं रामनरेश त्रिपाठी और उनका हौसला, जो 1925 से 28 तक गाँव-गाँव घूमकर लोकसाहित्य एकत्र करने में लगे रहे और 'कविता कौमुदी' के पाँच और छठवें भाग में लोकसाहित्य की संपदा को सम्मिलित किया। बच्चों के लिए भी ऐसे प्रयास हो जाते तो जाने कितना साहित्य अप्राप्य होने से बचता।

यहीं पर कुछ और खेल-रचनाएँ तत्काल याद आ रही हैं, एक में बच्चे पंक्तिबद्ध होकर बैठते थे और एक बच्चा कपड़े का कोड़ा बनाकर गाता हुआ घूमता था—'कोड़ा जमाल साई, पीछे देखे मार खाई।' और कबड्डी का यह खेलगीत, क्या नाटकीय अंदाज़ में अपनी छटा बिखेरता था—'चल कबड्डी आल ताल, मेरी मूँछें लाल-लाल।' केवल आउटडोर ही नहीं, इनडोर गेम भी लोकरचनाओं से सिग्ध थे। घर में पुरानी पीढ़ी अपने बचपन में कनउजी की इस रचना के बहाने कितना खिलखिलाई होगी, इसकी व्याख्या कठिन है—

घपरी के घपरा, फोरि खाय खोपरा

मियाँ बोलाए, चमकति आए

पकरि लला के कानई कान

चेऊँ मेंऊँ, चेऊँ मेंऊँ, हुर बिलैया

इसी खेल को थोड़ा अलग प्रस्तुति, मगर उसी ढंग से एक-दूसरे के कान पकड़कर हिलते हुए जब बच्चा पाटीं झूठ-मूठ रोने का अभिनय करता था, तो घर के सदस्यों की बाँछें खिल उठती थीं—

बाला माँगे खिचड़ी, कबूतर माँगे दाना

पकरि लला के कानई काना

बकरी को बच्चा चेऊँ मेंऊँ

चेऊँ मेंऊँ।

बकरी के बच्चे से एक कहानी याद आई, जिसमें एक मादा सियार बकरी की अनुपस्थिति में पाँच बच्चों को खाने की कोशिश में नानी बनकर दरवाजा खटखटाती है, किंतु एक बच्चे खग्गा की चालाकी से उसे अपने मंसूबे में सफलता नहीं मिलती और 'बुराई का अंत बुराई' की मान्यता भी सहज प्रतिष्ठित होती है—

चेऊँ किबाड़े खोलउ, मेंऊँ किबाड़े खोलउ
अट्टो किबाड़े खोलउ, बट्टो किबाड़े खोलउ
खग्गा तुम्हीं खोलउ किबाड़े, देखउ नानी आयी

ये कहानियाँ न केवल पूर्ण औत्सुक्य के साथ बच्चों को आह्लादित करती थीं, वरन एक संदेश भी उनके मन में जाने-अनजाने सहज प्रवाहित कर देती थीं।

कनउजी लोकसाहित्य की एक खास विशेषता है कि उसका प्रणयन प्रायः गद्य-पद्य मिश्रित है और यह प्रयोग निश्चित ही बाल-रचनाओं को अद्भुत एवं अविस्मरणीय बनाता है।

राजा और चिड़िया की एक कहानी थोड़े परिवर्तन के साथ प्रस्तुत की जाए तो बड़ी रोचक हो सकती है जिसमें नन्ही-सी चिड़िया महाशक्तिमान राजा के भी हौसले पस्त कर देती है। अपना मोती छिनने के बाद वह राजा के महल के सामने पेड़ पर बैठकर चिल्लाती है—'राजा दलिद्वरी, मेरे मोती छीन लए।' राजा से मोती मिल जाने पर उसे चिढ़ाती है—राजा डिराइ गए, मेरे मोती दर्ई दे।' राजा उसे पकड़वाकर जिंदा भूनने की सजा सुनाता है, मगर चिड़िया डरती नहीं। उसे नहलाया जाता है, तो गाती है—'आज तौ चिरो नहाय रही।' नहलाकर थाल में रखा जाता है तो कहती है—'आज तौ चिरो थाल में बैठी।' उसे कढ़ाई के तेल में डालने की नौबत आती है, तो भी गाती है—'आज तौ चिरो छुनु-मुनु।'

एक तरह से इस कहानी में राजा जैसे बड़े ओहदे के इंसान के अनावश्यक बातों में खुद को उलझाने की भूल और क्रूरता के दुष्परिणाम की गाथा है।

ऐसी ही एक कहानी है, जिसमें खेत में दाना चुगती एक चिड़िया को खेतवाला मारता है, तो दूसरी चिड़िया आग, पानी और साँप की मदद से उस खेतवाले से बदला लेती है। इसकी रोचक शुरुआत देखिए—

सीक चीर के भाल बनाई,
दुई चूहा ले मंचियाय
अपने घर को बल्दो लेन चली।

इस कहानी में साँप जूतों में छिपकर बैठ जाता है और उस दुष्ट व्याघ्र को काट लेता है। ये कहानी मैंने बचपन में सुनी थी और तबसे एक आदत जैसे मन में घर कर गई है कि कहीं भी जाता हूँ तो अपने जूतों को झाड़ने के बाद ही पहनता हूँ।

'चिड़िया का दाना' कहानी भी अलग मस्ती की है, जिसमें खूँटे का दाना निकलवाने के क्रम में चिड़िया जाने किस-किससे मदद की गुहार करती है और इस बहाने बच्चों की कहानी में उत्सुकता बढ़ती जाती है—

भूख लगी मैं चब्बों का, भूख लगी मैं खब्बों का
खूँटा मेरी दाल न दे, दाल बिना न भात पके

चिड़िया की बात हुई तो पुरानी पीढ़ी के लोग इस कविता से परिचित होंगे। दरअसल,

यह कविता कम, दादा-दादी की कहानी सुनाने से बचने की युक्ति अधिक थी। पुरानी पीढ़ी के बच्चे जब कहानी सुनाने की ज़िद करते थे, तो दादा-दादी उनकी हथेली पर अपनी अँगुली रखकर यह कविता कहते थे। उनकी अँगुली धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए बच्चे की बगल तक जा पहुँचती थी और 'गुल-गुल' शुरू होते ही बच्चा ही-ही करता भागने की कोशिश करता था—दादा बस, दादी बस!

एक चिरैया दुर्गादासी/अन्न खाय पानी की प्यासी/पानी पीके चली बजार/हियाँ आई, हियाँ आई, हियाँ आई गुल-गुल-गुल-गुल।

आज बालसाहित्य में सीख मुक्त, विशुद्ध मनोरंजन की आवश्यकता उद्घाटित की जाती है। कनउजी की कहानियों में सूत्रबद्धता है और संपूर्ण मनोरंजन भी।

एक बंदर बेर खा रहा था। गुठली उसकी नाक में फँस गई। वह नाई के पास गया। धोखे से उसकी नाक कट गई। बंदर गुस्से में नाई की कैंची उठा लाया। लगा चिल्लाने—मेरी नाक नौवा तीर, नौवा की कैंची मेरे तीर। फिर राह में भेड़ के बाल काटने के लिए चरवाहे को कैंची दे दी। उसका कंबल ले लिया—मेरी कैंची तेरे तीर, तेरो कंबल मेरे तीर। आगे टंड से काँपता किसान मिला। उसे कंबल दिया, बैल ले लिए। लगा गाने—

मेरी नाक नौवा तीर, नौवा की कैंची मेरे तीर
मेरी कैंची चरवाहे तीर, चरवाहे को कंबल मेरे तीर
मेरो कंबल किसान तीर, किसान के बैल मेरे तीर।

मौखिक रूप से ऐसी कहानियों को अपनी शैली, अपने अंदाज़, अपने सुधार और अनुकूलता को देखते हुए कितना भी बढ़ाया या बदला जा सकता है।

आज बच्चों को तनावरहित शिक्षा देने की बात की जाती है, जबकि दूसरा सच यह भी है कि बच्चों पर काम का कितना बोझ है। खेल-खेल में पढ़ना और पठन से जुड़े काम को निबटा लेना उस ज़माने की लोकसंस्कृति में कैसे समाहित था, इसका परिचय आप इन लोकरचनाओं से प्राप्त कर सकते हैं—

चार कबूतर बैठे थे दीवाल पर,
एक कबूतर उड़ि गओ
कित्ते बचे भाई कित्ते बचे?
बच्चे उछलकर गाते हुए बताते थे—
तीन बचे हाँ तीन बचे

न केवल सवालों को जवाब देने बल्कि जीवन को लय से जोड़ने के उद्देश्य से ऐसी रचनाओं का अपना ही महत्त्व है।

एक अन्य गीत के बहाने बच्चे अपनी लिखने की पाटी (स्लेट) को कैसे हाथ से हिला-हिलाकर सुखा लेते थे, बल्कि सबमें होड़ रहती थी कि कौन सबसे पहले अपनी पाटी सुखा लेगा—

सूख सूख पट्टी, चंदन गट्टी
राजा आओ, महल बनाओ
झंडा गाड़ो, बजो नगाड़ो

रानी गई रूठ, पट्टी गई सूख
बच्चों के मन को टटोलती और उनकी ही भाषा में बोलती एक रचना, जिसमें बच्चों का छुट्टी के लिए कितने मार्मिक अंदाज़ में आग्रह है कि बरबस वाह ही निकलती है—

ग्यारह बजि गए, बारह बजि गए
अब तौ बजि गो एक, मास्टर साहब
छुट्टी दयि देउ, भूखन मरिगो पेट।

लोकरचनाओं में मनोविज्ञान की सतरंगी छटाएँ हैं, बच्चे को कब-कैसे मनाना-रिझाना, हँसाना-समझाना है, ऐसी तमाम कलाएँ इन रचनाओं में रची-पगी हैं।

दो लोरियाँ विशेष रूप से उद्धृत करना चाहूँगा। लोरी का संबंध शिशुपन से होता है, किंतु इस पहली लोरी ने तो मेरा साथ तब तक नहीं छोड़ा, जब तक कि यह समझ मुझमें विकसित नहीं हो गई कि जो चिढ़ता है, उसे ही चिढ़ाया जाता है। बचपन में मेरा नाम लल्ला था। मुझे दूध-चावल बहुत प्रिय था। मेरे समवयस्क चचेरे भाई, जैसे ही मुझे अपने प्रिय खाद्य के साथ देखते, बस माँ के मुख से शोभा देने वाली लोरी जैसे उनकी शैतानियों का अस्त्र बन जाती-वे धीरे से गुनगुनाते—

लल्ला लल्ला लोरी, दूध की कटोरी
दूध में बतासा, लल्ला करे तमाशा।

आज जब इस लोरी पर अपने उस तुनकने को याद करता हूँ तो बहुत हँसी आती है, लेकिन शैतानियों के इस कंपटीशन में मैं भी कहाँ पीछे था। बाद में एक लोकरचना मेरा भी हथियार बन गई थी। मैं उनके चिढ़ाने से पहले ही गाना शुरू कर देता था—

राजा-राजा खायिं,
भिखारी मुँह देखहिं

बहरहाल, कनउजी में प्रचलित एक अन्य लोरी तो बाद में हिंदी बालसाहित्य की ही अमर निधि बन गई—

चंदा मामा दूर के, पुए पकाए बूर के
आप खाएँ थाली में, मुन्ने को दें प्याली में
प्याली गई टूट, मुन्ना गया रूठ।

और हाँ नन्हे-मुन्ने को हाथ-मुँह धुलाने के प्रयास में माताओं के मुँह से यह गीत तो सौभाग्यशाली शिशुओं को ही प्राप्त हुआ होगा—‘किंची किंची कौआ खाए, दूध बतासा भैया खाए।’

वास्तव में लोकरचनाएँ केवल आनंद का अक्षय स्रोत ही नहीं होतीं, तत्कालीन परिवेश, संस्कृति, परंपराओं और रागात्मक वृत्तियों का सहज प्रतिबिंब भी होती हैं। लोकरचनाएँ समाज के अतीत को संरक्षित-सुरक्षित रखती हैं और इस नाते अतीत को वर्तमान से जोड़ते हुए उसे भविष्य को हस्तांतरित करती हैं।

लोकरचनाएँ स्वयं में एक पूरा का पूरा जीवन समेटे हैं। बचपन से प्रौढ़ावस्था तक के मनोरम चित्रों की झाँकी का माध्यम हैं ये। तीज-त्योहार से लेकर सारे संस्कार और अपनी अक्षुण्ण संस्कृति, धार्मिक निष्ठाएँ : सभी कुछ इनमें शोभायमान है।

‘हाथी घोड़ा पालकी, जय कन्हैया लाल की’ लोकरचना कहने को कृष्ण से संबंधित है, मगर हर छौना अपने माँ-बाप का कन्हैया है और कहीं यदि उनके कंधे पर बैठकर सैर कराने का मौका आए, तो उपर्युक्त गीत तो बच्चों के साथ-साथ, बरबस बड़ों के मुख से भी स्वतः प्रस्तुत हो उठता है।

ऐसे ही बच्चे को चुप कराने-सुलाने के प्रयास में एक सफल नुस्खे जैसी यह रचना तो कनउजी लोकसाहित्य की अप्रतिम प्रस्तुति है। बड़े लेटे-लेटे, बच्चे को घुटनों पर बैठाकर-झूला झुलाते हुए गाते हैं—

खंती मंती, कौड़ी पाई
खीर बनाई, हमने खाई
तुमने खाई, बाबा ने खाई
दादी ने खाई, बप्पा ने खाई
अम्मा ने खाई, चच्चा ने खाई
चाची ने खाई, सबने खाई
धम्म

धम्म कहते ही बच्चे को एक ओर धीमे से गिराते हैं और बच्चा खिलखिला उठता है और हिलने-गिरने के इसी क्रम में सो भी जाता है।

त्योहारों पर बहुतेरी लोककथाएँ कनउजी में हैं और बच्चे इन अवसरों पर उनका भरपूर आनंद लेते हैं—‘बथुआ के धोंधा बनाए, सकट बिनाए आए।’

यह गणेश चतुर्थ पर कही जानेवाली कथा है, जिसमें निश्चल स्त्री को तो गणेशजी सोना-चाँदी का उपहार देते हैं और लालची स्त्री को दंडस्वरूप अपनी चीजों से भी हाथ धोना पड़ता है।

पंचतंत्र की कहानियाँ भी कनउजी में खूब प्रचलित हैं। उन पर चर्चा करना यहाँ समीचीन नहीं। हाँ, कुछ खास संदेशों को परोसने के उद्देश्य से रची गई लोककथाएँ अवश्य संक्षिप्त चर्चा की अपेक्षा रखती हैं। मसलन टिपटिपा की कहानी जहाँ एक धोबी के शेर को भी चारों खाने चित करने की प्रत्युत्पन्नमति को अभिव्यक्त करती है, वहीं ‘सात चोर एक ईमानदार’ यह धारणा पुष्ट करती है कि अंत में जीत सदैव ईमानदारी की होती है।

बंदर के घर में दानव कहानी चातुर्य से विपत्ति और संकट में भी खुद को बचा लेने के हुनर को पैदा करने की ओर प्रेरित करती है। ‘हिम्मते मर्दा, मदद दे खुदा’ के भाव को समेटे कनउजी में ढेरों लोककथाएँ हैं। संयोगवश ही सही, किंतु निर्दोष को संकट से मुक्त होने की काल्पनिक कहानी सुखनिंदिया यह सीख देती है कि ‘हारिए न हिम्मत बिसारिए न राम।’

एक व्यक्ति को झूठे केस में अगले दिन फाँसी की सजा होनी होती है। वह रात में नींद को आग्रह की भाषा में पुकारता है—‘आउ सुखनिंदिया, कल काटी जयिही मुड़िया।’ संयोग से असली दोषी सुखनिंदिया नाम की एक बूढ़ी औरत होती है। वह पोल खुल जाने के भ्रम में तुरंत आकर क्षमा के लिए राजा से प्रार्थना करती है और इस तरह निर्दोष बच जाता है।

आज भी जब बादल छाते हैं तो यह लोकरचना भी सहसा बच्चों के मुख से बरबस निकल पड़ती है। यह रचना हमारी ‘सर्वे भवन्तु सुखिनः’ और अपरिग्रह के मूल्य को खुद में समेटे है—

बरसो राम धड़ाके से, बुढ़िया मरे न फाँके से
 चना की रोटी दुई घुइयाँ, बरसो राम जियइ दुनिया
 लोकसाहित्य क्या, किसी भी साहित्य में सभी कुछ तो खरा-खरा नहीं हो सकता और
 खासकर बालकों की दृष्टि से चिंतन करने पर तो 'बालसाहित्य के नाम पर लिखित बालसाहित्य'
 में भी संपादन अपेक्षित हो जाता है।

कनउजी लोकरचनाओं में कुछ रचनाएँ उपहासपरक हैं, जो बच्चों को रिझाती तो हैं,
 किंतु उनके मानसिक विकास की दृष्टि से उपयुक्त कदापि नहीं हैं—

1. ले बंदरवा रोटी, तेरी अम्मा खोटी
2. मोटे लाला पिलपिले
 बहू को लेके गिर पड़े
3. ए बी सी डी ई एफ जी, उसमें निकले पंडित जी
 पंडित जी ने खोदो गड्ढा, वामें निकलो बुड्ढा।

तीसरी रचना की अंतिम पंक्ति में एक राजनेता का नाम आता है। ऐसी रचनाएँ बालमन
 को कुप्रभावित करती हैं।

जैसा कि ऊपर चर्चा की जा चुकी है कि लोकसाहित्य किसी विभाषा या क्षेत्र की
 सीमाओं में कभी नहीं रहता। गंगाजी पर एक लोकरचना तो आज न केवल कनउजी, बल्कि
 जहाँ-जहाँ गंगा नदी है, वहाँ अलग-अलग रूपों में प्रचलित है—

कंत खिलाई कौड़ी पाई, बा कौड़ी मैंने गंग सिराई
 गंगा ने गंगाजलु दीनों, गंगाजलु मैंने खेत कौ दीनो
 खेत ने मोहि घास दीनी, घास मैंने गऊ कौ दीनी
 गऊ ने मोहि दूध दीनो, दूध की मैंने खीर पकाई
 तनिक-तनिक सब घर ने खाई, रही बची सो मोर चटाई
 राह चलत कौड़ी पाई,
 अवधी में इस रचना का परिवर्तित स्वरूप देखिए—
 घुमत घुमत एक कौड़ी पावली, उ कौड़ी हम गंगा बहवली
 गंगा मयिया बालू दिहिलन, उ बालू हम भुजवा को दिहिन

इस प्रकार स्पष्ट है कि कनउजी लोकसाहित्य ने न केवल अपने समय में बालकों का
 प्रचुर मनोरंजन किया है, साथ ही बालसाहित्य की नींव को भी पुख्ता करने की दृष्टि से उसका
 उल्लेखनीय अवदान है। लोकरचनाएँ किसने लिखीं, यह तो किसी को ज्ञात नहीं होता, किंतु उन
 अनाम और साझी रचनाकारों को बार-बार प्रणाम करने को जी चाहता है। साझी शब्द इसलिए
 प्रयुक्त कर रहा हूँ कि समय और सोच के स्तर पर श्रव्य परंपरा की इन रचनाओं में अपेक्षित
 बदलाव होता ही रहा है। 'जितने मुँह, उतनी बातें' की तर्ज पर लोकरचनाएँ भी अनेकानेक निष्कर्षों,
 धारणाओं, प्रतीकों को स्वयं में गुंफित करती चलती हैं।

लोककथाओं में समय के अनुसार परिवर्तन-संशोधन भी अपेक्षित है, किंतु इतना भी
 नहीं कि उनका वास्तविक स्वरूप और मौलिकता ही नष्ट हो जाए। लोकरचनाएँ तो अतीत का
 दर्पण हैं। यदि ईमानदारी से इनका संग्रह किया गया होता तो लोक रचनाओं को आंशिक

परिवर्तित-संशोधित कर अपने नाम से प्रस्तुत कर देनेवाले जाने कितने रचनाकारों की जो झूठी प्रतिष्ठा है, उसका क्या हश्र होता, उसका अंदाज़ ही लगाया जा सकता है।

यत्र-तत्र-सर्वत्र बिखरी पड़ी और धीरे-धीरे खोने की कगार पर इन लोकरचनाओं की अद्भुत संपदा को समेटने-सँवारने की दिशा में उत्साही शोधार्थियों को आगे आना चाहिए। काश, लोकसाहित्य के हितैषी भी इस परिवेश के निर्माण में सहभागी बनें। भविष्य ही नहीं, अतीत भी उनका ऋणी रहेगा।

सुभाष नगर
निकट-रेलवे कालोनी
शाहजहाँपुर 242 001
मो० 09451645033

डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल के नाटकों में समसामयिक समस्या

पाटील भारती मधुकर (शोधछात्रा)

डॉ० शिवाजी एन० देवरे (शोध-निदेशक)

अध्यक्ष, हिंदी विभाग

एस०एस०व्ही०पी०एस०महाविद्यालय, देवपूर, धुलिया (महाराष्ट्र)

डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल के नाटकों का संकलन 'ग्यारह नुक्कड़ नाटक' सन 2000 में प्रकाशित हुआ है। इन नाटकों में भ्रष्टाचार समर्थक मोर्चा, चौदह दिन की हवालात, खुशामद से खुदा राजी, बीस बीघा जमीन, सरकार का निजीकरण, यह दुनिया और दिखावा, ये सपनों के मारे लोग, रेलवे प्लेटफार्म, धंधेबाज, संसद इक्कीसवीं सदी में और घोटाला इतिहास नाटक सम्मिलित है।

नुक्कड़ नाटक के लिए किसी विशेष स्थान की अथवा पंडाल की आवश्यकता नहीं होती। कलाकार आवश्यकतानुसार अपने लिए एक मंच या स्थान निर्धारित कर लेते हैं तथा किसी भी नुक्कड़ पर दर्शकों के बीच नाटक खेलना आरंभ कर देते हैं। डॉ० अग्रवाल नुक्कड़ नाटकों की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए प्रतीत होते हैं।

'ग्यारह नुक्कड़ नाटक' के प्रायः सभी नाटकों का कथानक प्रौढ़ता लिए हुए है। समसामयिक समस्याएँ ही इस संग्रह के नाटकों की कथावस्तु बनी हैं। मध्यमवर्गीय परिवार की त्रासदियों, विसंगतियों की सशक्त अभिव्यक्ति इन नाटकों में दिखाई देती है। डॉ० अग्रवाल के नाटकों के संबंध में प्रसिद्ध लेखक डॉ० हरीशकुमार सिंह, कहते हैं, 'मानवीय धरातल पर लिखे गए-इन नाटकों में समकालीनता का नया बोध है।'

डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल के नाटकों में अभाव, मँहगाई, बेरोजगारी, बढ़ती हुई जनसंख्या, प्रशासनिक एवं राजनीतिक भ्रष्टाचार, प्रदूषण आदि कितनी ही ऐसी समस्याएँ हैं, जो जनसाधारण को गहराई से और सीधे-सीधे अपने साथ जोड़ लेती हैं। 'ग्यारह नुक्कड़ नाटक' के सभी नाटक जनजीवन से जुड़ी हुई समस्याओं पर केंद्रित हैं।

'भ्रष्टाचार समर्थक मोर्चा' नाटक में सभी धर्मों के ठेकेदारों के भ्रष्टाचार का पर्दाफाश किया है। इस नाटक में घासीराम सूत्रधार बनकर सामने आता है तथा वह एक भ्रष्टाचार समर्थक मोर्चा बनाने के लिए समाज के कुछ भ्रष्टाचारियों को एकत्रित कर जनता के सामने ले आता है। सूत्रधार घासीराम का मत है कि जब भ्रष्टाचार का विरोध करनेवाले ही भ्रष्टाचार करने लगते हैं तो इससे तो अच्छा है कि जनता भ्रष्टाचार का खुलकर समर्थन करे, जिससे यह मुद्दा ही समाप्त

हो जाए। मंच पर एक-एक करके भ्रष्टाचारी आते हैं और अपने-अपने भ्रष्टाचारों का जनता के सामने खुलकर बखान करते हैं। वे यह भी मानते हैं कि पहले भ्रष्टाचार करो फिर रुपया-पैसा कमाओ और जनहित में काम करने के नाम पर कमाने लगे। सूत्रधार घासीराम की जनता को उल्लेखित करती हुई ये पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

‘सौ भ्रष्टाचारों को एक सदाचार ऐसे धो डालता है, जैसे गंदे कपड़ों को धोबी। तो आदरणीय भाइयो और बहनो, हमारा भ्रष्टाचार समर्थक मोर्चा भ्रष्टाचार को किसी राजनीतिक शस्त्र के तौर पर इस्तेमाल नहीं करेगा, बल्कि उन सभी भ्रष्टाचारियों को समर्थन देगा, जो अपने सौ भ्रष्टाचारों के धब्बे को एक सदाचार से धोने में विश्वास रखते हैं’¹²

‘चौदह दिन की हवालात’ नाटक में सरकारी तंत्र के भ्रष्टाचार और शोषित वर्ग की पीड़ा को समाज के सामने लाने का प्रयास किया है। इस नाटक में बताया गया है कि रोज़गार के नाम पर बैंकों से ऋण लेना आसान है, मगर उसे चुकाना बहुत मुश्किल है। ऋण चुकाने के चक्कर में ऋणदाता कभी-कभी आत्महत्या तक कर बैठते हैं। नाटक में संतोष नामक युवक ने कृषि-विज्ञान में एम०एस-सी० किया है। कृषि-क्षेत्र में किसी अच्छी सी नौकरी के लिए बहुत भटकता है, पर उसे निराशा ही मिलती है। तब वह बैंक से ऋण लेता है और ग्लास की फैक्ट्री लगाता है, परंतु धन का अभाव, अनुभव की कमी के कारण काम नहीं चलता, ऋण की किस्तें अदा नहीं हो पातीं और अंत में युवक आत्महत्या कर लेता है। यह नाटक घटना-प्रधान है। नाटक का एक अंश निम्नलिखित है—

‘अपना भारत ही वह देश है, जहाँ बेरोज़गारों को अक्वल तो काम ही नहीं मिलता और मिलता भी है तो उनकी रुचि के एकदम विरुद्ध। यहाँ गधों को केसर-चुगने के लिए छोड़ दिया जाता है और हिरनों की पीठ पर घास लादी जाती है।’¹³

‘खुशामद से खुदा राज़ी’ व्यंग्य-प्रधान नाटक है। इसमें विभिन्न पात्रों के माध्यम से बताया है कि प्रशंसा, चापलूसी, वाहवाही करने से सब प्रसन्न रहते हैं। इस नाटक में ताराचंद ऐसा ही पात्र है, जो लोगों की चापलूसी करते-करते ऊब गया है तथा अब वह बिल्कुल सही-सही बोलने लगा है। सही बोलने के चक्कर में वह जहाँ का तहाँ है तथा उसके जो साथी चापलूसी करते हैं, उनका गुणगान समाज में होता है। डॉ० अग्रवाल कहना चाहते हैं, यदि किसी को अपना कोई काम करवाना है, तो उसे खुशामद करना सीख लेना चाहिए। यदि आप खुशामद नहीं कर सकते, तो आपको हर जगह असफलता ही मिलती है। नाटक की पंक्तियाँ सही कहती हैं—

छोटा राज़ी है मेरी जान बड़ा राज़ी है।

सच तो यह है कि खुशामद से खुदा राज़ी है।¹⁴

‘बीस बीघा ज़मीन’ में नयी पीढ़ी के द्वारा गाँवों की ज़मीन बेचकर शहरों की ओर भागने का वर्णन है। इस नाटक में बड़े परिवार की समस्या भी बताई गई है। परिवार बड़ा होने से आर्थिक ज़रूरतें पूरी नहीं हो पातीं। छोटूलाल नामक व्यक्ति के आठ लड़के हैं, उसके पास बीस बीघा ज़मीन है। हर बेटे ने ढाई-ढाई बीघे ज़मीन बाँट ली है। ढाई बीघा ज़मीन में गृहस्थी चल नहीं सकती। अतः ज़मीन बेचकर वह नौकरी के लिए दिल्ली चले जाते हैं। छोटूलाल का निम्नलिखित वाक्य देखिए—‘बीस बीघे ज़मीन का तिया-पाँचा होकर रह गया। न होते आठ न बिनते ठाठा।’¹⁵

‘सरकार का निजीकरण’ एक राजनीतिक नाटक है। आज सरकार हर क्षेत्र का निजीकरण

कर रही है। सड़कों का निर्माण, बिजली आपूर्ति, जल-आपूर्ति, बैंक, बीमा कंपनियाँ आदि को सरकार ने निजी क्षेत्र में देने को फ़ैसला कर लिया है। ऐसे में इस नाटक में भारतीय ठेकेदार यूनियन के अध्यक्ष मलखानसिंह ने एक बैठक बुलाई है, जिसमें यह निर्णय लिया गया है कि प्रधानमंत्री के जनता दरबार में जाकर उनसे यह आग्रह किया जाएगा कि पूरी सरकार को निजी क्षेत्र को सौंप दिया जाए। मलखान सिंह का निम्नलिखित वाक्य देखिए—‘लोकतंत्र जब रोगतंत्र बनने लगे प्रधानमंत्री जी, तो सार्वजनिक क्षेत्र को निजी क्षेत्र में बदल ही देना चाहिए।’⁶

‘यह दुनिया और दिखावा’ में पारिवारिक रिश्तों की पड़ताल की गई है और यह प्रमाणित किया गया है कि रिश्ते आज दुनिया की ज़रूरत नहीं हैं, बल्कि ज़रूरत के रिश्ते हैं। सत्तर साल की बुढ़िया सावित्री, उससे उसका बेटा और बहू इसलिए प्यार करते हैं, उसकी सेवा करते हैं उसके नाम मकान और चार दूकानें हैं। उसे इस बात का पता तब चलता है, जब वह बहरी बनने का नाटक करती है और सुननेवाला एक आला अपने कान पर लगाती है। सावित्री का निम्नलिखित वाक्य देखिए—‘जो कुछ तुम्हें चाहिए, वह मैंने समझ लिया है। गोपालदास ठीक कहता था। यह दुनिया इतनी उलझी हुई है कि इसे समझना आसान नहीं।’⁷

यह बात केवल सावित्री की नहीं है, बल्कि दुनिया के कई लोगों की है, क्योंकि स्वार्थवृत्ति ने सभी को अंधा कर दिया है। डॉ॰ अग्रवाल ने समाज के बीच से ही यह समस्या उठाकर अपने नाटकों द्वारा प्रस्तुत कर दी है। इसके बारे में शोध-छात्रा अर्चना चौधरी का कथन है—‘डॉ॰ अग्रवाल के इन नाटकों को पढ़कर प्रतीत होता है कि उन्होंने जिस कथावस्तु को चुना है वह हमारे ही बीच से उठाई गई है और उसमें हममें से ही किसी-न-किसी की समस्या को उकेरा है।’⁸

‘सपनों के मारे लोग’ शीर्षक नाटक में लेखक ने मदारी और जमूरे के माध्यम से अनेक सामाजिक विसंगतियों पर करारा व्यंग्य किया है और उन समस्याओं को उठाया है, जो जनजीवन से गहराई से जुड़ी हुई हैं। नाटक में संवाद इस प्रकार हैं—

जमूरा : तू ठीक कहता है मदारी। फटे जूते से भी गया-गुजरा होता है कटा-फटा आदमी।

मदारी : वह कैसे जमूरे?

जमूरा : फटे जूते को तो कबाड़वाले ले जाते हैं औने-पौने में, पर फटे-बदहाल आदमी को कोई नहीं पूछता है, मदारी।⁹

‘रेलवे प्लेटफ़ार्म’ नाटक में पुलिस विभाग के भ्रष्टाचार को दिखाया गया है। इस नाटक में ‘रेलवे प्लेटफ़ार्म’ में रेलवे स्टेशन का खाका खींचा गया है, जिसमें यात्रियों की सुरक्षा के लिए तैनात चार पुलिसकर्मी किस तरह अपनी जुगाड़ में लगे रहते हैं तथा रेलवे प्लेटफ़ार्म पर अनैतिक कार्यों को अंजाम देने में सहायक होते हैं। इसका चित्रण किया गया है। सुखपाल नामक पुलिसकर्मी रेलवे प्लेटफ़ार्म पर निम्नलिखित वाक्य कहता है—‘हर शहर, नगर, कस्बे में बम फटा, मार-धाड़ हुई, दंगा-फसाद हुआ, दस-बीस मरे। फिर कुछ समय के लिए हालत थोड़ी-बहुत शांत हो गई। लेकिन वही उथल-पुथल, फिर वही मारा-मारी, फिर वही छीना-झपटी। मुझे तो यह सारा देश ही रेलवे प्लेटफ़ार्म जैसा लगता है, यार।’¹⁰

‘धंधेबाज़’ नाटक में संगठनों के नाम पर धोखाधड़ी दिखाई गई है। ठाकुर धुरंधरसिंह नामक व्यक्ति निजी चिकित्साकर्मी संगठन बनाता है और उस संगठन का स्वयं अध्यक्ष बनता है।

जनसेवा केंद्र में सभी चिकित्साकर्मियों को बुलाकर उन्हें अधिकारों के लिए संघर्ष करने को कहता है। उनके वेतन में वृद्धि हो, काम के घंटे निश्चित होने चाहिए इन सब बातों के लिए उन्हें हड़ताल पर जाने का निर्णय लेता है। सभी चिकित्साकर्मियों हड़ताल पर जाते हैं। हड़ताल को चार दिन हो जाते हैं। सभी डॉक्टरों को इसकी चिंता होने लगती है। तब वह कंपाउंडर नेता ठाकुर धुरंधरसिंह को बुलाते हैं और उसे चुपके से नोटों की गड्डियाँ दे देते हैं और हड़ताल बंद करने को कहते हैं। धुरंधरसिंह सभी चिकित्साकर्मियों को बुलाकर कहते हैं—‘यूनियन के पदाधिकारियों से वार्तालाप हुआ। उन्होंने आप लोगों की सभी माँगों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने का उसी प्रकार वचन दिया है, जैसे सरकार हड़ताली कर्मचारियों को अक्सर देती है। इसलिए डॉक्टरों के आशवासन पर यह हड़ताल वापस ली जा रही है। कल से आप लोग नियमित काम पे जाएँ।’¹¹ इस तरह संगठन के नाम पर पैसा कमाना धुरंधरसिंह जैसे लोगों का पेशा बन गया है।

‘घोटाला इतिहास’ नाटक में स्वतंत्रता के पश्चात् हुए विभिन्न घोटालों को प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक में ‘राष्ट्रीय भ्रष्टाचार-दुराचार समर्थक सोसायटी’ की तरफ से एक गोष्ठी का आयोजन किया गया है। पिछले पच्चीस साल में भारत ने सबसे ज्यादा किस क्षेत्र में उन्नति की है, यह सवाल इस गोष्ठी में रखा गया है, और सही आँकड़े देने और अपनी बात तर्कों-सहित सिद्ध करनेवाले सज्जन को सोसायटी डायमंड एवार्ड देनेवाली है। भारत में सबसे ज्यादा उन्नति भ्रष्टाचार क्षेत्र में हुई है, इस बात पर विचार-विमर्श के बाद मंच पर आकर एक-एक व्यक्ति भ्रष्टाचार का विवरण देता है। मिस्टर एच नामक व्यक्ति आते हैं और कहते हैं—

‘घोटाला-इतिहास का चक्र अभी चल रहा है, इसलिए मैं भ्रष्टाचार-दुराचार समर्थक सोसायटी के पदाधिकारियों से करबद्ध प्रार्थना करता हूँ कि वह देश का अंतिम और महानतम घोटाला होने तक अपने डायमंड एवार्ड की घोषणा न करें। यह देश के और सोसायटी के हित में है।’¹² इस नाटक के माध्यम से बताया गया है कि भ्रष्टाचार का घोटाला रुकनेवाला नहीं है, बल्कि एक घोटाले से दूसरा घोटाला उससे बड़ा ही होगा। यह निरंतर चल रही समस्या डॉ॰ अग्रवाल ने बताई है।

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल के नाट्य साहित्य के अध्ययन से यह पता चलता है कि उन्होंने केवल स्थानीय समस्याओं को ही अपने नाटकों का विषय नहीं बनाया है, बल्कि इससे आगे बढ़कर वैश्विक स्तर की समस्याओं को अपने नाटकों का विषय बनाया है। इस संबंध में डॉ॰ एन॰ सिंह ने लिखा है—‘इस समय उदारीकरण, भूमंडलीकरण तथा निजीकरण के दुष्परिणाम सामने आने लगे हैं और बुद्धिजीवी किसी भी खेमे के हों, वे सभी इससे चिंतित हैं। डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल ने इस मुद्दे को जितनी ईमानदारी से अपने नुक्कड़ नाटकों में उठाया है, वह प्रशंसनीय है, जबकि हिंदी-क्षेत्र का बुद्धिजीवी इस दिशा में अभी सही तरह से सोच भी नहीं रहा है।’¹³

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल के नाटकों की विषयवस्तु जीवन की वास्तविक घटनाओं से जुड़ी हुई है। उनके नाटकों में सामाजिक उद्देश्य छिपा हुआ है। इन नाटकों का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। नाटककार सामयिकता से बँधा हुआ है। इस प्रकार डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल के नाटकों में समकालीन जीवन के द्वंद्वों और तनावों की प्रखर अभिव्यक्ति हुई है।

संदर्भ

1. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल : व्यक्ति और साहित्य, डॉ० हरीशकुमार सिंह, पृ० 117
2. ग्यारह नुक्कड़ नाटक, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 29
3. वही, पृ० 43
4. वही, पृ० 58
5. वही, पृ० 70
6. वही, पृ० 85
7. वही, पृ० 98
8. शोध दिशा अंक-8, संपादक० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल एवं मीना अग्रवाल, पृ० 43
9. ग्यारह नुक्कड़ नाटक, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ० 105
10. वही, पृ० 116
11. वही, पृ० 140
12. वही, पृ० 173
13. सफ़र साठ साल का, पृ० 202

मु०पो० सावलदे
तहसील शिरपूर
ज़िला धुलिया (महाराष्ट्र) 425405

डॉ० आदित्य प्रचण्डिया का साहित्यिक योगदान

डॉ० बाबूराम (डी०लिट्०)

प्रोफ़ेसर, हिंदी-विभाग,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र

डॉ० आदित्य प्रचण्डिया बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी हैं। इसके फलस्वरूप उन्होंने साहित्य की विविध विधाओं पर सफलतापूर्वक लेखनी चलाई है। वे कुशल अध्यापक, सफल प्रशासक, प्रबुद्ध शोधार्थी, धर्मपरायण, योग्य नागरिक, उत्कट देशप्रेमी, मिलनसार, बहुभाषाविद, प्रतिष्ठित कवि, प्रौढ़ समालोचक, श्रेष्ठ उपन्यासकार, निष्णात निबंधकार और उच्चकोटि के संपादक और सह लेखक रहे हैं। गुण और परिमाण की दृष्टि से उनका साहित्यिक योगदान बहुमुखी है। उनकी साहित्यिक रचनाओं का विवेचन एवं विश्लेषण इस प्रकार है।

डॉ० आदित्य प्रचण्डिया की सन् 1990 में प्रकाशित 'हिंदी कविता के प्रमुखवाद' विषयक समालोचनात्मक कृति है। इसमें उन्होंने रहस्यवाद, स्वच्छंदतावाद, छायावाद, हालावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नकेनवाद और नई कविता के विविध आंदोलनों का विवेचन एवं विश्लेषण किया है। डॉ० राकेश गुप्त का हिंदी कविता के प्रमुखवादों के संदर्भ में मत उल्लेखनीय है— 'डॉ० आदित्य प्रचण्डिया ने प्रत्येक वाद से संबंधित अधिकाधिक विद्वानों के मतों का सविवेक आकलन किया है, वाद विशेष की रचनाओं के अनेक उदाहरणों से उसके स्वरूप को स्पष्ट किया है; फिर अंत में उस वाद की समस्त विशिष्टताओं को सार रूप से संकलित करके अपना तर्कपुष्ट मत प्रस्तुत किया है। इस प्रकार हिंदी कविता के प्रमुखवादों की सुबोध व्याख्या करने में तथा उनके निर्भ्रान्त स्वरूप निरूपण में विद्वान लेखक को सराहनीय सफलता मिल सकी है।'¹

डॉ० आदित्य प्रचण्डिया की सन् 1991 में प्रकाशित 'आधुनिक हिंदी कविता : परम्परा और परिवेश' एक महत्त्वपूर्ण समीक्षात्मक रचना है। आधुनिक हिंदी कविता गुण और परिमाण की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। डॉ० शैलेश जैदी का इस रचना के संदर्भ में मत इस प्रकार है— 'डॉ० आदित्य प्रचण्डिया की पुस्तक 'आधुनिक हिंदी कविता : परंपरा और परिवेश' 1850 ई. के बाद की हिंदी कविता का एक परिचयात्मक विवरण है। यह लेखक के प्रौढ़ एवं सारगर्भित लेखों का संग्रह है, जिससे हिंदी की आधुनिक कविता की समझ बनती है। डॉ० प्रचण्डिया आधुनिक साहित्य के एक अच्छे अध्येता हैं।'²

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार डॉ० आदित्य प्रचण्डिया ने 'जैनैद्र के उपन्यास' विषयक समीक्षात्मक रचना में जैनैद्र के परख, सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, सुखदा, विवर्त, व्यतीत, जयवध 'न, मुक्तिबोध, अनंतर, अनामस्वामी, दर्शाक आदि उपन्यासों का विद्वत्तापूर्वक गम्भीर विवेचन एवं

विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इस सम्बन्ध में ऋषिकुमार चतुर्वेदी के विचार इस प्रकार हैं—‘इस पुस्तक में हिंदी उपन्यास परम्परा में जैनेन्द्र का वैशिष्ट्य, उनका व्यक्तित्व, उनके सभी उपन्यासों का तात्त्विक विवेचन, विद्वान समीक्षकों के तत्संबंधी विचार, तथा अंत में जैनेन्द्र के उपन्यासों से चुनी हुई बहुमूल्य सूक्तियाँ देकर लेखक ने यह सिद्ध कर दिया है कि थोड़े में बहुत कह देने की कला में वह निष्णात हैं।’ डॉ० आदित्य प्रचण्डिया ने पार्श्वप्रथा, आजनेय और महासमर आदि उपन्यास लिखकर हिंदी उपन्यास साहित्य को समृद्ध किया है।

डॉ० आदित्य प्रचण्डिया की ‘अपभ्रंश भाषा का पारिभाषिक कोश’ डी. लिट्. उपाधि का शोधकार्य है, जिसका प्रकाशन सन् 1999 में हुआ। यह अपभ्रंश भाषा से सम्बन्धित विरल और अमूल्य शोधकार्य है, जो उनके गंभीर पांडित्य का द्योतक है। डॉ० प्रचण्डिया के इस शोधकार्य के सम्बन्ध में सुप्रसिद्ध विद्वान विद्यानिवास मिश्र ने अपनी टिप्पणी अभिव्यक्त की है—‘लेखक ने जैन अपभ्रंश वाङ्मय का गहरा आलोड़न करके सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण शब्दों की सूची बनाई है और उसकी व्युत्पत्ति देते हुए अर्थ के साथ-साथ विस्तृत व्याख्या भी। इसमें स्रोतों का प्रामाणिक विवरण है और पारिभाषिक कोश की सीमाओं का सैद्धान्तिक विवेचन किया गया है। दार्शनिक, धार्मिक, औद्योगिक और विज्ञान से संबंधित पारिभाषिक शब्दों का अर्थ विवेचन भी किया गया है। यह उच्च कोटि का मौलिक शोधकार्य है।’⁴

हिंदी साहित्य को समृद्ध करने में जहाँ कवियों की भूमिका रही है, वहाँ कवयित्रियों का योगदान भी विशेष रूप से उल्लेखनीय रहा है। इसी विचार को ध्यान में रखकर डॉ० आदित्य प्रचण्डिया ने ‘मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ : जीवन और साहित्य’ सम्बन्धी समीक्षात्मक कृति की रचना की है, जो 2003 में प्रकाशित हुई है। इसमें मध्यकाल की दयाबाई, सहजोबाई, बजदासीबांकावति, सुन्दरकुंवरि और शेख आदि हिंदी कवयित्रियों के जीवन और साहित्य का सम्यक विवेचन है। इस महत्त्वपूर्ण कृति के सम्बन्ध में सुप्रसिद्ध साहित्यकार धर्मपाल सैनी के विचारों का निष्कर्ष इस प्रकार है—‘इन महत्त्वपूर्ण कवयित्रियों का ऐसा शोधपरक, आलोचनात्मक अध्ययन करके डॉ० प्रचण्डिया ने हिंदी साहित्य की श्रीवर्द्धि की है।’

आदित्य प्रचण्डिया श्रेष्ठ साहित्यकार और गंभीर समालोचक के साथ-साथ एक सहृदय कवि भी हैं। सन् 2003 में प्रकाशित ‘खिली धूप’ उनका 101 कविताओं पर आधारित काव्य-संकलन है। इस संकलन में अधिकांश कविताएँ मनोविज्ञान सम्बन्धी हैं। सुप्रसिद्ध विद्वान डॉ० रमाकांत श्रीवास्तव ने ‘खिली धूप’ काव्य-संकलन के सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं—‘डॉ० आदित्य प्रचण्डिया की कविताएँ मनोहारी भाव भूमि पर अठखेलियाँ करती तरु शाखाओं जैसी हैं, जिनमें प्रतीकों-बिम्बों-मिथकों के कमनीय किसलय हैं, भावों के पावन पुष्प हैं, अर्थवत्ता के रसीले फूल हैं, जो सुभाषितों के अमृत से परिपूरित हैं। यही वजह है कि वे जादुई नयेपन के कारण कविताओं के वर्तमान जंगल से नितान्त अलग दिखाई देती हैं।’⁶

डॉ० आदित्य प्रचण्डिया शोध और आलोचना के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उनका ‘अपभ्रंश-आलोक’ समीक्षात्मक ग्रंथ सन 2008 में प्रकाशित हुआ। इसमें अपभ्रंश साहित्य के विकास और अपभ्रंश के विभिन्न कवियों के योगदान की तात्त्विक विवेचना की गई है। इस संदर्भ में लेखक के विचार उल्लेखनीय हैं—‘हिंदी को समझने के लिए अपभ्रंश ही वह आर्यभाषा है, जो ईसा की लगभग सातवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक सम्पूर्ण उत्तर भारत के सामान्य

लोकजीवन के परस्पर भाव-विनिमय और व्यवहार की बोली रही है। यह निर्विवाद तथ्य है कि अपभ्रंश से ही सिन्धी, पंजाबी, मराठी, गुजराती, राजस्थानी, बिहारी, उड़िया, बंगला, असमी, पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, हरियाणवी और कश्मीरी, आधुनिक भारतीय भाषाओं का जन्म हुआ।' निस्संदेह उत्तर भारत की आर्यभाषाएँ और उनका साहित्य पूर्ववर्ती अपभ्रंश से विकसित और प्रभावित हुआ है। 'अपभ्रंश-आलोक' सचमुच अपभ्रंश का प्रकाशपुंज है।

डॉ० आदित्य प्रचण्डिया की 'मध्यकालीन हिंदी संतकाव्य : दर्शन और मूल्यांकन' सन् 2008 में प्रकाशित एक सुप्रसिद्ध समीक्षात्मक कृति है। लेखक स्वयं अपने मंतव्य को इस प्रकार रेखांकित करते हैं—'संत कवियों ने अपने अनुभव के वातायन से दार्शनिक चिंतन के माध्यम से व्यक्ति को उत्थित करने के लिए कल्याणकारी संदेश फूँका था। आज भारतीय समाज के सामने जो सवाल और समस्याएँ हैं, उनका समाधान संतकाव्य से प्राप्त किया जा सकता है।' वस्तुतः संतकाव्य में केवल आधुनिक भारतीय समाज की समस्याओं का समाधान ही नहीं अपितु संपूर्ण मानवजाति की विकराल समस्याओं का समाधान निहित है। इसीलिए सूचना और प्रौद्योगिकी, भूमण्डलीकरण, विश्वबाजारवाद, भौतिकवाद, उपयोगितावाद तथा भोगवाद आदि की समस्याओं के लिए संत साहित्य चिरप्रासंगिक है।

डॉ० आदित्य प्रचण्डिया जैन साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान हैं। उन्होंने जैन-दर्शन और जैन-साधना सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण कृतियों की रचना की है और हिंदी साहित्य के वैभव में अपूर्व वृद्धि करके अपने साहित्यिक योगदान का परिचय दिया है। उन्होंने अपने समीक्षात्मक और सांस्कृतिक निबंधों में संस्कृति को मानव जीवन का सौंदर्य, माधुर्य, सौरभ, मिठास और गरिमा माना है। 'नई समीक्षा के शास्त्र' निबंध में विचार करते हुए डॉ० प्रचण्डिया का अभिमत महत्त्वपूर्ण दृष्टिगोचर होता है—'नई समीक्षा कल्पना अथवा कला को महत्त्व न देकर मानव की भावानुभूति को महत्त्व प्रदान करती है। नई समीक्षा ने काव्यशास्त्र और साहित्य सम्बन्धी मान्यताओं की रूढ़ियों के कटघरे को तोड़कर साहित्यलोचन के क्षेत्र में नवीन दृष्टिकोणों का विस्तार किया है। समीक्षा के क्षेत्र में नवीन मानदंडों की व्याख्या हिंदी की नई समीक्षा की उपलब्धि और बदलती हुई भूमिका है।'¹⁰

अंत में कहा जा सकता है कि डॉ० आदित्य प्रचण्डिया का व्यक्तित्व और कृतित्व बहुमुखी है। अनेक गणमान्य संस्थाओं ने समय-समय पर उनको अनेक पुरस्कारों से सम्मानित भी किया है। उनका साहित्यिक योगदान सराहनीय है।

संदर्भ

1. डॉ० आदित्य प्रचण्डिया, हिंदी कविता के प्रमुखवाद, तारामंडल प्रकाशन, अलीगढ़, संस्करण, 1990, पृ० 8
2. डॉ० आदित्य प्रचण्डिया, आधुनिक हिंदी कविता : परम्परा और परिवेश, तारामंडल प्रकाशन, अलीगढ़, संस्करण, 1991, पृ० 8
3. डॉ० आदित्य प्रचण्डिया, जैनैत्र के उपन्यास, तारामंडल प्रकाशन, अलीगढ़, संस्करण, 1994, पृ० 8
4. डॉ० आदित्य प्रचण्डिया, अपभ्रंश भाषा का पारिभाषिक कोश, तारामंडल प्रकाशन, अलीगढ़, संस्करण, 1999, पृ० 11
5. डॉ० आदित्य प्रचण्डिया, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ : जीवन और साहित्य, तारामंडल प्रकाशन,

20 वीं सदी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में क्षेत्रीय बोलियों का प्रभाव

प्रा० डॉ० विट्ठलसिंह नंदरामसिंह ढाकरे

कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, लासलगाँव

आज दुनिया की अनेक भाषाओं के लुप्त होने का खतरा पैदा हो गया है। उन्हें बोलनेवाले दिन-पर-दिन कम होते जा रहे हैं। युनेस्को द्वारा विश्व की लुप्त होती भाषाओं पर जारी एक एटलस के अनुसार दुनिया की करीब 6000 भाषाओं में से 2500 के लुप्त हो जाने की आशंका है। भारत की 196 भाषाओं-बोलियों पर यह संकट मँडरा रहा है। उसके बाद अमरीका का नंबर है, जहाँ 192 भाषाएँ लुप्त होने के कगार पर पहुँच गई हैं। विश्व में 199 भाषाएँ ऐसी हैं, जिन्हें बोलनेवाले लोग 10 से भी कम हैं।

एक भाषा की मौत का अर्थ है—उसके साथ एक संस्कृति का समाप्त होना, एक विशिष्ट पहचान का गुम हो जाना। तब क्या दुनिया से विविधता समाप्त हो जाएगी, क्या पूरा संसार एक रंग में रँग जाएगा।

वास्तव में भाषा का संबंध सामाजिक विकास से है। जो समुदाय जितना विकसित होता है, उसकी भाषा भी उतनी ही शक्तिशाली होती है। एक शक्तिशाली भाषा की बाढ़ में अनेक छोटी-छोटी धाराएँ सिमटती चली जाती हैं। भाषा के माध्यम से ही व्यक्ति अपने परिवेश से जुड़ा होता है। भूमंडलीकरण ने भूगोल की दीवारों को गिरा दिया है तथा व्यापार ने हर किसी को एक-दूसरे पर निर्भर बना दिया है। इसी के साथ एक-दूसरे के संवाद की जरूरत बढ़ गई है। इसी प्रक्रिया में लोकभाषाओं से लोगों का ध्यान हट रहा है। इस प्रकार भाषाओं का संकटग्रस्त होना दूर्भाग्यपूर्ण है।

ऐसी संकटग्रस्त स्थिति में जब हम 20वीं सदी के अंतिम दशक के चर्चित हिंदी उपन्यासों की ओर देखते हैं, तब स्थिति आशाजनक लगती है। 20वीं शताब्दी के अंतिम दशक के चर्चित हिंदी उपन्यासों में जहाँ वैश्वीकरण, बाजारीकरण हावी है, वहीं स्थानीय संकटों को भी इस काल के उपन्यासकारों ने चित्रित किया है।

हम साहित्य उसी को कहते हैं, जो सामाजिक जीवन के नाना स्रोतों से अपना प्राणरस खींचता है, सामाजिक जीवन की अंतर्वस्तु से रूपायित होता है और जो कुछ भी वह सामाजिक जीवन से पाता है, उसे ही कलात्मक रूप में एक सचेत मानस-व्यापार के तहत पुनर्चित करते हुए अपने समूचे मानवीय और सामाजिक सरोकारों के साथ समाज को वापस लौटा देता है। इसी प्रक्रिया से गुजरने के बाद साहित्य महज साहित्य नहीं, मनुष्य के सांस्कृतिक कर्म का दर्जा पाता है।

विगत शताब्दी के अंतिम दशक में मैत्रेयी पुष्पा, भगवानदास मोरवाल, वीरेंद्र जैन, विद्यासागर नौटियाल जैसे उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं में क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग करते हुए उस परिवेश को सजीव रूप में जीवित कर दिया है। 20वीं सदी का अंतिम दशक उपन्यास का दशक रहा है। इस काल में अनेक वृहत् उपन्यास हिंदी में आए हैं। यह साहित्य के आधुनिकीकरण का कालखंड है।

20 वीं सदी के अंतिम दशक का हिंदी उपन्यास अपने विषय-वैविध्य के कारण आलोचना-जगत् में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर पाया है। इन उपन्यासों को लेकर साहित्य-जगत् में पर्याप्त विचार-मंथन, चिंतन-मनन हुआ है। इन उपन्यासों में समकालीन समाज की सूक्ष्म परतों को खोलकर पाठक के सामने रखने का प्रयास किया गया है। विषय-वैविध्य पर ध्यान दें तो ये उपन्यास नारी-चेतना, दलित-वमर्श, आदिवासी जन-जीवन का चित्रण मानवी जीवन के बिखराव एवं विसंगतियों तथा युगीन भावबोध की यथार्थ अभिव्यक्ति करते हैं। भारतीय संस्कृति की ऐतिहासिक परंपरा के गौरवशाली बखान एवं पुनरावलोकन की प्रवृत्ति की प्रधानता भी इन उपन्यासों की एक प्रमुख विशेषता है।

आधुनिक भारतीय व्यक्ति अभाव, बेचैनी, पीड़ा, विषमता, बेरोजगारी जैसी समस्याओं से विद्रोह तो करता है, परंतु उस विद्रोह को मुखर अभिव्यक्ति नहीं मिल पाती। इसी अभिव्यक्ति को कथात्मक ढंग से प्रस्तुत करने की योजना बीसवीं सदी के उपन्यासों में दिखाई देती है। आतंकवादी गतिविधियाँ, वर्ग-वैषम्य, धार्मिक असंतोष, मूल्य-विघटन तथा पीड़ित मानसिकता के कारण फैले संक्रास एवं कुंठा की अभिव्यक्ति इन उपन्यासों में है, तो दूसरी ओर ग्रामीण जीवन में त्रस्त वातावरण का यथातथ्य वर्णन भी इन उपन्यासों में हुआ है। भारत के दक्षिण प्रांतों की तुलना में मध्य भारत के मैदानी क्षेत्रों में जनजीवन अत्याधिक शोषित एवं समस्याग्रस्त है। इन प्रांतों में विकास हो तो रहा है, परंतु उसमें शिथिलता है। भारत में इस क्षेत्र में बड़ी मात्रा में जनसंख्या-वृद्धि हुई है। यह भी ज्ञात हो कि हिंदी साहित्य से जुड़ा हुआ साहित्यकारों का वर्ग भी इसी क्षेत्र से संबंध रखता है। इनमें से बहुत से उपन्यासकारों ने इन क्षेत्रों में व्याप्त समस्याओं को नजदीक से देखा है। वे इन क्षेत्रों की समस्याओं से भली-भाँति परिचित हैं।

भारत में आज भी कुछ ऐसी जनजातियाँ हैं, जो आजादी का अर्थ नहीं जानतीं। उनके पास न तो अपनी ज़मीन है और न ही ठिकाने या घर-बार। अंग्रेजों के शासनकाल में इन्हें 'जरायमपेशा' जाति घोषित कर तथाकथित सभ्य समाज ने उन्हें उपेक्षा और घृणा का पात्र तथा पुलिस के अत्याचार का सबसे नर्म चारा बना दिया था। मैत्रेयी पुष्पा ने 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में इस कटु यथार्थ को गहरी संवेदना और जबरदस्त सृजनात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है। इससे पहले रांगेय राघव ने 'कब तक पुकारूँ' में इस जनजाति के एक विशेष समुदाय नटों के जीवन का चित्रण किया था। मैत्रेयी पुष्पा ने 'अल्मा कबूतरी' में मुख्यतः बुंदेलखंड क्षेत्र में बसने वाली कबूतरा जाति के जीवन को उपन्यास का विषय बनाया है, जो अपनी वंश-परंपरा रानी पद्मिनी और झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की अंगरक्षिका झलकारी से जोड़ते हैं। इस उपन्यास में लेखिका ने कबूतरा जाति के अपमान, विवशता और पीड़ाभरी जिंदगी को जीवंत पात्रों के अद्भुत कथा-संसार में बदल दिया है। इसके साथ ही लेखिका ने समानांतर सभ्य समाज से, जिन्हें वे 'कज्जा' कहकर पुकारते हैं, उनके टकराव, संघर्ष और पराजय को भी अत्यंत विश्वसनीय और

मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया है। कज्जा और कबूतरा समाज की मुठभेड़ और द्वंद्व ही 'अल्मा कबूतरी' का केंद्रीय विषय है। 'भूरी' कज्जा समाज से टक्कर लेती है, वह शरीर का सौदा करके भी अपने बेटे को पढ़ा-लिखाकर उसे इस योग्य बनाना चाहती है कि वह समाज में सम्मान की जिंदगी जी सके, पर ऐसा नहीं हो पाता। वह 'कबूतरा' बनकर ही जीने को अभिशप्त है। 'अल्मा कबूतरी' हारे हुए व्यक्तियों की कथा है। इसलिए इसे पढ़ते हुए पाठक को गहरी पीड़ा की अनुभूति होती है। मंसाराम कज्जा है और कदमबाई कबूतरी। नाजायज संतान है—राणा। न कबूतरा, न कज्जा, दोनों के बीच भटकता त्रिशंकु। संवेदनशील और स्वप्नदर्शी किशोर। राणा कल्पनालोक में रहता है और अल्मा जिंदगी के कठोर अनुभवों में पक रही है। वह हर स्थिति को सीढ़ी बनाकर दीवारें फाँदती कबूतरी है। 'अल्मा कबूतरी' उस वास्तविक यथार्थ की जटिल कहानी है, जो अनजाने ही हमारे आस-पास घटित हो रही है। कभी-कभी सड़कों-गलियों में घूमते या अखबारों की अपराध सुर्खियों में दिखाई देनेवाले कंजर, साँसी, नट, मदारी, सपेरे, पारधी, हाबूडे, बंजारे, बावरियाँ, कबूतरे आदि न जाने कितनी जनजातियाँ हैं, जो सभ्य समाज के हाशियों पर डेरा लगाए सदियों गुजार देती हैं। हमारा उनसे चौकन्ना संबंध सिर्फ़ कामचलाऊ ही बना रहता है। कबूतरा पुरुष या तो जंगल में रहता है, या जेल में। स्त्रियाँ शराब की भट्टियों पर रहती हैं या हमारे तथाकथित सभ्य समाज के लोगों के बिस्तरों पर....। स्वतंत्र भारत में समाज की मुख्य धारा से किनारे फेंक दिए गए इन अदृश्य लोगों की लड़ाई आज भी जारी है। यह बुंदेलखंड की कहानी है। इस कहानी को बुंदेली तथा क्षेत्रीय भाषा के रंग में रँगकर दर्जनों पात्रों को जीवंत बना दिया है। इस उपन्यास में लेखिका ने क्षेत्रीय भाषा का जमकर प्रयोग किया है—'रे भूरी! राघव माते का च्छोरा आया री! गुढ की डिंगरी ले आ!'

वीरेंद्र जैन के 'डूब' उपन्यास में बुंदेलखंडी बोली का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। इस उपन्यास के पात्र माते, घूमा, रघू साब, मोती सांब, देवीसिंह, बड़े साब, जनकसिंह (मास्साब), अट्टू साब, गोरामाई, बामन महाराज आदि पात्र बुंदेलखंडी भाषा में अपने संवाद प्रस्थापित करते हैं। घूमा कहता है—'हम तो केंत तोड़ने आए थे साबा।' माते बड़े ठाकुर को कहता है—'कम-से-कम भाग्य से अपनी सोहबत में, आपकी छत्रछाया में रहने का मौका अंतर्दामी हमें देना चाहता है, उसे तो न मेटिए।' ठाकुर माते से कहता है—'अरे हम रघुवंशी ठाकुर हैं, जो ठान ली सो ठान ली, जो कौल कर लिया सो कर लिया।'

इसके साथ-साथ प्रस्तुत उपन्यास में बुंदेलखंडी आंचलिक भाषा के शब्दों के भी प्रयोग हुए हैं। जैसे—कारज (कार्य), भंड्या (डाकू गिरोह), पृच्छाल (स्नान), अंथउ (भोजन), बरेदी (ढोरों की निगरानी करने वाला), दाऊजू (बड़ा भैया), कलदार (रुपया), लंबरदार (जमींदार), गढमात (सड़क) आदि।

मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नमम' में बुंदेलखंडी बोली का प्रयोग अधिक मात्रा में हुआ है। कक्को के शब्दों में—'सरमा रही हो तुम हम कक्को हैं। घर गाँव के सब लरका-बिटिया हमें कक्को कहकर बुलाते हैं।' दादा पंचमसिंह बरु से कहते हैं—'स्यार जिनावर तक अपनी जाति का शिकार नहीं करते, मगर आदमी केवल आदमी को ही खाना चाहता है।'

इस बोली से उपन्यास की भाषा बोझिल न बनकर गतिशील बनी है। इस बोली के कारण पूरा परिवेश और पात्र जीवंत लग रहे हैं।

विद्यासागर नौटियाल के 'सूरज सबका है' उपन्यास में भी गढ़वाली बोली-भाषा का प्रयोग हुआ है। इस उपन्यास की बूढ़ी दादी की बोली में गढ़वाली बोली के दर्शन अधिक मात्रा में होते हैं। इस उपन्यास में सांगवाड (चौखट), छेणी (रूखानी), पछानी (बड़ी लकड़ी काटने का कुल्हाड़ा), स्वीली (जच्चा), तिमले (अंजीर), खोह (आज का कोटद्वार), जूरा (यमराज), रैबार (संदेश), मरदार (मरणासन्न), गुजार (टट्टी करने की खुली जगह) आदि गढ़वाली बोली के आंचलिक शब्द यहाँ आए हैं। गढ़वाली बोली के कुछ नमूने दृष्टव्य हैं—'आ गए महाराज, मेरे धन्य भाग।' 'तो तुम ज्युराँ नहीं हो महाराज' 'ज्युराँ से सबसे बड़ा हकिम कोई नहीं होता, मेरे लिवाल क्यों नहीं आ रहे हैं ...' जैसे अनेक वाक्यों में गढ़वाली अंचल के शब्दों का प्रयोग हुआ है।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि 20वीं सदी के अंतिम दशक के चर्चित हिंदी उपन्यासों में मेवाती, बुंदेली, गढ़वाली आदि क्षेत्रीय बोलियों का संवादात्मक प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। इस प्रकार के भाषा-प्रयोग से उपन्यास साहित्य को उत्कर्ष प्राप्त हुआ है। ऐसी भाषा के प्रयोग से पात्रों की स्वाभाविकता बनी रहती है। यह भाषा उपन्यास को जीवंत बनाते हुए जनजीवन और अंचल-विशेष की पहचान को बढ़ाकर भाषा का अस्तित्व दीर्घकाल तक बनाए रखने में सक्षम है।

'सी' टाइप कालेज
शास्त्रीनगर, लासलगाँव
जिला नासिक (महा०) 422306
मो० 08888590156

ललित निबंध-परंपरा के सशक्त हस्ताक्षर डॉ० श्यामसुंदर दुबे

प्रा० डॉ० शिवाजी नामदेव देवरे

अध्यक्ष स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,

एस०एस०वी०पी०एस० कला

एवं वाणिज्य महाविद्यालय, धुले (महाराष्ट्र)

ललित निबंध की परंपरा का प्रारंभ तो भारतेंदुयुग में ही हो चुका था, किंतु इसके स्थायी लक्षण सरदार पूर्णसिंह एवं आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंधों में प्रकट होने लगे थे। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंध साहित्य में ललित निबंध का पूर्ण विकास प्राप्त होता है। ललित निबंध परंपरा के पुरोध पुरुष डॉ० द्विवेदी हैं। डॉ० विद्यानिवास मिश्र एवं श्री कुबेरनाथ राय ने इस परंपरा को अग्रसर किया।

डॉ० श्यामसुंदर दुबे इसी परंपरा में परिगणित किए जाते हैं। अब तक डॉ० श्यामसुंदर दुबे के दस निबंध-संकलन प्रकाशित हो चुके हैं। आपके ललित निबंधों का सतत प्रकाशन विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में भी होता रहता है। हिंदी की प्रतिष्ठित कल्पना, नया प्रतीक, धर्मयुग, साप्ताहिक, हिंदुस्तान, कादंबिनी, नवनीत आदि पत्रिकाओं के साथ मधुमती, साहित्य अमृत, वीणा, नवभारत टाइम्स, हिंदुस्तान टाइम्स आदि पत्र-पत्रिकाओं में आपके सैकड़ों ललित निबंध प्रकाशित हुए हैं। 'कालमृगयन', 'विबाद बाँसुरी की टेर', 'कोई खिड़की इसी दीवार से', 'हमारा राजा हँसता क्यों नहीं', 'ग्रामरंग रस भीजी चुनमिया', 'नेह के नेग', 'समकालीन निबंध' और 'आलोक' आदि उनके ललित निबंध-संकलन हैं।

इन ललित निबंध संकलनों के निबंधों में डॉ० दुबे के ललित निबंधकार के सभी पक्षों का विस्तृत स्वरूप प्रकट होता है। उन्होंने ललित निबंध-परंपरा में कुबेरनाथ एवं और विवेकीराय की समृद्ध निबंध-परंपरा को आगे बढ़ाया है। डॉ० दुबे के ललित निबंधों में लोकजीवन की विभिन्न छवियाँ सर्वाधिक रूप में प्राप्त होती हैं। भारत में 75 प्रतिशत ग्रामीण जीवन का हिस्सा है। यदि हम भारत की आत्मा को जानना चाहते हैं, तो हमें भारत के गाँवों की संस्कृति और वहाँ के जीवन को समझना होगा। डॉ० श्यामसुंदर दुबे के ललित निबंधों में, ग्रामीण जीवन के अनेक रंग प्राप्त होते हैं। एक ओर ऐसे निबंधों में जहाँ लोकल कलर हैं-वहाँ की प्रकृति है, दूसरी ओर वहाँ की जीवन-स्थितियाँ भी हैं। लोकगीत, लोक-आख्यान से कहीं-कहीं डॉ० दुबे के ललित निबंध देशज स्वभाव को व्यक्त करते हैं।

डॉ० श्यामसुंदर दुबे के ललित निबंध जहाँ परंपराओं को व्यक्त करते हैं, वहीं उनमें आधुनिकता बोध भी है। इस रूप में डॉ० दुबे के ललित निबंधों में जीवन की गतिशीलता के दर्शन होते हैं। वे रूढ़ियों से रहित समाज की संकल्पना लेकर अपने निबंधों में आते हैं। डॉ०

श्यामसुंदर दुबे ललित निबंध-परंपरा के ऐसे मोड़ पर हैं, जहाँ से ललित निबंध को एक नई दिशा मिली है। नई दिशा इस अर्थ में कि डॉ० श्यामसुंदर दुबे के ललित निबंधों में रचनाकार का अपना समय अपने वर्तमान के सवालों से जुड़ा है और उनके उत्तरों की तलाश में अपने समय के जीवन-संदर्भों को ललित निबंध का विषय बनाता है। ये विषय लोक की धूप के उजास में अपने वास्तव को पूरी तरह खोलते चलते हैं, साथ ही वे अपने समय के मनुष्य के बदलाव की प्रक्रिया में भारत के सांस्कृतिक अनुरक्षण की चिंता करते हैं। जो हमारी पहचान के मानदंड हैं, उनके प्रति बेचैनी महसूस करते हैं। उन्हें बचाने की कोशिश उस स्तर पर करते हैं, जिस स्तर पर जिजीविषा जीवन को बचाने की पहल करती है। युगसत्य के व्यापक संदर्भ डॉ० दुबे अपने ललित निबंधों में समेटते हैं, जिनसे उनकी सांस्कृतिक-चेता-मेधा की प्रसरित भूमि का अंदाजा लगाया जा सकता है।

डॉ० दुबे का किसानी रचनाकार अपने ललित निबंधों में प्रकृति को उस तरह पाता है, जैसे वनपाँखी वानस्पतिक संसार को पाता है—अविभाज्य, अटूट, अभिन्न, अखंड और आत्मीय। प्रकृति की संवेदनाएँ जीवन की गहराई में गोता लगाकर प्राची और सूरज, चाँद, ऋतु, नदी, पहाड़ को आत्मसात करती हुई विराट सत्ता के अस्तित्व में शरण और सुरक्षा की शाश्वत अन्विति पाती हैं। इन्हीं अर्थों में उनकी वाणी साहित्य रूप में एक प्रार्थना लगती है। यह प्रार्थना निजी होकर भी अपने सामाजिक विस्तार में जातीय स्मृतियों से जुड़ी है। आज जहाँ सब-कुछ बदल-सा गया है, उसके आँधियारे में अपने मूल की खोज और अपने सनातन संस्कारों की चादर की ओढ़न उन्हें संस्कृति पुरुष होने और अपनी सर्जना में किसान होने का गौरव देती है। यह गर्व और गौरव इसलिए कि वे अपनी ज़मीन से प्राण-रस लेकर वैश्विक परिदृश्य पर उमड़ी चुनौतियों का सामना करने की सामर्थ्य प्राप्त करते हैं। (ललित निबंध : स्वरूप एवं परंपरा डॉ० श्रीराम परिहार)

डॉ० श्यामसुंदर दुबे के निबंधों में प्रकृति और मनुष्य की अंतरंगता मनुष्य की चेतना का ही विस्तार है। वे जीवन के आस्थामूलक पक्षों को ही अपनी निबंध-रचना में स्थान देते हैं। एक आशावादी स्वर उनके ललित निबंधों में सर्वत्र परिलक्षित होता है। डॉ० श्यामसुंदर दुबे के ललित निबंधों में जीवन के अनेक रंगों का समावेश है। डॉ० दुबे के ललित निबंध व्यक्ति के भीतर छिपी ललित, मधुर, आनंदवादी, अनुरंजनकारी प्रवृत्तियों का उद्घाटन कर अपने ऋतु चिंतन को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं, उनके निबंध परंपरागर्भ से प्रसूत होकर भी अपने लिए एक अलग मार्ग आखि़तार करते हैं। (डॉ० श्यामसुंदर दुबे की रचना दृष्टि, डॉ० गोपाल भूरिया)

डॉ० दुबे के ललित निबंधों में आधुनिकता के प्रति वितृष्णा नहीं है, बल्कि वे परिवर्तन के साथ विवेक-दृष्टि का इस्तेमाल करने की बात करते हैं। रीति-रिवाज हमारी संस्कृति का एक हिस्सा है। यह न केवल हमारे समाज को उल्लास देते हैं, अपितु समाज को अपने अतीत से जोड़ने का कार्य करते हैं। इनसे हमारी पहचान है। यद्यपि परिवर्तन प्रकृति का नियम है, और परिवर्तन से ही विकास संभव है, अतएव सामाजिक धारणाओं को पुष्ट करने तथा नई गतिशीलता प्रदान करने के लिए रीति-रिवाजों में बदलाव भी ज़रूरी है। (डॉ० श्यामसुंदर दुबे : संवेदना एवं सृजन, डॉ० प्रमोद सिंघई) डॉ० दुबे के निबंधों में जीवन की गतिशीलता का स्वागत किया गया है। डॉ० श्यामसुंदर दुबे ने लोकप्रसंगों के बदलते हुए के शिल्पों का समय की स्थिति के अनुरूप चित्रण किया है। वैज्ञानिक यांत्रिक आविष्कारों, भूमंडलीकरण की प्रवृत्ति, नगरीकरण, बाज़ारवाद के दौर

में लोकप्रसंगों का स्वरूप बदल रहा है। डॉ० दुबे के ललित निबंधों में यह तथ्य दृष्टव्य है। (डॉ० श्यामसुंदर दुबे की सर्जना का लोकपक्ष, डॉ० प्रियंका राय)

डॉ० दुबे के ललित निबंधों में विचार और भाव का यथोचित समावेश हुआ है। उनके निबंधों में विचार की केंद्रीय भूमिका है, जबकि भावसबलता संप्रेषणात्मक शक्तियों को आधार प्रदान करती है। डॉ० दुबे गांधी दर्शन से प्रभावित हैं। मानवतावादी दृष्टिकोण से परिचालित दुबे जी अपने निबंधों में पीड़ित और दलित जनों के साथ खड़े हैं। उनके निबंधों में 'वैष्णवजन तो तेने कहिए जा पीर पराई जाणे रे' का ही विस्तार है। वे अपने समय के छल-छद्म को अपने निबंधों में उघाड़ते हैं। इस स्तर पर उनका ललित भाव व्यंग्य के करीब पहुँच जाता है।

भाव के स्तर पर डॉ० दुबे के ललित निबंधों में हर्ष उल्लास है, तो करुणा और विषाद भी है। वे जब स्मृतियों के साथ होते हैं, तब उनके भीतर उल्लास की लहर जागने लगती है—वे अपने खोए लोक से मिलने पर चहक उठते हैं। अपने वर्तमान के त्रासद अनुभवों से जुड़ते हुए वे विषादग्रस्त हो उठते हैं। निबंधों में प्रेम-व्यंजना का व्यापक संसार रचाने वाले दुबे अपनी भावुकता में आस्फालित नहीं हैं।

डॉ० दुबे अपने निबंधों में तर्क के आधार पर गुण-दोषों का निर्णय करते हैं। उनका बौद्धिक पक्ष प्रबल है। यही वजह है कि वे आज की वैज्ञानिक चेतना को सर्वथा नहीं नकारते हैं। वे अपने आपको वैज्ञानिक निकष पर कसते चलते हैं। उन्होंने ललित निबंधों के क्षेत्र में अपनी तरह से इस वैज्ञानिक चिंतन को प्रस्तुत किया है। उन्होंने भारतीय पुरा-मिथकों की पुनर्व्याख्या इसी आधार पर की है। वे प्रयोगधर्मी रचनाकार हैं। उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस की कतिपय अर्द्धालियों को आधार मानकर अपने ललित निबंधों की रचना की है। इन निबंधों में उनकी बौद्धिक प्रतिक्रियाएँ हैं। अपने इन्हीं गुणों के कारण डॉ० श्यामसुंदर दुबे साहित्य की लोकजीवन परंपरा और आधुनिक समाज-दर्शन के समवाय से स्वयं के भीतर एक समन्वयवादी तथा विकासोन्मुख जीवन शैलीगत चिंतन अपने ललित निबंधों में अंतर्भूत करते हैं।

डॉ० दुबे के निबंधों की भाषा सर्जनात्मक है। उनकी भाषा का जहाँ लोकपक्ष प्रबल है, वहीं वे समकालीन भाषिक मुहावरों को भी अपनी भाषिक शक्तियों में समावेशित कर लेते हैं। डॉ० दुबे के ललित निबंधों की भाषा मनुष्य की सांस्कृतिक यात्रा की अपराजेय कथा है। वे भाषा के विराट स्वरूप को प्रकट करते हुए स्वयं लिखते हैं—'विराट शून्य का कल्पन ही शब्द का उत्स है। हमारी जब इस कंपन से एकतानता उत्पन्न हो जाती है, तब निःशब्दता में भी ध्वनि उत्पन्न होती है। एक आंतरिक संवाद उत्पन्न होता है वही अनाहत है। वही शब्दब्रह्म है।' ऐसे ही शब्दब्रह्म के आराधक डॉ० दुबे को भाषा-साधना उनकी कल्पना-शक्तियों के माध्यम से अनेक बिंबों और प्रतीकों की सर्जना करते हुए उनके गद्य में काव्य की रसमयता का आभास कराने लगती है। उनके निबंध व्यास शैली के अप्रतिम उदाहरण हैं।

शैलसागर

प्लॉट सं० 17, सिद्धिविनायक कालोनी

देवपूर, धुले (महाराष्ट्र)

मो० 0966362407

सामाजिक संक्रमण में साहित्य एक प्रतिजैविक औषधि है आशा पांडे औझा

‘सामाजिक संक्रमण में साहित्य एक प्रतिजैविक औषधि है’—यह जानने के लिए हमें इन बातों को जानना आवश्यक है कि समाज क्या है? मनुष्य क्या है?, समाज का स्वरूप क्या है? मनुष्य को समाज की आवश्यकता क्यों पड़ी? मनुष्य व समाज का आपसी संबंध क्या है? मनुष्य के जीवन पर समाज का क्या प्रभाव है? समाज की कार्यप्रणाली क्या है? क्या समय के साथ समाज के ढाँचे व कार्यरूप में परिवर्तन हुआ है? समाज के अवयव क्या हैं? उनका संचालन कौन करता है? या कैसे होता है? एक स्वरूप समाज के क्या मानदंड होने चाहिए?

समाज के अंगों में संक्रमण किस तरह फैलता है? संक्रमण के चलते समाज के अंगों में किस तरह विकार उत्पन्न होते हैं व उनका क्या इतर प्रभाव होता है? समाज को रोगमुक्त करने के संसाधन एवं उपाय क्या हैं? और एक सबसे जरूरी विषय, जिस पर हमें यहाँ चर्चा करनी होगी कि साहित्य क्या है? साहित्य मनुष्य एवं समाज का क्या संबंध है? साहित्य की विषयवस्तु क्या है? साहित्य-सर्जन के उद्देश्य क्या हैं या क्या होने चाहिए? साहित्य के स्वरूप व प्रकार पर एक नजर डालते हुए साहित्य के कालखंड, साहित्य की कार्य-प्रणाली व दिशा-क्षेत्र क्या हो? और प्रतिजैविक क्या है? सामाजिक संक्रमण में साहित्य किस प्रकार प्रतिजैविक है? अब हम अपने मुख्य विषय ‘सामाजिक संक्रमण में साहित्य एक प्रतिजैविक औषधि है’ पर विचार करने से पूर्व ऊपर दिए गए तथ्यों (बिंदुओं) पर क्रमानुसार सारगर्भित चर्चा करना जरूरी समझते हैं। सबसे पहले हमारा यह जानना जरूरी है कि मनुष्य क्या है? कौन है? उसका अस्तित्व व जरूरतें क्या हैं? उसके गुण-अवगुण क्या हैं? ‘अरस्तू के अनुसार मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।’ अब देखना यह है कि क्या मनुष्य जन्म से ही सामाजिक प्राणी था? वहीं समाज की उत्पत्ति मनुष्य की उत्पत्ति के हजारों वर्ष पश्चात् हुई। मनुष्य शुरू से नितांत अकेला, अशिक्षित, असभ्य था। जब वह आदिमानव कहलाता था। समय बीतने के साथ-साथ मनुष्य की आवश्यकताओं में वृद्धि हुई, जिनकी पूर्ति उसे अकेले कर पाना असंभव था। मनुष्य को खान-पान वस्त्र के बाद जो सबसे महती आवश्यकता हुई, वह थी किसी का साथ। एकाकीपन की ऊब ने मनुष्य को समूह में रहने के लिए विवश किया। वही समूह एक-दूसरे की आवश्यकतापूर्ति करते हुए आगे चलकर समाज बना। समाज मनुष्य-समुदाय का वह एकत्रित स्वरूप है, जो एक-दूसरे के सुख-दुख व जरूरतों में भागीदार बनता है। जिसकी एक निश्चित परिधि, निश्चित नियम, क्रायदे-क्रानून होते हैं। कालांतर में मनुष्य की आवश्यकताएँ बहुत सीमित हुआ करती थीं, परंतु ज्यों-ज्यों मनुष्य सभ्य,

शिक्षित, सुसंस्कृत होता गया, उसकी आवश्यकताएँ भी बढ़ती गईं। नई-नई वस्तुओं का आविष्कार होता गया। जैसे-जैसे समाज की परिभाषाएँ, मायने और मापदंड भी बदलते गए।

विभिन्न विचारकों द्वारा समाज की विभिन्न परिभाषाएँ दी गई हैं। उनमें कुछ परिभाषाओं को यहाँ प्रस्तुत करना आवश्यक प्रतीत होता है।

संपूर्णानंद जी द्वारा समाज की परिभाषा कुछ इस प्रकार दी गई है—‘समम अर्जाति जनाः अस्मिन् इति’ अर्थात् समाज शब्द का अर्थ है कि जिसमें लोग मिलकर, एक साथ, एक ही गति से, एक से चलें, वही समाज है। (समाजवाद पृ० 19)

जब पूर्व परंपराओं का एक अभिमान होता है, वर्तमान सुख-दुख तथा भविष्यकाल की आशा, आकांक्षा और ध्येय दिशा एक होती है, तब वह लोकसमूह समाज कहलाने लगता है। (सहस्रबुद्धे, हिंदुसमाज का संघटन व विघटन, पृ० 2)

अब विचारणीय यह है कि मनुष्य को समाज की आवश्यकता क्यों महसूस हुई? जिस तरह एक परिवार को सही ढंग से चलाने के लिए, सही राह पर चलाने के लिए एवं उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, परिवार के सदस्यों में तालमेल एवं सौहार्द बनाए रखने के लिए एक मुख्य (संरक्षक) की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार बहुसंख्य समुदायों को एक सूत्र में पिरोकर उनमें सौहार्द, समन्वय, तारतम्य, वैचारिक समानता बनाए रखने के लिए एक-दूसरे की आवश्यकतापूर्ति में सहयोग हेतु समाज की आवश्यकता है।

बहुसंख्य समुदायों के कार्यों, व्यवहारों, विचारों के सही व सुदृढ़ क्रियान्वयन की व्यवस्था ही समाज है।

अपना-अपना कर्म करें, सब धर्मनिरत हों, प्राणी
कोई भाग न ले औरों का सभी न्याय के ध्यानी।
गला न काटा जाय किसी का पेट न छाँटा जाए,
जिसको जन्म दिया प्रभुवर ने वो जीने भी पाएँ।

—गिरिजादत्त शुक्ल ‘गिरीश’ (तारकवध, पृ० 552)

गिरिजादत्त जी की इन पंक्तियों से यह स्पष्ट होता है कि इस संसार में प्राणियों के मध्य इसी प्रकार की व्यवस्था की उत्कंठ आकांक्षा ने समाज को जन्म दिया।

अब यहाँ यह जानने की कोशिश करते हैं कि मनुष्य व समाज का संबंध क्या है?

समाज व मनुष्य एक-दूसरे के पूरक हैं। मनुष्य अगर शरीर है, तो समाज उसकी आत्मा है। मनुष्य एक चेतनशील, क्रियाशील, प्रबुद्ध विचारक है। उसके मन में नाना विचारों का उद्भव होता है, अच्छे भी और बुरे भी। अच्छे विचारों का उद्भव जहाँ आस-पास के माहौल को सुख-शांति से परिपूर्ण व आनंदमय बना देता है, वहीं बुरे विचार उस विषय से कम नहीं होते, जो सारे माहौल को विषैला बना देते हैं। मनुष्य की अच्छी व बुरी सभी वृत्तियों का आकलन कर उसे सहमति या असहमति देना समाज का कार्य है। उन पर नियंत्रण रखना समाज का कार्य है।

संपूर्णानंद ने कहा है कि ‘संघर्ष की भावना को प्रश्रय न देकर मनुष्य के उदात्त गुणों को जगाना ही समाज के कल्याण का मार्ग है।’ (समाजवाद पृ० 312)

समाज किसी को ब्रह्मज्ञानी नहीं बना सकता है, परंतु मनुष्य की भाँति रहने का अवसर दे सकता है। उसका यही धर्म है—संपूर्णानंद जी (चिद्विलास)

जरूरत, समय, विचार एवं शिक्षा के साथ समाज की कार्यप्रणाली में परिवर्तन हुआ है। परिवर्तन को जहाँ संसार का नियम माना गया है, वहीं आवश्यकता को आविष्कार की जननी कहा गया है। समय की माँग के अनुसार मनुष्य सदैव नव विधि-विधानों का निर्माण करता आया है एवं करता रहेगा, परंतु क्या सभी परिवर्तन कल्याणकारी एवं मूल्यवान होते हैं?

इस विषय पर संपूर्णानंद जी के विचार कुछ इस प्रकार हैं—‘वही सामाजिक परिवर्तन कल्याणकारी होते हैं, जो वर्तमान परिस्थितियों के अनुकूल हों, परंतु प्राचीन परंपरा को एकदम न तोड़ दें। यदि समय पर ऐसा परिवर्तन कर दिया जाए तो नूतनता के भीतर पुरातनता अनुस्यूत रहती है। ऐसा परिवर्तन जीवन के लिए यथार्थ मार्गनिर्देश करता है, परंतु यदि नूतनता के नशे में आकर परिवर्तन कर दिया गया हो या परिवर्तन किया ही न गया हो, तो सामाजिक और कौटुंबिक जीवन विषाक्त हो जाता है। उभयतः सच्चे धर्म का हास होता है। (स्फुट विचार, पृ० 86)

वहीं सुमित्रानंदन पंत कहते हैं—‘तर्कों, वादों, कटु संघर्षों में खोए जन निर्मित कर सकते हैं, शोध सामाजिकता का।’ (आस्था पृ० 117)

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी समाज में हुए विभिन्न परिवर्तनों पर कुछ इस तरह विचार व्यक्त करते हैं—‘हमारे सामने समाज का जो रूप है, वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग का रूप है।’ (अशोक के फूल, पृ० 13) जिस समाज में मानवीय विचारों और व्यवहारों के निरंतर परिवर्तमान् मूल्यों के विचार करनेवाले मनीषी, प्रकृति के रहस्य भेदकर नवीन-नवीन जानकारियाँ उद्घाटित करने वाले अनुसंधाता नहीं होते, वह समाज प्रवाहरुद्ध जलराशि के समान गंदा, गतिहीन और मृत बन जाता है। (आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, विचार-प्रवाह, पृ० 239)

विवेकानंद जी के विचार कुछ इस प्रकार हैं—‘समस्त सामाजिक परिवर्तन अपने भीतर काम करने वाली आध्यात्मिक शक्तियों के व्यक्त रूप होते हैं और यदि ये बलशाली और सुव्यवस्थित हों तो समाज अपने आपको उसी तरह से ढाल लेता है। (विवेकानंद साहित्य, भाग 10, पृ० 219)

इस प्रकार यह तो निश्चित है कि समाज की उन्नति और प्रगति के लिए समय-समय पर सामाजिक ढाँचे एवं उसके क्रियाकलापों में परिवर्तन हुआ है, कुछ परिवर्तनों का सकारात्मक परिणाम मिला, तो कुछ का नकारात्मक। सकारात्मक परिणाम गति पकड़कर आगे तक जाते हैं, जबकि नकारात्मक परिणाम या तो उसी जगह पर दम तोड़ देते हैं या आगे बढ़ते भी हैं तो वेदना एवं विकृति के सिवा समाज को कुछ भी नहीं दे पाते।

हम अब एक नज़र डालते हैं समाज के विभिन्न अवयवों पर। समाज के विभिन्न अवयव हैं, जो समाजरूपी शरीर को आकार तो प्रदान करते ही हैं, साथ-ही-साथ अपने-अपने कार्यक्षेत्र में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए समाज को उत्तरोत्तर उन्नति की राह पर अग्रसर होने में सहयोग करते हैं। समाज का शरीर अलग-अलग जातियों, वर्णों, समुदायों, संस्थाओं, विचारों, सरकार एवं न्याय से मिलकर बना हुआ है। इन सबकी अपनी अलग-अलग सोच है, परंतु उसका उपयोग समाज के हित में करना वांछनीय है। अगर समाज के ये सभी अंग सुचारु रूप से कार्य कर रहे होते हैं तो वह समाज स्वस्थ एवं सुदृढ़ समाज कहलाता है।

एक स्वस्थ समाज के क्या मापदंड होते हैं—जिस समाज में सभी व्यक्तियों को धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक स्वतंत्रता, समानता के साथ सौहार्द, सद्भाव, सामंजस्य हो अधिकारों के

उपयोग की स्वतंत्रता हो, समान शिक्षा-प्रणाली हो एवं वह कुरीतियों, कुप्रथाओं से कोसों दूर हो, वैचारिक मतभेद होते हुए भी मनभेद न हों, एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के भावों को समझे, उनका आदर करे, किसी भी प्रकार की विषमता व वैमनस्य न हो, स्त्री-पुरुष के समान अधिकार हो, भ्रष्टाचार न हों, विसंगतियों और विडंबनाओं से मुक्त हो। प्राकृतिक आपदाओं पर तो मनुष्य या यूँ कहें किसी का वश नहीं है, परंतु समाज में, धार्मिक, राजनीतिक व सामाजिक आपदा न हो इस तरह का समाज स्वस्थ समाज की श्रेणी में आता है।

जॉनसन ने कहा है—‘किसी समाज की उन्नति उसके उपयोगी ढंग से नियुक्त हाथों और मस्तिष्कों की संख्या की समानुपातिक होती है। समाज के लिए राजद्रोह एक ज्वर है, भ्रष्टाचार एक विलगन और अकर्मण्यता क्षयरोग है।’

विक्टर ह्यूगों ने मिजरो बिल्स में कहा है—सामाजिक संपन्नता का अर्थ है कि मनुष्य सुखी हों, नागरिक स्वतंत्र हों, राष्ट्र महान हो।

भारतीय समाज की रूपरेखा—भारतीय समाज में मनुष्य की निःस्वार्थ सेवा के भाव को सर्वोपरि माना गया है। समाज व इंसानियत को धर्म से बढ़कर माना गया है। मानवतावादी दृष्टिकोण भारतीय समाज का मुख्य एवं परम तत्त्व है। अधिकारों के बजाए कर्तव्यों के निर्वहन को महत्त्वपूर्ण माना गया है। भारतीय समाज की संस्कृति व विचारधारा दूसरे देशों के मुकाबले कहीं अधिक नवीन, प्रांजल व पुनीत है, उत्कृष्ट है।

रत्नाकर शास्त्री ने भारतीय समाज की जो तस्वीर पेश की है, वह कुछ इस प्रकार है—‘भारतीय समाज कर्तव्य की साधना में है और यूरोपीय समाज अधिकारों के संघर्ष में है। भारतीय समाजवाद सुख और शांति की ओर अग्रसर होता है तथा यूरोपीय समाजवाद संघर्ष एवं रक्तपात की ओर।’ (भारत के प्राणाचार्य, पृ० 40)

वहीं अरविंद जी ने अपने निबंध ‘स्वराज’ में लिखा है—‘यदि हमारे चारों ओर का समूह कष्टग्रस्त है, पतित है, अवनत है, तो ईश्वर का अन्वेषक अपने भाइयों की दशा की उपेक्षा कैसे कर सकता है।’

हालाँकि भारतीय समाज स्वस्थ, परिपक्व व प्रांजल है, परंतु कई बार ऐसा होता है कि सबकुछ ठीक-ठाक चलते हुए जिस प्रकार मनुष्य के शरीर को अवस्था या दुर्भाग्यवश कोई-न-कोई बीमारी कभी-न-कभी घेर ही लेती है अथवा जैसे ही शरीर का कोई अंग बीमारी से ग्रस्त होता है, त्यों ही समस्त शरीर पर उसका हल्का या भारी प्रभाव पड़ने लगता है। उदाहरण के लिए—अगर एक पैर में चोट लगती है, तब दर्द के कारण हम लँगड़ाकर चलते हैं, जिसके कारण सारे शरीर की गति शिथिल हो जाती है। अगर सिर में तेज दर्द है, तो उसका असर याददाश्त एवं मन पर भी पड़ता है। हाथ-पाँव चाहकर भी अपना काम सहज ढंग से नहीं कर पाते। जबसे समाज रूपी शरीर का निर्माण हुआ है, तबसे अब तक उसे कई प्रकार की बीमारियों ने घेरा है। कालांतर से समाज के अलग-अलग अंगों में अलग-अलग संक्रामक बीमारियाँ घर कर गई हैं, जिनका विभिन्न विद्वानों, विचारकों, साहित्यकारों एवं इतिहासकारों द्वारा यथासंभव समाधान ढूँढने का प्रयत्न भी किया गया। हमारे देश में आजादी के पूर्व भी समाज में अनेकानेक सामाजिक विसंगतियाँ और समस्याएँ अपनी गहरी जड़ें जमाए हुए थीं, जैसे—छुआछूत, बाल-विवाह, सती-प्रथा, गरीबी, धार्मिक रूढ़ियाँ एवं अंधविश्वास, विधवा-विवाह आदि, लेकिन आजादी के

आंदोलन दौरान ये विषय गौण हो गए। सबका ध्यान मछली की आँख की तरह आजादी पर ही रह गया। आजादी के पश्चात् देश में सबसे तेजी से जो संक्रमण फैला वह था—बँटवारे अर्थात् देश के विभाजन का। आजादी के पश्चात् देश अपनी पूर्वस्थिति में लौटता व सही संयत दिशा पकड़ता, उससे पूर्व ही अलगाव का आघात इतना तेज लगा कि हर कोई इस आघात की टीस से कराह उठा। जब तक इस दर्द से उबरे, तब तक अन्य संक्रमण भी हमारे देश के शरीर में पनप चुके थे।

समाज, देश या मनुष्य का अगर कोई एक अंग भी विकृत होता है, तो धीरे धीरे समस्त शरीर उसकी चपेट में आ जाता है। सामाजिक संक्रमण के बारे में जानने के लिए यह जानना जरूरी है कि चिकित्सा-विज्ञान में संक्रमण क्या है? उसके प्रभाव, दुष्परिणाम व उसका उपचार क्या है? चिकित्सा विज्ञान में इंफेक्शन, बैक्टीरिया, फंगस ये सब बीमारियाँ फैलाने और बीमारियाँ पैदा करने वाले जीवाणु को संक्रमण कहा जाता है। हम अपने आस-पास कई स्थानों, पेड़-पौधों एवं जंतुओं सहित अनेक जीव देखते हैं। इसके अलावा हमारे आस-पास कई ऐसे जीव भी होते हैं, जिन्हें हम बिना यंत्र की सहायता के आँखों से नहीं देख पाते हैं। इन्हें सूक्ष्म जीव कहते हैं और यह हमारे शरीर में प्रवेश कर हमें बीमार बना देते हैं। इसी प्रकार हमारे समाजरूपी शरीर में भी कई प्रकार के बैक्टीरिया, फंगस प्रवेश कर चुके हैं। जिससे समाज बीमार रहने लगा है। ये कीटाणु समाज के शरीर में गहरी जड़ें जमाए हुए हैं। जिनका इलाज एंटीबायोटिक यानी की प्रतिजैविक ही है। हमारे समाज को कुछ बीमारियाँ तो वास्तव में इतनी गंभीर लगी हैं, जिसने सारे अंगों को एक साथ जकड़ लिया है। समाज का ढाँचा कमजोर होता जा रहा है। बीमारियों की मार से इसमें कुरूपता, कमजोरी व बदरंगता साफ़ झलकने लगी है, लेकिन मनुष्य एक बुद्धिमानी प्राणी है। वह हर समस्या का समाधान ढूँढ ही लेता है। जब तक वह उनसे मुक्ति नहीं पा लेता, चैन की साँस नहीं ले पाता है। मनुष्य का मन उसे उद्वेलित करता रहता है।

कालांतर से समाज के शरीर को कई बीमारियों ने घेरा—कभी जातिवाद का खसरा फैला तो कभी क्षेत्रवाद के फोड़ें निकले, कभी स्त्री-प्रताड़ना का रोग लगा तो कभी कन्या-भ्रूण हत्या की महामारी फैली और इस आंतकवाद के कैसर रूपी कीड़े ने तो फैलकर समाज के हर अंग को कमजोर, गतिहीन कर दिया। समाज की नींद, चैन, सुख छीनकर जीवन दुश्कर कर दिया। इसके अतिरिक्त विधवाओं का नारकीय जीवन तो मलेरिया की तरह आज भी अस्तित्व में है। सती-प्रथा का हृदयघात भी जब तब पड़ ही जाता है, असमानता व ग़रीबी के अस्थमे ने तो लंबे समय से समाज के शरीर का पीछा ही नहीं छोड़ा। बाल-विवाह का हेपेटाइटिस तो लाख टीकों के बावजूद नहीं रुक रहा है। जात-पात व ऊँच-नीच का रक्तचाप भी इतना अधिक है वह समाजरूपी शरीर के लिए सबसे घातक है। बीच-बीच में अलगाववाद की कुक्कर खाँसी भी अपनी चपेट में ले ही लेती है और यह भ्रष्टाचार का स्वाईन फ्लू तो आजकल बड़ी तेजी से फैल रहा है। इन नाना प्रकार की बीमारियों से जूझते हुए शरीर असक्त और क्षत-विक्षत हो गया है। समाज की साँसें गतिहीन होकर दम तोड़ने के कगार पर हैं, परंतु हमने सोचा है कि हर सावधानी व सुरक्षा के बावजूद समाज इस क्रूर इन गंभीर बीमारियों से कैसे ग्रस्त हो रहा है। हमने पाया कि अधिकांशतः ये बीमारियाँ अशिक्षा के कीटाणु, अधविश्वास की गंदगी, आडंबर के जीवाणु व पूर्वाग्रह की कमजोरी से फैलती हैं। साथ ही आपसी समन्वय व भाईचारे के पौष्टिक आहार

की कमी से भी यह रोग पनपे हैं।

स्पष्ट है कि इतने रोगों से पीड़ित कोई समाज या व्यक्ति, शांतचित्त, स्वस्थ व आनंदमय जीवन कैसे जी सकता है? प्रगति की राह पर कैसे बढ़ सकता है?

चिकित्सा-विज्ञान में हर तरह के संक्रमण को समाप्त करने के लिए जिस तरह कई प्रकार के प्रतिजैविकों का सहारा लिया जाता है, उसी प्रकार मानव-समाज की बीमारियों के निदान के लिए भी कई प्रकार के प्रतिजैविकों का प्रश्रय लिया जाता है। उनमें साहित्य सबसे उच्चकोटि का सस्ता प्रतिजैविक है।

जब हम बीमार पड़ते हैं, तो डॉक्टर हमें अन्य दवाओं के साथ-साथ प्रतिजैविकों को खत्म करने की दवा भी देते हैं, जिन्हें हम एंटीबायोटिक कहते हैं। ये दवा, इंजेक्शन अथवा पीने की शीशी में उपलब्ध होते हैं। इन औषधियों का स्रोत सूक्ष्म जीव है। ये दवाएँ बीमारी पैदा करने वाले सूक्ष्मजीवों को नष्ट कर देती हैं या उनकी वृद्धि को रोक देती हैं। इस प्रकार की औषधियों को एंटीबायोटिक अथवा प्रतिजैविक कहते हैं।

मनुष्य क्या पशु-पक्षियों को भी स्वस्थ एवं रोगविहीन बनाए रखने के लिए पशु-आहार एवं कुक्कुट आहार में प्रतिजैविक मिलाए जाते हैं, जिसका उपयोग पशुओं में सूक्ष्म जीवों का संचरण रोकने के लिए किया जाता है।

आइए देखें कि समाज को रोगविहीन एवं स्वस्थ बनाए रखने के लिए कौन-कौन से प्रतिजैविक उपयोगी हैं और साथ ही सुलभता से उपलब्ध हैं।

मेरे ख्याल से ये प्रतिजैविक भी दो प्रकार के होते हैं। जिस तरह चिकित्सा-विज्ञान में कुछ टीके, दवा, गोलियाँ पूर्व में ही दे दी जाती हैं ताकि बीमारी को पनपने से पूर्व ही खत्म कर दिया जाए, उसी प्रकार दूसरी खुराक बीमारी होने के बाद उसे खत्म व नियंत्रित करने के लिए काम में ली जाती है।

हमारे समाज के अंगों में कीटाणुओं के पनपने के पूर्व ही सावधानी के तौर पर प्रयोग में लिए जाने वाले प्रतिजैविकों में शिक्षा, सुसंस्कार व सदाचरण के प्रतिजैविक सबसे महत्वपूर्ण हैं और कीटाणुओं के पनपने के बाद जो प्रतिजैविक प्रयोग में लिए जाते हैं, वे हैं—धर्म, साहित्य व दर्शन, धर्म-दर्शन व साहित्य तीनों एक ही प्रतिजैविक की तीन विभिन्न मात्रा है। मूल में ये तीनों एक ही दवा है। कभी इन तीनों को अलग-अलग उपयोग किया जाता है, तो कभी एक साथ।

यहाँ हम धार्मिक साहित्य, दर्शन साहित्य व विशुद्ध साहित्य को एक ही प्रतिजैविक के रूप में देखें तो हमारा उपचार आसान हो जाएगा।

समाज में किसी भी प्रकार का संक्रमण फैलते ही वे सीधा मनुष्य के मन-मस्तिष्क पर अपना प्रभाव डालते हैं और उन्हें विक्षिप्त पंगु बना देते हैं।

सामाजिक संक्रमण का इलाज किसी चिकित्सक के पास नहीं है, अपितु इन बीमारियों को कोई प्रज्ञा, मेधा, चिंतक, मनीषी साहित्यकार ही समझ पाते हैं। वे ही इनका निदान ढूँढ पाते हैं। वे ही इन्हें फिर से तरोताजा बना सकते हैं। पुष्ट व समृद्ध विचारों से जब कोई लेखक, आलोचक, चिंतक, कवि अपनी बात कहता है, तो उसकी बात जनमानस पर तुरंत दवा की तरह असर करती है।

साहित्य प्रतिजैविक औषधि तैयार करने का मतलब यह नहीं है कि हम इस कारखाने

में माल का उत्पादन करके अरबों खरबों की कमाई करते हैं और धनाढ्य व्यक्तियों की सूची में अपना नाम दर्ज करवा लेते हैं, बल्कि हम साहित्यकार अपने गाँठ की पूँजी को भी लोगों के हित के लिए गँवा देते हैं। साहित्य की औषधि तैयार करना उस अनुष्ठान से कम नहीं है, जिसमें स्वयं को झोंककर ही दिन-रात की साधना से कुछ अर्जित किया जाता है। वह भी स्वयं के लिए नहीं, अपितु समाज के लिए।

साहित्यकार के अंदर तो स्वयं सृष्टि-निर्माता का वास है। पालि (सुप्त) निपात में लिखा है—‘पहले केवल तीन रोग थे—इच्छा, भूख, जरा। पशुवध प्रारंभ होने पर अट्टानवे रोग हो गए।’

सच्चा साहित्य वही है, जो मृत शरीर में आत्मा फूँक देता है। पृष्ठों की ओखली में कलम के धमकों से शब्दों की जड़ी-बूटियों से जो औषधि तैयार होती है, वह साहित्य है। यह वह संजीवनी है, जो सस्ती व सुलभ होने के साथ जीवनप्रदायिनी भी है। यह शरीर में नवरक्त का संचार करती है, मस्तिष्क में चेतना भरती है, बुद्धि को विस्तार देती है और मानसिक रुग्णता को नष्ट कर देती है। इस भौतिकवादी नरभक्षी युग में विभिन्न झंझावतों के थपेड़े खा-खाकर मनुष्य-मन लहुलुहान होने लगता है, तब साहित्य का प्रतिजैविक मनुष्य-जीवन व समाज के लिए अमृततुल्य वरदान बन जाता है।

साहित्य, समाज और मनुष्य के संबंधों की महत्ता, आवश्यकता बताने वाली एवं समाज में साहित्य का स्थान तथा योगदान निर्धारित करनेवाली विभिन्न विद्वानों की कतिपय परिभाषाएँ इस प्रकार हैं—

‘सारे मानव-जीवन को सुंदर बनाने की साधना का नाम साहित्य है। (हजारीप्रसाद द्विवेदी, कल्पलता पृ० 38)

महादेवी वर्मा जी कहती हैं—‘इतिहास को साहित्य में प्रतिष्ठित करने के लिए घटना को जीवन से और जीवन को मनुष्य के मनोरोगों से जोड़ना पड़ता है।’ (वृंदावनलाल वर्मा कृत ललित विक्रम की भूमिका)

‘साहित्य मनुष्य की शक्ति, दुर्बलता, जय-पराजय, हास-अश्रु, जीवन-मृत्यु की कथा है।’ (महादेवी वर्मा, सप्तवर्ण पृ० 99)

बालकृष्ण भट्ट कहते हैं—‘प्रत्येक देश का साहित्य उस देश के मनुष्यों का आदर्श रूप है।’ (साहित्य सुमन, पृ० 9)

महावीरप्रसाद द्विवेदी कहते हैं—‘ज्ञानराशि से संचित कोश का ही नाम साहित्य है।’ (संचयन, पृ० 48)

जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की चितवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चितवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। (आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास पृ० 3)

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अशोक के फूल में लिखा है—‘मनुष्य को अज्ञान, मोह, कुसंस्कार और परमुखापेक्षिता से बचाना ही साहित्य का वास्तविक लक्ष्य है।’

जो साहित्य मनुष्य-समाज को रोग, शोक, दारिद्र्य, अज्ञान तथा परमुखापेक्षित से बचाकर उसमें आत्मबल का संचार करता है, वह निश्चित ही अक्षय निधि है। (डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल पृ० 181)

हेनरी जेम्स ने लाइफ ऑफ नेथेलियन हाथार्न में लिखा है—‘तनिक सा साहित्य निर्मित करने में बहुत सारा इतिहास लगता है।’

मेरे मत से अब यह तो साबित हो गया है कि साहित्य किस प्रकार समाज को संक्रमण से बचाता है एवं प्रतिजैविक की भूमिका अदा करता है। किस प्रकार साहित्य जीवन के नए संदर्भ खोजता है और किस प्रकार जीवन-मूल्यों के नए तथ्यों को सामने लाता है। साहित्यकार की लेखनी में समाज व मनुष्य के जीवन के हर पल का वर्णन मिलता है। साहित्यकार की कलम में वह शक्ति है, जो हर दवा से बढ़कर है।

जब भूमंडलीकरण की आँधी संस्कृति की जड़ें उखाड़ रही है, तब हर साहित्यकार कोशिश कर रहा है कि वह विचारणीय बिंदुओं पर कलम चलाकर इन उखड़ती जड़ों को अपने विचारों की खाद से, भावों के पानी से व चेतना की मिट्टी से सहारा दे सके।

साहित्य मात्र इसलिए नहीं रचा जाता कि बस, ट्रेन या एकाकीपन में टाइम पास किया जा सके या चाय नाश्ते की घड़ी पर चर्चा का विषय बने, अथवा सामाजिक, राजनीतिक अथवा साहित्यिक मंचों पर वाहवाही लूटकर मालाओं से लादा जा सके या दो-चार बड़ी पुस्तकों में समीक्षा या आलोचना छप जाने मात्र से संतुष्ट हुआ जा सके। अगर ऐसा हो तो एक सच्चे साहित्यकार की सालों तक जगी नींद छटपटाने लगती है। पृष्ठों के दामन पर बिखरी हुई स्याही की अंतर्वेदना भी कम नहीं होती। हर शब्द चाहता है कि लेखक ऐसी बात कहे जिनसे उसका भी जीवन अमर हो जाए—

जड़ता में भरदे चेतना
पाषाणों को जो हिला दे
है कवि अपनी कविता से
सृष्टि को वो सोमरस पिला दे

साहित्यकार इसी सोमरस को तैयार करता है। खुद के लिए नहीं, बल्कि समाज और संसार के लिए।

साहित्य प्रतिजैविक की औषधि की अधिक मात्रा में सेवन का कोई ग़लत असर नहीं होता, बल्कि वह तो जितनी घट में उतरे, उतना ही जीवन अमृतमयी बनाती है। एक संस्कारशील, समृद्ध विकासशील समाज के लिए सद्साहित्य के प्रतिजैविक का प्रयोग साँसों की तरह ज़रूरी है।

सद्साहित्य मानवीय मूल्यों का निर्माण कर मनुष्य को पारस बना देता है। एक सच्चा साहित्यकार भी वही है, जो आत्मतुष्टि के लिए व समाज के हित के लिए कुछ रचे न कि पैसों के लिए।

78, गायत्री नगर

पाली, मारवाड 306401 (राज०)

डॉ० मनोज सोनकर के काव्य में व्यक्त सामाजिक संवेदना

प्रा० मनोहर एच० पाटील

परिस्थितियाँ और परिवेश रचनाकार का निर्माण करती है। रचनाकार समाज में रहते हुए जो कुछ अनुभव करता है और जो उसको संवेदित होता है, वह उसी को शब्दों का लिबास पहनाकर प्रस्तुत करता है।

साठोत्तरी कविता में डॉ० मनोज सोनकर ने अपना एक अलग ही व्यक्तित्व निर्माण किया है। उनकी कविताओं में आज की सामाजिक, आर्थिक विषमता, राजनीतिक मोहभंग और धार्मिक कट्टरता के परिणामस्वरूप समाज का ढाँचा किस प्रकार बदलता जा रहा है, उसको अभिव्यक्ति मिली है। कवि सोनकर जी की मार्क्सवाद में अटूट आस्था है, लेकिन वे कट्टर मार्क्सवादी नहीं हैं। शोषण, अन्याय और गरीबी से ग्रसित इस देश के लिए वे मार्क्सवाद को उपयोगी मानते हैं।

सोनकरजी ने अनेक विधाओं पर लेखनी चलाई है, लेकिन वे एक कवि और ग़ज़लकार के नाम से विख्यात हैं। प्रगतिशील कवि होते हुए भी वे किसी ख़ास वैचारिक घेरे में या मतवाद की परिधि में बँधकर नहीं चले। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से आम आदमी के जीवन को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है।

कवि सोनकर जी अपने काव्य में बाहरी और भीतरी दोनों ही धरातलों पर गतिशील हुए हैं। इसका मुख्य कारण है, उनकी सामाजिक चेतना, परिवेशगत सजगता, चिंतनमय क्षमता, प्रगतिशील संघर्ष, प्रयोगधर्मिता, आंतरिक तरलता, प्रकृति का चित्रांकन, शैल्पिक कुशलता, छंद सृजनात्मकता और सृजननिरंतरता, जिसके कारण उन्होंने हिंदी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है।

सोनकर जी उस आदमी के कवि हैं, जो सामाजिक अव्यवस्था, आर्थिक विषमता और राजनीतिक विकृतियों का शिकार है। ऐसा आदमी जो दीन-हीन है, जिसकी आँखों में पीड़ा है और वह परिवेश की विडंबना के दर्द को झेल रहा है। सोनकर जी ने ऐसे ही व्यक्ति की संवेदनाएँ अपने काव्य में अंकित की हैं।

मनोज सोनकर जी बहुत ही संवेदनशील कवि हैं। उनके स्नेह में कृत्रिमता और दिखावा नहीं है। वे कहते हैं—

हम हिमालय से कुछ पत्थर चाहते हैं
ख़तरनाक जानवरों से निपटने के लिए
जय चाहे हमारी न हो
लेकिन हिंद हमारा है
इसे नया रूप देंगे

सही रूप देंगे।
गंगा के दैत्य भगाएँगे
शैतान भगाएँगे।
मगरमच्छ भगाएँगे
घड़ियाल भगाएँगे।

(डॉ० मनोज सोनकर 'शोषितनामा', पृ० 106)

मिल और कारखानों के बंद हो जाने पर मजदूरों की दयनीय दशा उन्हें व्यथित करती है। वे पूँजीपतियों और अदूरदर्शी लीडरों को कोसते हैं। किसान और खेतीहर मजदूरों पर होनेवाले अत्याचार उन्हें परेशान करते हैं। वे संदर्भ-विशेष में नक्सलवादियों का पक्ष भी लेते हैं। जमीन देश की होनी चाहिए व्यक्ति-विशेष की नहीं। वे जमींदारों के सख्त खिलाफ हैं। शहर में टूटती झोपड़पट्टी उन्हें दुख देती है। बेकारी बेरोजगारी उन्हें डसती है। वे मजदूर किसान, गरीब और आम आदमी के पक्षधर हैं और कट्टर पक्षधर...। हरिजनों की सामूहिक हत्या का समाचार पढ़ने के बाद वे पूछते हैं, यह संस्कृति की महानता है या नीचता है? क्या धर्म अफ्रीम का नशा नहीं है? सांप्रदायिक दंगों के घोर निंदक हैं। रोटी, कपड़ा और मकान मंदिर और मस्जिद से ज्यादा महत्वपूर्ण हैं।

सोनकरजी का अध्ययन बहुत गहरा है। उनमें तर्क-वितर्क करने की प्रबल क्षमता है। आज बालक शहरों में बड़ा भयानक संघर्ष कर रहे हैं। शहरों के बच्चे कचरा-कूड़ा बीन रहे हैं। इस पर कवि कहते हैं—

सिर तो धरे हुए
कचरे का बोर
हो ही जाता है सवेरा
लादे-लादे थक गए हैं
साँसों का डंडा डेरा।

(डॉ० मनोज सोनकर 'ओस धुआँ', पृ० 41)

धर्म अफ्रीम का नशा है। धर्म की आड़ में घिनौने लोग अपनी कुर्सियाँ पक्की कर रहे हैं। बर्बादीगाथा को वे गौरवगाथा बता रहे हैं। सोनकरजी ऐसे लोगों के विरोधी हैं। वे अन्याय, अत्याचार, शोषण, बेकारी और बेरोजगारी को पूँजीवाद की उपज मानते हैं और साथ ही आजादी को भी पूँजीपतियों का खेल मानते हैं। उनके अनुसार प्रजातंत्र भावुकता, अज्ञान, अंधविश्वास, जातीयता, प्रांतीयता और धार्मिक कट्टरता का शिकार है। वे जाति-प्रथा के भी सख्त विरोधी हैं।

सोनकरजी यथार्थवादी रचनाकार हैं। ईश्वर 'सुअर' ही रह गया है और पंडित-पुजारी ईश्वर हो गए हैं। कवि मनोज सोनकर कहते हैं—

जिस दिन ईश्वर ने
सुअर स्पर (वराह अवतार) पृथ्वी का
उद्धार किया था एक विचित्र हो गई थी
उसकी रूप बदलने की शक्ति खो गई थी
यह रहस्य

भक्तों ने नहीं
पुजारियों ने जान लिया था
और खुद को ईश्वर मान लिया था।
तबसे आज तक
उसे (ईश्वर)
रूप बदलने की शक्ति
वापस नहीं मिली हैं।

(डॉ० मनोज सोनकर, घंटाघर, पृ० 12)

आज समाज की हालत सोचनीय है। अमीर अधिक अमीर होते जा रहे हैं और गरीब अधिक गरीब होते जा रहे हैं। मध्यमवर्ग पिसता जा रहा है। बेकारी-भुखमरी से लोग परेशान हैं। कारखाने बंद हो रहे हैं। मजदूर बेकार हो रहे हैं, किसान खुदकुशी कर रहे हैं। बेबस, लाचार और गरीब लोगों की झोपड़ियाँ तोड़ी जा रही हैं। जहाँ लूटमार, खून, दंगा-फ़साद, बलात्कार, भ्रष्टाचार आदि अपराध हमेशा होते रहते हैं। व्यापारी भ्रष्ट तरीके अपनाकर पैसा कमाने का काम करते हैं। मुक्त व्यापार के नाम पर अनेक विदेशी कंपनियाँ देश में घुस आई हैं। देशी धंधे चौपट हो रहे हैं। पुलिस रक्षक होने के बजाय भक्षक बन चुकी है। शिक्षक अपनी मानसिक स्थिति को खो बैठा है, इसीलिए नाबालिग बच्चियों पर स्कूल में बलात्कार की घटनाओं से गुज़रना पड़ता है। यह स्थिति आज पूरी जगह पर मातम मना रही है। न्याय बहुत महँगा है, जज और वकील भ्रष्टाचार में लिप्त हैं। जाति-प्रथा धिनौने रूप में विद्यमान है, दलितों को ज़िंदा जलाया जा रहा है। वेश्या-व्यापार बढ़ रहा है, विदेशी संस्कृति का हमला जारी है और कोका-कोला, पीजा और पॉप म्यूज़िक रंग जमा रहा है।

डॉ० मनोज सोनकर जी ने सामाजिक दशा के साथ-साथ राजनीतिक संवेदना का भी यथार्थ चित्रण किया है। वे कहते हैं कि राजनीति विकृति की शिकार है। आज़ादी के बाद भी आम आदमी को आज़ादी नहीं मिली है। यह इस देश की सबसे बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण समस्या है। राजनेता अँग्रेज़ों से भी भयानक और ख़तरनाक हथकंडे अपना रहे हैं। दलबदलू नेता जाति, प्रांत, भाषा और धर्म की आड़ में अपना स्वार्थ साधने में माहिर हो गए हैं। इसीलिए आम आदमी का जीना मुश्किल है। वह डर का शिकार बना हुआ है। भ्रष्ट लोग चुनाव जीत रहे हैं और मंत्री बनकर अनेक योजनाओं का गला घोट रहे हैं। कितने ही नेताओं पर भ्रष्टाचार तथा हत्याओं के आरोप हैं। नेता दिन-पर-दिन अमीर हो रहे हैं और सारी सुख-सुविधाएँ बटोर रहे हैं।

मनोज सोनकर कहते हैं कि देश की राजनीति में वंशवाद का बोलबाला है, यह प्रजातंत्र, राजतंत्र के जैसा लगता है। राजनीतिक पार्टियाँ एक-दूसरे पर दोषारोपण में लगी हुई हैं। राजनीति प्रांतीयता और राष्ट्रीयता को निगल रही है। विदेशी कंपनियों के आगमन से किसी बड़े ख़तरे का आभास होने लगा है। अभिप्राय यह है कि राजनीति पूरी तरह विकृति और विसंगति का शिकार है।

इस प्रकार डॉ० सोनकर जी के काव्य में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक संवेदना काव्य की दृष्टि से बहुआयामी है। उनके काव्य में आस-पास का परिदृश्य और घटनाचक्र साकार होता नज़र आता है। वे उस आदमी के कवि हैं, जो सामाजिक अव्यवस्था और राजनीतिक विकृतियों

का शिकार है। ऐसा आदमी जो दीन-हीन है, जिसकी आँखों में पीड़ा है, वह परिवेश की विडंबना के दर्द को झेल रहा है। डॉ० सोनकर ने ऐसे ही व्यक्ति को अपने काव्य का केंद्र बनाया है और उसके माध्यम से एक आम आदमी की संवेदना व्यक्त करने का प्रयास अपने काव्य के माध्यम से किया है।

संदर्भ

1. शोषित नामा, डॉ० मनोज सोनकर
2. ओस धुआँ, डॉ० मनोज सोनकर
3. घंटाघर, डॉ० मनोज सोनकर
4. साठोत्तरी हिंदी कविता संवेदना शिल्प और कवि, डॉ० मनोज सोनकर
5. शबरी संबोध, डॉ० मनोज सोनकर

महाराज ज०पो० वत्सवी कला,
वाणिज्य, विज्ञान महाविद्यालय
गाँव तह० अक्राणी, जि० नंदूरबार
मो० 9422262234

नासिरा शर्मा की कहानियों में सामाजिक चेतना

दीपक शर्मा, शोध-छात्र
वरिष्ठ प्राध्यापक, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग
माध्यमिक विद्यालय, सांभी (करनाल)

डॉ० रणधीरसिंह, शोध निर्देशक
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
दयालसिंह कॉलेज, करनाल

समाज में रहकर ही मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इसी कारण वह समाज की संरचना करता है। उसकी चेतना की संरचना सामाजिक संबंधों पर निर्भर करती है। समाज मानवीय जीवन को विकसित करने वाली महत्त्वपूर्ण संस्था है। समाज में अपने दायित्वों को पूर्ण न कर पाने के कारण असमानता, शोषण, धार्मिक कट्टरता, अंधविश्वास, अज्ञानता आदि दोष आ जाते हैं—इन्हीं दोषों के परिणामस्वरूप व्यक्ति की जाने वाली क्रिया, प्रतिक्रिया ही समाज, सामाजिक चेतना का विचारात्मक रूप है जो समाज के क्रियाकलापों को प्रतिबिंबित करती है। कार्ल मार्क्स के अनुसार मनुष्य की चेतना उसके अस्तित्व को प्रभावित नहीं करती बल्कि उसका सामाजिक अस्तित्व ही उसकी चेतना को निर्धारित करता है। 'जिस समाज अथवा राष्ट्र में रूढ़ियों, परंपराओं, विसंगतियों और विकृतियों से जूझने की जितनी अधिक शक्ति, ललक और जिजीविषा विद्यमान होती है, वह समाज अथवा राष्ट्र उतना ही चेतनायुक्त होता है। इसके विपरीत जिस राष्ट्र में बुराइयों और कुरीतियों से लोहा लेने की शक्ति का दौर्बल्य रहता है, वह उतना ही चेतनाहीन व मृतप्रायः होता है।'¹ इसलिए कहा जा सकता है कि आम हितों को व्यक्त करने वाले विचार, दृष्टिकोण, भावनाएँ, आकाशाएँ ही सामाजिक चेतना है। सामाजिक संदर्भ में इस चेतना का विकास सामाजिक वैषम्य की दशा पर होता है। शोषण, संघर्ष, ऊँच-नीच की भावना, छुआछूत, वर्ग-संघर्ष, आर्थिक विषमताएँ, विधवा समस्या, बाल-विवाह, वैवाहिक समस्याएँ, अमीर-ग़रीब जैसी विषमतामूलक सामाजिक आघात की प्रतिक्रियास्वरूप सामाजिक चेतना मानव-मस्तिष्क में विकसित होकर अपने क्रांतिमूलक चमत्कार को प्रदर्शित करती है।

भारतीय समाज पुरुष-प्रधान समाज है। शक्तिशाली पुरुष अपनी शक्ति के मद में अथवा अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए नारी का शोषण करता आया है। नारी का शोषण परिस्थितियों के प्रभाव में नए-नए रूप धारण करके समाज में प्रस्तुत होता है। अतीत से वर्तमान तक ऐसे हज़ारों प्रमाण मिलते हैं, जब नारी के शोषण की पृष्ठभूमि में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक

स्थितियाँ उजागर होती हैं। 'गूंगा आसमान' कहानी में नारी-शोषण की समस्या को गहरे में रेखांकित किया गया है, जिसमें फरशीद लड़कियों की रक्षा करने की आड़ में उनका शोषण करता है। उसकी असली ब्याहता मेहरअंगीज उसकी इस आदत से दुःखी है। वह उन लड़कियों की तरफ़ देखकर सोचती है—'मेहरअंगीज ने दोनों जवान लड़कियों के चेहरों पर फैले अलहड़पन को देखा। उसमें गुनाह की जगह मासूम पाकीजगी थी।'² 'दरवाज-ए-कजविन' में माजिद मरियम को अपना जीवन-साथी बनाने की बात कहकर उसका शोषण करता है। माजिद मरियम को जीवन-साथी तो बनाता है परंतु सुहागरात के बाद पहली सुबह जब मरियम पर पाक पवित्र न होने का आरोप लगता है, तब वह चुप रहता है और कहता है कि किस मुँह से जाकर सफ़ाई दूँ। मरियम कहती है—'उसी मुँह से जिस मुँह से मेरे साथ जीवन-भर निभाने का वचन लिया था।'³

आज हम उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। नारी की दशा में भी हर संभव सुधार हुए हैं—फिर भी एक तरफ़ तो नारी पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर आकाश की ऊँचाइयों को छू रही है, तो दूसरी तरफ़ आज भी किन्हीं कारणों से उसकी स्थिति दयनीय बनी हुई है। 'उड़ान की शर्त' कहानी में महशी की शादी हमीद से हो जाती है। परंतु उसकी मृत्यु के बाद महशी बहुत तंग रहती है। हमीद और महशी का प्रेम-विवाह हुआ था, इसलिए ससुराल में भी उसे कम पसंद किया जाता था—'इसलिए हमीद के माँ-बाप ने उसको कभी वह प्यार नहीं दिया और न वह इज़्जत जो बहू का हक़ थी। उन्हें महशी हमेशा निम्न-मध्यवर्ग की एक ऐसी लड़की लगी थी, जो अपनी ग़रीबी से घबराई हमेशा अमीर घर के लड़कों पर नज़र रखती है।'⁴

बाल-विवाह एक सामाजिक चिंता का विषय है। इस कुप्रथा से नारी की स्थिति बड़ी चिंतनीय रही है। असमय विवाह से उसका स्वास्थ्य भी खराब रहता था। बाल-विवाह नारी की शिक्षा में भी बाधक था। बाल-विवाह लड़के व लड़की दोनों के जीवन को नष्ट कर देता है। उन्हें आपसी रिश्तों और सामाजिक रिश्तों की समझ नहीं हो पाती है। 'आख़िरी पहर' कहानी में जाहेदा का बाल-विवाह होता है—'दस साल की ही तो थी जाहेदा, जब उसकी शादी बारह साल के रजब से हुई थी।'⁵ नारी-समाज की दुर्गति करने में, उसे भटकाने और ग़लत रास्ते पर ले जाने में, उसकी खुशियों को ग्रहण लगाने में अनमेल विवाह भी एक महत्वपूर्ण कारण रहा है। नासिरा शर्मा ने अनमेल विवाह को सामाजिक जीवन में नकारात्मक और घातक माना है। उनकी अनेक कहानियों में इस पहलू को उजागर किया गया है। 'संगसार' कहानी में आसिया और आसमा दो बहनें अपने विवाह-संबंधों पर बातें करती हैं। आसिया आसमा के वैवाहिक संबंधों को भाँप जाती है और कहती है कि तुम झूठ बोलती हो—यह नज़ाब मैंने भी आँखों पर डाली है। आसमा आसिया को समझाती है कि ऐसा तो हो ही जाता है परंतु ग़लत राह पकड़ना समाज के विरुद्ध है। बहु-विवाह चाहे मान्य हो या न हो—नारी-जीवन के लिए हानिकारक है। 'गूंगा आसमान' कहानी में फरशीद अपनी पत्नी के होते हुए भी तीन और शादियाँ करता है। मेहरअंगीज इसका विरोध करती है और मौक़ा पाते ही तीनों को कुछ धन देकर उनका विवाह अच्छे आदमियों से करा देती है और उनके पहले निकाहनामों को फाड़ देती है। वेश्यावृत्ति की समस्या नारी-जीवन से संबंधित समाज की ज्वलंत समस्या है। वेश्यावृत्ति को समाज में घृणित और तिरस्कृत माना जाता है। वेश्यावृत्ति करने के लिए नारी-जीवन की परिस्थितियाँ जिम्मेवार होती हैं। कई बार ज़िंदा रहने के लिए भी वेश्यावृत्ति को अपनाना पड़ता है। 'आख़िरी पहर' कहानी में जाहेदा दोबारा विधवा

हो जाती है। जाहेदा ठोकरें खाकर पाँच साल गुज़ार लेती है, लेकिन सास की मौत के बाद वह अकेली हो जाती है—‘शाह का दौर, आरामदेह ज़िंदगी की शुरुआत और ‘जिसकी लाठी उसकी भैंस’ वाली व्यवस्था में जाहेदा शरीफ़ाना ज़िंदगी न बिता सकी। उसे ज़बरदस्ती एक नौदौलतिए की रखैल बनना पड़ा।⁶

जबसे समाज की संरचना हुई है, तभी से समाज को चलाने के लिए रीति-रिवाज और रूढ़ि-परंपराएँ भी विकसित हुईं। आसिया परंपराओं और रूढ़ियों का खंडन करती हुई कहती है—‘आपका पुराना क़ानून नई परेशानियों का हल नहीं जानता, मरते-घुटते इंसान की मदद को नहीं पहुँचता, इसलिए आप ज़िंदगी को ख़ौफ़ की दीवारों में चुन देना चाहती हैं, ताकि इंसान एक बार मिली ज़िंदगी भी खुलकर न जी सके।’⁷ यह कहकर आसिया उठी और कमरे से बाहर निकल गयी। आसिया समाज की रूढ़ियों को न मानकर जीवन की सच्चाई में विश्वास व्यक्त करती है।

‘उड़ान की शर्त’ में तालिब और महशी का विवाह सामाजिक रूढ़ियों का खंडन ही है। महशी की माँ को नाते-रिश्तेदारों की चिंता थी कि वे सब क्या सोचेंगे और कहेंगे। तालिब के जाने के बाद घर में तनाव का माहौल देखकर महशी समझ जाती है—‘घर की इस तल्ख़ टकराहट की थोड़ी-बहुत भनक-सी तालिब के कान तक पहुँची और बाक़ी चीज़ें उसने खुद समझ ली थीं कि इस परंपरागत समाज में उसको खुलकर कबूल करना कितना मुश्किल काम था।’⁸

दूसरे के हित की उपेक्षा करके केवल अपना हित-चिंतन करना अथवा अपना मतलब सिद्ध करना स्वार्थपरता कहलाता है। ‘आखिरी पहर’ में खलील एक निरा स्वार्थी व्यक्ति है। वह अपनी शान व हवस के लिए शोषण करता है परंतु कभी उसके दुःख-दर्द नहीं सुनता। ‘उड़ान की शर्त’ में महशी और फ़रीद तालिब को अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए दोबारा ईरान बुलाती है। तालिब को इस बात का पता सुबह नाश्ते के समय लगता है और वह कह उठता है, ‘आप लोग क्या अमेरिका जाने-भर के लिए मुझे इस्तेमाल करना चाहते थे?’⁹

आज के आपाधापी के युग ने आदमी को अकेला और परस्पर अजनबी बना दिया है। वह परिवार के साथ रहते हुए भी अपनी व्यक्तिगत समस्याओं को लेकर बिल्कुल अकेला महसूस करता है। पति पत्नी से अकेला है, पत्नी पति से अकेली है। दोनों अपने अहम् के कारण एक छत के नीचे रहते हुए भी अलग-अलग जीवन जीते हैं। शारीरिक संबंध होते हुए भी अतृप्ति, असंतोष और एक-दूसरे के प्रति शिकवे-शिकायतें दोनों की अपनी अलग-अलग हैं। माता-पिता और संतानों में भी दूरियाँ बढ़ती जा रही हैं, परस्पर अकेलापन है। बच्चे और माँ-बाप दोनों एक-दूसरे की आकांक्षाओं और आवश्यकताओं की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। ‘यहूदी सरगर्दान’ में डॉ॰ प्रताप पेरिस में एक कॉन्फ़्रेंस के लिए जाता है और अकेलापन महसूस करते हुए कहता है—‘मैं अकेले उँगलियों से मेज़ पर ताल देता अपना अकेलापन दूर करता रहा। दिनभर काम में व्यस्त रहता, मगर शाम काटने दौड़ती थी। शाम से गई रात तक पत्नी और बच्चे बेहद याद आते थे।’¹⁰ नासिरा जी ने बड़ी आत्मीयता से मानव के अकेलेपन का वर्णन किया है।

निराशा, डर, चिंता, पश्चात्ताप की भावना और तनाव मिलकर जीवन में घुटन और कुंठा को जन्म देते हैं। नासिरा शर्मा ने अपनी कहानियों में इन सब तत्त्वों का वर्णन किया है। ‘खलिश’ में सोहराब जब अपने हाथों ही अपना भविष्य अंधे कुएँ में डालकर शाम को घर आता है तो—‘शाम का अँधेरा कमरे में घुस आया था। उसने उठकर लैम्प जलाया और मेज़ पर बिखरी किताबें समेटने

लगा। दिल में दर्द उठा कि अब वह कभी इंजीनियर नहीं बन सकता। उसे कोई काम ढूँढना पड़ेगा वरना बेकार खाली दिन उसे निगल जाएँगे।¹¹ सोहराब को चारों तरफ़ निराशा ही निराशा नज़र आने लगती है। वर्तमान की भागदौड़-भरी ज़िंदगी में हर व्यक्ति ने अपने चेहरे पर नक़ाब ओढ़ा हुआ है। हर व्यक्ति दोहरा जीवन जीता है। उसका अंतर्मन कुछ और कहता है और बाहरी परिवेश उसे किसी दूसरे में आँकता है। वह अपने लिए और सिर्फ़ अपने लिए जीना चाहता है। वह अत्यधिक आत्मकेंद्रित हो गया। मानव का जीवन तो दोहरेपन का शिकार है ही, परंतु कभी-कभी समाज के न्याय में भी दोहरापन आ जाता है। 'संगसार' में आसिया और उसका साथी पकड़े जाते हैं, परंतु उसका साथी बच निकलता है। शहल और सादिया आसिया को बचाने का हरसंभव प्रयास करती है—'वे इस हक़ीक़त से बुरी तरह टकराई कि एक ही समाज के दो मापदंड हैं। मर्द के लिए क्षमा और औरत के लिए कड़ा दंड ... सबके सिर झुक गए। आसिया कोतवाली से जेल पहुँचा दी गई थी।'¹²

ग़रीबी भारतीय समाज का सबसे बड़ा अभिशाप है और यह इस समाज का दुर्भाग्य है कि इतने व्यापक आंदोलन और महान समाज-सुधारकों के प्रयासों के परिणामस्वरूप भी इस समस्या को जड़ से नहीं मिटाया जा सका। ग़रीबी से उत्पन्न होने वाली हीनता के कारण न जाने कितने ही युवाओं का जीवन बर्बाद हो रहा है। 'संगसार' कहानी-संग्रह की कहानी 'भूख' में रिज़वान और एक ग़रीब इंसान के बीच होने वाले संवाद में ग़रीबी का वर्णन स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। ग़रीबी किस प्रकार मानव को एक-दूसरे से दूर ले जाती है, यह इस कहानी में स्पष्ट हो जाता है। ग़रीब व्यक्ति को किसी समाज, राष्ट्र और किसी नेता से कोई मतलब नहीं होता, उसे तो सिर्फ़ अपनी दो रोटियों की चिंता रहती है। 'गुंजा दहन' कहानी में ग़रीबी के कारण ही सुहेला खानम और अमजद आगा अपनी बेटी को जेल से रिहा नहीं करवा पाते— 'छः मास गुज़र गये। जवान बेटी के जवान माँ-बाप तीस-पैंतीस वर्ष की आयु में साठ-पैंसठ के लगने लगे थे।'¹³ 'खलिश' कहानी में सोहराब के पिता अपने बेटे को बहुत पढ़ाना चाहते हैं, परंतु ग़रीबी के कारण वे ये सब नहीं कर पाते—'सारी कमाई बेटे को इंजीनियर बनाने में लगा दी। जब आख़िरी वर्ष की अंतिम परीक्षा की बारी आई तो स्कूल-कॉलेज बंद होने लगे। पैसे वालों ने अपने बच्चों को बाहर भेजना शुरू कर दिया। इनके पास तो इतना था नहीं जो हिंदुस्तान तक भेजने का खर्चा उठा पाते। अमेरिका-इंग्लैंड तो बहुत दूर की बात थी।'¹⁴ ग़रीबी की मार मानव को पल-पल मारती है। वह चाहकर भी अपने कुछ कामों को अधूरे छोड़ देता है। भारतवर्ष में ग़रीबी एक गंभीर समस्या है। वास्वत में आर्थिक व्यवस्था ही सामाजिक वातावरण का निर्माण करती है, जिससे आपसी रिश्ते बनते हैं—यही सामाजिक चेतना का आधार है।

संदर्भ

1. देवराज पार्थिक, नई कविता में राष्ट्रीय चेतना, पृ० 17
2. गूंगा आसमान (संगसार), पृ० 147
3. दरवाज-ए-कजविन (संगसार), पृ० 24
4. उड़ान की शर्त (संगसार), पृ० 84
5. आख़िरी पहर (संगसार), पृ० 169

6. वही
7. संगसार (संगसार), पृ० 121
8. उड़ान की शर्त (संगसार), पृ० 81
9. वही, पृ० 90
10. यहूदी सरगर्दान (संगसार), पृ० 65
11. खलिश (संगसार), पृ० 98
12. संगसार (संगसार), पृ० 135
13. गुंजा दहन (संगसार), पृ० 50-51
14. खलिश (संगसार), पृ० 103

सामाजिक विकृतियों के संदर्भ में संतसाहित्य की प्रासंगिकता

डॉ० रणधीरसिंह

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष

स्नातकोत्तर हिंदी-विभाग,

दयालसिंह पी०जी० कॉलेज, करनाल

व्यक्ति एवं समाज के पारस्परिक संबंध के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि व्यक्ति के समस्त चिंतन का विकास सामाजिक परिवेश में ही हुआ है। उसके सभी कार्यों के औचित्य-अनौचित्य का मानदंड सामाजिक धरणाएँ हैं-और यहीं से प्रासंगिकता का प्रश्न उठता है। वस्तुतः आज साहित्य की प्रासंगिकता का जो प्रश्न उठा है, वह पूर्ववर्ती साहित्य की वर्तमान युग की प्रासंगिकता से जुड़कर उठा है। इसका सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि क्या प्राचीन या मध्ययुगीन साहित्य आज भी हमारे लिए प्रासंगिक है? इससे यह स्पष्ट है कि प्रासंगिकता में औचित्य, उपयोगिता आदि सभी का समावेश हो जाता है। इसलिए प्रासंगिकता का वास्तविक अभिप्रायः सार्थकता है।

रचनाकार अपनी पूर्ण चेतना में न केवल अपना युग जीता है बल्कि अपना अतीत और आगत दोनों जीता है, इसलिए उसकी रचनाधर्मिता जो रचती है, उसका मूल्य अक्षुण्ण होता है। संत कवियों की वाणी ने जो अलख जगाया, वह हमारे आज के टूटते-बिखरते जीवन के सापेक्ष उतना ही मूल्यवान है, जितना अपने युगीन संदर्भों में था। संतयुग दो धार्मिक संस्कृतियों के संधि का युग था। हिंदू संस्कृति में भी धर्म प्रधान था क्योंकि संतों की समकालीन भारतीय संस्कृति साधु संस्कृति का पर्याय थी। आज एक कालखंड है और उसकी प्रासंगिकता का अर्थ कल के कालखंड से जुड़े रहना है, क्योंकि समय निरंतर प्रवहमान है और कुछ सामाजिक-धार्मिक समस्याएँ भी ऐसी हैं, जो कालखंडों में बँटकर परंपरागत रूप धारण किए हुए हैं। संत कबीर आदि के आविर्भाव के 500-600 वर्षों के अंतराल के बाद भी ऐसा लगता है कि उनकी उपादेयता आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। जातिगत-वर्णभेद, धार्मिक कट्टरता, अहंकार, मोहलिप्सा, बाहरी चमक-दमक दिखावा आदि अनेक ऐसी उलझने हैं, जो ज्यों-की-त्यों बनी हुई हैं।

संतयुगीन समाज की संरचना और आज के समाज की संरचना में यद्यपि काफ़ी परिवर्तन आ गए हैं, फिर भी बहुत सारी स्थितियाँ आज भी वैसी ही हैं बल्कि हमारे समसामयिक समाज की कुछ विकृतियाँ तो आज और भी भयानक रूप धारण करती जा रही हैं। संतों का संघर्ष जिन प्रगति-विरोधी शक्तियों के विरुद्ध दस्तकारों या उत्पीड़ित-शोषित जनता के लिए था, वह संघर्ष

अभी समाप्त नहीं हुआ है, बल्कि सच यह है कि वह और तीखा/तीव्र हो गया है। साथ ही मुक्ति की ओर बढ़ता हुआ यह संघर्ष अब सही वैज्ञानिक दृष्टि से संबद्ध हो गया है—जो दृष्टि मध्ययुग में विकसित नहीं हो सकी थी। इसलिए संतों का मुक्तिमार्ग और आज की शोषित-उत्पीड़ित जनता का मुक्तिमार्ग बुनियादी चरित्र के स्तर पर भिन्न है। लेकिन संतों का संघर्ष जिन ताकतों के विरुद्ध था और जिन पर उन्होंने व्यंग्यबाण बरसाये थे क्योंकि वे ताकतें आज भी वर्तमान हैं और उनके ख़िलाफ़ लड़ाई जारी है, ऐसी स्थिति में संतसाहित्य की प्रासंगिकता बढ़ जाती है।

संतसाहित्य की सामाजिक विषयवस्तु का यह ऐतिहासिक महत्त्व है कि वह जीवन की स्वीकृति का काव्य है। उसमें जनता का उल्लास है, उसका क्रोध और आक्रोश है और साथ ही एक सुखी समाज की आकांक्षा है। उसमें अन्याय का सक्रिय सुधार करने वाले वीरों के चित्र हैं। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में—उनकी एकेश्वरवादी भावना, सामाजिक भेदभावविहीनता तथा धार्मिक समानता के वैशिष्ट्य ने यहाँ की दलित, परिगणित एवं पिछड़ी हुई जातियों में एक नवीन आशा का संचार कर दिया, जिससे उनमें नवजागरण एवं स्वावलंबन का भाव उठने लगा और उसकी प्रतिक्रिया में यहाँ के उच्चवर्गीय लोगों को भी अपने नियंत्रण के नियम ढीले करने पड़ गए। फलतः भारतीय समाज की सामूहिक मनोवृत्ति का झुकाव क्रमशः लोकोन्मुख होता गया।¹

संतों ने अपने साहित्य में उन सभी सामाजिक विकृतियों का विरोध किया, जो भारतीय समाज को खोखला कर रही थीं, घुन की तरह खा रही थीं। यह उनके साहित्य की बहुत बड़ी प्रासंगिकता थी, आज भी है और आगे भी रहेगी।

जाँति-पाँति का विरोध

मध्यकालीन भारतीय समाज में वर्ण-व्यवस्था का रूप बड़ा विकट हो गया था। वर्ण-व्यवस्था के प्राचीन नियम समाज से लुप्त हो चुके थे, किंतु उसे आदर्श मानने और समाज में यथावत् बनाए रखने की प्रवृत्ति ने जाति-भेद और ऊँच-नीच की भावना को जन्म दे दिया। जातियों के बीच मतभेद और पारस्परिक कटुता चरम सीमा पर पहुँच गई थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारों वर्णों के लोग अपना कर्तव्य भूल चुके थे। ब्राह्मण वेदों को बेचने लगे थे, क्षत्रिय दूसरों की सेवा करते थे, वैश्य व्यापार में निरत नहीं थे, शूद्र अपना धर्म भूलकर ब्राह्मण बनने की धुन में बिना विद्या, ज्ञान और संस्कार के जनता में पूज्य होना चाहते थे। ब्राह्मण विद्याविहीन होकर भी अपने को श्रेष्ठ समझते थे। उनके झूठे कुलाभिमान से नीची जातियों में बड़ा असंतोष व्याप्त था। हिंदुओं में छुआछूत, तीर्थ-उपासना, मूर्ति-पूजा, जनेऊ धारण करना, यज्ञ, अवतारवाद आदि धर्म के अनिवार्य अंग बन चुके थे। मुसलमानों में रोज़ा, नमाज, हज, काबा आदि के प्रति गहरी आस्थाएँ थीं। दोनों धर्मों के लोग स्वार्थ और दृष्टिहीनतावश एक-दूसरे के कट्टर विरोधी हो गए थे।

जाँति-पाँति, ऊँच-नीच, छुआछूत आदि की अमानवीय भावना ने मध्ययुग में संतों को बहुत भीतर तक हिलाकर रख दिया। बड़े बनने की धुन में नीची जातियों के हजारों व्यक्तियों ने अपने वस्त्र तथा जटा धरण करना शुरू कर दिया था। विश्वास, आस्था, सच्चाई, ईमानदारी के स्थान पर चमत्कार और धोखाधड़ी की प्रधानता थी, आज भी ऐसा ही हो रहा है। प्रायः सभी संतों को अपने युग के सामाजिक भेदभाव, रूढ़िवाद एवं वैषम्य से जूझना पड़ा। संत नामदेव ने

ब्राह्मण-श्रेष्ठता को चुनौती देते हुए कहा कि गायें भिन्न-भिन्न रंगों की होती हैं, किंतु उनका दूध समान रूप से एक ही रंग का अर्थात् सफ़ेद होता है। अतः उसमें भेद कहाँ रहा? ठीक उसी तरह का अभेद ब्राह्मण और शूद्र के बीच वर्तमान है—

नाना वर्ण गवाँ उनका एक वर्ण दूध
तुम कहाँ के बहमन हम कहाँ के सूदा²

एक अन्य स्थान पर नामदेव ने जाँति-पाँति के भेदभाव को व्यर्थ सिद्ध करते हुए कहा कि मनुष्य को रात-दिन राम की सेवा में लगे रहना चाहिए—

का करौं जाति का करौं पाँति।
राज राम सेऊँ दिन राति।³

वे जाँति-पाँति के पचड़े में न पड़कर दिन-रात नाम जपने के समर्थक थे। कहा करउँ जाति कहा करउँ पाँति, राम का नाम जपउँ दिन-राति। उन्होंने स्पष्ट कहा कि हिंदू मंदिर में उपासना करने जाते हैं और मुस्लिम लोग मस्जिद में नमाज पढ़ने जाते हैं, किंतु नामदेव कहते हैं कि मेरा आराधना-स्थल वहाँ है, जहाँ न मंदिर है और न मस्जिद—

हिंदू पूजै देहुरा, मुसलमान मसीत
नामा सोई सेविया, जहं देहुरा न मसीत।⁴

गुरुनानक देव ने कहा है कि मनुष्य मात्र में परमात्मा की ज्योति को ही समझने का प्रयत्न करो। जाँति-पाँति की इस तुच्छ उलझन में मत पड़ो। यह भली प्रकार जान लो कि वर्ण-व्यवस्था के पहले इस प्रकार की बात नहीं थी।⁵

बुल्ला साहब कहते हैं कि सबकी उत्पत्ति एक ही ईश्वर से हुई है। अतः जाँति-पाँति का कोई अर्थ ही नहीं होता—

कैसे हिंदू तुरक कहाया
सबै ही एक द्वारे आया
कैसे बाहमन कैसे सूदा
एक हाड़ चाम तन गूदा।

संत रविदास जी ने हृदय से यह अनुभव किया था कि जाँति-पाँति की खाई बहुत गहरी बन गई है। यदि इस खाई को पाटा गया तो तभी मानव-मानव के बीच एकता संभव है। उन्होंने कहा कि जाँति-पाँति का भेदभाव निरर्थक है। एक ही परमात्मा सबका निर्माता है, अतः कोई ऊँची अथवा नीची जाति का नहीं अपितु सब समान हैं—

जन्म जात मत पूछिए, का जात अरु पात।
रविदास पूत सभ प्रभु के, कोउ नहीं जात कुजात।⁶

संत रविदास कहते हैं कि ब्राह्मण हो अथवा शूद्र, चाण्डाल हो अथवा क्षत्रिय, या फिर वह डोम, चमार, म्लेच्छ आदि कुछ भी क्यों न हो, भगवान के भजन से वह पवित्र तो हो ही जाता है, स्वयं ही नहीं अपने साथ अपने कुल को भी तार देता है, सभी भक्ति करके उस प्रभु को प्राप्त कर सकते हैं—

बहमन वैसे सूद अरु खत्री।
डोम चमार मलेछ मन सोई।

होइ पुनीत भगवन्त भजन ते।

आपु तारि तारै कुल दोई।⁷

उन्होंने जाँति-पाँति के भेदभाव को महारोग कहकर लोगों को समझाते हुए कहा कि यह रोग मानवता का विनाश करता है और मनुष्य को मनुष्य नहीं समझने देता—

जात-पाँत के फेर मँहि, उरझि रहइ सभ लोग।

मानुषता कूँ खात हइ 'रविदास' जात कर रोग।⁸

'स्व' और 'पर' अपने और पराए के स्वार्थगत भावों से संत कवियों ने विश्वबंधुत्व की भावना का प्रसार किया है। गुरुनानक देव ने सब मनुष्यों को एक ही पंथ के पथिक माना है। जाँति-पाँति का खंडन करने के लिए कबीर आदि संतों ने अत्यंत कठोर शब्दों का प्रयोग किया, किंतु दादूदयाल ने इसके लिए कठोर शब्दावली का प्रयोग नहीं किया। वे तो सच्चे साधक के रूप में सभी जातियों के विषय में अपना मत प्रकट करते हुए कहते हैं कि सभी उस प्रभु की ही जाति के हैं और उन्हीं के प्राणी हैं।

जब साधक सांप्रदायिक भेदभाव से ऊपर उठ जाता है और उसके हृदय में समत्व की भावना आ जाती है, तो उसके भ्रमों का स्वतः परिहार हो जाता है और वह गीता के अर्जुन की तरह कह उठता है—'अलह राम छूटा भ्रम मोरा'⁹ ऐसी स्थिति में हिंदू-मुसलमान, ब्राह्मण-शूद्र, पंडित-मूर्ख या धनी-निर्धन में भेदभाव कैसा? क्योंकि दोनों के एक-से प्राण हैं, एक-सा शरीर है, रक्त मांस भी एक-सा ही है तो फिर ये सब आडंबर क्यों? इसलिए सभी संतों ने अपने पैदा करने वाले 'सिरजनहार' से प्रीति करने को कहा, क्योंकि पक्ष-विशेष को ग्रहण कर कोई पार नहीं पहुँच सकता—

हेत न करि हिंदू धरम, तजि तुरक रस रीति।

रज्जब जिन पैदा किया, ताही सूं कर प्रीति।¹⁰

आज के इस वैज्ञानिक युग में जिस जाँति-पाँति के भेदभाव को समाप्त करने की शुरुआत राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और साहित्यिक स्तरों पर की गई है, उसकी तरफ़ तो संतों ने बहुत पहले संकेत कर दिया था और इस कुप्रथा पर ज़बरदस्त और तिलमिला देने वाली चोट की थी। कार्ल मार्क्स ने आर्थिक आधार पर समाज के दो वर्ग बनाए— 1. शोषक वर्ग, 2. शोषित वर्ग। मार्क्स के अनुसार यह भेद मानवजाति के लिए बहुत बड़ा अपमान है। परंतु भारतीय समाज की व्यवस्था कुछ और ही है। भारतीय समाज में वर्गभेद से ज़्यादा घातक वर्णभेद है। इसलिए जाँति-पाँति की व्यवस्था को तोड़ने के लिए संत कवियों ने जो क़दम उठाए, वे आज हमारे लिए अत्यंत प्रासंगिक हैं।

ऊँच-नीच का विरोध

संतकवि समाज में व्याप्त ऊँच-नीच के भेदभाव तथा वर्ण-व्यवस्था की विकृतियों को जड़ से नष्ट कर देना चाहते थे। संतयुगीन भारतीय समाज में नीची जाति की स्थिति अत्यंत शोचनीय थी। नीची जाति वालों को समाज में कोई प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं थी। ऊँची जाति वालों ने इनकी नाक में दम कर रखा था। यह सब देखकर कबीर ने कहा—

एक बूँद एके मल मूत्र, एक चाम एक गूदा।

एक जोति थैं सब उतपनां, कौन बाम्हन कौन सूदा।¹¹

अर्थात् ब्राह्मण-शूद्र सब में एक ही प्रकार का हाड़, मांस, रक्त, मल-मूत्र आदि रहता है, इसलिए किसी को अछूत मानकर उसकी उपेक्षा करना अनुचित है। कबीर की वाणी में वर्ण-व्यवस्था और आश्रम व्यवस्था का कड़ा विरोध मिलता है। कबीर ने ऊँचे कुल में पैदा होने वालों पर व्यंग्य करते हुए कहा—

ऊँचे कुल क्या जनमियाँ, जे करणी ऊँच न होई।
सोब्रन कलस सुरै भरया, साधू निंदा सोई।¹²

कबीर की ही भाँति रविदास ने मानव को प्रधानता दी है उसकी जाति से नहीं। उनकी निगाह में ऊँच अथवा नीच का कोई भेद नहीं है। संतयुगीन समाज में मनुष्य की परख उसके जन्म के आधार पर होती थी। नीची जाति वालों का लोग मजाक उड़ाते थे। रविदास ने स्वयं के विषय में भी कहा है—‘हम अपराधी नीच घरि जनमें, कुटुंब लोग करैं हाँसी रे।’¹³

संत रविदास ने अपने हृदय के इस दर्द को अपनी वाणी के माध्यम से बड़ी सहजता से व्यक्त किया। उन्होंने लोगों को समझाते हुए कहा कि कोई भी व्यक्ति जन्म के कारण ऊँचा-नीचा नहीं हो सकता। हाँ, वह अपनी ओछी करनी के द्वारा अवश्य नीच हो सकता है—

रविदास जन्म के कारनै, होत न कोऊ नीच।
नर को नीच करि डारि है, ओछै करम की कीच।¹⁴

मध्ययुगीन भारतीय समाज में ब्राह्मण स्वयं को शूद्रों से श्रेष्ठ समझते थे तथा शूद्रों को हेय दृष्टि से देखते थे। उन दिनों ब्राह्मण वर्ग हिंदूसमाज का नेतृत्व कर रहा था तथा शूद्रवर्ग भेदभाव की निर्मम चक्की में पिसता जा रहा था। संत रविदास ने इस अनर्थ को देखकर कहा—

रविदास ब्राह्मण मति पूजिए, जउ होवै गुनहीन।
पूजिहिं चरन चंडाल के, जउ होवै गुन परवीन।¹⁵

अर्थात् गुणहीन ब्राह्मण पूज्य नहीं हो सकता है। यदि चांडाल गुणवान है तो हमें उसके चरण पूजने चाहिए। रविदास जन्म एवं जाति के भेद को नहीं मानते। दादूदयाल ने बहुत ही विनम्र भाव से ऊँच-नीच के संबंध में कहा कि मनुष्य को ऊँच-नीच के भाव को छोड़कर समता के धरातल पर व्यवहार करना चाहिए। संतयुगीन समाज में नीची जाति के लोगों को प्रभुभक्ति का अधिकार नहीं था, जिसे दादू एकदम गलत मानते थे। इसलिए उन्होंने कहा कि नीची से नीची जाति का व्यक्ति भी प्रभु-भक्ति कर सकता है। परमात्मा की उपासना मात्र उच्च वर्ग की संपत्ति नहीं है, क्योंकि परमात्मा तो कण-कण में विद्यमान है—

दादू सब रंग रंगि रह्या, दूजा कोई नाहिं।
सब रंग तेरे तै रंगे, तू ही सब रंग माहिं।¹⁶

निष्कर्षतः, निम्न वर्ग/जातियों पर सामाजिक विकृतियों के संदर्भ में संतों ने जिस समतामूलक समाज की स्थापना की है और जो उपकार किए हैं, उनको वे कभी नहीं भुला सकते। समाज के निचले धरातल से उठकर उन्होंने यह सिद्ध कर दिखाया था कि अपनी अनवरत तपस्या और साधना से वे उच्च जातियों से कहीं आगे बढ़ सकते हैं। संतों ने निम्न जातियों पर हो रहे उच्चवर्ण के अत्याचारों का खंडन कर उसे रोका और उन्हें स्वाभिमान के साथ जीने की नई दृष्टि दी, जिसकी प्रासंगिकता आज के भौतिकतावादी युग में और अधिक बढ़ गई है।

संदर्भ

1. परशुराम चतुर्वेदी : भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएँ, पृ० 34
2. वियोगी हरि (सं०), संत सुधासार (नामदेव), पृ० 55
3. संत नामदेव की हिंदी पदावली, पर 18, पृ० 8
4. वियोगी हरि (सं०), संत सुधासार (नामदेव), पृ० 55
5. श्री गुरुग्रंथ साहब, महला 1, पृ० 349
6. पृथ्वी सिंह आजाद, रविदास दर्शन, पृ० 124
7. आदि गुरु ग्रंथ साहिब, बिलावल वाणी रविदास भगत की, पृ० 858
8. डॉ० बी०पी० शर्मा (सं०), रविदास दर्शन, साखी 21
9. नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसान्मयाच्युत।
स्थितोअस्मि गत सदेह करिष्ये वचनं तव 11 गीता 18, 73
10. वियोगी हरि (सं०), संत सुधासार, पृ० 530, 57, 59
11. श्यामसुंदर दास (सं०), कबीर ग्रंथावली, पद 57, पृ० 82
12. वही, पद 269, पृ० 37
13. डॉ० बी०पी० शर्मा (सं०), संत गुरु रविदास वाणी, पद 83, पृ० 103
14. डॉ० बी०पी० शर्मा (सं०), रविदास दर्शन, पृ० 126
15. वही, पृ० 129
16. परशुराम चतुर्वेदी (सं०), दादू दयाल ग्रंथावली, पद 8, पृ० 272

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
स्नातकोत्तर हिंदी-विभाग
दयालसिंह पी०जी० कॉलेज, करनाल
मो० 08295366333, 09416188620

हमारे प्राच्य गौरव के प्रतीक अँग्रेज़ी में हिंदी-संस्कृत स्रोत

डॉ० सीमा अग्रवाल

असि०प्रो० एवं प्रभारी हिंदी विभाग

गोकुलदास हिंदू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद (उ०प्र०)

‘ऋषिकुल’ का ‘रिस्कूल’ लुप्त ‘री’ होकर ही स्कूल हुआ, किंतु प्राच्य गरिमामय गौरव, लगता गूलरीफूल हुआ।’ अर्थात् अँग्रेज़ी शब्द ‘स्कूल’ संस्कृत के ऋषिकुल से निकला है। कितना सुखद आश्चर्य होता है यह जानकर! और कितना दुःख होता है यह सोचकर कि आज हम अपने इस प्राचीन गरिमामय गौरव को भूलकर अपनी भाषा को हेय दृष्टि से देखते हैं और मानसिक गुलामी का शिकार होकर अँग्रेज़ी के व्यामोह में अपनी ही भाषा का तिरस्कार कर रहे हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि अँग्रेज़ी भाषा में कई शब्दों को यदि ध्वन्यनुसारी रीति से पढ़ा जाए तो, तो ज्ञात होगा कि उनका मूल उत्स हमारी देववाणी संस्कृत है। हमारी पारंपरिक समृद्ध संस्कृत भाषा में 22 उपसर्ग हैं, जिसका एक-एक उपसर्ग इतना समृद्ध है कि उससे अनेकानेक शब्दों का निर्माण किया जा सकता है। हमारी वर्तमान पीढ़ी को जानना चाहिए कि भारतीय परंपरा की विश्व को देन क्या है? और यह कितनी समृद्ध है। यदि पाश्चात्य सभ्यता और अँग्रेज़ी भाषा के पीछे भागती हमारी आज की पीढ़ी यह जान ले तो उसमें एक अद्भुत आत्मगौरव का भाव जाग्रत होगा और हीनता की ग्रंथि का स्थान एक गौरवमयी अनुभूति लेगी। हमारी मानसिक दासता और आत्महीनता के भाव में कमी आएगी और हम विकास के मार्ग पर अग्रसर हो सकेंगे।

हमें अँग्रेज़ी साम्राज्य से तो मुक्ति मिली, किंतु अँग्रेज़ी भाषा की गिरफ्त से हम स्वयं को मुक्त न कर सके। हम यह भी भूल गए कि हमारी स्वतंत्रता संस्कृत की संस्कृति से संस्कारित उत्सर्ग-बलिदान का ही प्रतिफल है, किंतु पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा की चकाचौंध में हमें अपनी युगों-युगों से सँजोई विरासत दकियानूसी लगने लगी। हिंदी-संस्कृत सम्मेलनों व गांधी-दर्शन की धूम विदेशों में तो खूब मची किंतु भारत में संस्कृत बहिष्कृत, हिंदी तिरस्कृत, उर्दू पुरस्कृत और अँग्रेज़ी अलंकृत हाने लगी।

यह हमारा दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है कि हमें स्वतंत्र हुए 66 वर्ष हो गए हैं, किंतु आज भी हमारे देश का सामान्य नागरिक अतीत की उस परतंत्रता से प्रभावित मानसिक दासता, गुलामी और तज्जनित हीनताग्रंथि से ग्रस्त है। पहले अँग्रेज़ राज्य करते थे, अब अँग्रेज़ी राज्य कर रही है। गुलामी की मानसिकता से पीड़ित हमारा समाज लघुता ग्रंथि को ऐसे सँभाले हुए है, जैसे

यही उसके लिए सबसे मूल्यवान वस्तु हो। देशहित के लिए देशवासियों की इस मानसिकता में बदलाव लाना ज़रूरी है। विदेशी सभ्यता और विदेशी बोली के आकर्षण में फँसकर अपनी बोली, अपनी सभ्यता को भूलती जा रही आज की पीढ़ी को देखकर देश की जा हालत है, उसे अपनी कविता की कुछ पंक्तियों के माध्यम से अभिव्यक्त करना चाहती हूँ—

मूक लाचार अबला-सी है, मेरे देश की हालत,
शोकनिमग्ना विह्वला-सी है, मेरे देश की हालत।
गली-गली ये ढूँढ़े जाकर, अपनी सभ्यता, वाणी
व ,
अपने घर बेगानी-सी है, मेरे देश की हालत।

अँग्रेज़ी के मोह में हमारे जो देशवासी अपनी मातृभाषा को हेय समझने लगे हैं, इस लेख के माध्यम से मैं उन्हें यह बताना चाहती हूँ कि अँग्रेज़ी के अनेक शब्दों के साथ-साथ उसकी ध्वनियाँ, उपसर्ग, महीनों के अनुप्राणित हैं और यह जानकर निस्संदेह वे अपनी भाषा के प्रति हीन-भावना का परित्याग कर उसे सम्मान की दृष्टि से देखेंगे।

सर्वप्रथम कुछ ऐसे अँग्रेज़ी शब्दों का उल्लेख करना चाहूँगी, जो हिंदी एवं संस्कृत में समान रूप से विद्यमान हैं।

1. अँग्रेज़ी में नाम को Name (नेम) कहा जाता है। स्पष्ट है कि हिंदी का 'नाम' अँग्रेज़ी में पहुँचकर 'नेम' हो गया। शुद्ध संस्कृत का नाम (Namah) पहले नाम (Nahm) और बाद में नेम (Name) बना।
2. अँग्रेज़ी में दरवाज़े के लिए Door (डोर) शब्द भी हिंदी या संस्कृत के द्वार से पर्याप्त मेल खाता है।
3. अँग्रेज़ी में पसीने के लिए स्वेट (Sweat) शब्द आता है और संस्कृत में स्वेद।
4. अँग्रेज़ी में केंद्र के लिए Center शब्द आता है, जिसका उच्चारण सेंटर होता है। अँग्रेज़ी में 'C' को स और क दोनों ध्वनियों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। यदि हाँ 'C' का उच्चारण 'क' किया जाए तो यह केंटर या केंद्र हो जाएगा।

इसी तरह के अन्य अनेक शब्द हैं, जो हमारी हिंदी या संस्कृत से तोड़-मरोड़कर बनाए गए हैं। जैसे—

Medium—माध्यम, Right—ऋत् (संस्कृत), Creative—कृतित्व, Better—बेहतर, Upper—ऊपर, Mother—मातृ/मातर, Brother—भ्रातृ/भ्रातर, Widow—विडवा/विधवा, Widower—विडोर/विधुर, Son—सुनु, Path—पथ, Hut—हंत, New—नव आदि।

इसी तरह के अन्य अनेक शब्द ढूँढ़े जा सकते हैं। अब देखते हैं कि कुछ शब्द कैसे संस्कृत से परिवर्तित होकर अँग्रेज़ी भाषा तक पहुँचे हैं—

1. संस्कृत में 'हम' के लिए 'वयम्' का प्रयोग किया जाता है। जिसका प्राकृत रूप है 'वई' और अँग्रेज़ी में We (हम) बन गया।
2. संस्कृत के यूयम् शब्द से 'यू' (You) बना गया है।
3. संस्कृत में 'वे' के लिए 'ते' लिखा जाता है। अँग्रेज़ी में ते को They (दे), इस तरह लिखा गया है।

4. इसी तरह संस्कृत के तत् से That बनाया गया है।

यदि शोध किया जाए तो इस तरह के और भी अनेक शब्दों को ढूँढा जा सकता है। जिस तरह संस्कृत में अन् उपसर्ग लगाकर अनादर, अनावृत आदि शब्द बनाए गए हैं, उसी तरह अँग्रेजी में भी 'Un' Prefix लगाकर Unable, Undo, Unfortunate आदि शब्द बनाए गए हैं। अब बात करते हैं अँग्रेजी के महीनों की। अँग्रेजी महीने—सेप्टेंबर, ऑक्टोबर, नोवेंबर और डिसेंबर संस्कृत के सप्तांबर, अष्टांबर, नवांबर, दशांबर से कितना मिलते हैं, कभी सोचा है आपने?

यहाँ प्रश्न उठता है कि यदि सप्तांबर को सेप्टेंबर, अष्टांबर को ऑटोबर, नवांबर को नोवेंबर और दशांबर को डिसेंबर माना जाए तो ये महीने अँग्रेजी कैलेंडर के क्रम में नवें, दसवें, ग्यारहवें और बारहवें महीने कैसे हुए? शोध करने पर एक और रोचक तथ्य सामने आता है, वह यह कि हिंदू पंचांग के अनुसार नव संवत्सर चैत्र माह से शुरू होता है, जो मार्च के महीने में पड़ता है। ऐसा भी पढ़ने-सुनने में आया है कि प्राचीन काल में मार्च महीने से नए वर्ष का प्रारंभ होता था। यदि मार्च महीने में वर्ष का प्रारंभ माना जाए तो सितंबर सातवाँ, अक्टूबर आठवाँ, नवंबर नवाँ और दिसंबर दसवाँ महीना ही होगा।

यह निष्कर्ष तर्कसम्मत और वैज्ञानिक भी है। यह तो हम सभी जानते हैं कि अँग्रेजी वर्ष का हर चौथा वर्ष लीप ईयर होता है, जिसमें वर्ष में एक दिन बढ़कर 366 दिन हो जाते हैं और यह एक दिन फ़रवरी माह में बढ़ता है अर्थात् इस वर्ष फ़रवरी में 28 की जगह 29 दिन होते हैं। चूँकि भौगोलिक दृष्टि से एक वर्ष 365 1/4 दिन का होता है। यही कारण है कि प्रथम तीन वर्ष 365-365 दिन के माने जाते हैं और चौथे वर्ष गणना सही करने के उद्देश्य से एक दिन बढ़ाकर उसे 366 दिन का माना जाता है। यदि हमें कहीं कोई सुधार करना हो तो वह सामान्यतया अंत में ही किया जाता है, फिर अँग्रेजी में एक दिन का यह सुधार फ़रवरी में ही क्यों किया गया, अँग्रेजी के अंतिम वर्ष दिसंबर में क्यों नहीं? प्रश्न उठना स्वाभाविक है और इस प्रश्न का सीधा-सादा उत्तर यह है कि कभी-न-कभी मार्च वर्ष का प्रथम और फ़रवरी अंतिम महीना रहा होगा। वर्ष के बीच में, वह भी दूसरे महीने में ही इस तरह का सुधार किया जाना तर्कसंगत नहीं जान पड़ता और यह भी कि फ़रवरी में ही सबसे कम दिन क्यों रखे गए, जबकि अन्य सभी महीने 30 या 31 दिन के माने गए। इसका कारण भी स्पष्ट है कि जब महीने के दिनों का निर्धारण 30 या 31 दिनों का किया गया होगा तो अंतिम माह के लिए जितने दिन शेष रहे होंगे, उन्हीं को रखा गया होगा। वस्तुतः ये सभी तथ्य पुष्ट करते हैं कि हमारी परंपरा कितनी समृद्ध है और विश्व को उसकी देन कितनी विशद है। विश्व की और विशेष रूप से यूरोप की भाषाओं में संस्कृत के शब्द स्रोत माने जाते हैं।

संस्कृत के रूप में वस्तुतः एक ऐसा शब्द रचना शास्त्र, एक पूर्ण विकसित रूप में हमारे पास है, विदेशी विद्वान भी जिसकी प्रशंसा करते नहीं थकते और इसे मानवीय बुद्धि का महानतम कीर्तिस्तंभ मानते हैं। व्याकरणिक दृष्टि से संस्कृत सभी भारतीय भाषाओं की स्रोत भाषा होने के कारण इसका प्रयोग सामान्य रूप से वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली के निर्माण हेतु किया जा सकता है, किंतु अफ़सोस कि हमारे भारतीय वैज्ञानिक और अभियंता केवल अँग्रेजी माध्यम से ही शिक्षण प्राप्त करते हैं और अपने शैक्षिक जीवनकाल में संस्कृत व्याकरण के मूल नियमों तक

का ज्ञान नहीं रखते।

आचार्य रघुवीर के मतानुसार सभी नए पारिभाषिक शब्दों का निर्माण संस्कृत को आधार मानकर किया जाना चाहिए, क्योंकि इसका व्याकरण उच्चस्तर पर सूत्रबद्ध है, जो आचार्य पाणिनीकृत 'अष्टाध्यायी' के नाम से प्रसिद्ध है। यह कृति संसार की सभी भाषाओं के लिए अनुपम और अनुकरणीय है। इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या होगा कि एक परायी भाषा के व्यामोह में हम अपनी इस अति समृद्ध भाषा को हाशिये पर ले जा रहे हैं।

हमारे देश में चिकित्सा, विज्ञान, तकनीकी या सामाजिक विज्ञानविषयक पत्रिकाएँ किसी भारतीय भाषा में नहीं हैं। सभी वैज्ञानिक अपने निष्कर्ष अँग्रेजी में ही प्रकाशित करते हैं तथा सभी तकनीकी संस्थानों में शिक्षा अँग्रेजी में दी जाती है, मानो अँग्रेजी ही विज्ञान व तकनीकी शिक्षा के लिए सहज व स्वीकार्य भाषा है। लेकिन अन्य अनेक देशों जैसे—थाइलैंड, कोरिया, चीन, जापान, जर्मनी या फ्रांस में ऐसा नहीं है। अन्य देशों में अँग्रेजी दुनिया के शेष देशों के साथ संवाद के लिए प्रयोग की जाती है, विशेषकर अंतर्राष्ट्रीय लेन-देन के मामलों में। दुनिया के अधिकांश देशों में बिना स्थानीय भाषा के ज्ञान के किसी व्यक्ति को किसी सुयोग्य पद पर बैठने के योग्य नहीं समझा जाता। वहीं भारत संभवतः दुनिया का एकमात्र ऐसा देश है, जहाँ ऊँचे पदों पर बैठे उच्च शिक्षा प्राप्त लोग, जिन्होंने देश में रहते हुए ही शिक्षा तथा पद पाया है, वे यह बताना सम्मानजनक समझते हैं कि उन्हें अपनी मातृभाषा नहीं आती। यहाँ अपनी भाषा का प्रयोग करने वाले कुशाग्र बुद्धि को भी मूर्ख समझा जाता है और अँग्रेजी भाषा का ग़लत-सलत प्रयोग करने वाले को भी होशियार माना जाता है। यह विडंबना है आज हमारे देश की। जबकि दूसरे देशों में हिंदी की यह दुर्दशा नहीं है वहाँ के लोगों में हिंदी के प्रति आकर्षण है और वे उसे सीखना चाहते हैं। कल ही समाचार-पत्र में पढ़ा कि यूक्रेन निवासिनी विक्टोरिया पब्ल्यूचेन्को नामक युवती को हिंदुस्तान और हिंदी से इतना लगाव है कि उन्होंने अपना नाम बदलकर वेणुरति देवीदासी तो रखा ही, हिंदी बोलना भी सीखा, लिखना भी सीखा। वह हिंदी में ही बोलती-बतियाती हैं। श्रीमद्भागवत उन्हें कंठस्थ है। विक्टोरिया प्रेरक है उन तमाम लोगों के लिए, जो इसी धरती पर पैदा होने के बावजूद अपनी मातृभाषा से दूरी बनाए हुए हैं। हिंदी बोलने और लिखने में जिन्हें शर्म का अहसास होता है। (अमर उजाला, 15 सितंबर, 2013, पृ०-17)

अपने इस लेख के माध्यम से मैं केवल यही बताना चाहती हूँ कि भावनात्मक दृष्टिकोण से ही नहीं, तार्किक दृष्टि से भी हमारी भाषा कितनी सबल, सशक्त और विशद है, जिसने अन्य भाषाओं को भी उपकृत और अभिसिंचित किया है, उसकी परंपरा कितनी समृद्ध है। अन्य भाषाओं के लिए स्रोत भाषा रूप अपनी भाषा को हेय दृष्टि से देखते हुए हम स्वयं को हीन महसूस करते हैं। अब भी समय है कि हमें अपनी इस हीनता को त्यागकर सच्चे मन से अपनी भाषा का वरण करना चाहिए। हमें अपनी मानसिकता में बदलाव लाना होगा, अन्यथा स्थिति बहुत घातक हो सकती है।

अपनी प्राच्य धरोहर और उसके गौरव को अनुभूत करते हुए हमें स्वयं को मानसिक दासता और हीनभावना से मुक्ति दिलानी होगी और जब हम मानसिक रूप से आजाद होंगे, तो विकास के मार्ग स्वतः खुलते जाएँगे और विश्व में एक बार फिर हम अपना परचम लहरा सकेंगे।

अंत में सभी हिंदवासियों से मेरा बस यही निवेदन है कि—

अपनी भाषा को कम मत तोलो
जब भी बोलो, बस हिंदी बोलो।

संदर्भ

1. आचार्य रघुवीर—भारतीय धरोहर के मनीषी, डॉ० शशीबाला
2. डॉ० मधुसूदन, हिंदी, संस्कृत, अँग्रेजी स्रोत (भाग-1)

सी-89, ज़िगर कॉलोनी
मुरादाबाद (उ०प्र०)
मो० 09411679555

सूरदास के काव्य में रसात्मक बिंब

रूपमाला

वल्लभाचार्य जी के शिष्य-शिरोमणि सूरदास जी, 'पुष्टिमार्ग के जहाज' कहे जाते हैं।¹ सूरदास जी के जन्म की प्रामाणिकता आज भी अंधकार में है। कोई भी इनके जन्म के बारे में सही अनुमान नहीं लगा सका है, किंतु ये सारस्वत ब्राह्मण थे। इसी प्रकार सूरदास जी के जन्मांध होने पर भी काव्य-जगत् में आज तक संशय है, किंतु सूरदास जी ने अंग-प्रत्यंग सौंदर्य, प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रण, रंगों में सूक्ष्म ज्ञान तथा मानवीय सूक्ष्म भावानुभूतियों और किसी भी जन्मांध कवि के लिए संभव न था, किंतु अधिकांश विद्वानों ने इसे सूर के अंतःचक्षु तथा दिव्य शक्ति की करामात मानकर सूर के जन्मांध होने का समर्थन किया है।

वार्तासाहित्य में सूरदास की जीवन-संबंधी अनेक अलौकिक चमत्कारपूर्ण घटनाओं का उल्लेख हुआ है। यह माना जाता है कि गऊघाट पर आचार्य वल्लभाचार्य जी ने सूरदास जी को अपना शिष्य बना लिया। तभी से सूरदास जी ने गऊघाट पर कृष्ण-लीलागान प्रारंभ किया। इन्होंने अपनी लेखनी का विषय रसिकशिरोमणि भगवान श्रीकृष्ण को बनाया।

सूरदास जी के पाँच ग्रंथ बताए जाते हैं—

1. सूर-सागर, 2. सूर-सारावली, 3. साहित्यलहरी, 4. नल दमयंती, 5. व्याहलों।

अंतिम दो ग्रंथ अप्राप्य हैं और इनके सूर कृत होने पर भी संदेह है। इनके दो ग्रंथों का उल्लेख मिश्र-बंधुओं के 'हिंदी-नवरत्न' में हुआ।

रसात्मक बिंब वे बिंब हैं, जिनसे रस की अनुभूति होती है। सूरकाव्य में रसात्मक बिंबों की संख्या बहुत ही कम है। इसी कारण अधिकांश स्थलों पर स्वाद की अनुभूति को अन्य ऐंद्रिय बोधों से समन्वित करके ही चित्रित किया गया है, जिससे पाठक रस की अनुभूति को ग्रहण करने में सक्षम हों।

रसना-इंद्रिय से पदार्थों की स्वादगत विशेषताएँ प्रकट होती हैं। काव्य में पदार्थ के स्वाद का नाम आते ही पाठक के हृदय में आस्वाद्य का प्रत्यक्षीकरण होने लगता है, जिससे रसात्मक बिंब उत्पन्न होता है। इससे मधुर, कटु, तिक्त, नमकीन, कषैला, चरपरा आदि स्वादों का विचार सहज ही प्रकट होता है, परंतु रसात्मक बिंब-विधान में रसों की उत्पत्ति का साधन मानवीय चेष्टाओं पर आधारित है।

(क) लक्षित रसात्मक बिंब-प्रधान

लक्षित बिंब वे बिंब हैं, जो स्वतंत्र होते हुए भी दृष्टि से जटिल नहीं होते, विषय की प्रतीति के अनुरूप हुआ करते हैं और सहज ही प्रतीतिगम्य हो जाते हैं, लक्षित कहलाते हैं—

लक्षित रसात्मक बिंबों में मधुरता से युक्त बिंबों की अधिकता है। इनमें खाद्य पदार्थों

के काम में आने वाले पदार्थों के स्वाद का चित्रण कुछ स्थानों पर ही हुआ है। जिससे सौंदर्य को स्वादबोध के स्तर पर अनुभव कराया जाता है।

जा दिन तैं हरि दृष्टि परे री
ता दिन तैं मेरे नैनानि, दुःख-सुख सब बिसरे री।
मोहन अंग गुपाल लाल के, प्रेम-पियूष भरे री।²

यहाँ गोपी अपनी सखी से कहती है कि जिस दिन से हरि की दृष्टि पड़ी है, उस दिन से मेरे नैन सुख-दुःख सब भूल गए हैं, क्योंकि मोहन (मोहित करने वाले) के अंग-अंग में प्रेम पियूष भरा है अर्थात् मोहन के अंग-अंग को देखकर हम एक अद्भुत रसपान कर रहे हैं। यहाँ गोपी केवल कृष्ण के अंगों को देखकर सुधारस में लीन हो गई है।

यहाँ कृष्ण के समग्र सौंदर्य को स्वाद के माध्यम से साकार किया गया है, जिसे देखकर गोपी सुधारस को प्राप्त करती है।

निरखति श्यामसुंदर के बार-बार लावति लै छाती।³

यहाँ बिंब के माध्यम से गोपी की आंतरिक प्रेम-भावनाएँ साकार हो उठती हैं, क्योंकि प्रेमी को अपने प्रियतम की प्रत्येक वस्तु अच्छी लगती है, इसलिए ही गोपी की प्रेम रसानुभूति को प्राप्त करने की चेष्टा करती है।

नान्ही नान्ही बूँदनि मैं, ठाड़े मीठी तान,
मैं तो लालन की छवि नै कहूँ न जो ही।
सूर-स्याम मुरी मुसुक्यानि, छबि अँखियानि रही,
हों न जान्यौ री कहाँ ही और को ही।⁴

यहाँ श्रीकृष्ण वर्षा की भीनी-भीनी पड़ती फुहारों में खड़े भीग रहे हैं और मीठी तान ले-लेकर गीत अलापे जा रहे हैं। उनका यह रूप इतना सलोना लग रहा है कि लाखों में ऐसी सुंदरता दिखाई नहीं देती। श्रीकृष्ण की मुस्कान की छवि आँखों में ऐसी बसी है कि गोपी स्वयं को भी भूल गई कि वे कौन थीं। अतः यहाँ गोपी को श्रीकृष्ण की अलापे जाने वाली तान बहुत ही मीठी अर्थात् मधुरतापूर्ण लग रही है—

बोलत खग-निकर मुखर, मधुर होइ प्रतीति सुनौ,
परम प्रान-जीवन-धन मेरे तुम बारे।
मनौ बेद बंदीजन सून-बूँद मागध-गन
वेद बदत जै जै जै जैति कैटभारे।
विकसत कमलावती, चले प्रपुंज कंज न्योरा।
मानौ बैराग पाई, सकल सोक-गृह बिहाइ,
प्रेम-मत्त फिरत मृत्यु, गुनत गुन तिहारे।⁵

उपर्युक्त पंक्तियों में माता यशोदा श्रीकृष्ण को नींद से जगाने के लिए अनेक प्रकार के उदाहरण दे रही हैं कि ये मधुर स्वर में चहचहाने वाले पक्षी ऐसे प्रतीत हो रहे हैं कि मानो वेद-बंदीजन, सूत और मागध सब तुम्हारे गुण गाते हुए कह रहे हैं कि कैटभ के शत्रु तुम्हारी जय हो, जय हो। अतः पक्षी तुम्हारी जय-जयकार का मधुर स्वर में गान कर रहे हैं। देखो कमल खिल गए हैं और उनमें से भौरों के समूह निकल-निकलकर उड़े चले जा रहे हैं। मानो वैराग्य होने पर

सारा शोक छोड़कर भक्तलोग प्रेम में मतवाले होकर तुम्हारे गुण गाए जा रहे हैं। भँवरे भी कमल से निकल-निकलकर अपने मीठे स्वरों से तुम्हारा गुणगान कर रहे हैं।

अतः यहाँ पक्षियों एवं भँवरों का मधुरतायुक्त स्वरों में गान करना मधुरतायुक्त रसात्मक बिंब को प्रस्तुत कर रहा है—

हरि-रस रूप यहै मद आवत, डर डाय्यौ जु महावत।
गेह-नेह बंधन-पग ताज्यौ, प्रेम-सरोवर धावत।
रोमावली सुँड, बिबि कुच मनु, कुंभ स्थल-छबि पावत।
सूर स्याम केहरि सुनिकै ज्यों, बन-गज-दर्प नवावत।⁶

यहाँ श्रीकृष्ण का अनुरागमय रूप रसात्मक अनुभूति को साकार कर रहा है। श्रीकृष्ण के रूप-सौंदर्य का मद गोपियों पर ऐसा चढ़ रहा है कि वह मतवाले हाथी, जिसने महावत का डर ही निकाल फेंका हो अर्थात् गोपियों श्रीकृष्ण के रूप में सौंदर्य के मद रस में चूर होकर अपने घर के स्नेह का फंदा तोड़कर प्रेम-सरोवर की ओर बढ़ चली हों। यहाँ गोपियों के रूप-सौंदर्य की भी रसात्मक अनुभूति साकार हो रही है। उसी समय गोपियों की नाभि से छाती तक फैले दोनों मानो मदमस्त हाथी की सूँड और कुंभ स्थल पर शोभा को पा रहे हों तभी जैसे सिंह की गर्जन सुनकर जंगली हाथी का दर्प कम हो जाता है उसी प्रकार श्रीकृष्ण के शब्द सुनकर गोपियों का दर्प भी कम हो जाता है।

अतः यहाँ श्रीकृष्ण के मधुर रसात्मक रूप-सौंदर्य का मधुर शब्दों के द्वारा मधुर रसात्मक बिंब का चित्र साकार हो उठा है—

भवन न भावै माइ, आँगन न रहनौ जाइ,
करै हाय-हाय, देखौ जैसे हाल कज्यौ है
सूरदास-प्रभु नीकै गावत मधुर सूर
मानौ मुरली मै ले पीयूषरस भाज्यौ है।⁷

यहाँ गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखी अब तो मुझे घर तनिक भी अच्छा नहीं लगता। अपने घर के आँगन में मुझे चैन नहीं मिलता। मैं बैठी हाय-हाय किए जाती हूँ, अब तू ही देख ले कृष्ण ने मेरी क्या दशा कर दी है। कृष्ण ऐसे मधुर स्वर में ऐसा सुरीला आलाप बजा रहे हैं, मानो अपनी मुरली से उसने अमृत का रस ही उड़ेल दिया हो।

इस पद में मुरली के मधुर स्वरों से अमृतरस की उत्पत्ति हो रही है और गोपी इसमें डूबी हुई हैं। यहाँ मुरली से उत्पन्न मधुररस को गोपी ग्रहण करती हैं, जिस कारण यहाँ रसात्मक बिंब मुखर हो रहा है—

पीन उरज, मुख-नैन चखावति, यह विष-मोदक जात न झारि,
धालती छुरी प्रेम की बानी, सूरदास को सकै सम्हारि।⁸

यहाँ कृष्ण गोपियों से कहते हैं कि तुम सबके नेत्र रूपी मुखों को अपने मोटे-मोटे स्तनों के विष के लड्डू चखाती (दिखाती) हो, उसकी झार (लहर) एक बार चढ़कर फिर कभी उतर नहीं पाती। जब तुम अपनी प्रेमवाणी की छुरी से सबको घायल किए जाती हो, तब बताओ कौन अपने को संभाल पा सकता है। इस पद में गोपियों के स्तनों को कृष्ण ने विष-भरे लड्डूओं की उपमा दी है। यहाँ कटुतायुक्त बिंब मुखरित हुआ है—

चली प्रातही गोपिका, मटुकिनि लै गोरस,
नैन, स्रवन, मन, बुद्धि, चित्त ये नहिं काहूँ बस।
तन लीन्हे डोलत फिरै, रसना अटक्यौ जस,
गोरस नाम न आवई, कोउ लैहे हरि-रसा⁹

यहाँ गोपी सवेरे ही मटकियों में गोरस लेकर घर से निकल पड़ी। उसके नेत्र, कान, मन, बुद्धि और चित्र इसमें से कोई भी उसके बस में नहीं है रह गया वह सिर्फ अपना शरीर लिए घूमती फिर रही थी। वह अपने मुख से गोरस का नाम ही नहीं आ रहा था, वह गोरस ले लो के स्थान पर हरि रस ले लो कहती जा रही थी। श्यामसुंदर के रस में उस गोपी को दही नाम तो भूल ही गया। उसके नेत्र, कान, मन, बुद्धि और चित्र में हरि रस ही समाया हुआ था। जिस कारण वह अपने शरीर की सुधी भी भूल गई थी और हरि रस में ही खोई रहती थी। इस पद में प्रेम की मधुर उत्पत्ति हुई है जिससे मधुर रसात्मक बिंब इस पद में मुखरित हुआ है।

सबहिनितैं मीठौ दधि है यह, मधुरैं कहनौ सुनाइ,
सूरदास-प्रभु सुख उपजायौ, ब्रज-ललना मन भाई¹⁰

यहाँ कृष्ण मधुर स्वर में सबको सुनाकर कहते हैं कि मक्खन हो तो ऐसा। राधा की मटकी का मक्खन सभी के मक्खन से मीठा है और बहुत मग्न होकर राधा से मक्खन माँगकर जीमने लगे। इस प्रकार कृष्ण ने ब्रज की राधा का मन प्रसन्न करके राधा को तृप्त कर दिया।

यहाँ का मीठा स्वाद वर्णित किया गया है। प्रेम की मधुरता के कारण कृष्ण मीठे स्वर में बोलते हैं और मक्खन भी मीठा लगता है, जिस कारण इस पद में मधुर रसात्मक बिंब प्रकट होता है।

कुच परसे, अंकन भरि लीन्हीं, अति मन हरष बढ़ाई,
सूर-स्याम मनु अमृत घटनिकौ, देखत है कर लाई¹¹

कृष्ण से ग्वालिन को अपनी ओर खींचा और मन प्रसन्न करते हुए उसके स्तनों पर हाथ फेरकर उसे छाती से लगा लिया। उसके स्तनों को स्पर्श करते समय वे ऐसे जान पड़ रहे थे मानो वे इस ग्रहण करने के लिए अमृत के घड़े को टटोल रहे हों।

इस पद में श्रीकृष्ण ने ग्वालिन की रसपूर्ति की इच्छा को पूर्ण करते हुए उसे प्रेम पूर्ण कर दिया और स्वयं भी उसके स्पर्श से अमृत के रस को ग्रहण करने के लिए प्रयासरत दिखाई पड़े। प्रस्तुत पद में गोपी और कृष्ण दोनों ही अपनी इच्छापूर्ति कर प्रेम रस को प्राप्त करते हैं। इस पद में रसात्मक बिंब द्वारा एक सुंदर बिंब की सृष्टि कर पाने में कवि ने पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

(ख) उपलक्षित रसात्मक बिंब-विधान

उपलक्षित बिंबों में अस्वाद्य पदार्थों के स्वाद बोध के माध्यम से अन्य इंद्रिय विषयों के सौंदर्य में भव्यता का समावेश किया गया है। खाने-पीने के काम में आने वाले पदार्थों के स्वाद का चित्रण साधन के रूप में हुआ है, साध्य के रूप में नहीं। इसी प्रकार उपलक्षित बिंबों में भी स्वादबोध का उद्दीकृत रूप प्रस्तुत हुआ है।

नैन न मेरे हाथ रहे।

देखत दरस स्याम सुंदर कौ, जल की दरनि बहे¹²

यहाँ गोपी कृष्ण के सुंदर-सलोल रूप को देखती हैं और कहती हैं कि मेरे नैन मेरे हाथ से निकल गए हैं और जल की तरह बहते रहते हैं, अर्थात् जिस प्रकार बहते जल को कोई रोक नहीं सकता है ठीक उसी प्रकार श्याम रूप को देखकर ये मेरे नेत्र जल के समान बहने लगे हैं।

कृष्ण के सलोल रूप को देखकर गोपी के नेत्रों की दर्शनाभिलाषा अधिकाधिक बढ़ती जाती है। अप्रस्तुत योजना प्रभावसाम्य पर आधारित है और अत्यधिक प्रभावपूर्ण है—

अति मलिन वृषभानु-कुमारी।

हरि सम्र जल भी ज्यों उर-अंचल, तिहिं लालच न धुवावति सारी।¹³

कृष्ण के वियोग में राधा की दशा मलिन हो गई है। वह अपने वस्त्र भी नहीं धोती है। कृष्ण के साथ सुरति-केलि श्रम की मधुर स्मृति बनाए रखने के लिए वह अपनी साड़ी भी नहीं धुलवाती है।

लवणयुक्त अंचल की भी मधुर स्मृति को जीवित रखने में समर्थ है। यहाँ वियोग में संयोग और लवणता में मधुरता का मिलन अमूर्त मानसिक भावों को भी मूर्तिमत्ता प्रदान करता है। लवणयुक्त एवं मधुरता रसात्मकता के मिश्रण से भी रूप-चित्रण किया गया है—

अधर-रस मुरली लूटन लागी।

जा रस कौं षटरितु तप कीन्हों, मो रस पियति सभागी।¹⁴

गोपियाँ कहती हैं कि मुरली को जब श्रीकृष्ण बजाते हैं तो उनके अधरों से रस अर्थात् अमृत की प्राप्ति करती है। जिस रस को पीने के लिए तप करने पर भी हमें प्राप्त नहीं होता, उस रस का पान यह मुरली स्वतः प्राप्त कर रही है।

प्रस्तुत बिंब में मुरली गोपियों के लिए सौतियाडाह प्रस्तुत कर रही है और अधर अमृत का पान भी कर रही है। रसात्मकता के माध्यम से इंद्रिय-सुख के विषयों का सूक्ष्म वर्णन प्रशंसनीय है। अप्रस्तुत की नवीनता तथा भावानुकूलता विशेष बिंब की प्रस्तुति है।

निष्कर्षतः लक्षित रसात्मक बिंबों में अधिकांश बिंब मधुरतायुक्त हैं। लवणयुक्त रसात्मक बिंबों के उदाहरण बहुत कम मात्रा में उपलब्ध हैं। ध्वनि, स्पर्श, गंध तथा दृश्यात्मक अनुभूतियों को स्वादबोध के स्तर पर बिंबित करने के कारण कवि की अद्वितीय प्रतिभा का परिचय मिलता है। प्रत्येक बिंब भावमयी व्यंजकता से परिपूर्ण है।

उपलक्षित रसात्मक बिंब-विधान में भी अत्यधिक बिंब मधुर रस को प्राप्त हैं। मधुरतायुक्त बिंब के अतिरिक्त कुछ बिंब लवणयुक्त, तिक्ततायुक्त एवं कटुतायुक्त हैं। अमूर्त मानसिक भावों को आस्वाद्य-बोध के स्तर पर मूर्तित किया गया है। रसात्मकता के माध्यम से मानसिक संदेह की भी अभिव्यंजना हुई है।

सूर के कृष्णकाव्य में रसात्मक बिंब दो रूपों में प्राप्त होते हैं, लक्षित और उपलक्षित। अधिकांश बिंबों में मधुर आस्वाद्य का चित्रण हुआ है। नेत्र, कर्ण, त्वचा तथा घ्राणेंद्रिय के विषय के सौंदर्य को स्वाद-बोध के स्तर पर चित्रित करके कवि ने अद्भुत कल्पना एवं सूक्ष्म कलात्मकता का परिचय दिया है। इन सभी बिंबों में आस्वाद्य पदार्थों के स्वाद का साध्य रूप में नहीं, अपितु साधन के रूप में चित्रण हुआ है। संपूर्ण रसात्मक बिंबविधान अतिशय रसात्मकता से परिपूर्ण है।

संदर्भ

1. श्री वल्लभाचार्य जी के शिष्य पुष्टिमार्गी कहलाते हैं, क्योंकि वे लोग भगवान के अनुग्रह द्वारा ही, जिसको वे पुष्टि या पोषण कहते हैं, अपनी सद्गति मानते हैं—‘पोषणंतदनुग्रहः’ (श्रीमद्भागवत्)।
2. सूरसागर-सार, डॉ० धीरेंद्र वर्मा, पद 56, पृ० 99
3. वही, पद 41—पृ० 160
4. सूर ग्रंथावली, प्रथम खंड, महाकवि सूरदास-पद 426, पृ० 255
5. वही, पद 220, पृ० 143
6. वही, पद 655, पृ० 375
7. वही, पद 461, पृ० 270
8. वही, पद 611, पृ० 344
9. वही, पद 661, पृ० 378
10. वही, पद 625, पृ० 350
11. वही, पद 474, पृ० 277
12. सूरसागर-सार, डॉ० धीरेंद्र वर्मा, पद 156, पृ० 84
13. वही, पद 159, पृ० 188
14. वही, पद 43, पृ० 58

पुत्री श्री हरपाल सिंह चौहान
‘शिवम्’ गिल कालोनी
सहारनपुर (उ०प्र०)

रसखान की काव्य-संपत्ति : स्वच्छंद काव्यधारा और रसखान महिमाराम त्रिवेदी

रीतिकाल में दो धाराएँ प्रमुख थीं—रीतिबद्धधारा और रीतिमुक्तधारा। रीतिबद्धधारा के कवि और आचार्य-परंपरा के निर्वाह में सदैव सतर्क और जागरूक रहते थे। भावों की अपेक्षा वे परंपरा तथा काव्यशास्त्रीय नियमों को प्राथमिकता देते थे। रीतिमुक्तधारा के कवियों के आदर्श, रीतिबद्धधारा के कवियों के आदर्शों के बिल्कुल विपरीत थे। वे काव्यशास्त्रीय नियमों तथा परंपरा की अपेक्षा भावों को अधिक महत्त्व देते थे। इसीलिए इस धारा को स्वच्छंदधारा भी कहा जाता है। इस धारा की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

1. भावावेश का प्राधान्य
2. कृत्रिम व्यापारों का त्याग
3. भावों की प्रधानता
4. आत्मनिवेदन
5. विरह-वेदना
6. आत्मानुभूति
7. प्रेम का स्वस्थ निरूपण
8. भक्ति का वास्तविक रूप।¹

1. भावावेश का प्राधान्य

रीतिबद्ध और रीतिमुक्त कवियों की काव्य-रचना के प्रयोजनों में आकाश-पाताल का अंतर था। रीतिबद्ध कवि केवल दो प्रयोजनों से काव्य-रचना किया करते थे—आश्रयदाता का मनोरंजन और पांडित्य-दर्शन। इसीलिए इनके काव्य प्रायः श्रमसाध्य होते थे। इसके विपरीत रीतिमुक्त कवि भावावेश के कारण ही काव्य-रचना करते थे। इस विषय की ओर संकेत करते हुए घनानंद ने लिखा है—

‘लोग हैं लाग कवित्त बनावत मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।’

यही कारण है कि रीतिबद्ध कवियों की अपेक्षा रीतिमुक्त कवियों के काव्यों में अधिक भाव-प्रवणता है।

2. कृत्रिम व्यापारों का त्याग

रीतिमुक्त कवियों का काव्य भावपूर्ण था, अतः इसमें अभिव्यक्ति व कृत्रिम व्यापारों का

त्याग स्वाभाविक ही था। इन कवियों ने न तो श्रम करके शब्दों की योजना की है और न भाषा के रूप को सँवारा है। इनकी भाषा सहज और स्वाभाविक है। उसमें कहीं भी कृत्रिमता दृष्टिगोचर नहीं होती। अलंकार और लोकोक्तियाँ आदि भी स्वाभाविक होने के कारण भावाभिव्यक्ति में पूर्णतः सहायक हुई हैं।

इनके अतिरिक्त विषयों की कृत्रिमता भी इन कवियों को इप्सित नहीं थी। बाह्य कृत्रिमताओं को सोचना और उनका वर्णन करना इन कवियों को न तो रुचता था और न वे इस ओर ध्यान ही देते थे। यही कारण है कि स्वच्छंदधारा के कवियों में विरह और मिलन दोनों में प्रेमियों के हृदय के आंतरिक पक्षों को उद्घाटित करने की होड़-सी लगी रही है।

3. भावों की प्रधानता

इन कवियों के काव्यों में भावों की प्रधानता है। भाव-प्रधान होने के कारण इनके काव्यों में चिंतन-पक्ष दुर्बल है। रीतिबद्ध कवि बुद्धि के बल से ही भावों का अनुमान करते थे और बुद्धि के बल से ही प्रेम के बाह्य रूप का विधान करते थे। रीतिमुक्त कवि हृदय को ही प्रधान मानते थे और अपने समूचे काव्य की रचना हृदय की प्रेरणा के आधार पर ही करते थे।

4. आत्मनिवेदन

अपने भावों की अभिव्यक्ति में ये कवि इतने निर्भीक हैं कि जो कुछ कहना चाहते हैं, स्पष्ट कह देते हैं। किसी अन्य माध्यम का सहारा नहीं लेते। रीतिबद्ध कवि अपनी प्रेमाभिव्यंजना के लिए, सामाजिक भय के कारण जिन आवरणों को लपेटते चलते हैं उनका उन कवियों के काव्यों में एकदम अभाव है। साथ ही इन कवियों में भक्ति की सच्ची एवं वास्तविक अनुभूति थी, अतः अपने आराध्य के समक्ष अपना हृदय खोलकर रख देने की इनमें क्षमता है।

5. विरह-वेदना

इन कवियों ने प्रेम की हृदयगम्य अभिव्यक्ति की है और इनका प्रेम लौकिक से अलौकिक बना है, अतः इनमें प्रेम के विरहपक्ष की वास्तविकता मिलती है। ये कवि जिस प्रकार संयोग-वर्णन से अंतर्मुख रहते हैं और उसी प्रकार वियोग वर्णन में भी रहते हैं। बल्कि वियोग-वर्णन में इनकी अंतर्मुखता और भी अधिक बढ़ जाती है। इसीलिए इनके विरह-वर्णन में जो स्वाभाविकता और मार्मिकता है, वह रीतिबद्ध कवियों के काव्यों में नहीं मिलती। विरह के प्रायः सभी पक्षों को लेकर ये कवि चले हैं। इनमें विरह-वेदना की इतनी प्रधानता है कि संयोग में भी ये लोग इस प्रकार का वियोग-सा ही देखते हैं। अतः इन्हें न तो संयोग में शांति है और न वियोग में। इनका विरह-वर्णन अंतर्मुखी है, रीतिबद्ध कवियों की भाँति बहिर्मुखी और मांसल नहीं।

6. आत्मानुभूति

रीतिमुक्त कवियों ने सदैव हृदय को प्रधानता दी फलतः इनके काव्यों में आत्मानुभूति का अंश पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। रीतिबद्ध कवियों की भाँति बुद्धि के बल पर, इन्होंने दूर की कौड़ी लाने का कभी प्रयत्न नहीं किया, जिन भावों से इनका परिचय था और जो भाव इनके हृदय की सीमा में सहज-स्वाभाविक रूप से आ सकते थे, उन्हें ही इन कवियों ने अपनाया और उन्हीं की अभिव्यक्ति की। इसीलिए इन कवियों के काव्यों में आत्मानुभूति का पक्ष प्रबल है।

7. प्रेम का स्वरूप रूप

रीतिकालीन रीतिबद्ध कवियों ने लौकिक शृंगार को महत्ता दी और अथ से इति तक

उसी का वर्णन किया। फलतः उनके काव्य में प्रेम का मांसल रूप ही सुरक्षित रह गया। प्रेम-भाव के जो अन्य सूक्ष्म एवं उदात्त अंग होते हैं, उनकी ओर न तो इन कवियों ने कोई ध्यान ही दिया और न ऐसा करना इनके लिए आवश्यक था। अतः प्रेम इनकी दृष्टि में एक प्रकार का प्रमुखतम काम-भाव ही बनकर रह गया। इसके विपरीत रीतिमुक्त कवियों ने प्रेम को हृदय के एक उदात्त भाव के रूप में ग्रहण किया और इसकी स्वस्थता का आद्योपांत वर्णन किया। इनकी दृष्टि में प्रेम का पथ ही एक ऐसा पंथ है, जो परमात्मा तक आत्मा को ले जाने में समर्थ है। एक बार और रीतिबद्ध कवियों ने प्रेम के सम-रूप पर जोर दिया है और रीतिमुक्त कवियों ने विषम-रूप पर। इनकी दृष्टि से, स्वच्छंद प्रेम का चरम उत्कर्ष विषमता में ही निष्पन्न होता है। ये लोग सम-रूप को पारिवारिक प्रेम के लिए ही उचित समझते हैं।

8. भक्ति का वास्तविक रूप

भक्तिकाल में कृष्णभक्ति का जो आंदोलन चला, वह दिन-प्रतिदिन इतना जोर पकड़ता गया कि राधा और कृष्ण मानस में रम गए। उनकी लीलाएँ सभी के मनों को आप्लावित करने लगीं। रीतिकालीन रीतिबद्ध कवियों ने कृष्णभक्ति की इस प्रसिद्धि का लाभ उठाया और भक्तिकाल में अत्यंत सुपरिचित राधा और कृष्ण को नायिका तथा नायक के रूप में ग्रहण कर लिया और मन खोलकर इनके शृंगार का वर्णन किया। भक्तिकाल में जो शृंगार अलौकिक माना जाता था, रीतिकाल में आकर वह लौकिक और मांसल बन गया। रीतिकालीन कवियों ने राधा और कृष्ण को अपनाया इसलिए था कि उनके वाक्य में प्रभावोत्पादकता तथा चमत्कार आ जाये। राधा-कृष्ण की भक्ति से उनका दूर का भी कोई संबंध नहीं है। एक रीतिकालीन कवि ने तो स्पष्ट ही कहा है—

आगे के सुकवि रीझै हैं तो कविताई,

न तु राधिका-कँन्हाई सुमिरन को बहानो है।¹²

‘सुमिरन के बहाने में’ भक्ति की वास्तविकता कितनी होती है, यह बताने की आवश्यकता नहीं है। इसके विपरीत रीतिमुक्त कवियों के हृदयों में भक्ति की सच्ची एवं स्वाभाविक भावना थी। ये लोग पहले भक्त थे और बाद में कवि। कविता इनके लिए साधन थी, रीतिबद्ध कवियों की भाँति साध्य नहीं।

स्वच्छंदधारा की इन प्रमुख विशेषताओं पर दृष्टिपात करने के पश्चात् अब इनके आधार पर रसखान के काव्य की समीक्षा करना आवश्यक है।

रसखान और स्वच्छंद मार्ग

रसखान का काव्य भावों की मंजूषा है। जिधर भी देखिये इनके काव्य में भावों का अजस्र स्रोत प्रवाहित होता हुआ दृष्टिगोचर होता है। यदि ये भक्तिपरक भावों की अभिव्यंजना करते हैं, तो उसी हृदय से, जो एक वास्तविक भक्त का हृदय होता है। अपने आराध्य के प्रति पूर्ण विश्वास भक्तहृदय की पूर्णतम विशेषता होती है। रसखान भी इसी विश्वास को धारण किए हुए हैं और कहते हैं कि कृष्ण जिसका रक्षक है, उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता, यहाँ तक कि यमराज भी उसे कुछ हानि नहीं पहुँचा सकता।

द्रोपदी औ गनिका गज गीध अजामिल सों कियो सो न निहारो।

गौतम गेहिनी कैसी तरी, प्रह्लाद कौ कैसे हर्यौ दुख भारो।

काहे कौं सोच करै रसखानि कहा करि है रविनंद विचारो।
कौन की सेक परी है जू माखन-चाखनहारो है राखनहारो।¹³

रसखान ने जिस विषय का भी प्रस्तुतीकरण किया है, उसी को अत्यंत भावपूर्ण रीति से व्यक्त किया है। यथा—

रूप-माधुरी

श्रीकृष्ण की रूप-माधुरी कवि रसखान की कविता का श्रृंगार अथवा संपूर्ण परिचय कहा जाना चाहिए। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

मोरपखा सिर कानन कुंडल कुंतल सों छवि गंडनि छाई।
बंक बिसाल रसाल बिलोचन है दुखमोचन मोहन भाई।
आली नवीन महावन सो तन पीत पटा ज्यों छटा बनि आई।
हौं रसखानि जकी सी रही कछु टोना चलाइ ठगोरी सी लाई।¹⁴

रसखान-काव्य में कृत्रिम व्यापारों का अभाव है। वर्णन और चेष्टा दोनों में ही स्वाभाविकता है। नटखट कृष्ण गोपियों से छेड़छाड़ करते हैं। गोपियाँ कितनी स्वाभाविक भाषा में उसकी भर्त्सना करती है—

अंत तें न आयौ याही गाँवरे को जायौ,
माई बापरे जिवायौ प्याइ दूध बारे बारे को।
सोई रसखानि पहिचानि कानि छाँड़ि चाहै,
लोचन नचावत नचैया द्वारे द्वारे को।
मैया की सौं सोच कछु मटकी उतारे को न,
गोरस के ढारे को न चीर चीरि डारे को।
यहै दुख भारी गहै डगर हमार माँझ,
नगर हमारे ग्वाल बगर हमारे को।¹⁵

चेष्टाओं का भी रसखान ने स्वाभाविक वर्णन किया है। कृष्ण किसी गोपी को मार्ग में ही घेर लेते हैं। उनकी आँखें चार होती हैं। तब कृष्ण अपना नटखटपना शुरू करते हैं। तब बेचारी विवश गोपी अपनी लज्जा बचाने के लिए अपने ही वस्त्रों में इस प्रकार लिपट जाती है, जैसे सावन के बादल में छिपकर बिजली भीतर ही भीतर तड़प रही हों—

पहले दधि तै गई गोकुल में चख चारि भए नट नागर पै।
रसखानि करी उनि मैनमई कहैं दान दै दान खरे अरपै।
नख तें सिख नील निलोच लपेटे सखी सम भाँति कँपे डरपै।
मनो दामिनी सावन के घन में निकसै नहीं भीतर ही तरपै।¹⁶

वस्तुतः रसखान की दृष्टि में प्रेम एक अत्यंत उदात्त भाव है। इन उदात्त भावों में संबद्ध भावों में कृत्रिमता लाना इसके औदात्य को नष्ट करना है। इसीलिए इन्होंने सर्वत्र स्वाभाविकता का ध्यान रक्खा है।

रसखान का काव्य भाव-प्रधान है। शब्दों का संचयन और संयोजन इतनी कुशलता से किया गया है कि सर्वत्र भावों की प्रबल धारा अपनी अबाध और सहज गति से प्रवाहित हो रही है। कोई गोपी अपनी सखी से अपने प्रेम को किस सरलता किंतु भावपूर्ण ढंग से व्यक्त करती

है-

काल्हि भटू मुरली-धुनि में रसखानि लिया कहूँ नाम हमारौ।
ता दिन तें भई बैरिन सास कितौ कियौ झाँकन देति न द्वारौ।
होत चबाव बखार सौ आली री जौ भरि आँखिन भेंटियै प्यारौ।
बाट परी अब ही ठिठक्यौ हियरे अटक्यौ पियरे पटवारौ।⁷

‘पियरे पटवारी’ में अनंत भावों की गरिमा के साथ-साथ अपार आत्मीयता सन्निहित है।
‘दानलीला’ में कृष्ण-राधा संवाद के अंतर्गत और भी अधिक भावप्रणता दृष्टिगोचर होती है। यथा—
कृष्ण-

एरी कहा वृषभानपुरा की तौ दान दिये बिन जान न पैहौ।
जौ दधि-माखन देव जू माखन-झूमत लाखन या मग ऐहौ।
नाहिं तौ जौ रस सो रस लैहौ जु गोरस बेचन फेरि न जैहौ।
नाहक नारि तू रारि बढावति गारि दियें फिरि आपहिं दैहौ।⁸

राधा-

मारी के देवैया बनवारी तुम कहौ कौन,
हम तो वृषभान की कुमारी सब जानौ है।
जोर तो करोबे आइ जासों हरि पार पाई,
भुरही तें आजु मो सों कैसो हठ ठानौ है।
बूझि देखौ मन माँहि अरुझत मय जात,
बूझि हौ निदान कान्ह जौन कहौ मानौ है।
मेरे जान कोऊ मीरखान आवै दही छीनै,
तू तौ है अहीर मोहि नाहिं पहिचानौ है।⁹

आत्मनिवेदन भक्त की एक प्रमुख विशेषता होती है। इसके धारा भक्त अपने जीवन के सारे कार्यों का विशेषतः पापों का अनावरण अपने, आराध्य के समक्ष कर देता है। इस अनावरण का कारण होता है अपने आराध्य के प्रति अगाध विश्वास। रसखान में सूर अथवा तुलसी जैसा आत्मनिवेदन तो नहीं मिलता, पर अपने आराध्य के प्रति इन्होंने अगाध विश्वास अवश्य व्यक्त किया है। यथा—

कहा करै रसखान का कोई चुगल लबार।
जो पै राखनहार है माखन चाखनहार।¹⁰

इस प्रकार के अनेक उदाहरण रसखान-काव्य में मिलते हैं।

आत्मसमर्पण भी अगाध विश्वास का अंग है। रसखान जिस विधि से स्वयं को अपने भगवान के प्रति समर्पित करते हैं, वह विलक्षण है। इस विषय में इनका निम्नलिखित सवैया बहुत प्रचलित है—

मानुष हौं तौ वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जौ पशु हौं तो कहा बस मेरो चरौं नित नंद की धेनु मँझारन।
पाहन हौं तौ वही गिरि को जो धर्यौ कर छत्र पुरंदर धारन।
जौ खग हौं तो बसेरौ करौं मिलि कालिंदी-कूल कदंब की डारन।¹¹

विरह-वेदना की अभिव्यक्ति भक्तों के लिए प्रमुख रही है। फ़ारसी साहित्य में तो यही एकमात्र सोपान है, जिससे प्रियतम अथवा आराध्यदेव तक पहुँचा जा सकता है। रसखान ने विरह का अत्यंत सजीव एवं स्वाभाविक वर्णन किया है। यथा—

बाल गुलाब के नीर उसीर सौ पीर न जाइ हियँ जिन ढारौ।
कंज की माल करौ जु बिछावन होत कहा पुनि चंदन गारौ।
एते इलाज बिकाज करौ रसखानि कों कहि कों जारे पै जारौ।
चाहति हौ जु जिवायौ पटू तौ दिखावौ बड़ी-बड़ी आँखिनवारौ।¹²

प्रियतम के सान्निध्य के बिना विरहिणी की विरह-वेदना का और उपचार ही क्या हो सकता है।

कहीं-कहीं परंपरा के अवांछित चक्कर में आकर अथवा फ़ारसी-प्रभाव के कारण रसखान ऊहात्मक वर्णन भी कर गए हैं, पर ऐसे स्थल कम ही हैं।

वास्तविक काव्य आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ है भी नहीं। रसखान किसी काव्यशास्त्रीय नियम से न तो अवगत ही हैं और न यह विशेषता इनके लिए आवश्यक ही है। अपने भावावेश में ही उनकी वाणी फूटती है और वाणी का यही प्रस्फुटन सरस एवं सच्चे काव्य को जन्म देता है।

अन्य स्वच्छंदवादी कवियों की भाँति रसखान ने भी प्रेम के स्वस्थ रूप का चित्रण किया है। प्रेम इनकी दृष्टि में हृदय की सबसे उदात्त भावना है। इनके मत से शुद्ध और वास्तविक प्रेम वही है, जिसमें अकारण ही आकर्षण हो। गुण, यौवन, रूप आदि के आकर्षण से जो प्रेम होता है, उसे शुद्ध नहीं कहा जा सकता। पुत्र, कमल आदि के प्रति किया गया प्रेम भी स्वाभाविक और सच्चा नहीं है। वास्तव में प्रेम भगवान का ही दूसरा रूप है। रसखान ने प्रेम का सांगोपांग विवेचन किया है। एतद्विषयक इनके दोहे 'प्रेम-वाटिका' में संगृहीत है।

रसखान सच्चे हृदय से भक्त थे। रीतिकालीन कवियों की भाँति भक्ति का बहाना इन्होंने नहीं लिया था। इसलिए इनके काव्य में आद्योपांत कृष्णभक्ति की धारा प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है। इनकी भक्ति-साधना में वे सभी विशेषताएँ मिलती हैं जो वैष्णवभक्ति के लिए अनिवार्य हैं।

अतः कहा जा सकता है कि रसखान-काव्य में वे सभी गुण विद्यमान हैं, जो स्वच्छंद काव्यधारा में पनपे हैं। डॉ० मनोहरलाल गौड़ के शब्दों में—

'रसखान में अपने समय की काव्य-प्रवृत्तियों तथा अनुभूति-विधानों का परिचय तो दिखाई पड़ता है, पर अनुसरण नहीं। उन्होंने अपना स्वानुकूल मार्ग बनाया। उस मार्ग में विशुद्ध अप्रतिहत प्रेम की अनुभूति का प्राचुर्य था और उसकी अनावृत्त अभिव्यक्ति थी जो स्वच्छंद मार्ग की ओर संकेत करती है, शास्त्रीय परंपरा की ओर नहीं। इसका तात्पर्य यह तो कदापि नहीं कि रसखान ने जान-बूझकर शास्त्रीय मार्गों का संगठन किया है या वे काव्य के स्वच्छंद मार्ग से यथाविधि परिचित थे। उनके जीवन का संयोग मुसलमान प्रेमी भक्त होने के नाते विविध पद्धतियों के सम्मिश्रण का कारण बन गया था। वैसा ही सम्मिश्रण कबीर में हुआ था, पर कबीर ज्ञानमार्गी होकर कठोर भी हो गए और खंडन-परायण भी। हृदय की अनुभूतियों को अपने ढंग से व्यक्त

करने की सरस प्रवृत्ति उनमें नहीं आई, जो रसखान में आ गई।¹³
संदर्भ

1. रसखान ग्रंथावली, पृ० 100 से 105
2. वही, पृ० 102
3. वही, पृ० 102
4. वही, पृ० 102
5. वही, पृ० 102
6. वही, पृ० 103
7. वही, पृ० 103
8. वही, पृ० 104
9. वही, पृ० 104
10. वही, पृ० 104
11. वही, पृ० 104
12. वही, पृ० 104
13. वही, पृ० 105

सहायक अध्यापक
रामभरोसे मैकूलाल इंटर कालेज
तेलीबाग, लखनऊ (उ०प्र०)

कवि ग्वाल

राजेशकुमार सिंह, शोधार्थी
डॉ० रामानंद शर्मा, डी०लिट्, शोध-पर्यवेक्षक,
प्राचार्य, हिंदू कालेज, मुरादाबाद

रीतिकाल के अंतिम चरण में विशेषतः संवत् 1870-1930 के मध्य जिन रीतिकवियों का नाम विशेष उल्लेख्य रहा, उनमें प्रतापसाहि, ग्वाल, चंद्रशेखर वाजपेयी और लछिराम मुख्य हैं। इन सभी कवियों ने काव्यशास्त्रीय विवेचन के साथ काव्यरचना की तथा ग्वाल एवं लछिराम ने तो सर्वांगविवेचक ग्रंथ भी लिखे, लेकिन परिवर्तित परिस्थितियों के कारण ये कवि विशेष लोकप्रिय नहीं हो सके। रीतिकाव्य का सूर्य अस्ताचल का स्पर्श कर रहा था और इनका काव्य गोधूलिप्रकाश के समान ही सिद्ध हो सका। युगीन प्रवृत्ति के परिवर्तन के कारण न इनका काव्य संपादित होकर प्रकाशित हो पाया और न उसका सम्यक् मूल्यांकन ही हो सका। जो भी प्रकाशित हुआ, वह प्रचारित-प्रसारित नहीं हो सका, फलतः अपना मूल्यांकन कराने में असमर्थ रहा। इनमें न्यूनाधिक लोकप्रियता कवि ग्वाल को ही प्राप्त हो सकी। इसका प्रमुख कारण यही रहा कि ग्वाल के कई ग्रंथ 'नखशिख', 'यमुनालहरी', 'ऋतुवर्णन' आदि आज से एक शताब्दी पूर्व प्रकाशित हो चुके थे, 'कविहृदयविनोद' ने ग्वाल की कीर्ति को वृद्धिगत किया। यों 'इश्कलहर-दरियाब' और 'विजयविनोद' भी गुरुमुखी में प्रकाशित हो चुके थे, लेकिन उनका प्रचलन पंजाब तक ही सीमित रहा। एक शताब्दी पश्चात् विद्वानों का ध्यान ग्वाल काव्य के संपादन-प्रकाशन की ओर गया। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ग्वाल ग्रंथावली संपादित-प्रकाशित करना चाह रहे थे, लेकिन उनकी असामयिक मृत्यु के कारण यह कार्य बीच में ही रह गया। इधर कुछ विद्वानों ने संपादन-प्रकाशन में रुचि और उमंग व्यक्त करते हुए कुछ ग्रंथों का अच्छा संपादन प्रस्तुत किया है। डॉ० प्रेमलता बाफना ने 'भक्तभावन' का प्रकाशन कराया तो डॉ० हरमहेंद्र सिंह बेदी ने 'विजयविनोद' का। डॉ० रामानंद शर्मा ने 'रसरंग' और 'हम्मिरहठ' का प्रकाशन कराया तो डॉ० किशोरीलाल ने 'कविदर्पण' का। 'यमुनालहरी' का प्रकाशन गुजरात से भी हुआ है और डॉ० किशोरीलाल इसका सटीक संस्करण तैयार कर रहे थे, जो उनकी असामयिक मृत्यु के कारण अटक गया। अभी उनके साहित्यिक ग्रंथों में 'रसिकानंद', 'साहित्यानंद' और 'प्रस्तारप्रकाश' का प्रकाशन नहीं हो पाया और सुसंपादन तो सभी का होना शेष है, तभी उनकी ग्रंथावली की भूमिका बन सकेगी। जब तक किसी कवि के संपूर्ण ग्रंथ संपादित रूप में सामने नहीं आ जाते, उसके मूल्यांकन का मार्ग प्रशस्त नहीं होता।

कवि ग्वाल का जीवनवृत्त अभी विवादग्रस्त ही था, लेकिन ग्वाल काव्य के शोधक

डॉ० रामानंद शर्मा ने विभिन्न ग्रंथों के अंतःसाक्ष्यों का आधार लेकर 'रसरंग' की भूमिका में इस पर गंभीर प्रकाश डाला है, और भी जीवन एवं आश्रयदाताओं की तर्कपूर्ण विवेचना की है। उनके अनुसार कवि ग्वाल का जन्म मार्गशीर्ष शुक्ल द्वितीया संवत् 1848 को वृंदावन में हुआ तथा उनका देहावसान भाद्रपद शुक्ल एकादशी संवत् 1924 को रामपुर (उत्तरप्रदेश) में। इस प्रकार उन्होंने भौतिक जीवन के 76 वर्ष देखे जिसका अधिकांश समय पंजाब और हिमाचल की रियासतों में व्यतीत किया। अंतिम दो-तीन वर्ष रामपुर में बिताए।

ग्वाल के पिता का नाम सेवाराम राय और माता का नाम जगदंबा था। वे ब्रह्मभट्ट (बंदीजन) थे। इनके पिता का निधन उनकी बाल्यावस्था में ही हो गया था। माता बालक ग्वाल को अपनी कुल की विद्या काव्यरचना की शिक्षा दिलाना चाहती थीं। उस समय वृंदावन में दयानिधि गोस्वामी कवि थे, जो अपनी पाठशाला चलाते थे। माता जगदंबा ने बालक ग्वाल को दयानिधि गोस्वामी के हाथों सौंप दिया, लेकिन ग्वाल वहाँ अधिक समय तक नहीं रह सके। अंततः जगदंबा बालक ग्वाल को लेकर अपने मायके बनारस चली गयीं, जहाँ ग्वाल ने संस्कृत भाषा और उसमें लिखित काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का अध्ययन किया। बनारस से लौटने पर वे बरेली निवासी कवि खुशहालराय से काव्यरचना की शिक्षा लेने लगे। इस तरह उनके काव्यगुरु दो ही रहे, दयानिधि गोस्वामी और खुशहाल राय।

ग्वाल के सामने आजीविका की समस्या आयी। उनके सहपाठी नवीन नाभानरेश जसवंतसिंह के आश्रय में पंजाब में रह रहे थे। ग्वाल भी नाभानरेश के पास चले गए और वहाँ 'यमुनालहरी' और 'रसिकानंद' (संवत् 1879) की रचना की। इसके बाद वे देशराज सिंह मजीठिया और उनके पुत्र लहनासिंह के आश्रय में चले गए जहाँ उन्होंने 'कवि-दर्पण' (संवत् 1891) की रचना की। लहनासिंह रणजीतसिंह का पहाड़ी क्षेत्रों का राजकाज देखने वाला कर्मचारी था, जो अमृतसर में रहकर कामकाज देखता था। लहनासिंह के माध्यम से ग्वाल का परिचय महाराज रणजीतसिंह के लाहौर दरबार से हुआ। लाहौर में रहकर उन्होंने 'विजयविनोद' (संवत् 1901) की रचना की। लाहौर के अशांत होने के बाद वे सुकेतमंडी पहुँचे, जहाँ उन्हें एक मकान और जीविका हेतु एक गाँव मिला। उन्होंने अपने बेटे को भी वहीं बुला लिया और स्वयं सुकेतमंडी छोड़कर वापस नाभा आ गए। उस समय नाभा में जसवंतसिंह का पौत्र भरपूरसिंह शासन कर रहा था। इस समय नाभा में रहकर उन्होंने सिक्ख गुरुओं से संबंधित काव्य की रचना की और मीर हसन की मसनवी 'सिहरूल बयान' का 'इश्कलहर-दरियाब' नाम से अनुवाद प्रस्तुत किया। अंत में वे मथुरा लौट आए। एक पुत्र के दिवंगत होने और दूसरे के पत्नी छोड़कर खत्रानी रख लेने के कारण ग्वाल काफी अशांत रहते थे। उन्होंने मथुरा में मकान बनवाया और ग्वालेश्वर महादेव नामक मंदिर भी। यहीं से वे रामपुर आए। पहली बार सात महीने रहे और दूसरी बार लगभग पौने दो साल। रामपुर में ही उन्होंने अंतिम साँस ली।

अंतिम समय में ग्वाल काफ़ी अशांत रहते थे। बाहर आने-जाने पर मकान और परित्यक्ता पुत्रवधू की जिम्मेदारी अपने मित्र नत्थूलाल शाह को सौंप देते थे। ग्वाल के निधन के बाद मित्र नत्थूलाल शाह का मन बदल गया। उन्होंने पुत्रवधू को भगा दिया और हवेली कब्ज़ा ली। साक्ष्य मिटाने के लिए मकान के तहखाने में आग लगवा दी, जिसमें ग्वाल का पुस्तकालय और अपना साहित्य था। इस तरह ग्वाल का काव्य भी नष्ट हो गया। पुत्रवधू भटकते-भटकते कब-कहाँ मर

गई किसी को पता नहीं। अंत में नत्थूलाल शाह का कारोबार भी चौपट हो गया और उन्हें भी मंदिर की पत्तल खाकर जीवन पूरा करना पड़ा। इस तरह ग्वाल के जीवन के साथ ही उनके साहित्य का मुख्य स्रोत नष्ट हो गया, उनकी संपत्ति नष्ट हो गयी और उनका वंश भी डूब गया।

ग्वाल का काव्य मथुरा में अनुपलब्ध रहा अथवा लोकप्रिय नहीं हो पाया या हिंदीभाषी क्षेत्र में प्रचारित-प्रसारित नहीं हो पाया, इसके कई कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि ग्वाल का अधिकांश जीवन पंजाब और हिमाचल की रियासतों में व्यतीत हुआ, फलतः हिंदी भाषी या ब्रजभाषी कवियों से उनका परिचय या संपर्क कम ही हो पाया। दूसरा कारण यह है कि स्वयं ग्वाल अत्यंत अभिमानी व्यक्ति थे। उन्हें अपने पांडित्य का गर्व था और वे हर समय शास्त्रार्थ को तैयार रहते थे, जिससे हिंदीभाषी कवि और विद्वान उनसे घुल-मिल नहीं सके। तीसरे जब कवि मथुरा वापस लौटा तो वह न केवल अधिक उम्रवाला था, बल्कि पारिवारिक परिस्थितियों से टूटा हुआ भी था, फलतः वह घुल-मिल नहीं सका। उसके मित्र नत्थूलाल शाह द्वारा हवेली के तहखाने में रखा ग्वाल का काव्य और उसका पुस्तकालय फूँक दिए जाने ने उनके जीवन के बाद भी उनके काव्य के प्रचार-प्रसार की संभावनाओं को क्षीण कर दिया। विगत दो दशकों में ग्वाल के जिन संपादकों-डॉ० प्रेमलता बाफना डॉ० हरमहेंद्र सिंह बेदी, डॉ० रामानंद शर्मा और डॉ० किशोरीलाल ने ग्वाल काव्य के संपादन एवं प्रकाशन में श्रम किया है, उन्हें मथुरा या ग्वाल की मातृभूमि या मथुरावासियों से कोई सहायता नहीं मिली है, जबकि पंजाबी स्रोत सदा-सर्वदा उपलब्ध रहे हैं।

ग्वाल ने विशाल काव्य की सृष्टि की, जिसमें काव्यशास्त्रीय विवेचन से संबंधित ग्रंथ भी हैं, वीरकाव्य की रचनाएँ भी हैं, भक्तिपरक रचनाएँ भी हैं और अनुवाद कार्य भी हैं। ग्वाल का काव्य जहाँ रीतिकाल के चरम विकास का प्रतिनिधित्व करता है, वहीं उसमें आधुनिक प्रवृत्तियों के भी दर्शन होते हैं। उर्दू काव्य के प्रथम अनुवादकर्ता के साथ-साथ वे काव्यशास्त्र के अंतिम प्रतिष्ठित आचार्य भी माने जाते हैं। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ग्वाल का महत्त्व एक कवि के रूप में अधिक मानते हैं। वस्तुतः ग्वाल संस्कृत काव्यशास्त्र का सर्वाधिक आलोडन-विलोडन करने वाले आचार्यकवि हैं। उनकी उपलब्ध प्रामाणिक पुस्तकें इस प्रकार हैं-‘निम्बार्क स्वाम्याष्टक’, ‘नेहनिबाह’, ‘रसिकानंद’, ‘हम्मीरहठ’, ‘इश्कलहर-दरियाब’, ‘बंशीबीसा’ और ‘भक्तभावन’, ‘बलवीरविनोद’ का उल्लेख उनके ग्रंथों में मिलता है, लेकिन वह अभी तक उपलब्ध नहीं है। इनमें ‘रसिकानंद’, ‘कविदर्पण’, ‘रसरंग’, ‘साहित्यानंद’, और ‘प्रस्तारप्रकाश’ काव्यशास्त्रीय विवेचन से संबंधित ग्रंथ हैं। इनमें ‘रसिकानंद’ और ‘रसरंग’ रस एवं नायिकाभेद से संबंधित रचनाएँ हैं। ‘कविदर्पण’ में दोषों का विवेचन किया गया है। ‘प्रस्तारप्रकाश’ छंदशास्त्र के गणित-भाग की लघुकाय रचना है। ‘साहित्यानंद’ सर्वांगनिरूपक ग्रंथ है और काव्यशास्त्र की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, दुर्भाग्यवश यह ग्रंथ संपूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं है और पूर्णतः अप्रकाशित है। इसका अंतिमस्कंध ही ‘अलंकार-भ्रम-भंजन’ के नाम से ‘ब्रजभारती’ पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। ‘विजयविनोद’ और ‘हम्मीरहठ’ वीर काव्य हैं। ग्वाल के ‘हम्मीरहठ’ के अनुकरण पर ही अठारह वर्ष पश्चात् चंद्रशेखर वाजपेयी ने इसी नाम और कथा पर ‘हम्मीरहठ’ लिखा है। ‘बंशीबीसा’, ‘निम्बार्क स्वाम्याष्टक’, ‘भक्त भावन’ भक्तिपरक रचनाएँ हैं। ‘गुरुपचासा’ में सिक्खगुरुओं को नमन किया गया है। ‘इश्कलहर दरियाब’ उर्दू के मीरहसन की प्रसिद्ध मसनवी

‘सिहरुलबयान’ का उर्दू-मिश्रित हिंदी में अनुवाद है। साहित्यिक दृष्टि से ‘रसिकानंद,’ ‘रसरंग,’ ‘कविदर्पण,’ ‘विजयविनोद,’ ‘हम्मीरहठ’ और ‘भक्तभावन’ अभी विगत दो दशकों में छपे हैं।

ग्वाल का भावपक्ष अत्यंत व्यापक है। उन्होंने वीर शृंगार और भक्ति के छंद बहुसंख्या में लिखे हैं। ‘विजयविनोद’ और ‘हम्मीरहठ’ तो वीरकाव्य ही हैं, जहाँ उत्साह, शौर्य, पराक्रम, अभियान, युद्ध आदि के रम्य चित्र उपलब्ध होते हैं। महाराज हम्मीर के युद्ध-अभियान का अत्यन्त सुंदर चित्र ग्वाल ने अंकित किया है—

कूच कियो डेरा महाराज श्री हम्मीरदेव,
घेरा कियो जाय बादसाह को उमड़िके।
छूटि गए छक्के छितिपालन के छिति छोर,
फूटि गए सेष फन, भमि पड़ी धड़िके।
‘ग्वाल’ कवि वीरन के फड़कें सु-भुज-दंड,
धड़िके अरिंद-हिंद चहुँ चक्र चड़िके।
कड़कि-कड़कि डाढ़ कोल की कड़ाके भरैं,
तड़कि-तड़कि पीठ कच्छप की तड़िके।

इतना ही नहीं, हम्मीर के सेनापति जाजदेव के पुत्र का चित्र भी उनके सच्चे रणबाँकुरी होने तथा उनके शौर्य के आतंक को स्पष्ट कर देता है—

काढ़ि तेग कटि तें सुभट जोर जाजा जब,
जोति की जमातें जहाँ झलकत झुक्क-झुक्क।
ताकत ही तुरक मुरक भजैं पाछे केते,
आगे को सिधाये ते चबाय ढार ढुक्क-ढुक्क।
‘ग्वाल’ कवि कहत न मानै ढाल बखतर,
तुरक सयाने पै अयाने जिती रुक्क-रुक्क।
सीस गजराजन के गब-गरूर भरे,
फरकें धरा पै, धरा धरकत धुक्क-धुक्क।

ग्वाल ने नायिकाभेद पर ‘रसिकानंद’ और ‘रसरंग’ दो ग्रंथों की रचना की है। ‘रसिकानंद’ उनका प्रारंभिक ग्रंथ है, जिस पर कामशास्त्रीय ग्रंथों का व्यापक प्रभाव रहा है। शृंगार के अनेकानेक चित्र ग्वाल ने अंकित किये हैं। वस्तुतः नायिकाभेद शृंगाररस का केंद्रीय वर्ण्य है, रसरंग का उत्स है। ग्वाल ने शृंगार के अनेक चित्र अंकित किए हैं, जिनमें एक छंद प्रस्तुत किया जा रहा है—

गरकि-गरकि प्रेम पारी परजंक पर
धरकि-धरकि हिय हौल सों भभरि जात।
दरकि-दरकि जुग जंघन जुरन देय,
तरकि-तरकि बंद कंचुकी के करि जात।
‘ग्वाल’ कवि अरकि-अरकि पिय थामें तरु,
थरकि-थरकि अंग पारे लौं बिघरि जात।
सरकि-सरकि जाय सेरे पै सरोजनैनी,

फरकि-फरकि केलिफंद ते उछरि जात।

भक्तिभाव का साक्षात् सागर है 'भक्तभावन' में जहाँ कवि ने विभिन्न देवी-देवताओं पर रचित अष्टकों का संकलन किया है। यहाँ कवि ने 'रामाष्टक', 'कृष्णाष्टक', 'गंगाष्टक', 'गणेशाष्टक', 'शिवाष्टक', 'राधाष्टक' आदि के साथ ज्वालादेवी, कुब्जा, दशविद्या आदि पर भी छंद रचे हैं। कृष्ण का नखशिख तो कवि ने प्रस्तुत किया ही है जो अत्यंत लोकप्रिय भी हुआ और कई बार प्रकाशित भी, साथ ही नायिका के नानाविध अंगों का सरस शृंगारिक वर्णन किया है। ऋतुवर्णन ग्वाल का अनूठा है। उनके प्रारंभिक ग्रंथों से लेकर अंतिम ग्रंथ तक ऋतुओं से संबंधित छंद मिलते हैं, जिन्हें उन्होंने 'भक्तभावन' में एकत्र, संकलित एवं संपादित रूप में प्रस्तुत किया है। ग्वाल ने ऋतुओं पर सवा सौ से अधिक छंद लिखे हैं और रीतिकाल में उनसे अधिक ऋतुपरक छंद लिखने वाला दूसरा कोई कवि नहीं है। रीतिकाव्य ऋतुवर्णन दो कवियों का ही लोकप्रिय हुआ है—सेनापति का और ग्वाल का। इनमें सेनापति जनसाधारण को विषय बनाकर चले हैं, फलतः उन्होंने प्रकृति की शोभा पर विशेष ध्यान दिया है, जबकि ग्वाल ने धनाढ्य लोगों पर ध्यान केंद्रित किया है, फलतः धनी वर्ग द्वारा एकत्रित किए जाने वाले साधनों और भोगविलासों के प्रदर्शन में विशेष रुचि दिखाई है। 'बंशीबीसा' में मुरली से संबंधित बीस छंद हैं, जो स्पष्टतः कृष्ण और राधा की कथा से संबंधित हैं।

ग्वाल के शृंगारवर्णन में एक न्यूनता अवश्य है कि वे या तो कामशास्त्रीय संदर्भ देने लगते हैं अथवा शृंगार में अश्लीलता की सीमा को छूने लगते हैं। वस्तुतः ग्वाल भोगविलास में रुचि रखने वाले तथा मौजमस्ती को प्राथमिकता देनेवाले व्यक्ति थे, फलतः उनके काव्य में सस्तापन या अश्लीलता का पुट भी आ गया है। शीत की अधिकता का वर्णन करते हुए वे यह कहने में भी नहीं चूकते—

छाके सुरा सीसी हू न 'सी-सी' यों मिटैगी कभूँ,

ज्यों लों उकसी सी छाती-छाती सों न मीसी जाय।

इसी तरह परकीया के वर्णन में वे कह उठते हैं—

'ग्वाल' कवि प्रेम की धुजा है धरती पै यही,

बजा है नगारा मैन-फौज की अगारी में।

देव की रजा है, रूप रहत सजा है सदा,

अजब मजा है रे, मजा है पर-नारी में।

परदेश से आए हुए नायक की रमणवृत्ति दर्शनीय है—

'ग्वाल' कवि करै कूदि-कूदि केलि कौतूहल

हलाहल हूलै पल-पल में उछल्ला है।

ढै-ढै घरी दोय बेर, चौ-चौ धरी चार बेर,

फेर कियो नौ घरी को जरनैली हल्ला है।

इन सारे छंदों में कवि का सस्तापन दिखता है और ये भाव काव्य की गरिमा को कम कर देते हैं। यही कारण है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उनकी काफ़ी कविता को 'बाजारी' कहा है।

ग्वाल की काव्यभाषा ब्रजभाषा थी, लेकिन वे जीवन के प्रारंभ में ही पंजाब चले गए

थे और प्रौढ़ावस्था तक वहाँ की नाभा, अमृतसर, लाहौर, सुकेतमंडी आदि रियासतों में रहे, फलतः उनमें ब्रजभाषा की वह काव्यमाधुरी नहीं मिलती जो उसकी प्रमुख विशेषता है। उन्होंने देशाटन भी काफ़ी किया था, इसलिए गुजराती, राजस्थानी और पूर्वी प्रभाव भी उन पर पड़े और पंजाबी भाषा का प्रभाव तो पड़ा ही।

उनके काव्य में ब्रजभाषा के तीन रूप मिलते हैं—संस्कृतनिष्ठ ब्रजभाषा, तद्भवनिष्ठ ब्रजभाषा और अरबी-फ़ारसी के शब्दों से संपन्न ब्रजभाषा। जब वे देवता आदि की स्तुतियाँ लिखते हैं तो संस्कृतनिष्ठ ब्रजभाषा का प्रयोग करते हैं। सामान्यतः तद्भवनिष्ठ ब्रजभाषा ही उनकी काव्यभाषा है, लेकिन कहीं-कहीं अरबी-फ़ारसी के शब्दों की भरमार भी मिलती है। उनकी भाषा मुहावरों से संपन्न है और इन मुहावरों का रम्य प्रयोग उनके काव्य में मिलता है। भाषा में सरसता और प्रवाहमयता है। सबसे अच्छी बात यह है कि ग्वाल में व्याकरणविषयक दोष प्रायः नहीं मिलते। उनके काव्य में लिंग, वचन, कारक, विभक्ति आदि का सही प्रयोग ही मिलता है। सारतः उनमें व्याकरणिक न्यूनताएँ प्रायः नहीं मिलतीं या स्वल्प मात्रा में मिलती हैं।

ग्वाल की काव्यभाषा पर विचार करते समय यह कहना भी आवश्यक हो जाता है कि उन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्र का विस्तृत आलोड़न भले ही किया हो, 'साहित्यानंद' जैसा विस्तारवादी सर्वांगनिरूपक ग्रंथ भले ही लिखा हो, लेकिन उनके काव्य में न तो संस्कृत की भाव-गरिमा मिलती है और न ध्वनि का प्रस्तार ही। उनका अधिकांश काव्य अभिधा के धरातल पर चलता है। न भाषागत माधुर्य है, न व्यंजनासंपन्न पदावली। उत्तम अलंकार विनिवेश भी कम है और कवित्त के पदविन्यास भी लड़खड़ाते हुए मिलते हैं। वस्तुतः उन्होंने काव्यशास्त्र का जो मंथन किया, उससे वे न तो अमृत निकाल सके और न काव्यमाधुरी में परिणत कर सके।

रीतिकवियों पर अलंकारों की अतिशयता का आरोप प्रायः लगाया जाता है, लेकिन ग्वाल के काव्य पर यह आरोप सही नहीं बैठता। उसमें अलंकारों की बहुलता नहीं मिलती। ऐसे छंद कम ही हैं, जहाँ दो-तीन अलंकार उपलब्ध हों। शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक और वीप्सा में उन्होंने विशेष रुचि ली है। कहीं-कहीं तो कवित्त का पूरा-का-पूरा चरण ही अनुप्रास की चपेट में आया दिखता है। ग्वाल में कुछ ऐसे छंद भी मिलते हैं, जहाँ कवि पूरे कवित्त में ही एक वर्ण की निरंतर आवृत्ति के लिए प्रयत्नशील दिखता है। यहाँ यह कहना भी आवश्यक है कि काव्यभाषा की आंतरिक माधुरी का अभाव होने पर अनुप्रास का चमत्कार भी बाहरी-सा दिखने लगता है। अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, संदेह उनके प्रिय अलंकार हैं। उपमा विषयवस्तु का अंग बना जाती है। कहीं-कहीं ग्वाल ने उपमा की झड़ी भी लगाई है, लेकिन ऐसे स्थल कम ही हैं। वस्तुवर्णनों में जब कवि अपनी अभिव्यक्ति को अपर्याप्त पाता है, तो उत्प्रेक्षा और संदेह का प्रयोग करता है। ग्वाल में ये दोनों अलंकार इन्हीं संदर्भों में आये हैं। उत्प्रेक्षा प्रायः कवित्त के चतुर्थ चरण में प्रयुक्त होता है, जबकि संदेह प्रायः छंद के उत्तरार्ध में, लेकिन कहीं-कहीं तो संदेह अलंकार पूरे छंद को ही आच्छादित कर लेता है और मूल वस्तु को ही दबा लेता है। ग्वाल में अन्य अलंकार स्वल्प ही मिलते हैं और प्रसंगानुसार ही आते हैं।

अलंकारों से संबंधित एक अन्य तथ्य भी उल्लेखनीय है। वह यह है कि कहीं-कहीं ग्वाल में शब्द-क्रीड़ा भी मिल जाती है। कहीं-कहीं कवित्त के एक चरण में अनुप्रास का प्रयोग दिखता है तो कहीं सारे कवित्त में ऐसा प्रयास देखने को मिलता है। कहीं-कहीं ऐसे प्रयोग भी

मिलते हैं—

घरी-घरी घरी गिनै, खोलै घरी-घरी-घरी,
घरी-घरी भाषै रही साँझ में इती घरी।

निश्चय ही यहाँ यमक का सस्ता रूप ही उपलब्ध होता है। कवि ने तीन स्थानों पर 'घरी-घरी' शब्द का प्रयोग किया है और उसका अर्थ अभिन्न ही है। तीन स्थानों पर 'घरी' शब्द का प्रयोग किया है, जिनके क्रमशः अर्थ हैं— 1. घड़ी गिनना या समय का आकलन करना, 2. घड़ी या समय बताने वाला यंत्र, 3. घड़ी या 24 मिनट का समय। शब्दों के अर्थों में उतनी विभिन्नता और विचित्रता नहीं है, जितनी उनकी आवृत्ति की संख्यात्मकता है।

ग्वाल की छंदोयोजना की विशेषता यह है कि वह सर्वत्र प्रसंगानुकूल रही है। यदि वे काव्यशास्त्र पर ग्रंथ लिखते हैं तो काव्यशास्त्र की परंपरा में प्रयुक्त छंदों का प्रयोग करते हैं और यदि वे वीरकाव्य की रचना करते हैं तो वीरकाव्य-परंपरा में प्रयुक्त छंदों को महत्व देते हैं। उन्होंने काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में लक्षण देते समय दोहा छंद का प्रयोग किया है, कहीं-कहीं चौपाई का प्रयोग भी मिल जाता है। उदाहरण देते समय वे कवित्त और सवैये का प्रयोग करते हैं। अन्य छंदों का प्रयोग प्रायः नहीं मिलता। उन्होंने सर्वाधिक प्रयोग कवित्त का ही किया है, लेकिन उन्हें कवित्त की अपेक्षा सवैये के प्रयोग में अधिक सफलता मिली है। जब कवि वीरकाव्य की रचना करता है तो कवित्त सवैया और दोहा का प्रयोग तो करता ही है, वीरकाव्य परंपरा के कुछ छंदों का प्रयोग भी करता है। उदाहरण के लिए 'विजयविनोद' तथा 'हम्मीरहठ' में भुजंगप्रयात, मल्लिका, प्रामाणिक, रसवाल, अमृतध्वनि, शंखनारी, विद्वान्माला, पद्धरि, तोटक आदि छंदों का भी प्रयोग मिलता है, जो निश्चय ही रसोकाव्य-परंपरा से लिये गये हैं।

ब्रजभाषा में कवित्त और सवैयों में अपने नाम की छाप रखने की प्रवृत्ति प्रारंभ से ही है, लेकिन भक्तिकाल और रीतिकाल के किसी कवि का ध्यान इस ओर नहीं गया कि छाप किस चरण में रखी जाए। कुछ कवियों ने तो पहले ही चरण में छाप लगा दी, जबकि कुछ अन्तिम चरण में भी देते हैं। वस्तुतः इस बारे में न तो छंदशास्त्र में कोई नियम बना और न कवियों ने किसी निश्चित परंपरा को ही जन्म दिया। ग्वाल एकमात्र ऐसे कवि हैं, जिनका ध्यान इस अव्यवस्था की ओर गया और उन्होंने सर्वत्र तीसरे चरण में ही छाप रखने का नियम बनाया। निश्चय ही इसे ग्वाल की चिंतनशीलता का ही परिचायक माना जाएगा।

ग्वाल की छंदोयोजना के संदर्भ में एक तथ्य को वाणी देना भी आवश्यक है। ग्वाल छंद के साथ अंतरंगता बनाने तथा उसकी बारीकियों को समझने में असमर्थ रहे हैं। उनके काव्य में कवित्त का प्रयोग सबसे अधिक मिलता है, लेकिन कवित्त छंद का अर्थ केवल वर्णसंख्या जुटा देना ही नहीं है। यही कारण है कि देव, भिखारीदास, घनानंद, सुंदर कविराय, कालिदास त्रिवेदी, पद्माकर, नेवाज आदि के कवित्त और सवैयों में जो गरिमा है, वह ग्वाल में उपलब्ध नहीं होती। ग्वाल के कवित्तों में अनेक बार पदविन्यास उखड़ते हुए और लड़खड़ाते हुए दिखते हैं।

कवित्त की अपेक्षा ग्वाल सवैये में विशेष सफल रहे हैं। यहाँ उन्होंने एक नूतन प्रयोग भी किया है। सिंहावलोकन में प्रथम चरण के अंतिम शब्द से अगला चरण प्रारंभ होता है और इसी परंपरा का सभी चरणों में प्रयोग मिलता है। अंतिम चरण का अंतिम शब्द प्रथम चरण के प्रारंभ में आता है। यथा—

बँसुरी बन बाजत है जबहीं, तबहीं छबिजात हिये पँसुरी।
 पसु री न चरै तुन ताम कहँ, 'घनस्याम' रहै रसना रसुरी।
 रसुरीति तजै घर की घरनी, बरनी सर से बरसै अँसुरी।
 अँसु री ब्रजबाल बिहाल भई, मनमोहन सों न कछू बँसुरी।

यह सवैया सिंहावलोकन का सुंदर उदाहरण है। शब्द की आवृत्ति नियमानुसार ही यहाँ उपलब्ध होती है। कवि ग्वाल की अनुभूति है कि यथावत् आवृत्ति में वह साहित्यिकता नहीं रहती, जो विदग्धों को पसंद है। उन्होंने एक नवीन व्यवस्था बनायी है जिसमें शब्दावली यथावत् नहीं रखी जाती, समानांतर रखी जाती है। इसे सिंहावलोकन नहीं, बल्कि उसका परिष्कृत रूप ही कहा जा सकता है। इसका एक उदाहरण प्रस्तुत है—

सरसे सुख होय गये सब ही, जब तें पिय आय गए घर से।
 बरसे घर घूमि घने घहरे, तुम्हरे बिन पावक से झर से।
 गरसे कवि 'ग्वाल' लगे सुपने, भजि क्यों जी गए बिन ही अरसे।
 हरसे अँग-अँग हमारे अबै, जबसे तुम आय हमें दरसे।

यहाँ सिंहावलोकन के समान पदावली की यथावत् आवृत्ति नहीं है, बल्कि उसके समानांतर पदावली की आवृत्ति है, जो निश्चय ही ग्वाल द्वारा उद्भूत एक नूतन तथ्य है, प्रशंसनीय बात है।

ग्वाल के काव्य के विषय में एक उल्लेखनीय बात यह है कि पंजाब में रहने के कारण उनका काफ़ी काव्य गुरुमुखी लिपि में लिखा गया। चूँकि वह पंजाबी लोगों द्वारा प्रतिलिपि किया गया, जो देवनागरी की सूक्ष्मताओं और ब्रजभाषा की माधुरी से सुपरिचित नहीं थे, फलतः उस काव्य या पंजाबियत का काफ़ी प्रभाव पड़ा। ग्वाल काव्य के संपादकों को वह गुरुमुखी से देवनागरी में संपादित करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि लिपि बदलने मात्र से काम नहीं चलेगा, बल्कि ब्रजभाषा की सरसता और सरलता को भी देखना होगा। पंजाबी में आधे अक्षर बहुत कम चलते हैं, जबकि ब्रज में इनका प्रयोग काफ़ी संख्या में मिलता है। अतएव केवल लिपि ही न बदली जाए, बल्कि मात्रा, छंद, यति-गति, उच्चारण आदि का भी ध्यान रखा जाए। यदि ऐसा हो सका तो न केवल ग्वाल का सम्यक् उद्धार होगा, बल्कि ब्रजभाषा काव्य की सच्ची सेवा हो सकेगी।

ग्वाल काव्य के वर्णन एवं शिल्प पर विचार करने के पश्चात् यह अवश्य स्वीकारना होगा कि वह ब्रजभाषा की अमिट धरोहर है। उनका काव्यशास्त्रीय विवेचन रीतिकवियों में सर्वाधिक व्यापक है, ऋतुवर्णन पर उन्होंने सर्वाधिक छंद लिखे हैं, दोषविवेचन जैसे कठिन विषय पर लेखनी चलाने का वे साहस कर सके हैं और ब्रजभाषा के अनुरूप अनुवादकार्य भी उन्होंने किया है। ब्रजभाषाप्रेमियों का यह पावन दायित्व है कि ग्वाल की समस्त रचनावली सुसंपादित रूप में सामने लाएँ। अभी तो उनके समस्त ग्रंथों का प्रकाशन भी नहीं हो सका, सुसंपादन की बात तो दूर है। यदि ऐसा हो सका, तो न केवल कवि ग्वाल का उपकार होगा, बल्कि ब्रजभाषा काव्य की महान सेवा भी होगी।

गोविंद मिश्र के उपन्यासों में चित्रित नारी

डॉ० सफराम्मा तिरुनेलवेली

भारत में स्त्रियों की संख्या लगभग पुरुषों के बराबर है, लेकिन भारतीय समाज पुरुष प्रधान होने के कारण नारी को पुरुष के समान अधिकार प्राप्त नहीं हैं। यहाँ नारियों की स्थिति इतनी दयनीय है कि उन पर रीति-रिवाज एवं संस्कृति के माध्यम से अनेक प्रतिबंध लगाए जाते हैं। वे अपने जीवन का कोई भी निर्णय खुद नहीं ले पाती हैं। नारी की तुलना धरती माँ से की जाती है। उसमें धरती की भाँति सहन-शक्ति विद्यमान है। ऐसी परिस्थिति में शिक्षा-व्यवस्था ने नारी की स्थिति में काफी परिवर्तन किए हैं। शिक्षा-व्यवस्था नारी का आत्मविश्वास बढ़ाकर उसे विकास की ओर ले जाने में मदद कर रही है। आज नारी आर्थिक तौर पर स्वतंत्र है और वह अपने जीवन के फैसले खुद करने लगी है।

गोविंद मिश्र के अधिकतर उपन्यास नायिका-प्रधान हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में विभिन्न प्रकार के नारी पात्रों के साथ-साथ नारी की परंपरागत और परिवर्तित स्थितियों का भी सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है।

भारतीय समाज में एक तरफ नारी की पूजा की जाती है, तो दूसरी तरफ उसका अपमान किया जाता है। उनको अपने कर्तव्य और अधिकार का ज्ञान नहीं है। उनका शोषण होता है। स्त्री की दयनीय स्थिति के लिए आर्थिक अभाव भी एक प्रमुख कारण है। मिश्रजी अपने उपन्यासों में नारी की परंपरागत स्थिति के रूप में नारी की दयनीय स्थिति, नारी पर प्रतिबंधों को व्यक्त करते हुए पुरुष अधीन नारी की स्थिति को भी चित्रित करते हैं।

लड़की के जन्म से अधिकतर परिवार दुखी होते हैं। पुरुष द्वारा नारी का शोषण देखकर ऐसा लगता है कि नारी का जन्म क्यों हुआ? मिश्रजी की 'कोहरे में कैद रंग' में राजकुँवर अपनी सास और पति के अत्याचार को सहती है। एक बार उसके पिताजी उससे मिलने आते हैं, तो उसका पति और सास दहेज में कमी होने के कारण बेटी को अपने पिता से मिलने नहीं देते हैं। रात को राजकुँवर को अपने पिता की याद में रोते देखकर उसकी नंद राजबेटी बड़बड़ा उठती है कि 'हे भगवान बता दे कोई कौन से काम करने से औरत का जन्म न मिले?'¹¹

लड़की की परवरिश एक सीमा के अंदर होती है। लड़की सयानी होते ही उसे घर से बाहर निकलने तक नहीं दिया जाता। लड़की को हमेशा घर के सदस्यों की नज़र में ही रहना पड़ता है। उसे घर से बाहर जाना, लड़कों से मिलना एकदम मना है। घर के सदस्यों के बाहर जाने पर भी लड़कियों को घर के बुजुर्गों की देखभाल में रहना पड़ता है। इस प्रकार की परंपरागत स्थिति मिश्रजी 'लाल पीली जमीन' में प्रस्तुत करते हैं—'लड़की बड़ी हुई कि चारदीवारी के अंदर और बड़े बूढ़ों की छत्रछाया में रहना पड़ता है।'¹²

नारी का जीवन हमेशा प्रतिबंधों से जकड़ा हुआ है। उसे संस्कृति के नाम पर एक सीमा के अंदर बाँधकर रखा जाता। वह परिवार की इज्जत पर अधिक ध्यान रखती है। सावधानी से अपना काम करती है। लड़कियों के बारे में मिश्रजी अपना विचार 'कोहरे में कैद रंग' में प्रकट करते हैं कि 'लड़कियाँ चाहे वे कितने बड़े घर की हों उनका जीवन, भविष्य एक बारीक तंतु पर लटका होता। उन्हें सबसे ज्यादा डर अपनी बदनामी का होता था। धरती पर पैर पड़ते ही वे उस बात को लेकर सचेत हो जाती हैं।'³ नारी को बचपन से बूढ़ी होने तक परिवार की मर्यादा को ध्यान में रखकर जीना पड़ता है। 'धूल पौधों पर' में नायिका पढ़ी-लिखी होकर अपनी मनमानी से कामकाज पर जाते वक्त उसके ससुर और पति उसके चरित्र पर कलंक लगाते हैं।

बच्चों के पालन-पोषण में लड़के को जितनी स्वतंत्रता देते हैं, लड़की को उतना नहीं। पुरुष-प्रधान समाज में पहले से ही नारी पर अधिक जिम्मेदारी सौंपी जाती है, फिर भी नारी को स्वतंत्रता देने में यह मनोभाव रहता है कि वह बिगड़ जाएगी। 'कोहरे में कैद रंग' में अरविंद नारी-स्वतंत्रता के बारे में बताता है कि 'स्त्री को स्वतंत्रता देने में हम डरते हैं क्योंकि 'ज्यों स्वतंत्र होइ बिगरे नारी' मानसिकता में अभी भी जी रही हैं ...वर्ना जिम्मेदारी जितना नारी महसूस करती है, पुरुष नहीं।'⁴

पुरुष और नारी दोनों विवाह के बंधन में बँधे जाते हैं। फिर भी नारी का विवाह हमेशा चर्चित रहता है। विवाह के बाद उसे अनजान व्यक्तियों के यहाँ ज़िदगीभर कैद रहना पड़ता है। विवाह तो लड़की के इच्छा अनुसार नहीं, बल्कि उसके परिवार के आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर अधिकतर उसके पिता की इच्छानुसार ही किया जाता है। लड़की की भावनाओं का कोई मूल्य नहीं होता। मिश्रजी के 'कोहरे में कैद रंग' में सावित्री अपने विवाह के बारे में कहती है—'लड़की के लिए विवाह क्या होता है हमारे देश में जो मिला उसे सिर झुकाकर स्वीकार कर लेना अपने मन को रोज-रोज, क्षण-क्षण मारते चले जाना, तो ज़िदगी कैदी की तरह रहना।'⁵

विवाह के बाद अधिकतर लड़कियों के लिए ससुराल नरक बन जाता है। उन्हें तरह-तरह के अपमान सहने पड़ते हैं। उन्हें तो स्वाभिमान खोना पड़ता है। 'कोहरे में कैद रंग' में राजकुँवर की दुर्दशा देखकर उसकी नंद राजबेटी विवाह के बारे में सोचती है कि 'ब्याह क्या हुआ था, एक कैद मिली थी, जहाँ थी जहाँ ताने मार गालियों के साँप-बिच्छुओं के बीच उसे डाल दिया गया था। सोच-साचकर नए से नए तरीके के अपमान, प्रतारण और गालियाँ दिए जाते।'

विवाह के निर्णय में लड़की माता-पिता की इच्छा के विरोध में मुँह नहीं खोल पाती है। ऐसी परिस्थिति में वह अपने प्रेम को भी छिपा देती है। 'कोहरे में कैद रंग' में सरस्वती अरविंद से प्रेम करने पर भी उसके प्रेम के बारे में अपने घरवालों से बताने की हिम्मत नहीं करती।

आर्थिक विपन्नता से लड़की को योग्य वर मिलना मुश्किल हो जाता है। इससे निमेल या बेमेल विवाह करने के लिए लड़कियों को विवश किया जाता है। 'लाल पीली जमीन' में मालती के पिता दो लड़कियाँ रहने के कारण अपने आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर उसे बूढ़े व्यक्ति से विवाह करना पड़ा।

समाज में नारी का स्थान एक गुलाम की तरह है। वह एक जंजीर से जकड़ी हुई रहती है। 'धूल पौधों पर' की नायिका अधिक पढ़ना चाहती है फिर भी उसकी विमाता अपनी मनमानी से विवाह कर देती है। उसका पति उसकी शर्त को मान लेता है, लेकिन फिर वह विवश होकर

अपनी इच्छानुसार पढ़ाई नहीं कर पाती। उसके साथ घर की नौकरानी जैसा ही व्यवहार किया जाता है। पति उस पर अपना पूरा अधिकार जमाना चाहता है। 'धूल पौधों पर' में युवगुरु पत्नी का सर्वस्व पति कहते समय वह कहती है कि 'आपके लिए पत्नी क्या.... खाना बना, कपड़े धो, बिस्तर पर आ, यह कर, यह मत कर और पति जो हुकुम करती रहे ताकि आपको यह सुख मिले कि आपकी आज्ञा का पालन हो रहा है...पति शांशाह, -पत्नी लौंडी।'⁷

नारी को केवल अपने पति के अधीन ही नहीं, बल्कि परिवार के सभी सदस्यों के भी अधीन रहना पड़ता है। 'कोहरे में कैद रंग' में अरविंद की माँ पढ़ी-लिखी होने पर उनके परिवारवाले उस पर अधिकार जताते हैं। इस दृश्य को मिश्रजी बताते हैं कि 'वे देखते कि उनकी पत्नी को सब आदेश देते हैं, उससे झिड़ककर बोलते हैं, उसे अपमानित करते हैं, उनके छोटे भाई भी। किसी की पत्नी नहीं थी, पर मान्यता यह सबकी पत्नी स्त्री है। वह चाहे कितनी गुणवती हो, चाहे जिसकी पत्नी हो, उस पर हुकुम चलाना हर पुरुष का अधिकार है जैसे बिल्ली को डराना कुत्ते का होता है। स्त्री का काम दो ही है खटना और सहना।'⁸

आजादी के बाद नारी को प्रतिबंधनों से मुक्त होने का अधिकार शिक्षा द्वारा प्राप्त हुआ। नगरीय परिवेश में नारी अधिक शिक्षित और स्वतंत्र दिखाई देती है। शिक्षा से नारी का आत्मविश्वास काफी बढ़ जाता है। वह अपने को पुरुष के समान समझने लगती है। विवाह संबंधित निर्णय वह खुद करने लगती है। अपने को स्वतंत्र महसूस करने लगती है।

शिक्षा-व्यवस्था नारी की स्थिति में काफी सुधार ले आई है। 'आज की नारी ने करवट बदली है। अपनी सदियों की दासता को वह मिटा डालना चाहती है। अपने जन्मसिद्ध मानवीय अधिकारों को पा लेने के लिए वह बेचैन है।'⁹ बदलते सामाजिक परिवेश में नारी ने स्वयं को एक स्वतंत्र इकाई के रूप में घोषित करने की दृढ़ता प्राप्त की है। शिक्षा-व्यवस्था के माध्यम से नारी की मानसिक स्थिति में काफी बदलाव आया है। मिश्रजी ने इस स्थिति को अपने उपन्यासों में बहुत ही विस्तृत ढंग से प्रस्तुत किया है। 'कोहरे में कैद रंग' में अरविंद द्वारा अपना विचार प्रकट करते हैं—'लड़कियों की शिक्षा उनमें बदलाव तो ला रही है। जहाँ वे पैसे के लिए पति पर आश्रित नहीं हैं, वहाँ ज्यादा एजर्टिव भी होने लगी हैं।'¹⁰

शिक्षा के कारण नारी तरक्की करने लग गई है। वह अपनी अक्ल और ताकत के द्वारा अपनी कमजोरी को पहचानकर अपने को शक्तिशाली बनाने लगी है। 'तुम्हारी रोशनी में' में सुवर्णा का परिचय देते समय मिश्रजी कहते हैं—'उसकी सबसे बड़ी ताकत अक्ल है....जिसकी मदद से वह अपने कमजोरियों को ऊपर उठा सकता है, उन्हें ताकत में बदल सकता है, अक्ल की मदद से हमेशा खुश रहा जा सकता है... और तरक्की ...वह तो सिर्फ अक्ल के रास्ते से ही हासिल की जा सकती है।'¹¹

पढ़ी-लिखी महिलाओं के अंदर आत्मविश्वास की मात्रा काफी अधिक पाई जाती है। नारी सुंदर न होने पर भी शिक्षित होने के कारण उनके चेहरे में आत्मविश्वास को देख सकते हैं। मिश्रजी के 'धीर समरे' में वकील सतेंद्र को सुनंदा में अनोखी क्रांति नज़र आती है। 'सुनंदा पढ़ी-लिखी महिला है। सुंदर तो नहीं, पर एक अनोखी क्रांति उसके चेहरे पर है...आत्मविश्वास की क्रांति।'¹²

आज की नारी आत्मविश्वास से भरपूर है। वह बिना डरे समस्याओं से जूझती, उलझती और सुलझाती है। इसी संबंध में 'तुम्हारी रोशनी में' उपन्यास में सुवर्णा अपनी माँ से हिंदुस्तानी

नारी की आत्मविश्वासभरी शक्ति के बारे में कहती हैं—‘ममा, हिंदुस्तान की औरतों में कितनी ताकत होती है। वे किसी भी तरह के पति का साथ निबाह सकती हैं, उनके लिए प्रेम महसूस किए बगैर, उसके साथ सारा जीवन बिता सकती हैं, खराब पति को सुधार सकती हैं, पति को छोड़कर अपने प्रेमी के साथ जा सकती हैं और प्रेमी से दूर भी रह सकती हैं ... मन में प्रेम का दीप जलाए हुए। घर की चारदीवारी में बंद रहनेवाली एकाएक बाहर आ जाती हैं, काम करने लगती हैं और अपने अकेले दम पर बच्चों को बड़ा करती हैं।’¹³

आधुनिक नारी अपने वैवाहिक जीवन का निर्णय खुद करती है। एक समय ऐसा था कि जब नारी अपने विवाह का कोई फैसला खुद नहीं कर सकती थी। पति जैसा भी हो उसे ही अपना परमेश्वर मानती थी, लेकिन आज वे दिन नहीं रहे। आज नारी तलाक भी न्यायपूर्ण ढंग से कर सकती है। उसे अपने-आप पर इतना विश्वास है कि वह अपना जीवन खुद चला सके अपने बच्चों को खुद पाल सकती है, बिना किसी पुरुष की सहायता से। मिश्रजी के ‘धीर समीरे’ में पति नालायक और कायर होने पर अपने बेटे को लेकर जाते समय क्रोधित होकर सुनंदा कहती है—‘तुम क्या मेरी देखभाल करोगे, जो अपनी ही देखभाल नहीं कर सकते। जो खुद नहीं चल सकता वह दूसरे का सहारा क्या बनेगा। तुम इसी लायक हो कि तुम्हारा बाप तुम्हें कपड़े की तरह बजार में बेच आए। भेज देना कागज, मैं तलाक की मंजूरी दे दूँगी और फिर दहेज की कमाई से बाप की छाती शीतल करना बैठे-बैठे। पति नाम के छते की मुझे जरूरत नहीं है अब... हटो।’¹⁴

‘तुम्हारी रोशनी में’ उपन्यास में सुवर्णा का पति उस पर शक करके उसका अपमान करता है और उस पर हाथ भी चलाता है। सुवर्णा इसके बाद अपने पति के साथ जीना नहीं चाहती है। अपने बच्चों के साथ घर छोड़कर चली जाती है—‘रमेश मैं घर छोड़कर जाने को सोचती हूँ। मैं तुम्हारे साथ अब नहीं रह सकती। मेरे पास नौकरी है। मैं अपना खयाल रख सकती हूँ और बच्चों को पढ़ा-लिखा भी सकती हूँ।’¹⁵ नारी में धैर्य की पराकाष्ठा सराहनीय है।

नारी परंपरागत पुरुष के अधीन रहती थी, लेकिन बदलती हुई परिस्थिति में वह राजनीतिक तथा सामाजिक गतिविधियों के प्रति जागरूक होने लगी है। अपने अधिकार के लिए लड़ने लगती है। ‘पाँच आँगनोंवाला घर’ में राजन के परिवार में शादी के बाद लड़की को माँ के घर में से कोई चीज उठा ले जाने का अधिकार नहीं, इसे वह नहीं मानती। ‘बिट्टो नहीं मानती ये सब बातें कि ब्याह के बाद लड़की पराई हो जाती है या पिता के घर से नाता टूट जाता है, ये सब दकियानूसी खयाल है। पढ़े-लिखे समाज में लड़का लड़की बराबर है। कानून में विवाहित लड़की को लड़के के बराबर का हक है माँ-बाप की जायदाद में।’¹⁶

आधुनिक स्त्री, पुरुष के बराबर है। वह सब कामों में कुशल है। पुरुष के समान नारी अपना अधिकार जान गई है। नौकरीपेशा नारी घर और दफ्तर बहुत कुशलता पूर्वक संभाल सकती है। ‘तुम्हारी रोशनी में’ सुवर्णा नारी होने के कारण अपने दफ्तर में कोई छूट पाना नहीं चाहती और काम पर जाने के बहाने घर के कामों में कोई छूट पाना भी नहीं चाहती। वह घर में बच्चों की देखभाल ठीक तरह से करती है। ‘दफ्तर में कोई यह न कह सके कि वह किसी भी तरह आदमी से कम है, घर में रमेश-सास-ससुर या कोई भी यह न महसूस करे कि उसके काम पर जाने की वजह से गृहस्थी पर ध्यान नहीं दिया जा रहा, बच्चों को यह न लगे कि उनकी माँ काम पर जाती है, इसलिए उन्हें पूछनेवाला कोई नहीं।’¹⁷

आजादी के बाद नारी अधिकतर बंधनों से मुक्त हो गई, लेकिन इसका परिणाम नगरीय परिवेश में अधिक दिखाई दे रहा है। आज नारी का विकास तेजी से हो रहा है। 'कोहरे में कैद रंग' में अरविंद बहुत समय बाद टूटू मौसी से मिलता है। वह एम०ए०, पी०एचडी० पढ़ने के बाद भी अपनी उन्नति के बारे में सोचती है। वे अपने आराम के बारे में चिंतित नहीं होती।

आधुनिक नारी स्वतंत्र है। एक समय ऐसा था कि नारी घर से बाहर निकलने के लिए डरती थी और अन्य पुरुषों से बात करना वर्जित था, लेकिन अब समय बदल गया है। 'तुम्हारी रोशनी में' स्वर्णा द्वारा मिश्रजी स्वतंत्र नारी को बताते हैं कि 'दफ्तर में वह सबसे मिलती है। सबसे घुल-मिलकर बातें भी करती है। ऐसी कोई गाँठ नहीं पालना चाहती कि वह औरत है, तो यह नहीं वह नहीं।'¹⁸

आधुनिक नारी के बारे बताते वक्त कुछ नारियाँ उपर्युक्त विषयों से छूट भी जाती हैं। 'धूल पौधों पर' उपन्यास की नायिका को पढ़ी-लिखी होने पर भी अपने पति के अधीन रहना पड़ता है। वह अपनी इच्छानुसार कोई निर्णय नहीं ले पाती। वह ज़िदगीभर रोती रहती है।

इस प्रकार मिश्रजी ने अपने उपन्यासों में समाज में विभिन्न प्रकार की नारियों का सजीव चित्रण किया है। मिश्रजी नारी की परंपरागत स्थिति और अपने जन्म से ही रोती, प्रतिबंधनों से जकड़ी, पुरुष के अधीन, अपने भाग्य पर रोती हुई नारी का कमजोर चित्रण करते हुए, बदलती परिस्थिति में पढ़ी-लिखी आधुनिक नारी घर के कोने में बैठकर रोए बिना अपने भविष्य के बारे में सोचकर अपनी तरक्की के लिए अपने अंदर आत्म विश्वास पैदा करती हई, आगे बढ़ती हुई नारी को बताते हैं। नारी कभी कमजोर नहीं है। एक समय ऐसा था कि नारी का जीवन अभिशाप माना जाता था, लेकिन आज परिस्थिति बिल्कुल बदल गई है नारी के बिना परिवार और समाज अधूरा है।

संदर्भ

1. कोहरे में कैद रंग, गोविंद मिश्र, पृ० 40
2. लाल पीली ज़मीन, गोविंद मिश्र, पृ० 158
3. कोहरे में कैद रंग, गोविंद मिश्र, पृ० 56
4. वही, पृ० 52
5. वही, पृ० 111
6. वही, पृ० 40
7. धूल पौधों पर, गोविंद मिश्र, पृ० 95
8. कोहरे में कैद रंग, गोविंद मिश्र, पृ० 191
9. हिंदी प्रचार समाचार, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास-17, जुलाई 2008, पृ० 41
10. कोहरे में कैद रंग, गोविंद मिश्र, पृ० 191
11. तुम्हारी रोशनी में, गोविंद मिश्र, पृ० 29
12. धीर समीरे, गोविंद मिश्र, पृ० 56
13. तुम्हारी रोशनी में, गोविंद मिश्र, पृ० 167
14. धीर समीरे, गोविंद मिश्र, पृ० 204
15. तुम्हारी रोशनी में, गोविंद मिश्र, पृ० 29
16. पाँच आँगनोंवाला घर, गोविंद मिश्र, पृ० 184
17. तुम्हारी रोशनी में, गोविंद मिश्र, पृ० 58
18. वही, पृ० 120

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों में निहित दलित-चेतना

अंशु बत्रा (शोधछात्रा)

हिंदी विभाग, कला संकाय

दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट

(डीम्ड यूनि०) दयालबाग, आगरा

कोई भी विमर्श, चिंतन या साहित्य का कोई भी रूप युगविशेष में परिस्थितियों के दबाव से उत्पन्न होकर उस युग की अनिवार्यता बनकर सामने आता है। समाज में या राजनीतिक क्षेत्र में होती हुई हलचल साहित्य की विविध विधाओं में प्रत्यक्षतः या परोक्षतः रूप से अभिव्यक्त होती है। बदलती हुई परिस्थितियाँ हमारी भावसत्ता व विचार में तनाव पैदा कर देती हैं और उसके अनुरूप ही साहित्यकार या नाटककार के चिंतन और लेखन की दिशा बदलती है। पिछले कुछ वर्षों में दलित चेतना, दलित आंदोलन, दलित साहित्य आदि विषयों ने साहित्यकारों, नाटककारों, आलोचकों, पाठकों एवं सामाजिक चिंतकों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया है। दलित चेतना एक प्रतिबद्ध, सजीव लेखन तथा एक सशक्त आंदोलन का साक्ष्य प्रस्तुत कर रही है। दलित चेतना और दलित साहित्य स्वर्ण मानसिकता और दलितविरोधी गतिविधियों के प्रतिरोध का साहित्य है। यह दलितों एवं दलित चेतना से जुड़े रचनाकारों का एक सर्जनात्मक और संगठित प्रयास है।¹

हिंदी शब्दकोशों में 'दलित' शब्द के विभिन्न अर्थ मिलते हैं—मसला हुआ, रौंदा हुआ, खंडित, विनिष्ट किया हुआ² 'जिसका दलन हुआ हो या जिसे पनपने या बढ़ने न दिया गया हो', 'ध्वस्त या नष्ट किया हुआ हो',³ जिसका 'दमन हुआ हो', 'जो कुचला हुआ गया हो',⁴ 'मसला हुआ', 'रौंदा हुआ', 'कुचला हुआ', 'टुकड़े-टुकड़े किया हुआ', 'विनिष्ट किया हुआ', 'जो दबाकर रखा गया हो'।⁵ अतः दलित शब्द 'परंपरागत', 'अछूत', 'अस्पृश्य' या 'हरिजन' जैसे शब्दों का परिष्कृत और परिमार्जित रूप और साहित्यिक संस्करण है। वह व्यक्ति या समुदाय जिसे भारतीय समाज में ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने निहित स्वार्थों के वशीभूत अपने गर्भ से उत्पन्न किया, 'दलित' कहलाता। 'दलित वर्ग का प्रयोग हिंदू समाज-व्यवस्था के अंतर्गत परंपरागत रूप से शूद्र माने जानेवाले वर्गों के लिए रूढ़ हो गया है। दलित वर्ग में वे जातियाँ आती हैं, जो निम्न स्तर की हैं और जिन्हें सदियों से सताया गया है।'⁶ डॉ० चंद्रकांत वादिवेडकर 'दलित' शब्द के संबंध में कहते हैं—'दलित यानी अनुसूचित जातियाँ, बौद्धिक कष्ट उठाने वाली जनता, मजदूर, भूमिहीन, गरीब किसान, खानाबदोश जातियाँ, आदिवासी। 'दलित' शब्द की यह जाति-निरपेक्ष व्यापक परिभाषा है। असल में जिन जातियों को महात्मा गांधी ने 'हरिजन' कहा था, वे ही जातियाँ 'दलित' के नाम से पहचानी गईं।'⁷ डॉ० वानखेड़े के अनुसार—'दलित लेखकों द्वारा, दलितों पर लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है।'⁸ ओमप्रकाश वाल्मीकि ने कहा है—'अगर किसी रचनाकार में

संवेदनशीलता है और उसकी संवेदनशीलता दलित के साथ है और दलित के यथार्थ को वह संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करता है, तो निश्चित रूप से उसके साहित्य को दलित साहित्य माना जाएगा।⁹ कई विद्वानों का मानना है कि—‘दलित साहित्य सही मायने में वह साहित्य है, जो दलितों ने अपने ज्ञान, अपने तजुर्बे, अपनी कठिनाइयों और पीड़ा के आधार पर लिखा है।’¹⁰ मोहनदास नैमिशराय का कहना है—‘शोषक वर्ग के खिलाफ अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए समाज में समता, बंधुता तथा मैत्री की स्थापना करना ही दलित साहित्य का उद्देश्य है।’¹¹ ‘दलित शब्द दबाए गए शोषित, पीड़ित, प्रताड़ित अर्थों में जब साहित्य में जुड़ता है, तो यह विरोध एक नकार का संकेत करता है यह नकार चाहे व्यवस्था का हो, सामाजिक विसंगतियों, धार्मिक रूढ़ियों, आर्थिक विषमताओं, साहित्यिक परंपराओं, मानदंडों या सौंदर्यशास्त्र का हो। दलित साहित्य नकार का साहित्य है, जो संघर्षों से उपजता है। इसमें समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व का भाव है, जो वर्ण-व्यवस्था से उपजे जाति भेद का विरोध है।’¹² सोहनपाल सुमनाक्षर दलित साहित्यकार हैं उन्होंने दलित साहित्य को इस प्रकार दर्शाया है—‘दलित साहित्य दलितोत्थान साहित्य यानि वह साहित्य जो दलितों, पीड़ितों, शोषितों और असहाय वर्ग के उत्थान और नव विकास के लिए प्रेरित करता है, जो ऐसे व्यक्तियों को उनके गौरवमय इतिहास से परिचित करते हुए उनकी मानवीयता की पहचान कराता है। यह वह साहित्य है, जो धरती से जुड़े लोगों की समस्या और दुर्दशा से अवगत कराते हुए उनके निराकरण और समाधान का उपाय बताता है। दलित साहित्य एक ऐसा साहित्य है, जो सभी तरह की वर्ण-व्यवस्था, जात-पाँत, ऊँच-नीच के भेदभाव के दायरे से ऊपर और जिसे धर्म, भाषा व प्रदेश की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। यह दलन की वेदना, शोषण की कुढ़न और अन्याय के उत्पीड़न, अत्याचार का रुदन व अपमान की पीड़ा की अभिव्यक्ति में भाषा और छंदालंकार नहीं देखता। दलित साहित्य को भीरू अकर्मण्य और धर्मांध के स्थान पर जुझारू, संघर्षशील और कर्तव्यहीन बनाता है और उनमें स्वाभिमान, आत्मगौरव जगाकर आडंबरों को दूर भगाता है।’¹³ कमलेश्वर का कहना है—‘जातीय स्वाभिमान को छोड़कर इस साहित्य में भारत के दलित और वंचित मनुष्यों की अस्मिता की आवाज है।’¹⁴ अर्थात् उनका मानना है कि दलित साहित्य किसी जाति का सीमित नहीं है यह मानवीयता को नकारने के विरोध संघर्ष करने की चेतना समझते हैं। दलित साहित्य सामंती मूल्यों और सवर्णों के उत्पीड़न के खिलाफ दलितों द्वारा रचित साहित्य है। दलित किसी की कृपा पर नहीं, बल्कि अपने अधिकार सजगता, अपनी वर्गचेतना, अपने संघर्ष के आधार पर अपना हक प्राप्त कर समाज की मुख्यधारा में आने की कोशिश करता है और विस्थापित जीवन को समाज में पुनःस्थापित करने की अहम कोशिश करता है। दलित साहित्य का मूल स्वर आत्मवेदना, निषेध, विद्रोह, संघर्ष और उत्थान का है।¹⁵ दलित साहित्य तथा साहित्यकार, सामाजिक शोषण पद्धति के विरोध विद्रोह व्यक्त करता है। दलित साहित्यकारों ने अपने अनुभवों को शब्दों के जरिए साहित्य में ढालकर सेठ, जमींदार तथा सवर्णियों की ओर से होने वाले अन्यायों की अभिव्यक्ति नाटक, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, कविताओं के माध्यम से की है। भारतीय समाज में दलितों को न्याय मिले तथा दलितों को अस्पृश्यता, ऊँच-नीच, अंधविश्वास, जातीयता आदि समस्याओं के प्रति जाग्रत करें, सम्मानजनक जीवन जीने के योग्य बनाएँ, अंबेडकरवाद का अनुसरण करें, दलित साहित्य तथा साहित्यकारों का यही उद्देश्य रहा है।

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल दलित साहित्यकार तो नहीं हैं, परंतु उन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से भारतीय समाज के निम्न, दलित, शोषित एवं उत्पीड़ित समाज के लोगों के जीवन का यथार्थ चित्रण किया है तथा उनके प्रति सहानुभूति भी व्यक्त की है। आधुनिक समाज में ब्राह्मण व पुरोहित लोग स्वयं को उच्चवर्गीय तथा शूद्र जाति को निम्नवर्गीय समझते हैं और निम्न वर्ण को अस्पृश्य व अछूत माना जाता है। उनका स्पर्श मात्र भी जघन्य अपराध है। निम्न वर्ण के लोगों को किसी धार्मिक स्थान, धार्मिक समुदाय में एक साथ बैठने या अंदर जाने की अनुमति भी नहीं है। डॉ० लाल के 'एक सत्यहरिश्चंद्र' नाटक में हरिजनों पर ढाए जा रहे अत्याचारों का स्पष्ट चित्रण किया गया है। इस नाटक में वर्तमान समाज-व्यवस्था में ऊँच-नीच, जाँति-पाँति के आधार पर पिछड़े लोगों का सवर्णों तथा सत्ताधारी स्वार्थी शक्तियों द्वारा क्रूर शोषण का यथार्थ चित्रण किया गया है। उच्चवर्ग द्वारा हरिजनों और पिछड़ी जाति के लोगों को प्रतिदिन प्रताड़ित किया जाता है। डॉ० लाल के 'एक सत्यहरिश्चंद्र' नाटक के कई पात्र हरिजन समस्या को उठाते हुए ऊँची और नीची जाति के संघर्ष को प्रस्तुत करते हैं। समकालीन जीवन के विविध संदर्भों में छुआछूत, सवर्ण-शूद्र संघर्ष व शोषित वर्ग की त्रासदी को उभारने में यह नाटक समर्थ है। गाँव के जमींदार तथा अन्य लोग दलितों के विकास को सहन नहीं कर पाते हैं। लौका शूद्र जाति का है इसलिए उसे नीच जाति का कहा जाता है। लौका जब घोषणा करता है कि वह अपने यहाँ भी सत्यनारायण की कथा कहलवाएगा तो देवधर उसकी इस बात का विरोध करते हुए कहता है—'देवधर! हट! शूद्र लौका सत्यनारायण की कथा कहेगा। यह सरासर अधर्म है। हिंदू धर्म खतरे में है। शतपथ ब्राह्मण और मनुस्मृति में कहा गया है—अब्राह्मण और शूद्र ब्रह्म विद्या के अधिकारी नहीं। शूद्र को वेद पढ़ने व सुनने की मनाही है। शूद्र श्मसान के समान है। यदि वो धर्म-ग्रंथ पढ़ते व सुनते पाया जाए तो उसकी जुबान काट देनी चाहिए। उसका कान पिघले सीसे और लाख से भर देना चाहिए। जिह्वाच्छेदोधारणे शरीर भेदः। (देवधर अपने लोगों के साथ अलग में) इन गाँवों में ब्राह्मणों को भड़का दो, चमार शूद्रों के खिलाफ। सत्यनारायण की कथा लौका कहने जा रहा है। आग लगाने के लिए इतना ही काफी है।'¹⁶

इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने न केवल छुआछूत व जाति-पाँति की समस्या को उजागर किया है, बल्कि यह चित्रित करने की चेष्टा की है कि किस प्रकार से निम्न व हरिजन समाज जाति तथा वर्ण-भेद पर आधारित शोषण और उत्पीड़न का शिकार बनता है। डॉ० लाल के 'दर्पण' नाटक में भी जाति-पाँति के भेद को दर्शाया गया है। नाटक का नायक व नायिका एक-दूसरे से प्रेम करते हैं परंतु नायिका के क्षत्रिय धर्म का होने के कारण नायक के पिता कहते हैं कि हम तो कायस्थ हैं और बनारस के रहने वाले हैं, यह विवाह कैसे हो सकता है? इस बात का उत्तर हरिपद्म इस प्रकार देता है—

हरिपद्म—आप किसी के परिचय को ही महत्त्व देते हैं। जाति-स्थान, कुल-परंपरा, मेरे लिए उनका कोई महत्त्व नहीं है।¹⁷

डॉ० लाल के 'गंगामाटी' नाटक में जाति-पाँति व समाज में व्याप्त छुआछूत की भावना को उद्घाटित किया गया है। इस नाटक में लाल ने यह दर्शाया है कि भारत के गाँव स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् भी आज तक वर्ण व्यवस्थाजनित गुलामी में जकड़े हुए हैं। यथा—

शंभू : ब्राह्मण कन्या चमारों ...शूद्रों के घर उठती-बैठती है।

देवल : लोगों ने आँखों देखा है—उसके हाथ का छुआ खाती-पीती है।

शंभू : राम राम राम। हद कर दिया इसने।

मालिक : इसका बाबा क्या कम था? याद है, जियाहो की पूजा में इसके बाबा ने शूद्रों का पक्ष लिया था।¹⁸

उपर्युक्त तथ्य के आधार पर कहा जा सकता है कि छुआछूत की भावना हमारे सामाजिक ढाँचे को विखंडित कर रही है। आज भी सवर्णों का शूद्रों के घर उठना-बैठना और खाना-पीना वर्जित माना जाता है। एक चमाइन के हाथ का खाना खाने पर देवल के विरुद्ध गाँव के सभी लोगों में विद्रोह खड़ा हो जाता है। लोग उसे छी: छी: कहकर संबोधित करते हैं। डॉ० लाल ने इस नाटक के माध्यम से जाति-पाँति व समाज में व्याप्त छुआछूत की इन संपूर्ण विकृतियों को इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

गोसाईं : छी: छी: छी:। ब्राह्मण से शूद्र हो गया बेधर्मी।

शंभू : चमाइन के हाथ का खाना-पीना अच्छा लगता है। यही थी इसकी सिद्धि जो है सो की।

चंदरा : एक अन्हरा एक अन्हरी। एक बनरा एक बनरी।

सब : एक छिनरा एक छिनरी।¹⁹

आज अस्पृश्यता की दीवार ने भोजन तथा विवाह आदि की दृष्टि से भी लोगों को एक-दूसरे से पृथक् कर दिया है। डॉ० लाल ने अपने 'राम की लड़ाई' नामक नाटक में जातिवाद की इस प्रवृत्ति के प्रति विद्रोह उजागर किया है। यथा—

विमला : तब कहाँ था सारा गाँव-जवार, जब कोई मुझे छूना, मुझे स्पर्श करना क्या, रास्ते से मैं गुजरती थी, लोग मेरे मुँह पर कहते, खासकर औरतें-विमला कुलच्छनी है-इसे श्राप लगा है-स्पर्श-सुख इसके भाग्य में नहीं है। जिसके स्पर्श से मैं जड़ चेतन हुई अब मुझे उससे कौन अलग कर सकता है?²⁰

शूद्र जाति के रामगुलाम की सेवा से कुष्ठ जैसे संक्रामक रोग से मुक्त उच्च वर्ण की विमला का उक्त कथन अभिजातवर्गीय समाज के मुँह पर एक जबरदस्त तमाचा है। डॉ० लाल के 'पंचपुरुष' नाटक में ठाकुर वर्ग की शोषण प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। यथा—

'ठाकुर-मेरी ताकत का पता है?

उत्तमा : तुम्हारी ताकत हमें सवर्ण और शूद्रों में बाँटने की कोशिश कर रही है। धर्म के नाम पर अंधविश्वास और छुआछूत की नफरत फैलाकर हमें लड़ाना चाहते हो।²¹

अतः उपर्युक्त विवेचन के फलस्वरूप निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि दलितों की समस्याएँ, रूढ़िवाद, छुआछूत, वर्ण-व्यवस्था, जाँत-पाँत, ऊँच-नीच, अस्पृश्यता आदि प्राचीनकाल से ही किसी काल में कम, तो किसी काल में अधिक प्रभावी रही हैं, तत्पश्चात् प्रत्येक काल में इसका विरोध ही किया गया है। डॉ० अंबेडकर, स्वामी अछूतानंद, स्वामी शंकरदेव, रामास्वामी, कबीर जैसी महान हस्तियों ने अपने भावों द्वारा लोगों में चेतना का संचार किया, विद्रोह की नींव डालकर दलितों के हित चिंतक बने और समाज से शोषण, अस्पृश्यता, सामाजिक विषमता का नाश करने का दृढ़ संकल्प लेकर क्षण-प्रति-क्षण कार्यरत रहे हैं। डॉ० लाल ने अपने नाटकों के माध्यम से निम्न वर्ग तथा हरिजनों की विभिन्न समस्याओं व उनकी दयनीय स्थिति

का चित्रण कर उनमें अन्याय के प्रति विरोध करने की चेतना का संचार भी किया है।

संदर्भ

1. डॉ० जगन्नाथ पंडित, सामाजिक प्रतिबद्धता और साहित्य, पृ० 64
2. संपादक रामचंद्र शुक्ल, संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर, पृ० 468
3. संपादक रामचंद्र वर्मा, मानक हिंदी कोश, पृ० 35
4. डॉ० हरदेव बाहरी, उच्चतर हिंदी कोश, पृ० 388
5. संपादक श्यामसुंदर दास, हिंदी शब्द सागर (चतुर्थ भाग), पृ० 2229
6. श्रीमती कुसुम मेघवाल, हिंदी उपन्यासों में दलित वर्ग
7. माताप्रसाद, हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा, पृ० 1
8. डॉ० सुरेश मारुतिराव मुळे, हिंदी और मराठी दलित साहित्य एक तुलनात्मक अध्ययन, पृ०
9. ओमप्रकाश वाल्मीकि से रोहित कौशिक की बातचीत, आजकल, मई 2008, पृ० 37
10. पूर्णिमा सत्यदेव, हिंदी अनुशीलन, मार्च 2003, पृ० 30
11. वही, पृ० 31
12. डॉ० दयानंद बटोही, साहित्य और सामाजिक क्रांति, पृ० 27
13. वही, पृ० 33
14. निकाय पत्रिका, कमलेश्वर का भाषण : दलित साहित्य सम्मेलन औरंगाबाद, फरवरी-मार्च 1979, नागपुर, पृ० 11
15. डॉ० जगन्नाथ पंडित, सामाजिक प्रतिबद्धता और साहित्य, पृ० 69
16. डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, एक सत्यहरिश्चंद्र, पृ० 23
17. डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, दर्पण, पृ० 22
18. डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, गंगामाटी, पृ० 519
19. वही, पृ० 92
20. डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, राम की लड़ाई, पृ० 23
21. डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, पंचपुरुष, पृ० 52

प्रेमचंद : गुमशुदा साहित्य की खोज का सिलसिला!

कृष्णवीरसिंह सिकरवार

महान कथाकार प्रेमचंद विश्वविख्यात साहित्यकार हैं। उनके साहित्य के विषय में देश के विभिन्न-विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने तरीके से व्याख्या की हैं। उनके साहित्य पर शोधकार्य भी हुए हैं अनेक विद्वान उनके लुप्त हो रहे साहित्य को प्रकाश में लाने के भरसक प्रयास किए हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि क्यों देश की जनता प्रेमचंद के साहित्य को इतना पसंद करती है, चूँकि प्रेमचंद ने अपने 56 वर्ष के जीवनकाल में जितना भी साहित्य लिखा वह आम आदमी के लिए ही लिखा। फिर चाहे वह 'गोदान' का होरी हो या 'रंगभूमि' का नायक सूरदास। यह सभी पात्र दासता की जंजीरों में जकड़े गरीबों की दासता बयान करते हैं। देश की आम जनता इन पात्रों में अपने आपको देखती है। अतः हम कह सकते हैं कि प्रेमचंद का साहित्य आज से 100 वर्ष पहले भी लोकप्रिय था और आज भी है। प्रेमचंद ने अपने जीवनकाल में हिंदी साहित्य की लगभग सभी विधाओं में लिखा। व प्रेमचंद के जीवनकाल में ही उनका लिखा हुआ साहित्य लगभग प्रकाशित हो चुका था। कुछ साहित्य उनके देहावसान के पश्चात् भी प्रकाशित हुआ। बाद में प्रेमचंद के पुत्रों-श्रीपतराय व अमृतराय ने प्रेमचंद की बची हुई अप्रकाशित रचनाओं को खोज-खोजकर प्रकाशित कराया। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक हो जाता है कि प्रेमचंद के पुत्रों को प्रेमचंद द्वारा स्थापित सरस्वती प्रेस विरासत में मिला था। प्रेमचंद की शेष रचनाएँ अधिकांशतः इसी प्रकाशन से प्रकाशित हुईं बाद में जब अमृतराय व श्रीपतराय दोनों अलग हो गए, तो श्रीपतराय के हिस्से में अपने पिता का सरस्वती प्रेस आया और अमृतराय ने इलाहाबाद में हंस प्रकाशन की नींव डाली। जिसके द्वारा अमृतराय ने प्रेमचंद की कई लुप्तप्रायः सामग्री को खोजकर हिंदी साहित्य को प्रदान किया। इनके अलावा भी देश के विभिन्न आलोचकों द्वारा प्रेमचंद के साहित्य को खोजकर साहित्य जगत् में जुड़वाते रहने का कार्य समय-समय पर होता रहा। यह सिलसिला आज भी जारी है।

प्रेमचंद की इन अज्ञात व अप्राप्य रचनाओं को खोजकर साहित्य-संसार के समक्ष प्रस्तुत कर देने का कार्य कब शुरू हुआ, इस संबंध में विद्वानों में भ्रम व्याप्त है। कोई भी आलोचक यह दावा नहीं कर सकता कि प्रेमचंद की अज्ञात रचनाओं को खोजने का कार्य किसने शुरू किया था, परंतु वर्ष 2005 में देश के विख्यात आलोचक, प्रेमचंद साहित्य विशेषज्ञ डॉ॰ कमलकिशोर गायनका अपनी पुस्तक 'प्रेमचंद की अप्राप्य कहानियाँ' में यह सूचना देते हैं कि—'श्री भीष्म साहनी ने वर्ष 1941 में रावलपिंडी में रहते हुए प्रेमचंद के अप्राप्य साहित्य को खोजने का प्रयास किया था। इसके बाद मदनगोपाल ने वर्ष 1943 से इस कार्य को शुरू किया। तथा इस दिशा में

काफ़ी सफलता प्राप्त की एवं अंग्रेजी में 'प्रेमचंद' शीर्षक से पुस्तक प्रकाशित करवाई। यह अंग्रेजी में लिखी गई प्रेमचंद साहित्य के ऊपर पहली आलोचनात्मक पुस्तक थी। इस पुस्तक को देश में ही नहीं, विदेश में भी काफी सराहना मिली। फलतः इसी की बदौलत मदनगोपाल को प्रेमचंद साहित्य पर और अधिक शोधकार्य करने की ओर प्रवृत्त किया। इसी के परिणामतः वर्ष 1964 में मदनगोपाल की अंग्रेजी पुस्तक 'प्रेमचंद : ए लिटरेरी बायोग्राफी' प्रकाशित हुई और वर्ष 1965 में 'कलम का मजदूर' पुस्तक हिंदी व उर्दू में प्रकाशित हुई इसके बाद मदनगोपाल द्वारा प्रेमचंद के ऊपर दो और महत्वपूर्ण कार्य दिखलाई पड़ते हैं एक तो वर्ष 2002 में प्रकाशित पुस्तक 'प्रेमचंद की आत्मकथा' जिसमें मदनगोपाल ने प्रेमचंद के उपन्यासों, कहानियों व लेखों आदि से आत्मकथात्मक अंश लेकर उन्हें कालक्रमानुसार सजाकर प्रेमचंद की आत्मकथा तैयार कर दी थी यह साहित्य जगत में एक नया प्रयोग था। दूसरा कार्य मदनगोपाल द्वारा उर्दू में प्रेमचंद के संपूर्ण साहित्य को 'कुल्लियात-ए-प्रेमचंद' शीर्षक से 24 भारी भरकम खंडों में वर्ष 2000-2005 के बीच प्रकाशित हुआ इसमें प्रेमचंद के लगभग संपूर्ण साहित्य को खोजकर संकलित व संपादित किया गया था, जो एक चिरस्मरणीय कार्य था। मदनगोपाल ने हिंदी की रचनाओं को उर्दू में लिप्यंतर व रूपांतरण किया था, जो एक श्रमसाध्य कार्य था। मदनगोपाल देश के ऐसे एकमात्र विद्वान आलोचक थे, जिन्हें प्रेमचंद के साहित्य को हिंदी, उर्दू व अंग्रेजी में प्रकाशित करने का गौरव प्राप्त था।

वर्ष 1962 में प्रेमचंद के पुत्र अमृतराय ने प्रेमचंद की लगभग हज़ारों पृष्ठ की लुप्तप्रायः सामग्री को खोजकर प्रकाशित कराया और साहित्य जगत में इस वर्ष को एक स्मरणीय वर्ष बना दिया। उनके द्वारा प्रेमचंद के ऊपर निम्न कार्य देखने को मिलते हैं—

1. चिट्ठी-पत्री (दो खंड)

इस संकलन के द्वारा अमृतराय ने प्रेमचंद के पत्रों को प्रकाश में लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया था। ध्यातव्य है कि इस संकलन से पूर्व प्रेमचंद के पत्रों को सहेजने का कार्य किसी भी आलोचक द्वारा नहीं किया था। इस तरह अमृतराय का यह कार्य सराहनीय था, उन्होंने प्रेमचंद के नष्ट होते इस साहित्य को लुप्त होने से बचाया था। अमृतराय ने इस संकलन की भूमिका में लिखा है, 'जीवन के तथ्य तो जैसे इन चिट्ठियों में हैं, क्या लिख रहे हैं, क्या पढ़ रहे हैं, क्या सोच रहे हैं, घर में कब किसका क्या हाल है, कौन जीया कौन मरा, किसकी शादी हुई..।' इस प्रकार इस संकलन से कई प्रकार के रहस्य उजागर होते हैं जिनसे पाठक अनभिज्ञ थे। इसके पहले भाग में प्रेमचंद के अभिन्न मित्र 'जमाना' संपादक मुंशी दयानारायण निगम को लिखे गए लगभग 281 पत्र शामिल हैं, जो कि उर्दू में लिखे गए थे जिनका हिंदी लिप्यंतरण अमृतराय ने किया था। इस संकलन के दूसरे भाग में प्रेमचंद के अन्य विभिन्न मित्र लेखकों को लिखे गए लगभग 283 पत्र शामिल थे जिनमें लगभग 45 पत्र वे भी शामिल थे जो प्रेमचंद को अन्य लेखकों द्वारा लिखे गए थे।

2. गुप्तधन (दो खंड)

इस संकलन में प्रेमचंद की 56 अप्राप्य हिंदी-उर्दू कहानियों को संकलित कर प्रकाशित उनकी कहानियों में अभिवृद्धि की गई थी। यह कहानियाँ अभी तक किसी भी पूर्व प्रकाशित संकलनों में प्रकाशित नहीं हुई थी एवं पाठकों की नजर से ओझल थी। इस दृष्टि से यह एक

अच्छा कार्य था। इस संकलन के प्रथम भाग में 26 तथा द्वितीय भाग में 30 कहानियाँ संकलित की गई थीं।

3. विविध प्रसंग (तीन खंड)

इस संकलन के द्वारा अमृतराय ने प्रेमचंद के लेख, संपादकीय, टिप्पणियाँ, भूमिकाएँ, पुस्तक समीक्षाएँ, भाषण व इसी प्रकार की फुटकर सामग्री को संकलित कर प्रकाशित किया था। इस संकलन के द्वारा प्रेमचंद का पत्रकार रूप सामने आया जिससे कि आम पाठक अनभिज्ञ था। हालाँकि इस संकलन में कई रचनाएँ प्रकाशित होने से छूट गई थीं फिर भी यह एक ऐतिहासिक कार्य था।

4. शबेतार

प्रेमचंद ने बेल्जियम के प्रसिद्ध नाटककार मॉरिस मेटर्लिक के नाटक 'साइटलैस' का उर्दू अनुवाद करके 'जमाना' के सितंबर तथा अक्टूबर 1919 के दो अंकों में क्रमशः प्रकाशित किया था अमृतराय ने इसको खोजकर वर्ष 1962 में हिंदी में पुस्तक रूप में प्रकाशित किया। अमृतराय के ही प्रयास से इस नाटक का हिंदी साहित्य-संसार के समक्ष प्रथम परिचय हुआ। इस पुस्तक की भूमिका में स्वयं अमृतराय कहते हैं कि—'मुंशी प्रेमचंद का 5 सितंबर का यह पत्र जो उन्होंने 'जमाना' के संपादक को लिखा था—'शबेतार' का बकिया हिस्सा रवाना करता हूँ। मेटर्लिक का एक ड्रामा 'Sightless' नाम का है। 'शबेतार' का हिंदी एडीशन मय दीबाचे के शायी हो रहा है, लेकिन वह दीबाचा गोलमोल है। परंतु 'शबेतार' का हिंदी एडीशन कहीं देखने में नहीं आया पता नहीं छपा भी था या सिर्फ बात होकर रह गई। पुस्तक के रूप में तो शायद वह उर्दू में भी नहीं निकला।'

इस नाटक में प्रेमचंद ने लेखक का परिचय भी दिया है वह इस प्रकार से है—'मेटर्लिक, बेल्जियम का जिंदा-जावेद (अमर) ड्रामेटिस्ट, शायर और मजमूननिगार (निबंधकार), नोबेल प्राइज का इफ्तखार (गौरव) हासिल कर चुका है। उसके ड्रामों में तसव्वुकु (अध्यात्म) का रंग गालिब है, लेकिन वह तसव्वुकु नहीं, जो शीशा-ओ-शराब (शीशे और शराब), जिंदा-ओ-कुस (पिंजरे और कैदखाने) और हिज्र-ओ-विसाल (संयोग-वियोग) के तखैयुल (कल्पना) में मस्त रहता है, बल्कि वह तसव्वुकु जो रूहानी मसले (आत्मा के प्रश्नों), आरिफाना नुमात (ज्ञान के तत्त्वों), हयात (जीवन), ओ-ममात (मृत्यु), के असरार (रहस्यों), वुजूद (अस्तित्व), की माहीयत (विवेचना) का मुफस्सिर (माध्यकार), और मुबस्सिर (मर्मज्ञ) है। वह अकसर ऐसी रूहानी बुर्लादियों पर जा पहुँचता है जहाँ आम शोअरा (कवियों) के तायरे-परवाज (कल्पना पंछी) के पर जलते हैं और वह महज समाई (सुनी हुई) बाते नहीं लिखता, उसकी निगाहे-बातिन (भीतर की आँखे, ज्ञान-चक्षु) रौशन है। उसने रूहानी मुशाहिदात (साक्षात्कार) किए हैं और इस रंग में योरप उसका सानी (समकक्ष) नहीं रखता।'

5. मंगलाचरण

इस संकलन में अमृतराय ने प्रेमचंद के शुरूआती चार उपन्यासों को संकलित कर प्रकाशित किया था। यह चार उपन्यास इस प्रकार थे—'असरारे मआबिद', 'हमखुर्मा-व-हमसवाब', 'प्रेमा', एवं 'रूठी रानी'। इस संकलन का महत्त्व और भी इस प्रकार बढ़ जाता है, क्योंकि प्रेमचंद के उर्दू उपन्यास 'असरारे मआबिद' प्रथम बार हिंदी में साहित्य संसार के समझ आया था।

अमृतराय ने इस संकलन में 'असरारे मआबिद' को 'असरारे मआबिद उर्फ देवस्थान रहस्य' के नाम से संकलित किया। इस संकलन की भूमिका में अमृतराय कहते हैं कि—'मुंशीजी की जो रचनाएँ अब तक मिली हैं उनमें 'असरारे मआबिद' ही सबसे पुरानी रचना है और यह एक विचित्र संयोग है कि इस किस्से की पहली किस्त 8 अक्टूबर 1903 के अंक में छपी। तैंतीस साल बाद ठीक इसी दिन मुंशी जी का देहांत हुआ...इस किस्से को बिल्कुल ज्यों-का-त्यों न छापकर मैंने उसका हिंदी रूपांतर करना ठीक समझा क्योंकि भाषा जहाँ-तहाँ हिंदी पाठकों के लिए बहुत क्लिष्ट हो गई है। 'रूठी रानी' नाम का किस्सा भी जो अप्रैल से लेकर अगस्त 1907 तक 'जमाना' से निकला था हिंदी के लिए बिल्कुल नया है। लिहाजा वह भी पेश किया जा रहा है, बहुत कुछ ज्यों का त्यों। मुंशी जी की आरंभिक रचनाओं की खोज का काम इस तरह बहुत कुछ पूरा हो जाता है। अब बस एक उपन्यास बचता है, 'किशाना' जो बहुत तलाश करने पर भी अब तक कहीं नहीं मिला।' (भूमिका, मंगलाचरण, अमृतराय, पृष्ठ : 09 हंस प्रकाशन, इलाहाबाद) उपर्युक्त सभी संकलन सामग्री अमृतराय ने अपने ही प्रकाशन हंस प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित की। यहाँ हम देखते हैं कि अमृतराय ने 'किशाना' उपन्यास का न मिलना बताया है यह उपन्यास अभी तक संप्रति अज्ञात है। आशा की जानी चाहिए कि भविष्य में कोई साहित्य का पुरोधा इस उपन्यास को खोजने का साहस कर दिखाएगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि अमृतराय ने प्रेमचंद की हजारों पृष्ठों की सामग्री को खोज कर साहित्य जगत् को प्रदान करके एक ऐतिहासिक कार्य किया एवं आने वाले शोधार्थियों के लिए एक राह खोल दी।

अमृतराय द्वारा किए जानेवाले कार्य के पश्चात् अनेक विद्वान आलोचक प्रेमचंद की लुप्त सामग्री को खोजने की ओर प्रवृत्त दिखाई देते हैं ऐसे आलोचकों में हम डॉ० कमर रईस, डॉ० जाफर रजा, गोपाल कृष्ण माणकटाला आदि इन्होंने ज्यादातर प्रेमचंद के उर्दू साहित्य को प्रकाश में लाने का श्रेयस्कर कार्य किया। इसके बाद प्रेमचंद के ज्येष्ठ पुत्र श्रीपतराय, भारत यायावर, डॉ० वीर भारत तलवार, डॉ० कमलकिशोर गोयनका, डॉ० प्रदीप जैन आदि ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया। इन सभी विद्वान आलोचकों द्वारा प्रेमचंद की खोजी गई सामग्री का विवरण इस प्रकार है—

1. डॉ० कमर रईस द्वारा किए गए कार्य का संक्षिप्त विवरण

'वर्ष 1960 में 'मजामीन-ए-प्रेमचंद', वर्ष 1968 में 'मुंशी प्रेमचंद : शख्सियत और कारनामे' इस पुस्तक में प्रेमचंद के व्यक्तित्व और कृतित्व के अनेक अनछुएँ प्रसंगों को शामिल किया गया था। वर्ष 1968 में 'तलाशो-तवाजुन'। वर्ष 1980 में 'प्रेमचंद : फिक्रो-फन', वर्ष 1981 में प्रेमचंद के 'नुमाईदा अफसाने' आदि संकलन प्रकाशित हुए जिसमें प्रेमचंद की 17 उर्दू कहानियाँ संकलित हैं।' इस प्रकार डॉ० कमर रईस द्वारा अपनी तरफ से प्रेमचंद की कई रचनाओं को सहेजने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया गया।

2. डॉ० जाफर रजा द्वारा किए गए कार्य का संक्षिप्त विवरण

डॉ० रजा की प्रेमचंद पर पहली उर्दू पुस्तक 'प्रेमचंद : कहानी का रहनुमा' वर्ष 1969 में प्रकाशित हुई। वर्ष 1977 में डॉ० रजा को 'प्रेमचंद के हिंदी कथासाहित्य और उनके उर्दू कथासाहित्य का तुलनात्मक अध्ययन' पर पी०एच०डी० की उपाधि प्रदान की गई। इस शोध प्रबंध का पुस्तककार रूप में प्रथम प्रकाशन 1977 में ही उर्दू में 'प्रेमचंद : फन और तामीरे फन' नाम से प्रकाशित हुआ तथा हिंदी में वर्ष 1983 में 'प्रेमचंद : उर्दू-हिंदी कथाकार' शीर्षक से प्रकाशित

हुई। डॉ० रजा की पहली उर्दू पुस्तक का हिंदी रूप भी 2005 में 'प्रेमचंद : कहानी का रहनुमा' शीर्षक से ही प्रकाशित हुआ इस पुस्तक के द्वारा डॉ० रजा ने प्रेमचंद की हिंदी-उर्दू कहानियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया था एवं प्रथम बार हिंदी-उर्दू कहानियों की सूची पाठकों को प्रस्तुत की गई।' हालांकि इस सूची को तैयार करने में डॉ० रजा से कहानियों के प्रथम प्रकाशन, हिंदी-उर्दू कहानियों का भेद करने में कई प्रकार की त्रुटि हो गई थी फिर भी यह सूची किसी ऐतिहासिक दृष्टि से कम नहीं थी, क्योंकि आनेवाले शोधकार्य के लिए डॉ० रजा ने एक राह प्रशस्त कर दी थी।

3. श्रीपतराय द्वारा किए गए कार्य का संक्षिप्त विवरण

'प्रेमचंद के ज्येष्ठ पुत्र द्वारा वर्ष 1981 में 'सोलह अप्राप्य कहानियाँ' शीर्षक से 16 हिंदी-उर्दू की कहानियाँ संकलित कर प्रकाशित की गई। यह पुस्तक श्रीपतराय के स्वयं के सरस्वती प्रकाशन, बनारस से प्रकाशित हुई थी।' हालाँकि इस संबंध में डॉ० गोयनका ने स्पष्ट किया है कि यह सभी 16 कहानियाँ उनके द्वारा खोजी गई थीं व इन सभी कहानियों को मैंने (डॉ० गोयनका ने) अपनी भूमिका के साथ श्रीपतराय के पास सरस्वती प्रेस, बनारस से प्रकाशित करने हेतु भेजी थी, परंतु किस वजह से अंत में श्रीपतराय ने डॉ० गोयनका का पुस्तक में कहीं भी उल्लेख किए बगैर अपने नाम के साथ एवं खुद की खोजी हुई कहानियाँ बताकर प्रकाशित करने का कार्य किया। इस विषय में कितनी सच्चाई है यह कहा नहीं जा सकता है।

4. गोपालकृष्ण माणकटाला द्वारा किए गए कार्य का संक्षिप्त विवरण

'माणकटाला ने भी प्रेमचंद की कुछ उर्दू रचनाओं को खोजकर प्रकाशित करने का महनीय कार्य किया था। जिनमें प्रमुख 'प्रेमचंद और तजानीफ', 'प्रेमचंद : कुछ नए तहकीकी गोशे' वर्ष 1985 में यह पुस्तक प्रकाशित हुयी थी। 'प्रेमचंद : कुछ नए मुबाहिस' वर्ष 1988 में प्रकाशित। 'प्रेमचंद : हयात नौ' वर्ष 1993 में प्रकाशित। 'प्रेमचंद का सेक्यूलर किरदार और दीगर मजामीन' वर्ष 2001 में प्रकाशित। 'तौकीते प्रेमचंद' वर्ष 2002 में प्रकाशित और 'प्रेमचंद दर्पण' वर्ष 2003 में प्रकाशित हुई।'।

5. भारत यायावर द्वारा किए गए कार्य का संक्षिप्त विवरण

भारत यायावर ने कानपुर के 'प्रताप' की फाइलों में से खोजकर उसके दिसंबर 1925 के किसी अंक में प्रकाशित नितांत असंदर्भित लेख 'इस्लामी सभ्यता' को 'इंडिया टूडे' के अक्टूबर 1995 के अंक में प्रकाशित करवाए जाने का महनीय कार्य किया।' (पुस्तक प्रेमचंद की शेष रचनाएँ-डॉ० प्रदीप जैन, पृष्ठ : 58) आगे चलकर यह लेख जनवाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित 'प्रेमचंद रचनावली भाग-7' में शामिल कर हमेशा के लिए सुरक्षित कर दिया गया।

6. डॉ० वीर भारत तलवार द्वारा किए गए कार्य का संक्षिप्त विवरण

प्रेमचंद की कुछ अप्राप्य रचनाओं को प्रेमचंद साहित्य में शामिल करने का श्रेय डॉ० तलवार को भी जाता है। उनके द्वारा प्रेमचंद की खोजी गई रचनाओं का विवरण इस प्रकार है—'प्रतिज्ञा' कहानी, 'जनसत्ता' दैनिक पत्र में प्रकाशित, 'मलकाना राजपूत मुसलमानों की शुद्धि' लेख, 'हंस' मासिक पत्र में प्रकाशित, 'स्वराज्य की पोषक और विरोधक व्यवस्था' लेख 'आलोचना' पत्रिका में प्रकाशित, 'अन्ना कारेनीना की भूमिका' लेख, 'वर्तमान साहित्य' मासिक पत्रिका में प्रकाशित।' (पुस्तक प्रेमचंद की शेष रचनाएँ डॉ० प्रदीप जैन, पृष्ठ 58) चूँकि इन

रचनाओं के सही प्रकाशन का वर्ष, माह डॉ० वीर भारत तलवार को भी ज्ञात नहीं है इसलिए इन रचनाओं का प्रकाशन डॉ० तलवार द्वारा दी गई जानकारी अनुसार वर्ष 1985-1987 के बीच का माना जा सकता है।

7. डॉ० कमलकिशोर गोयनका द्वारा किए गए कार्य का संक्षिप्त विवरण

प्रेमचंद साहित्य को सबसे ज्यादा अगर किसी ने देखा, पढ़ा और जिया है तो वे विद्वान आलोचक प्रेमचंद साहित्य विशेषज्ञ के नाम से प्रसिद्ध चितक डॉ० कमलकिशोर गोयनका हैं। डॉ० गोयनका ने वर्ष 1972 में दिल्ली विश्वविद्यालय से 'प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्पविधान' विषय पर पी०एच०डी० और वर्ष 1984 में रांची विश्वविद्यालय से 'प्रेमचंद का जीवन' विषय पर डी-लिट् की उपाधि प्राप्त की। इस प्रकार हम पाते हैं कि डॉ० गोयनका ने प्रेमचंद के साहित्य पर पी०एच०डी० एवं डी-लिट् की उपाधि लेकर उनको अपने जीवन का ही एक हिस्सा मान लिया। आगे चलकर उन्होंने प्रेमचंद पर विभिन्न प्रकार की खोज करके आने वाले शोधार्थियों के लिए एक रास्ता खोल दिया। उन्होंने अपने जीवन के कई वर्ष प्रेमचंद साहित्य की खोज में व्यतीत कर दिए एवं विफल मात्रा में प्रेमचंद की दबी पड़ी हुई रचनाओं को बाहर लाने का महनीय कार्य अकेले ही संपादित किया। आज भी डॉ० गोयनका द्वारा प्रेमचंद की सामग्री को खोजने की यात्रा अनवरत् जारी है। डॉ० गोयनका द्वारा प्रेमचंद पर गंभीर चिंतन के बाद प्रकाशित की गई पुस्तकों का विवरण इस प्रकार है—(1) प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्पविधान' वर्ष 1974 में प्रकाशित, (2) 'प्रेमचंद : कुछ संस्मरण' वर्ष 1980 में प्रकाशित, (3) 'प्रेमचंद' पॉकेट बुक्स में वर्ष 1980 में प्रकाशित, (4) 'प्रेमचंद और शतरंज के खिलाडी' वर्ष 1980 में प्रकाशित, (5) 'प्रेमचंद : अध्ययन की नई दिशाएँ' वर्ष 1981 में प्रकाशित, (6) 'रंगभूमि : नए आयाम' वर्ष 1981 में प्रकाशित, (7) 'प्रेमचंद : विश्वकोश' दो खंडों में, वर्ष 1981 में प्रकाशित, (8) 'प्रेमचंद : चित्रात्मक जीवनी' वर्ष 1986 में प्रकाशित, (9) 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' दो खंडों में वर्ष 1988 में प्रकाशित, (10) 'प्रेमचंद की हिंदी-उर्दू कहानियाँ' वर्ष 1990 में प्रकाशित, (11) 'प्रेमचंद : रचना संचयन' वर्ष 1994 में प्रकाशित, (12) 'प्रेमचंद के नाम पत्र' वर्ष 2002 में प्रकाशित, (13) 'प्रेमचंद : देशप्रेम की कहानियाँ' वर्ष 2002 में प्रकाशित, (14) 'प्रेमचंद : बालसाहित्य समग्र' वर्ष 2002 में प्रकाशित, (15) 'प्रेमचंद : रंगभूमि उपन्यास' वर्ष 2004 में प्रकाशित, (16) 'प्रेमचंद की अप्राप्य कहानियाँ' वर्ष 2005 में प्रकाशित, (17) 'प्रेमचंद : पत्रकोश' वर्ष 2007 में प्रकाशित, (18) 'प्रेमचंद : कहानी रचनावली' वर्ष 2010 में प्रकाशित, (19) 'प्रेमचंद : अनछुए प्रसंग' वर्ष 2012 में प्रकाशित, (20) 'प्रेमचंद : वाद-विवाद व संवाद' वर्ष 2012 में प्रकाशित, (21) 'प्रेमचंद : मोनोग्राफ' वर्ष 2013 में प्रकाशित एवं (22) 'प्रेमचंद : प्रतिनिधि संकलन' वर्ष 2013 में प्रकाशित।

उपरोक्त प्रेमचंद विषयक पुस्तकों के द्वारा हम डॉ० गोयनका की साहित्यिक यात्रा का बखूबी अंदाजा लगा सकते हैं कि उन्होंने प्रेमचंद के साहित्य के ऊपर कितना गंभीर शोधकार्य किया है। उपरोक्त पुस्तकों में से वर्ष 1988 में भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली से दो खंडों में प्रकाशित पुस्तक 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' की चर्चा करना जरूरी है क्योंकि जैसे इस पुस्तक के नाम से ही स्पष्ट है कि इस पुस्तक के द्वारा डॉ० गोयनका ने 1300 पृष्ठों का अप्राप्य साहित्य खोज निकाला था जिससे पाठक अभी तक अपरिचित था। इन पुस्तकों के प्रकाशन के बाद डॉ०

गोयनका को प्रेमचंद साहित्य विशेषज्ञ व प्रेमचंद बेसवॉल कहा जाने लगा, जो किसी भी आलोचक के लिए एक गौरवान्वित बात थी।

‘प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य’ नामक पुस्तक के दोनों खंडों में 31 अप्राप्य कहानियाँ, पुस्तक समीक्षाएँ, भूमिकाएँ, लेख, संपादकीय टिप्पणियाँ, प्रेमचंद के पत्र, प्रेमचंद के नाम पत्र एवं विभिन्न प्रकार के विलुप्त दस्तावेज शामिल किए गए थे, जो इससे पहले अन्य कहीं भी देखने को नहीं मिले थे।

वर्ष 2010 में साहित्य अकादमी नई दिल्ली द्वारा डॉ० गोयनका के कुशल संपादन में ‘प्रेमचंद कहानी रचनावली’ भाग-6 का प्रकाशन किया गया इस रचनावली में प्रेमचंद की उपलब्ध 298 कहानियों को क्रम से सजाकर उनके प्रथम पाठ को प्रकाशित किया गया, जो वास्तव में साहित्यजगत् में एक ऐतिहासिक कार्य था क्योंकि इस रचनावली द्वारा पाठकों को प्रेमचंद की कहानियाँ क्रमानुसार पढ़ने को मिलीं जो अभी तक किसी भी संकलन में नहीं मिली थीं। यहाँ तक कि प्रेमचंद के सर्वकालिक महान कहानी संकलन मानसरोवर भाग-8 में भी कहानियाँ बिना किसी क्रम के संकलित की गई थी जिससे कहानियों का कालक्रम बिखरता है और पाठकों को समझ नहीं आता कि कहानी किस वर्ष में प्रकाशित की गई थी। परंतु ‘प्रेमचंद कहानी रचनावली’ भाग-6 में पाठक उपलब्ध 298 कहानियों को क्रम से पढ़ सकता है जो कि एक अभी तक का महत्वपूर्ण कार्य था। इस संकलन में ज्यादातर कहानी प्रथम संकलनों से प्रस्तुत की गई हैं जिस कारण वर्तमान समय के कहानी संकलनों में प्रकाशित प्रेमचंद की कहानियों के बीच का भेद पाठक आसानी से समझ सकता है क्योंकि प्रथम संस्करण में प्रस्तुत कहानी के बाद प्रेमचंद के कई कहानी संकलन देखने को मिले एवं प्रेमचंद साहित्य को कॉपीराइट एक्ट से मुक्त हो जाने के बाद देश के विभिन्न प्रकाशकों ने प्रेमचंद की कहानियों के कई संकलन प्रकाशित किए जिसमें प्रेस मिस्टेक के कारण कई जगह कहानी के पाठों में भिन्नता आ गई है। इस कारण यह संकलन प्रथम पाठ की वजह से अपना एक अलग महत्व रखता है इस संबंध में किसी भी आलोचकों की दृष्टि नहीं गई थी और न ही उनके कहानियों के प्रथम पाठ को सुरक्षित रखने का प्रयास किया गया था। इस पुस्तक की समीक्षा देश की कई पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई।

इन उपरोक्त पुस्तकों के अलावा डॉ० गोयनका ने एक नितांत अप्राप्य लेख ‘राज्यवाद और साम्राज्यवाद’ साप्ताहिक पत्रिका ‘पंचजन्य’ के 10 अगस्त 2008 के अंक में, गोरखपुर से प्रकाशित ‘दस्तावेज’ पत्रिका में एवं देश की विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित कराकर प्रेमचंद साहित्य में शामिल करवाया। यह लेख गोरखपुर से प्रकाशित पत्र ‘स्वदेश’ के 18 मार्च 1928 के अंक में प्रकाशित हुआ था। यही लेख अभी हाल ही में दिल्ली से प्रकाशित दैनिक पत्र ‘जनसत्ता’ के रविवारीय संस्करण 25 अगस्त 2013 के अंक में पुनः प्रकाशित करके इसे सहेज दिया है। इस लेख में प्रेमचंद साम्यवाद को परिभाषित भी करते हैं। वे साम्यवाद में व्यापारियों और मजदूरों की विजय को देखते हैं, न कि सामान्य जनता की इस कारण उनके अनुसार रूसी क्रांति की विजय से साधारण जनता को अन्याय पर न्याय की और मिथ्या जीवन पर सत्य की विजय नहीं मिलेगी। साधारण जनता साम्यवाद में भी न्याय के लिए तरसती रहेगी और पूँजीवाद की बुराईयाँ जैसे विषमता, अन्याय और स्वार्थपरता को उसे पूर्ववत् रूप में झेलना होगा।

8. डॉ० प्रदीप जैन द्वारा किए गए कार्य का संक्षिप्त विवरण

मुजफ्फरनगर उ०प्र० के निवासी डॉ० प्रदीप जैन ने भी प्रेमचंद के गुमशुदा साहित्य को खोजने का महनीय कार्य किया है। उनके द्वारा हिंदी साहित्य में शामिल किए गए लुप्त प्रेमचंद साहित्य का विवरण इस प्रकार है—1. 'हिंदी साहित्य सम्मेलन, दिल्ली में दिया गया भाषण' ('कादंबिनी मासिक पत्रिका', जुलाई 2006 के अंक में 'हम बिना तैयारी के लेखक बनना चाहते हैं' शीर्षक से प्रकाशित), 2. 'पद्मसिंह शर्मा के साथ तीन दिन' ('उत्तरप्रदेश मासिक पत्रिका', जुलाई 2006 के अंक में प्रकाशित), 3. 'आबशारे न्याग्रा', उर्दू लेख ('आजकल मासिक पत्रिका', अक्टूबर 2006 के अंक में प्रकाशित), 4. 'दो अँग्रेजी फिलॉस्फर', उर्दू लेख ('आजकल मासिक पत्रिका', अक्टूबर 2006 के अंक में प्रकाशित), 5. 'कलामें सुरूर', उर्दू लेख ('आजकल मासिक पत्रिका', अक्टूबर 2006 के अंक में प्रकाशित), 6. 'स्विट्जरलैंड', उर्दू लेख ('आजकल मासिक पत्रिका', अक्टूबर 2006 के अंक में प्रकाशित), 7. 'महरी', उर्दू कहानी ('आजकल मासिक पत्रिका', अक्टूबर 2006 के अंक में प्रकाशित), 8. 'अशके नदामत्', उर्दू कहानी ('आजकल मासिक पत्रिका', 'नयादौर' 2006 के अंक में प्रकाशित), 9. 'इश्तिहारी शहीद', उर्दू कहानी ('नयादौर' जुलाई-अगस्त, 2007 के अंक में प्रकाशित), 10. 'इत्तिफाक ताकत है', उर्दू लेख 11. 'शहीदे आजम', उर्दू लेख ('उर्दू दुनिया', अक्टूबर, 2008 के अंक में प्रकाशित), 12. 'सौदा-ए-खाम', उर्दू कहानी ('उर्दू दुनिया', जुलाई 2008 के अंक में प्रकाशित), 13. 'जंजाल', उर्दू कहानी 14. 'अहदे अकबर में हिंदुस्तान की हालत' उर्दू लेख 15. 'अहमद अली तथा सज्जाद जहीर के नाम लिखे प्रेमचंद के पत्र' आदि रचनाओं को साहित्य जगत में शामिल कराने का श्रेय डॉ० जैन को जाता है। (पुस्तक प्रेमचंद की शेष रचनाएँ, डॉ० प्रदीप जैन, पृष्ठ : 59)

इन रचनाओं के अलावा डॉ० जैन ने प्रेमचंद की दो अप्राप्य पुस्तकों (1) 'निजात' कहानी संकलन एवं (2) 'बा-कमालों के दर्शन' (द्वितीय संस्करण) को खोज करके इनका प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत किया। इन कहानी संकलनों में से 'निजात' कहानी संकलन का संपूर्ण विवरण दिल्ली से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'आजकल' के जुलाई 2007 के अंक में पृष्ठ : 14-16 तक किया गया है। जिसमें डॉ० जैन ने 'निजात' का आतंरिक मुखपृष्ठ के साथ प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत किया है। इसके आतंरिक मुखपृष्ठ पर प्रकाशित विवरण इस प्रकार मिलता है—(जुमला हकूत बहक पब्लिशर्स महफूज है-निजात-अज-फितरते निगार मुंशी प्रेमचंद जी-मुसन्निफ-पर्दा-ए-मजाज, ख्वाबो ख्याल, गबन बगैरह, तीर्थराम हरबंसलाल पब्लिशर्स ताजिराने कुतुब चौक अनारकली लाहौर) इस संकलन में प्रेमचंद की 13 उर्दू कहानियों को शामिल किया गया था, जो आगे चलकर 'आखिरी तोहफा' नामक कहानी संकलन से प्रकाशित हुई। यह कहानी संकलन वर्ष 1933 में प्रकाशित हुआ।

इन लुप्तप्रायः रचनाओं को प्रकाशित कराने के बाद डॉ० प्रदीप जैन का एक और महत्वपूर्ण गंभीर कार्य पुस्तक 'प्रेमचंद की शेष रचनाएँ' रूप में प्रेमचंद की खोजी रचनाओं का और मिलता है। यह पुस्तक दिल्ली से राजकमल प्रकाशन द्वारा वर्ष 2011 में प्रकाशित हुई थी इस पुस्तक में डॉ० जैन द्वारा प्रेमचंद की शेष बची गुमशुदा रचनाओं को संकलित करने का दावा किया गया है। इस पुस्तक में दी गई रचनाओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

1. कहानी

(1) 'दाराशिकोह का दरबार' उर्दू कहानी ('उर्दू मासिक 'आजाद', के सितंबर 1908 के अंक में प्रकाशित), (2) 'इश्तिहारी शहीद' उर्दू कहानी (उर्दू मासिक 'जमाना' के अप्रैल-मई 1915 के संयुक्तांक में प्रकाशित) (3) 'जंजाल' उर्दू कहानी (उर्दू साप्ताहिक 'तहजीबे-निस्वां', के 3 अगस्त 1918 के अंक में प्रकाशित), (4) 'सौदा-ए-खाम' उर्दू कहानी (उर्दू मासिक 'तमद्दुन', दिल्ली के फरवरी, 1920 के अंक में प्रकाशित), (5) 'महरी' उर्दू कहानी (उर्दू मासिक 'जमाना', के नवंबर 1926 के अंक में प्रकाशित), (6) 'का की देवी' उर्दू कहानी (उर्दू कहानी संकलन 'निजात' (प्रथम प्रकाशन वर्ष 1933) में प्रकाशित) आदि।

2. लेख

(1) 'अहदे अकबर में हिंदुस्तान की हालत' उर्दू लेख (उर्दू मासिक 'उर्दू-ए-मुअल्ला', के अक्टूबर-नवंबर 1907 के अंक में प्रकाशित), (2) 'इत्तिफाक ताकत है', उर्दू लेख (उर्दू मासिक 'आजाद', के मार्च 1908 के अंक में प्रकाशित), (3) 'आबशारे न्याग्रा', उर्दू लेख ('उर्दू मासिक 'जमाना', के जुलाई 1908 के अंक में प्रकाशित), (4) 'जॉन-ऑफ-आर्क', उर्दू लेख ('उर्दू मासिक 'जमाना', के जुलाई 1909 के अंक में प्रकाशित), (5) 'कलामे-सुरूर', उर्दू लेख ('उर्दू मासिक 'जमाना', के जुलाई 1911 के अंक में प्रकाशित), (6) 'शहीदे-आजम', उर्दू लेख (वर्ष 1931 में प्रकाशित संकलन 'कारनामा-ए-हुसैन' में प्रकाशित) यहाँ यह कहना समीचीन होगा कि यह सभी रचनाएँ उर्दू में प्रकाशित हुई थीं जिनको हिंदी में रूपांतरण करके डॉ० जैन ने पुस्तक में संकलित किया। (7) 'पद्मसिंह शर्मा के साथ तीन दिन', (हिंदी मासिक 'विशाल भारत' के अगस्त 1932 के अंक में प्रकाशित) आदि।

3. भाषण

(1) 'साहित्य और सदाचार' (हिंदी मासिक 'विशाल भारत' के अक्टूबर 1932 के अंक में प्रकाशित)

4. पत्र

(1) 'अहमद अली एवं सज्जाद जहीर के नाम प्रेमचंद के पत्र' (उर्दू मासिक 'नया अदब और कलीम' के जनवरी-फरवरी-मार्च 1940 के संयुक्तांक अंक में प्रकाशित), (2) 'पं० देवीदत्त शुक्ल के नाम पत्र' (हिंदी त्रैमासिक 'सम्मेलन पत्रिका' के पौष-ज्येष्ठ 1903-04 के अंक में प्रकाशित), (3) 'प्रेमचंद-महताब राय के बीच पत्राचार' एवं (4) 'पंडित जी के नाम' आदि। विभिन्न लेखकों को लिखे गए यह 35 पत्र संकलित कर प्रकाशित कराने का श्रेय डॉ० जैन को जाता है क्योंकि यह पत्र इससे पूर्व प्रकाशित संकलनों (1) चिट्ठी-पत्री दो खंड, (संकलनकर्ता-अमृतराय एवं मदनगोपाल), (2) प्रेमचंद रचनावली भाग-19 (जनवाणी प्रकाशन नईदिल्ली से प्रकाशित प्रेमचंद का संपूर्ण साहित्य 20 खंडों में प्रकाशित) एवं (3) प्रेमचंद : पत्राकोश (संकलन व संपादनकर्ता-डॉ० कमल किशोर गोयनका) में प्रकाशित नहीं हो पाए थे। 35 नए पत्रों को शामिल करके डॉ० जैन ने प्रेमचंद के पत्रों की संख्या में अभिवृद्धि करने का एक महत्वपूर्ण कार्य संपादित किया। अभी हाल ही में महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा महाराष्ट्र से प्रकाशित पत्रिका 'बहुवचन' के जनवरी-मार्च 2013 के अंक में पृष्ठ : 45-50 तक संपूर्ण प्रमाण के साथ प्रेमचंद की नितांत अप्राप्य कहानी 'रक्षा मे हत्या' को

प्रकाशित कराने का महनीय कार्य किया है। यह कहानी अभी तक अप्राप्य थी। इस कहानी के प्रमाणिकता के तौर पर डॉ० जैन कहते हैं कि—‘यह कहानी हिंदी पुस्तक भंडार, लहेरियासराय से रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी के संपादन में प्रकाशित होने वाले मासिक पत्र ‘बालक’ के माघ 1983 (जनवरी 1927) के अंक में प्रेमचंद की यह कहानी पृष्ठ संख्या 2 से 8 तक प्रकाशित हुई थी। विगत 85 वर्षों से ‘बालक’ के पृष्ठों में अचीन्ही पड़ी यह दुर्लभ एवं असंदर्भित कहानी ‘रक्षा मे हत्या’ प्रेमचंद की दुर्लभ रचनाओं की खोज के प्रति विद्वानों एवं प्रेमचंद विशेषज्ञों की घोर अपेक्षा का ज्वलंत प्रमाण है।’

उपरोक्तानुसार इस अध्ययन के द्वारा हम कह सकते हैं कि प्रेमचंद साहित्य की लुप्तप्रायः रचनाओं को प्रकाशित कराने का कार्य समय-समय पर विभिन्न विद्वान आलोचकों द्वारा किया जाता रहा है, इसके लिये हिंदी साहित्य जगत् हमेशा इन आलोचकों का आभारी रहेगा, लेकिन इतने विपुल साहित्य की खोजबीन के बाद भी प्रेमचंद की विभिन्न रचनाएँ अभी भी पत्र-पत्रिकाओं में इधर-उधर दबी पड़ी हैं। जिन्हें खोजा जाना शेष है। आशा की जानी चाहिए कि भविष्य में कोई प्रेमचंद का साधक इन रचनाओं को खोजने का कार्य कर प्रेमचंद साहित्य में अभिवृद्धि कर सकेगा। इन दबी छिपी रचनाओं की जानकारी डॉ० कमलकिशोर गोयनका की पुस्तक ‘प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य’ खंड-2 के पृष्ठ : 683-706 तक की जा सकती है। इसी सूची में ‘किशना’ उपन्यास जो मेडिकल हॉल प्रेस बनारस से वर्ष 1906 में प्रकाशित हुआ था, लेख, पुस्तक समीक्षाएँ आदि की जानकारी विस्तृत रूप से दी गई है। यह अप्राप्य सामग्री लगभग 100 की संख्या तक बैठती है। इस लेख को लिखने का केवल इतना ही अभिप्राय है कि जिन विद्वान आलोचकों ने इतने गंभीर शोधकार्य कर प्रेमचंद के नष्ट होते खजाने को बचाया है, उन्हें हिंदी-जगत् हमेशा याद रखे एवं उनके द्वारा किए गए कार्य का लाभ ले।

आवास क्रमांक एच-3,
राजीव गांधी प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, एयरपोर्ट,
वायपास रोड, भोपाल-462033 (म०प्र०)
मो०नं० 9826583363

हिंदी-दिवस पर समाचार-पत्रों में हिंदी की दशा-दिशा पर चिंतन

डॉ० सुशील कुमार (शिक्षक)
हिंदी यूनिवर्सिटी स्कूल
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

14 सितंबर को हिंदी दिवस पर हिंदी की दशा-दिशा पर खूब चिंतन-मनन होता है। हिंदीप्रेमी हिंदी के सम्मान में कार्यक्रमों का आयोजन करते हैं। देश-विदेश में हिंदी की क्या स्थिति है? उसके विकास की क्या-क्या संभावनाएँ हैं? हिंदी के विकास में क्या-क्या समस्याएँ हैं? किस प्रकार से हिंदी विश्व में प्रथम स्थान पा सकती है? आदि प्रश्नों को लेकर खूब चिंतन व मंथन होता है। समाचार-पत्र दर्पण के समान है, जोकि समाज को सही तस्वीर दिखाते हैं। हिंदी दिवस पर हिंदी के समाचार-पत्रों में हिंदी की दशा-दिशा पर विद्वान लेखकों ने अपने विचार रखे और देश-विदेश में हिंदी की क्या स्थिति है व आगे क्या संभावनाएँ हैं, इस पर बेबाक ढंग से अपनी लेखनी चलाई और समाज के आगे सही तस्वीर रखी ताकि लोगों के मन में हिंदी भाषा को लेकर जो प्रश्न हैं उनके जवाब मिल सकें। इस शोध-पत्र के पीछे भी यही उद्देश्य है कि समाज के प्रत्येक वर्ग को हिंदी भाषा की दशा-दिशा के विषय में जानकारी मिल सके। हिंदी दिवस पर हिंदी के राष्ट्रीय समाचार-पत्रों में हिंदी पर जो चिंतन हुआ है, उसके मुख्य बिंदु इस प्रकार हैं—

1. हिंदी की स्थिति

1952 में हिंदी विश्व में पाँचवे स्थान पर थी। 1980 के दशक में वह चीनी, अँग्रेजी भाषा के बाद तीसरे स्थान पर आ गई। आज उसकी लोकप्रियता लोगों के सिर चढ़कर बोल रही है और वह चीनी को पछाड़कर नंबर एक होने का गौरव अर्जित कर ले, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए।¹ जहाँ हिंदी विश्व की नंबर एक भाषा बनने के लिए छटपटा रही है, वहीं अपने देश भारत में राजभाषा के लिए संघर्ष कर रही है। अपने ही देश में हमारी अपनी ही भाषा को वह सम्मान नहीं मिला, जो मिलना चाहिए। निश्चित रूप से हिंदी का प्रयोग बढ़ा है, पर हिंदी को उसका वाजिब हक मिलना अभी शेष है।² भारत देश में दुर्भाग्य से लगभग दो सौ वर्षों से फैला 'अँग्रेजी आतंक' यथावत् है। अब 'विकास' की नई पूँजीवादी शक्तियों और अवधारणाओं ने जो मोहक और अपसंस्कृति का रूप लिया है उसके चलते न केवल लोकभाषा, बल्कि लोकभूषा, लोकभवन, लोकभोजन पूरी लोकसंस्कृति बदलने जा रही है। हिंदी के अँग्रेजी शुभचितक सरल हिंदी को भी सहन नहीं कर पा रहे हैं। वे या तो उसे विज्ञापन भाषा बनाने में लगे हैं या 'हिंगलिस'।³ जबकि हिंदी संसार की सबसे सरल, मधुर एवं वैज्ञानिक भाषा है, फिर

भी हिंदी की प्रगति और उसके विकास की भावना का भारत में अभाव है। हिंदी की लिपि भी इतनी बोधगम्य है कि थोड़े अभ्यास में समझ में आ जाती है। यह जैसे बोली जा रही है— वैसे ही लिखी जाती है।⁴ भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में हिंदी भाषा रीढ़ की अस्थि है। स्वतंत्रतापूर्व और उसके पश्चात् भारतीय संचार के क्षेत्र में हिंदी भाषा ने, न सिर्फ समूचे राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधे रखा, अपितु जनसामान्य में संस्कृति, सभ्यता और शिक्षा के प्रसार में दीपस्तंभ भी सिद्ध हुई है। हिंदी एक भाषा ही नहीं, एक संस्कृति है, एक वैचारिक क्रांति है, जो सदियों से अपनी यात्रा के अनंत पड़ावों और मोड़ों से होती हुई, एक ऐसी गंगा में परिवर्तित हो गई है, जिसका भाव तन के मैल से मुक्ति देता है, तो उसके साहित्य का प्रभाव मन के मैल को धाने का काम करता है। इस हिंदी रूपी गंगा में अनेक दिशाओं में असंख्य धाराएँ आकर मिलती रहीं और उसने उन सभी को सहजतापूर्वक स्वीकार भी किया। हिंदी के दामन में जो भी भाषा और बोली आकर गिरी, वह और उजली और निखरी बनकर उभरी।⁵

2. विदेश में हिंदी

विदेश में हिंदी भाषा के प्रति लोगों का रुझान दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। दर्जनों विदेशी विश्वविद्यालय हिंदी पढ़ाते हैं। अमेरिका, आस्ट्रेलिया जैसे अनेक देशों में प्राथमिक कक्षाओं में भी हिंदी की उपस्थिति है। अमेरिका हिंदी को उन पाँच भाषाओं में गिनता है, जिनमें उसके नागरिकों की दक्षता ज़रूरी समझी जाती है। संयुक्त राष्ट्र महासचिव बान की मून हिंदी में बोलते हैं, तो गूगल के सीईओ को यह कहने में संकोच नहीं होता कि इंटरनेट की दुनिया में भविष्य हिंदी और मंदारिन का है।⁶ जर्मन के लोग हिंदी को एशियाई आबादी के एक बड़े वर्ग के संपर्क साधने का सबसे सशक्त माध्यम मानने लगे हैं। जर्मनी हाईलेडबर्ग, लोअर सेक्सोनी के लाईपलिंग, बर्लिन के हंबोलडिट और बॉन विश्वविद्यालय के अलावा दुनिया के कई शिक्षण संस्थाओं में अब हिंदी भाषा पाठ्यक्रम में शामिल कर ली गई है। एक आँकड़े के मुताबिक दुनिया भर के 150 विश्वविद्यालयों और कई छोटे-बड़े शिक्षण संस्थाओं में रिसर्च स्तर तक अध्ययन-अध्यापन की पूरी व्यवस्था की गई है। यूरोप से ही तकरीबन दो दर्जन पत्र-पत्रिकाएँ हिंदी भाषा में प्रकाशित होती हैं।⁷ आज पाकिस्तानी युवाओं में उर्दू के बजाए हिंदी ज़्यादा लोकप्रिय हो रही है। पाकिस्तान की तुलना में बांग्लादेश में हिंदी का प्रचार-प्रसार कम रहा है। पर अब वहाँ भी नई पीढ़ी में हिंदी अपनी पैठ बना रही है। हिंदी के कार्टून चैनल वहाँ भी घर-घर देखे जा रहे हैं। हमारे तीसरे पड़ोसी नेपाल की स्थिति एकदम भिन्न है। वहाँ हिंदी की जड़े काफ़ी गहरी हैं। इसके साथ चीन में आजकल हिंदी पढ़ी और पढ़ाई जा रही है।⁸

3. भाषा से संबंधित आँकड़े

संपूर्ण विश्व में कुल भाषाओं की संख्या 6809 है। इन भाषाओं में से 90 प्रतिशत भाषाएँ ऐसी हैं, जिन्हें बोलने वालों की संख्या एक लाख से भी कम है। इनमें से भाषाओं को चिंताजनक स्थिति वाली भाषाओं के रूप में सूचीबद्ध किया जा रहा है। लगभग डेढ़-दो सौ भाषाएँ ऐसी भी हैं, जिन्हें 10 लाख से अधिक लोग बोलते हैं, जबकि 357 भाषाएँ ऐसी जिनको मात्र 50 व्यक्ति ही प्रयोग में लाते हैं। इतना ही नहीं 46 भाषाएँ ऐसी हैं, जिन्हें मात्र एक-एक आदमी बोलता है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा कराए गए एक अध्ययन से स्पष्ट हुआ है कि मातृभाषाओं के रूप में विलुप्तिकरण की कगार पर जो भाषाएँ वर्ष 2001 में लगभग 900 की संख्या में थीं। उन भाषाओं की संख्या सन् 2012

तक आते-आते लगभग 2950 पहुँच गई है। इसके अतिरिक्त एक सर्वेक्षण के मुताबिक आज विश्व में आधा अरब लोग हिंदी बोलते हैं। और तकरीबन एक अरब लोग हिंदी बखूबी समझते हैं।⁹ पब्लिक लैंग्वेज सर्वे ऑफ इंडिया के ताजा सर्वेक्षण के आँकड़े बताते हैं कि वृद्धि की मौजूदा रफ्तार से हिंदी 50 साल में अँग्रेजी को पीछे छोड़ देगी। माना कि अँग्रेजी में अब दस लाख शब्द हो गए हैं। हिंदी परिवार में भी इतने शब्द होंगे। ग्लोबल लैंग्वेज मॉनीटर के अनुसार फ्रेंच में लगभग एक लाख, स्पैनिश में सवा दो लाख और रूसी में सवा लाख शब्द बताए जाते हैं। हिंदी विश्व की दूसरी सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषा है। हिंदी का भविष्य 75 करोड़ लोगों के बीच असुरक्षित है। इसके साथ-साथ दुनिया का नौवा हिस्सा हिंदी भाषा में बोलता है तथा सातवां हिस्सा इसकी लिपि का इस्तेमाल करता है। उस भाषा के मिट जाने का डर अवास्तविक है।¹⁰

4. तकनीकी स्तर पर हिंदी

लोग हाल तक टैबलेट्स ओर मोबाइल फ़ोन में हिंदी के लिए पर्याप्त समर्थन मौजूद न होने पर व्यथित थे। अब हाल ही में जारी एंड्रोइड 4.3 जेलीबीन, एप्पल आईओएस 7, विंडोज 8.1 और ब्लैकबेरी 10.2, जो 99 फीसदी बाजार नियंत्रित करते हैं, हिंदी का पूर्ण समर्थन कर रहे हैं। गूगल ने हिंदी हस्तलिपि पहचान सॉफ्टवेयर जारी किया है और मीडिया-ग्राफिक्स सॉफ्टवेयरों में दशकों से गुम यूनिकोड हिंदी समर्थन अब आ गया है। दक्षिण अफ्रीका और मॉरिशस में हिंदी कंप्यूटरिंग कार्यशालाएँ आयोजित हुई हैं।¹¹ सूचना तकनीक से संबद्ध हर बड़ी कंपनी चाहे माइक्रोसॉफ्ट हो, ऐपल हो, गूगल, फेसबुक, नोकिया अथवा सोनी, वे सभी हिंदी के महत्त्व को समझ चुकी हैं।¹² आज जनसंचार के प्रायः समस्त क्षेत्रों में हिंदी के वर्चस्व को देखा जा सकता है। मुद्रित माध्यम हो या इलेक्ट्रॉनिक, सभी में हिंदी ने अपनी अनिवार्यता को प्रतिबिंबित किया है। सूचना संचार के वैश्विक पटल पर हिंदी परस्पर प्रेम और संबंधों को सींच रही है। दुनिया के अनेक देशों से संचालित वेब पॉटल्स की हिंदी भाषा को एक विकल्प के रूप में चुनने की विवशता, इसकी अतिशय लोकप्रियता और वांछनीयता की ओर संकेत करती है।¹³

5. अदालत और हिंदी

गुजरात हाईकोर्ट ने कहा है कि संविधान के तहत हिंदी राष्ट्रभाषा नहीं है। यह नई बात नहीं है। बड़ी बात हाईकोर्ट की यह स्वीकारोक्ति है कि अधिकांश भारतीयों ने उसे राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लिया है। इधर सुप्रीमकोर्ट में हिंदी के पक्ष में फैसले हुए हैं। दिल्ली की अदालतों में हिंदी का प्रयोग होने लगा।¹⁴ भले ही सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 348 का तर्क देकर अपने यहाँ एवं हाईकोर्ट की कार्यवाही की भाषा को अँग्रेजी बताया हो, पर आम भारतीय के लिए यह समाचार पीड़ादायक ही है कि सितंबर 2013 में भी हमारी हिंदी देश के सुप्रीमकोर्ट में हार गई है। यह विडंबना ही है कि देश का एक नागरिक जब सूचना के अधिकार क़ानून के तहत सुप्रीमकोर्ट से विकलांगों के बारे में सूचनाएँ माँगता है, तो उसके हिंदी में लिखे पत्र का जवाब अँग्रेजी में दिया जाता है। जानकारी माँगने वाला प्रार्थी जब आरटीआई क़ानून का हवाला देकर हिंदी में जवाब माँगता है तो उसे जवाब मिलता है कि सुप्रीमकोर्ट की भाषा अँग्रेजी है। इसी तरह 1970 में सर्वोच्च न्यायालय में राजनारायण की याचिका पर सुनवाई से सिर्फ इसलिए इंकार कर दिया था, क्योंकि वह हिंदी में बहस करना चाहते थे। वर्ष 2004 में राजकुमार कौशिक की याचिका को इसलिए नहीं स्वीकार किया गया, क्योंकि हिंदी के अधिकार की पैरवी करने वाली याचिका हिंदी में थी।¹⁵ आज हालत यह है कि

10 सितंबर, 2013 को दिल्ली की ज़िला अदालत में पहली बार हिंदी में निर्णय सुनाया गया, तो यह प्रमुख समाचार बन गया। सर्वोच्च न्यायालय ने तो साफ शब्दों में बता दिया है कि उसके कक्षों में अभी हिंदी पहुँचने की कोई संभावना नहीं है।¹⁶

6. कॉरपोरेट जगत में हिंदी की दस्तक

कॉरपोरेट दुनिया के अंदर हिंदी पहुँच चुकी है। बोर्ड की बैठक से लेकर शेरधारकों की आम सभाओं में हिंदी सुनाई दे रही है। अंग्रेज़ी के वर्चस्व को हिंदी तोड़ नहीं रही है, पर वह अपने लिए नई ज़मीन अवश्य तैयार कर रही है। इसके साथ ही, भारत में काम कर रहे मल्टी नेशनल कंपनियों के पेशेवर भी हिंदी सीख रहे हैं, जैसे अपोलो टायर्स के चेयरमैन और मैनेजिंग डायरेक्टर ओंकारसिंह कंवर अपनी बोर्ड की बैठकों में अंग्रेज़ी के साथ हिंदी बोलते हैं। टेलीकॉम कंपनी भारतीय एयरटेल मैनेजमेंट की बैठकों में भी हिंदी में संवाद शुरू हो गया है। गुडगांव में स्थित मारूति उद्योग लिमिटेड में इंजीनियर शाओं तुकामी जापानी पेशेवर है, लेकिन गुडगांव में तीन वर्ष के लिए आया है, इसलिए हिंदी सीख रहा है। मित्सुबिशी कंपनी से जुड़े तेतसु तनाशा आज हिंदी के शब्दों के अर्थ जान रहे हैं। फ्रांस के रिटेल कंपनी कॉरफोर के मुंबई स्थित ऑफिस में काम करने वाले मैरिस ट्रेसर ने बताया कि उसने भारत आते ही हिंदी की क्लास ज्वाइन कर ली। इसी तरह के पेशेवरों का संबंध आईटी, टेलीकॉम, मैनुफैक्चरिंग, आटो वगैरह क्षेत्रों की कंपनियों से है। एड गुरु प्रसून जोशी ने एक जगह लिखा कि कॉरपोरेट इंडिया हमेशा से ही हिंदी की ताकत को जानता है। कुल मिलाकर बात यह है कि हिंदी को लेकर कॉरपोरेट भारत में मीठी बयार बह रही है। हाँ, पर अभी इस बात का तो इंतजार है कि कॉरपोरेट इंडिया अपनी वार्षिक रिपोर्ट और वेबसाइट भी हिंदी में कब लाएगा।¹⁷

7. मीडिया में बढ़ता हिंदी का वर्चस्व

हिंदी फ़िल्मों के संवाद तथा गानों और मुख्य धारा के हिंदी मीडिया ने इस भाषा को करोड़ों-करोड़ लोगों की वाणी बना दिया है। देश की एक बड़ी आबादी आज अपने मनपसंद समाचार-विचार, खेल, सिनेमा और राजनीति की समस्त सूचनाएँ इसी भाषा के माध्यम से प्राप्त करती हैं। दुनिया की हर बड़ी मीडिया कंपनी, बैंकिंग प्रतिष्ठान, सॉफ्टवेयर कंपनियाँ तथा सोशल नेटवर्किंग, साइट्स हिंदी को लेकर नित नए प्रयोगों में जुटी है। हिंदी समाचारों और कार्यक्रमों के चैनलों की बाढ़-सी आ गई है। डिस्कवरी और एनजीसी समेत प्रायः सभी बड़े चैनल अपने लोकप्रिय और व्यापक टीआरपी कार्यक्रमों का निर्माण हिंदी भाषा में कर रहे हैं।¹⁸ हिंदी की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक शक्ति लाजवाब है। स्टारप्लस की मिसाल लीजिए, जो 90 के दशक में एक अंग्रेज़ी टेलीविजन चैनल हुआ करता था। जब उसने प्रयोग के तौर पर इक्का-दुक्का हिंदी कार्यक्रम शुरू किए, तो वही हिट हो गए। टी आर पी और विज्ञापनों में अंग्रेज़ी के कार्यक्रम पिछड़ गए। शोधार्थियों की दिलचस्पी का विषय है—‘ठंडा मतलब कोका कोला’, ‘यही है राईट चॉइस बेबी’ (पेप्सी), ‘दाग अच्छे हैं’ (सर्फ एक्सल), टेस्ट भी, हैल्थ भी (मैगी) और थोड़ी सी पेट पूजा (पर्क चॉकलेट)।¹⁹ बरसों तक खुद को छोटा, कमतर और हीन महसूस करने के बाद अंततः हिंदी ने एक बड़ी लकीर खींचनी शुरू कर दी है। वैश्विक स्तर पर पैदा हो रही हिंदी की इस स्वीकार्यता और आवश्यकता में एक बड़ा रोल अनुवाद का है।²⁰ हमारा मीडिया हिंदी को देश के कोने-कोने तक ही नहीं, पड़ोसी मुल्कों में पहुँचाने में भी कामयाब हुआ है। विदेशों में

हिंदी का जो प्रचार व प्रसार हो रहा है। वास्तव में यह हिंदी मीडिया, हिंदी फ़िल्म, हिंदी क्रिकेट कमेंटरी और कौन बनेगा करोड़पति जैसे कार्यक्रमों का कमाल है।²¹

9. हिंदी के उत्थान और विकास के लिए क्या करें

हिंदी के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाएँ, हिंदी में विभिन्न राज्यों की भाषाओं की सरल शब्दावली को समाहित करें। भाषा का व्यापक प्रचार और प्रसार करें।²² निजी और सरकारी, सभी संस्थानों में हिंदी में कामकाज को बढ़ावा देना और उसे रोजगार से जोड़ा जाना अतिआवश्यक है। देश की नीति-नियंता को हिंदी को उत्थान के संदर्भ में अपनी जिम्मेदारी का अहसास करना होगा। हिंदी के महत्त्व, उसके सामर्थ्य को समझना होगा। उसके विकास की नैसर्गिक चुनौतियों के समाधान खोजने होंगे। देखें कि क्या हम भी किसी तरह उसके विकास में हाथ बंट सकते हैं? नए शब्द गढ़कर, विविध क्षेत्रों की शब्दावली का हिंदीकरण करके, ग्रंथों, पाठ्यपुस्तकों के अनुवाद करके, हिंदी पढ़ाकर, साहित्य रचकर, सॉफ्टवेयर-वेबसाइट बनाकर, दफ्तर में हिंदी का इस्तेमाल करके, हिंदी बोलकर, ब्लॉग बनाकर, फेसबुक पर हिंदी में लिखकर, किताबें रचकर, जानकारियाँ बाँटकर, हिंदी उत्पाद खरीदकर और जरूरत पड़ने पर अपनी भाषा के लिए आवाज उठाकर भी। सकारात्मकता ही हिंदी को हमारी ताकत बनाएगी और हमें हिंदी की।²³

अतः हम कह सकते हैं कि वह समय अब दूर नहीं, जब हिंदी पूरे विश्व के माथे की बिंदी होगी, क्योंकि जिस तरह से बाजार व मीडिया में हिंदी की माँग बढ़ी है उससे हिंदीभाषा का प्रचार-प्रसार बड़ी तेजी से हो रहा है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी भाषा को लेकर आज जो माहौल है, उसे देखते हुए प्रत्येक व्यक्ति के लिए हिंदी जानना अतिआवश्यक हो गया है, क्योंकि आने वाले समय में हिंदी भाषा की जानकारी के बिना लोगों का काम नहीं चलेगा। हिंदी भाषा लोगों को जोड़ने वाली भाषा है। इसलिए जरूरत है कि बाजार व लोगों की सोच के अनुसार हिंदी भाषा को व्यावहारिक बनाया जाए, ताकि आनेवाले समय में हिंदीभाषा विश्व प्रथम स्थानवाली भाषा बन सके।

संदर्भ

1. हिंदी के वैश्विक सरोकार, प्रो० पी०के० आर्य, हरिभूमि, संपादक ओमकार चौधरी, हरिभूमि कम्यूनिकेशंस प्राईवेट लिमिटेड के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक देवेन्द्रसिंह द्वारा हरिभूमि पब्लिकेशंस चुलियाना मोड़, दिल्ली रोड़ रोहतक से मुद्रित एवं हरिभूमि कार्यालय 330, विनय नगर, दिल्ली बाईपास, रोहतक से प्रकाशित। दिन शनिवार, 14 सितंबर 2013, वर्ष: 17, अंक 273, पृ० 4
2. आधार तलाशती मेरे देश की हिंदी, लक्ष्मीकांत चावला, अमर उजाला, संपादक उदयकुमार, मुद्रक एवं प्रकाशक रौबिंद्रासिंह चट्टा द्वारा एस०सी०ओ० 34, 35, 36, 37 सैक्टर-9, डी, चंडीगढ़ से प्रकाशित एवं अमर उजाला प्रैस प्लॉट नं० 22, इंडस्ट्रियल एरिया, फेस-II पंचकूला एवं अमर उजाला प्रैस, सी-21, सैक्टर-59 नोएडा से मुद्रित। दिन शनिवार, 14 सितंबर, 2013, वर्ष 5 अंक 56, पृ० 10
3. अँग्रेजी का आतंक, नंद चतुर्वेदी, जनसत्ता, कार्यकारी संपादक ओम थानवी, संपादक मुकेश भारद्वाज (चंडीगढ़), दि इण्डियन एक्स्प्रेस लिमिटेड के लिए संजयकुमार द्वारा आई०ई० प्रेस० से 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, सैक्टर-6 पंचकूला, हरियाणा से मुद्रित और एससीओ- 244-42, फर्स्ट फ्लोर, जगदीश ज्वैलर्स के ऊपर, सैक्टर, 22सी, चंडीगढ़ से प्रकाशित। दिन रविवार, 15 सितंबर, 2013, रविवारी पृष्ठ, पृ० 3
4. राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाएँ, सुरेश उजाला, अजीत समाचार, संपादक रजिंदर सिंह, मुद्रक और प्रकाशक ने साधुसिंह हमदर्द ट्रस्ट के लिए डेली अजीत प्रिंटर्स ने छपवाकर, अजीत भवन, नेहरू गार्डन रोड, जालंधर से प्रकाशित किया। दिन शनिवार, 14 सितम्बर 2013, वर्ष 18,

अंक: 254, पृ० 4

5. हिंदी के वैश्विक सरोकार, प्रो० पी०के० आर्य, हरिभूमि, संपादक ओमकार चौधरी, हरिभूमि कम्यूनिकेशंस प्राईवेट लिमिटेड के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक देवेन्द्रसिंह द्वारा हरिभूमि पब्लिकेशंस चुलियाना मोड, दिल्ली रोड, रोहतक से मुद्रित एवं हरिभूमि कार्यालय 330, विनय नगर, दिल्ली बाईपास, रोहतक से प्रकाशित। दिन शनिवार, 14 सितम्बर 2013, वर्ष: 17, अंक 273, पृ० 4
6. हिंदी की ताकत भी तो जानिए, बालेंदु शर्मा दाधीच, दैनिक ट्रिब्यून, प्रधान संपादक राज चेंगप्पा, संपादक, मुद्रक व प्रकाशक: संतोष तिवारी, प्रकाशक व मुद्रक संतोष तिवारी द्वारा द ट्रिब्यून ट्रस्ट की ओर से ट्रिब्यून प्रैस, सैक्टर 29-सी, चंडीगढ़ से मुद्रित। स्वत्वाधिकार द ट्रिब्यून ट्रस्ट, 2007, दिन शनिवार, 14 सितम्बर, 2013, वर्ष: 36, अंक 17, पृ० 8
7. हिंदी के वैश्विक सरोकार, प्रो० पी० के० आर्य, हरिभूमि, संपादक ओमकार चौधरी, हरिभूमि कम्यूनिकेशंस प्राईवेट लिमिटेड के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक देवेन्द्र सिंह द्वारा हरिभूमि पब्लिकेशंस चुलियाना मोड, दिल्ली रोड, रोहतक से मुद्रित एवं हरिभूमि कार्यालय 330, विनय नगर, दिल्ली बाईपास, रोहतक से प्रकाशित। दिन शनिवार, 14 सितंबर 2013, वर्ष: 17, अंक 273, पृ० 4
8. नाकेबंदी के बावजूद सरहद पर हिंदी, गोविंदसिंह, अमर उजाला, संपादक मुकेश भारद्वाज (चंडीगढ़) दि इंडियन एक्स्प्रेस लिमिटेड के लिए संजयकुमार द्वारा आई०ई० प्रेस० से 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, सैक्टर-6 पंचकूला, हरियाणा से मुद्रित और एससीओ- 244-42, फर्स्ट फ्लोर, जगदीश ज्वैलर्स के ऊपर, सैक्टर, 22सी, चंडीगढ़ से प्रकाशित। दिन रविवार, 15 सितंबर, 2013, रविवारी पृष्ठ, पृ० 3
9. नाकेबंदी के बावजूद सरहद पर हिंदी, गोविंद सिंह, अमर उजाला, संपादक मुकेश भारद्वाज (चंडीगढ़) दि इंडियन एक्स्प्रेस लिमिटेड के लिए संजय कुमार द्वारा आई०ई० प्रेस० से 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, सैक्टर-6 पंचकूला, हरियाणा से मुद्रित और एससीओ- 244-42, फर्स्ट फ्लोर, जगदीश ज्वैलर्स के ऊपर, सैक्टर, 22सी, चंडीगढ़ से प्रकाशित। दिन रविवार, 15 सितम्बर, 2013, रविवारी पृष्ठ, पृ० 3
10. हिंदी की ताकत भी तो जानिए, बालेंदु शर्मा दाधीच, दैनिक ट्रिब्यून, प्रधान संपादक राज चेंगप्पा, संपादक, मुद्रक व प्रकाशक: संतोष तिवारी, प्रकाशक व मुद्रक संतोष तिवारी द्वारा द ट्रिब्यून ट्रस्ट की ओर से ट्रिब्यून प्रैस, सैक्टर 29-सी, चंडीगढ़ से मुद्रित। स्वत्वाधिकार द ट्रिब्यून ट्रस्ट, 2007, दिन शनिवार, 14 सितंबर, 2013, वर्ष: 36, अंक 17, पृ० 8
11. वही, पृ० 8
12. उत्थान की राह देखती हिंदी, अरविंदकुमार, दैनिक जागरण, प्रकाशन लि० के लिए निशिकांत ठाकुर द्वारा प्लॉट नं० 10, सैक्टर-29, हुदुडा, फेज-2, पानीपत से मुद्रित एवं प्रकाशित, प्रबंध संपादक-महेंद्रमोहन गुप्त, संपादक संजय गुप्त, दिन बृहस्पतिवार, 19 सितंबर, 2013, वर्ष 7 अंक 81, पृ० 6
13. हिंदी के वैश्विक सरोकार, प्रो० पी० के० आर्य, हरिभूमि, संपादक ओमकार चौधरी, हरिभूमि कम्यूनिकेशंस प्राईवेट लिमिटेड के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक देवेन्द्रसिंह द्वारा हरिभूमि पब्लिकेशंस चुलियाना मोड, दिल्ली रोड, रोहतक से मुद्रित एवं हरिभूमि कार्यालय 330, विनय नगर, दिल्ली बाईपास, रोहतक से प्रकाशित। दिन शनिवार, 14 सितंबर 2013, वर्ष: 17, अंक 273, पृ० 4
14. हिंदी की ताकत भी तो जानिए, बालेंदु शर्मा दाधीच, दैनिक ट्रिब्यून, प्रधान संपादक राज चेंगप्पा, संपादक, मुद्रक व प्रकाशक: संतोष तिवारी, प्रकाशक व मुद्रक संतोष तिवारी द्वारा द ट्रिब्यून ट्रस्ट की ओर से ट्रिब्यून प्रैस, सैक्टर 29-सी, चंडीगढ़ से मुद्रित। स्वत्वाधिकार द ट्रिब्यून ट्रस्ट, 2007, दिन शनिवार, 14 सितंबर, 2013, वर्ष: 36, अंक 17, पृ० 8
15. आधार तलाशती मेरे देश की हिंदी, लक्ष्मीकांत चावला, अमर उजाला, संपादक उदयकुमार, मुद्रक

- एवं प्रकाश रौबिंद्रासिंह चट्टा द्वारा एस०सी०ओ० 34, 35, 36, 37 सैक्टर-9, डी, चंडीगढ़ से प्रकाशित एवं अमर उजाला प्रैस प्लॉट नं० 22, इंडस्ट्रियल एरिया, फेस-11 पंचकूला एवं अमर उजाला प्रैस, सी-21, सैक्टर-59 नोएडा से मुद्रित। शनिवार, 14 सितंबर, 2013 वर्ष 5 अंक 56, पृ० 10
16. उत्थान की राह देखती हिंदी, अरविंदकुमार, दैनिक जागरण, प्रकाशन लि० के लिए निशिकांत ठाकुर द्वारा प्लॉट नं० 10, सैक्टर-29, फेज-2, पानीपत से मुद्रित एवं प्रकाशित, प्रबंध संपादक-महेंद्रमोहन गुप्त, संपादक संजय गुप्त, दिन बृहस्पतिवार, 19 सितंबर, 2013, वर्ष 7 अंक 81, पृ० 6
 17. कॉरपोरेट जगत में हिंदी की दस्तक, विवेक शुक्ला, दैनिक ट्रिब्यून, प्रधान संपादक राज चेंगप्पा, संपादक, मुद्रक व प्रकाशक: संतोष तिवारी, प्रकाशक व मुद्रक संतोष तिवारी द्वारा द ट्रिब्यून ट्रस्ट की ओर से ट्रिब्यून प्रैस, सैक्टर 29-सी, चंडीगढ़ से मुद्रित। स्वत्वाधिकार द ट्रिब्यून ट्रस्ट, 2007, दिन शनिवार, 14 सितंबर, 2013, वर्ष: 36, अंक 17, पृ० 8
 18. हिंदी के वैश्विक सरोकार, प्रो० पी० के० आर्य, हरिभूमि, संपादक ओमकार चौधरी, हरिभूमि कम्यूनिक्शंस प्राईवेट लिमिटेड के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक देवेंद्रसिंह द्वारा हरिभूमि पब्लिकेशंस चुलियाना मोड़, दिल्ली रोड, रोहतक से मुद्रित एवं हरिभूमि कार्यालय 330, विनय नगर, दिल्ली बाईपास, रोहतक से प्रकाशित। दिन शनिवार, 14 सितंबर 2013, वर्ष: 17, अंक 273, पृ० 4
 19. हिंदी की ताकत भी तो जानिए, बालेंदु शर्मा दाधीच, दैनिक ट्रिब्यून, प्रधान संपादक राज चेंगप्पा, संपादक, मुद्रक व प्रकाशक: संतोष तिवारी, प्रकाशक व मुद्रक संतोष तिवारी द्वारा द ट्रिब्यून ट्रस्ट की ओर से ट्रिब्यून प्रैस, सैक्टर 29-सी, चंडीगढ़ से मुद्रित। स्वत्वाधिकार द ट्रिब्यून ट्रस्ट, 2007, दिन शनिवार, 14 सितंबर, 2013, वर्ष: 36, अंक 17, पृ० 8
 20. मैं मरा बाज नहीं जीवित गोरैया चाहूँगा!, अनुपमा 'ऋतु', दैनिक भास्कर प्रकाशक एवं मुद्रक रमेशचंद्र अग्रवाल द्वारा मेसर्स डी०बी० कार्य लिमिटेड के लिए मलिकपुर, सरहिंद (फतेहगढ़ साहिब) से मुद्रित एवं डी० बी० कार्य लि, प्लॉट नं० 11.12, सैक्टर, 25 डी, चंडीगढ़ से प्रकाशित। वर्ष 14 अंक 130, दिन शनिवार, 14 सितंबर, 2013, पृ० 4
 21. नाकेबंदी के बावजूद सरहद पर हिंदी, गोविंदसिंह, अमर उजाला, संपादक मुकेश भारद्वाज (चंडीगढ़) दि इंडियन एक्स्प्रेस लिमिटेड के लिए संजयकुमार द्वारा आई०ई० प्रेस० से 5 इस्टीट्यूशनल एरिया, सैक्टर-6 पंचकूला, हरियाणा से मुद्रित और एससीओ-244-42, फर्स्ट फ्लोर, जगदीश ज्वैलर्स के ऊपर, सैक्टर, 22सी, चंडीगढ़ से प्रकाशित। दिन रविवार, 15 सितंबर, 2013, रविवारी पृष्ठ, पृ०. 3
 22. राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाएँ, सुरेश उजाला, अजीत समाचार, संपादक रजिंदर सिंह, मुद्रक और प्रकाशक ने साधुसिंह हमदर्द ट्रस्ट के लिए डेली अजीत प्रिंटरज ने छपवाकर, अजीत भवन, नेहरू गार्डन रोड, जालंधर से प्रकाशित किया। दिन शनिवार, 14 सितंबर 2013, वर्ष 18, अंक: 254, पृ० 4
 23. हिंदी की ताकत भी तो जानिए, बालेंदु शर्मा दाधीच, दैनिक ट्रिब्यून, प्रधान संपादक राज चेंगप्पा, संपादक, मुद्रक व प्रकाशक: संतोष तिवारी, प्रकाशक व मुद्रक संतोष तिवारी द्वारा द ट्रिब्यून ट्रस्ट की ओर से ट्रिब्यून प्रैस, सैक्टर 29-सी, चंडीगढ़ से मुद्रित। स्वत्वाधिकार द ट्रिब्यून ट्रस्ट, 2007, दिन शनिवार, 14 सितंबर, 2013, वर्ष: 36, अंक 17, पृ० 8

मकान नं० 2150, सैक्टर-7,
फेस-II हाऊसिंग बोर्ड कालोनी, कुरुक्षेत्र-136118
e-mail- sushiltaya@rediffmail.com
Mobile No. :0919466021004, 919467421004

कनुप्रिया में नारी जीवन के नूतन आयाम

अशोकदत्त नौटियाल

प्रो० मृदुला जुगरान

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता,
अपूजिताश्च यत्रैताः सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।¹

जहाँ स्त्रियों की पूजा (सम्मान) होती है, वहाँ देवता आनंदपूर्वक निवास करते हैं और जहाँ इनका अनादर होता है, वहाँ सभी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं।

किसी भी देश अथवा समाज में नारी की स्थिति उस देश, समाज अथवा जाति की सांस्कृतिक, सामाजिक व राजनीतिक स्थिति की द्योतक होती है। जिस देश अथवा समाज में नारी की स्थिति सुदृढ़ एवं सम्मानजनक होती है वह राष्ट्र अथवा समाज यथार्थ रूप में समृद्ध, सुखी एवं श्रेष्ठ होता है। नारी ही पुरुष की प्रेरणास्रोत है। वह पुरुष की अर्धांगिनी, सहकर्मिणी एवं जीवन के सुख-दुःख की सहचरी होती है। नारी ही सृष्टि का आदि-स्रोत है, वह नैतिक मूल्यों की संवाहिका है। वह पुरुष के जीवन में अमृतमयी सरिता के समान साथ देती है—

नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पग तल में,
पीयूष स्रोत सी बहा करो
जीवन के सुंदर समतल में।²

देशकाल की परिस्थितियों के अनुरूप भारतीय साहित्य में भी नारी की सामाजिक व राजनीतिक स्थिति में पर्याप्त परिवर्तन घटित होते रहे हैं। वैदिककाल में नारी पुरुष की सहकर्मिणी व अर्धांगिनी होने के नाते सामाजिक व राजनीतिक कार्यों में पुरुष के समकक्ष स्वीकारी जाती थी। प्रारंभिक वैदिककाल के अंतिम चरण में वह पुरुष पराधीन, विवश एवं असहाय हो गई।

‘बौद्धिककाल में महात्मा बुद्ध ने नारी के सम्मान एवं गौरव की प्रतिष्ठा प्रदान करने का प्रयास किया। बौद्धकाल के प्रारंभ में मठों एवं विहारों में स्त्रियों को प्रवेश नहीं दिया जाता था, परंतु बाद में बुद्ध ने अपनी विमाता गौतमी और अपने प्रिय शिष्य आनंद के आग्रह पर उनके प्रवेश की अनुमति प्रदान की।³ किंतु कालांतर में बौद्ध, मठों में बढ़ते पापाचार एवं सिद्धों की साधना के यौनाचारों में फँसकर नारी का जीवन अधोगामी बन गया।

हिंदी साहित्य के आदिकाल में दरबारी कवियों ने नारी के सौंदर्य का ही वर्णन किया एवं उसे भोग एवं तृप्ति का साधन मात्र समझा। भक्तिकाल के संत कवियों में प्रायः नारी विरोधी स्वर सुनाई पड़ता है, किंतु इस ओर भी ध्यान देना आवश्यक है कि जहाँ भक्तिकालीन कवियों ने नारी के कामिनी रूप की निंदा की है वहीं नारी के पतिव्रता रूप की प्रशंसा भी की है।

प्रेममार्गी कवियों ने अपने काव्य में नारी के अद्वितीय सौंदर्य का नख-शिख वर्णन किया, किंतु नारी के स्वतंत्र अस्तित्व की प्रतिष्ठा करने में वे भी असफल रहे। भक्तिकाल में कबीर, तुलसी आदि कवियों ने नारी के कामिनी रूप की घोर निंदा की एवं उसे ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में बाधक माना। कबीर के अनुसार—

नारी की झाँई परत अंधा होत भुजंग,
कबिरा तिनकी कौन गति, जे नित नारी संग।

सूरदास तथा अन्य कृष्ण भक्त कवियों ने नारी के उदात्त एवं समर्पिता प्रेमिका रूप को अपने काव्य का विषय बनाया। रीतिकालीन काव्य में विलासिता, भोगेच्छा, रूपलिप्सा एवं शरीर सुख की कामना ही दृष्टिगोचर होती है, जिसके परिणामस्वरूप नारी को मात्र भोग-विलास की सामग्री समझकर उसके अस्तित्व एवं व्यक्तित्व को तुच्छ एवं पतनमुख बनाया। साहित्यिक दृष्टि से आधुनिक युग को निश्चित रूप से नारी स्वातंत्र्य एवं नारी-मुक्ति का युग कहा जा सकता है।

आधुनिककाल में नारी की स्वतंत्रता और सामाजिक सहयोग के भाव ने उसे मानसिक कैद से मुक्ति प्रदान की है। समाज से उपेक्षिता नारी के प्रति स्नेह एवं सहानुभूति जाग्रत करने के उद्देश्य से महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपने लेख 'कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनता' में नारी उपेक्षा पर तीक्ष्ण व्यंग्य कसे हैं। इसी लेख से प्रभावित होकर राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' की रचना की, जिसमें उपेक्षिता उर्मिला को सम्मानित एवं गौरवशाली प्रतिष्ठा प्रदान करने का पूर्ण प्रयास किया गया है—

नर कृत शास्त्रों के सब बंधन, हैं नारी को ही लेकर
अपने लिए सभी सुविधाएँ, पहले ही कर बैठे नर
नारी के जिस भव्य भाव का, साभिमान भाषी हूँ मैं
उसे नरों में भी पाने का, उत्सुक अभिलाषी हूँ मैं।⁴

द्विवेदी युग में अयोध्यासिंह उपाध्याय ने खड़ीबोली का प्रबंधकाव्य प्रियप्रवास लिखकर नारी-जीवन के कार्तिकारी अध्याय का सूत्रपात किया। इस प्रबंधकाव्य में पहली बार भागवत् की राधा ने अपने जीवन के लिए अस्तित्व की पृष्ठभूमि तैयार की जिसमें त्याग एवं समर्पण के साथ कर्म की त्रिवेणी का निश्चल प्रवाह देखा जा सकता है—

प्यारे जीवे जगहित करें गेह चाहे न आवें—(प्रियप्रवास)

छायावादी काव्य में पंत ने 'योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित कहकर नारी के अस्तित्व को गौरव प्रदान किया है। प्रसाद ने कामायनी में श्रद्धा को सभी मानवीय गुणों से युक्त बताकर नारी को गौरव प्रदान किया—

दया, माया, ममता लो आज, मधुरिमा लो अगाध विश्वास,
हमारा हृदय रत्न-निधि स्वच्छ, तुम्हारे लिए खुला है पास।⁵

आधुनिककाल को नारी गौरवगाथा के इसी क्रम में प्रयोगवाद एवं नई कविता के श्रेष्ठ कवि धर्मवीर भारती ने राधा-कृष्ण के पौराणिक एवं प्रसिद्ध स्वरूप को आधुनिक युगबोध के अनुरूप अपनी रचना कनुप्रिया में ढाला एवं आधुनिक नारी के स्वतंत्र अस्तित्व एवं व्यक्तित्व को प्रतिष्ठापित किया।

धर्मवीर भारती द्वारा रचित 'कनुप्रिया' ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथानक पर आधारित

प्रबंधात्मक गीतिकाव्य है। कनुप्रिया राधा-कृष्ण की सहज प्रेम-संवेदना के माध्यम से आधुनिक संबंधों के बिखराव परक जीवन में जीने का भाव परक प्रयास है। 'कनुप्रिया' में 'भारती' जी ने राधा की प्रेमानुभूतियों के माध्यम से मानव जीवन में प्रेम की महत्ता को प्रतिष्ठित करने का सुंदर एवं सफल प्रयास किया है। कनुप्रिया का भावबोध कवि का व्यक्तिगत भावबोध है, जिसमें बुद्धि के विपरीत हृदय, बाह्य के विपरीत अंतः तर्क के विपरीत भाव एवं अनास्था के विपरीत आस्था को प्राथमिकता प्रदान की गई है।

धर्मवीर भारती द्वारा रचित कनुप्रिया की एक मात्र नारी पात्र कनुप्रिया अर्थात् राधा अपनी मान्यताओं के प्रति दृढ़ संकल्प है। वह आधुनिक नारी की भाँति तार्किक रूप में कृष्ण के इतिहास बोध को अधूरा एवं इतिहास-निर्माण को अमंगलकारी मानती है। उसे समस्त इतिहास ठहरा हुआ, मरा हुआ एवं महत्त्वहीन लगता है। राधा के लिए न इतिहास का कोई मूल्य है और न ही कोई महत्त्व, श्रीकृष्ण की युद्ध में भूमिका पर वह व्यंग्य करते हुए कहती है—

पाप-पुण्य, धर्माधर्म, न्याय दंड
क्षमा-शील वाला यह तुम्हारा युद्ध सत्य है—
हारी हुई सेनाएँ, जीती हुई सेनाएँ
नभ को कँपाते हुए युद्ध-घोष, क्रंदन स्वर
क्या ये सब सार्थक हैं?
चारों दिशाओं से
उत्तर को उड़-उड़कर जाते हुए
गुद्धों को क्या तुम बुलाते हो
(जैसे बुलाते थे भटकी हुई गायों को)⁶

कनुप्रिया में युद्ध के प्रति अविश्वास एवं असंतोष है। वह युद्ध को मानव जाति के लिए उचित नहीं मानती। 'भारती की कनुप्रिया श्रीकृष्ण की इतिहास निर्माण-प्रक्रिया के प्रति असंतोष व्यक्त करते हुए कहती है कि कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व आदि भारी भरकम शब्दों की सार्थकता के माध्यम से भले ही तुमने अर्जुन को युद्ध की सार्थकता समझा दी हो तथा उसे युद्ध करने के लिए तैयार कर लिया हो, परंतु मुझे तुम्हारे इन इतिहास के शब्दों में कोई सार्थकता व सार तत्त्व नजर नहीं आता है।'

कृष्ण के महाभारत के युद्ध में चले जाने के उपरांत कनुप्रिया उपेक्षित नारी की भाँति अकेली रह जाती है। वह अपने मन में विचार करती है कि आखिर श्रीकृष्ण ने उसे केवल केलि सखि एवं अपने सुख उपभोग की साधना मात्र क्यों समझा? कनुप्रिया अपने अस्तित्व एवं व्यक्तित्व को तिरस्कृत समझकर श्रीकृष्ण से पूछती है—

सुनो कनु सुनो
क्या मैं सिर्फ एक सेतु थी तुम्हारे लिए
लीला भूमि और युद्ध क्षेत्र के
अलंध्य अंतराल में!⁷

कनुप्रिया का यह प्रश्न तर्क पर आधारित है जिस प्रकार एक पथिक पुल को पार करने के पश्चात पुल को भुला देता है उसी प्रकार कृष्ण भी कनुप्रिया को भूल गए तथा ब्रज की कुंज

गलियों से कुरुक्षेत्र के ऐतिहासिक क्षेत्र में प्रतिष्ठित हो गए और विरह से व्याकुल कनुप्रिया (राधा) सेतु की भाँति स्थिर व मूक रह गई।

कनुप्रिया के प्रेम में तल्लीनता एवं गांभीर्य दोनों का समावेश है। वह मध्ययुगीन कृष्णमार्गी कवियों की राधा के समान भोली-भाली होते हुए भी तर्कशीला है। वह पुरानी स्मृतियों के माध्यम से अपनी प्रेम व्यथा को व्यक्त करते हुए 'महान' हो जाने वाले कृष्ण पर व्यंग्य करते हुए कहती है—

उस दिन बरसते में जिस छौने को
अपने आँचल में छिपाकर लाई थी
वह आज कितना, कितना, कितना महान हो गया है!⁸

पाश्चात्य दार्शनिक चिंतन अस्तित्ववाद के प्रभाव के कारण कनुप्रिया नारी के आधुनिक स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती है। वह अस्तित्ववाद की क्षणभोगी वृत्ति को स्वीकार करती है तथा अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए कृष्ण से प्रश्न करती है। कनुप्रिया कृष्ण को अपना सर्वस्व समर्पण करती है एवं उन्हें अपना सृष्टा स्वीकार करती है। वह कृष्ण से भी यही अपेक्षा करती है कि उसे भी उतना ही अधिकार एवं सम्मान प्राप्त हो। वह स्वयं को कृष्ण की इच्छा का हेतु स्वीकार करती है—

ओ मेरे सृष्टा
तुम्हारे संपूर्ण अस्तित्व का अर्थ है—
मात्र तुम्हारी सृष्टि
तुम्हारी संपूर्ण सृष्टि का अर्थ है—
मात्र तुम्हारी इच्छा
और तुम्हारी संपूर्ण इच्छा का अर्थ है—
केवल मैं! केवल मैं! केवल मैं!⁹

मानव के मन में सदैव से ही यह विचार आता रहा है कि जिससे वह प्रेम करे वह प्रेमी भी उसे सम्मान एवं प्रेम करे। दो हृदयों का एकाकार (अद्वैत) हो जाना, एक रंग में रँग जाना, एक रस में बहना और पूर्ण तादाम्य अनुभव करना जीवन की स्वाभाविक माँग है। कनुप्रिया भी क्षणिक अनुभूतियों को ही एक मात्र जीवन सत्य स्वीकार करती हुई प्रत्येक क्षण को पूरी निष्ठा एवं समर्पण के साथ भोगना चाहती है।

आधुनिक परिवेश में प्रेम की परिभाषा में परिवर्तन हो गए हैं। अब वह मात्र एक क्रिया व्यापार बनकर रह गया है। वर्तमान प्रेम में समर्पण की कमी है इसी तथ्य को ध्यान में रखकर भारती जी ने राधा (कनुप्रिया) के समर्पित प्रेम को दर्शाया है। कनुप्रिया मानती है कि उसके बिना कृष्ण के इतिहास की कोई सार्थकता सिद्ध नहीं हो सकती। इसलिए वह इतिहास-निर्माण में कृष्ण की पुकार की प्रतिक्षा करती रहती है और कहती है—

सुनो मेरे प्यार
तुम्हें मेरी जरूरत थी न,
लो मैं सब छोड़कर आ गई हूँ
ताकि कोई यह न कहे

कि तुम्हारी अंतरंग केलि सखि
केवल तुम्हारे साँवरे तन के नशीले संगीत की
लय बनकर रह गई...।¹⁰

सार रूप में कहा जा सकता है कि नारी की व्यथा एवं पुरुष की कठोरता के प्रमाण प्राचीन ग्रंथों में भी प्राप्त होते हैं। वर्तमान युग उन युगों से भिन्न है। आज का कवि नारी की आत्मा में बैठकर उसके वास्तविक स्वरूप का विश्लेषण व विवेचन करता है। इस दृष्टि से भारती जी एक जागरूक साहित्यकार हैं। उर्वशीकार कवि दिनकर की ही मान्यता के अनुसार भारती का भी मानना है कि प्रत्येक नारी के भीतर एक अगोचर नारी छिपी हुई है तथा उसका संधान तभी हो सकता है जब मानव उसके सुंदर आवरण को भेदकर उसकी आत्मा में प्रवेश करें।

अस्तु कनुप्रिया आधुनिक युगबोध से परिपूर्ण हिंदी कविता का एक श्रेष्ठ प्रबंधात्मक रोमैटिक गीतिकाव्य है जिसमें नारी मन की व्यथा एवं उसका अपने व्यक्तित्व एवं अस्तित्व को लेकर उठाए गए प्रश्नों के माध्यम से कनुप्रिया के मन एवं हृदय में उठने वाले अंतर्द्वंद्व को दिखाया गया है। कनुप्रिया का स्वरूप परंपरागत नारी के समस्त गुणों से सुसंपन्न होते हुए भी एक आधुनिक नारी के रूप में प्रस्तुत हुआ है।

संदर्भ

1. मनुस्मृति, अध्याय 3, श्लोक 56
2. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, मानसी प्रकाशन, नई दिल्ली (संस्करण, 2008), पृ० 46
3. डॉ० लाल एवं शर्मा, भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ, पृ० 39
4. मैथिलीशरण गुप्त, पंचवटी, साहित्य मुद्रण, चिरगाँव झाँसी, (संस्करण, 1957), पृ० 32-33
5. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, मानसी प्रकाशन, नई दिल्ली (संस्करण, 2008), पृ० 28
6. धर्मवीर भारती, कनुप्रिया, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी (तृतीय संस्क०), पृ० 69-70
7. डॉ० माया मलिक, कनुप्रिया : संवेदना एवं शिल्प, पृ० 106
8. धर्मवीर भारती, कनुप्रिया पृ० 65
9. वही, पृ० 65
10. वही, पृ० 65

द्वारा प्रो० मृदुला जुगरान
प्रगति विहार कॉलोनी
निकट राधा स्वामी सत्संग व्यास
श्रीनगर (गढ़वाल), उत्तराखंड 246174
मो० 9536464562

माया : प्रभु मिलन की सहायक

डॉ० प्रीति शर्मा

प्रवक्ता हिंदी

ताराचंद वैदिक पुत्री महाविद्यालय

नई मंडी, मुजफ्फरनगर (उ०प्र०)

सत्य शब्द अपने-आपमें पूर्ण है, पूर्ण अर्थात् जिसे स्वयं को सिद्ध करने के लिए किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं। जैसे कृष्ण पक्ष के चौदह दिनों में एक-एक कला के बढ़ने के साथ पंद्रहवें दिन पूर्णिमा की रात्रि को चंद्रमा सोलह कलाओं से युक्त होकर प्रत्येक हृदय को आकर्षित करने वाली दिव्य संपूर्णता को प्राप्त करता है। अतः पूर्णता और दिव्यता का संबंध सत्य है। यही सिद्धांत मानव की प्रकृति पर भी लागू होता है। मानव के विचार, भावनाएँ, संवेदनाएँ यदि पवित्र हैं, शुद्ध हैं, लेश मात्र भी अशुद्धता उनके भीतर नहीं है, तो वे दिव्य हो उठती हैं। मानव हृदय की सबसे कोमल अनुभूति प्रेम पर भी यही सिद्धांत पूर्णतः लागू होता है। अपने प्रिय के प्रेम में आकंठ डूबा प्रेमी हृदय, जिसे क्षणभर को भी अपने प्रिय को विस्मृत करना दूभर दिखाई पड़ता है, जिसके संपूर्ण हृदय पर उसके प्रिय का एकाधिकार है। न वासना के लिए, न किसी अन्य के लिए उसके हृदय में कोई स्थान है। ऐसे शुद्ध और निर्मल प्रेम में दुर्भाग्य से यदि परिस्थितिजन्य सामीप्य का अभाव उत्पन्न हो जाए और विरह की दारुण दशा उत्पन्न हो जाए, तो आगे चलकर प्रेम की यह धारा ईश्वरीय पारावार में विलीन हो जाती है। हिंदी काव्य-जगत में इसके अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। सूर की गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम, घनानंद का अपनी प्रिया सुजान के प्रति प्रेम, प्रसाद और महादेवी का अपने अज्ञात प्रियतम के प्रति आकर्षण आदि स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि पवित्रा और शुद्ध प्रेम अपने भीतर ईश्वरीय भक्ति के गुण समाहित किए होता है। विरह की उच्चावस्था में पहुँचकर स्वतः ही लौकिक प्रेम की परिणति अलौकिक प्रेम में हो जाती है। साकार और निराकार के बीच का भेद समाप्त हो जाता है। भौतिकता से ऊपर उठकर आत्मा उस परमात्मा से मिलने के लिए व्याकुल हो उठती है।

सूर की गोपियों के विषय में डॉ० जयकिशनप्रसाद खंडेलवाल का कथन है—‘सूर ने श्रीकृष्ण की मुरली का योगमाया के रूप में वर्णन किया है। रात में उस मुरली ध्वनि से गोपिका रूपी आत्माओं का आवाहन तथा रास होता है। गोपियों के साथ रास उसी प्रकार है जिस प्रकार असंख्य आत्माओं के बीच परमात्मा। सूर ने अपने लौकिक चित्रणों में इसी अलौकिक भावना का समावेश किया है।’¹

प्रेम की पूर्णता का मार्ग आगे चलकर ईश्वरीय भक्ति में विलीन हो जाता है, ऐसे प्रेम में लीन रहने पर प्राप्त होनेवाला सुख ईश्वरीय भक्ति की भाँति आनंद से भर जाता है। इसी आनंद के शाब्दिक चित्र खींचते हुए राजनाथ शर्मा लिखते हैं—‘कृष्ण ब्रह्म है, राधा उनकी शक्ति और गोपियाँ आत्माएँ हैं। प्रत्येक कृष्ण भक्त अपने को इस लीला का अंश समझता है। कृष्ण प्रतिमास और प्रतिव्रत में उनके जीवन की विशेष-विशेष बातों के लिए उत्सव होते हैं। इस प्रकार भक्तों के लिए अपने आराध्य का मंदिर ही एक अलग विश्व बन जाता है, जहाँ से वे बाहर नहीं जाते। जाएँ भी कैसे, उनके आराध्य भी तो नहीं जाते। उस आराध्य को छोड़कर जाना भक्ति के अभाव का द्योतक होता।’²

श्रीकृष्ण के मथुरागमन के पश्चात विरह की तड़प के कारण राधा जी की दशा प्रेम की ऐसी पराकाष्ठा को प्राप्त हो जाती है, जहाँ पहुँचकर फिर प्रेमी और प्रिय के बीच का भेद मिट जाता है—

सुनो स्याम यह बात और कोउ क्यों समुझाय कहै
 दुँह दिसि को रति-बिरह बिरहनि कैसे के जु सहै
 जब राधे तबहि मुख माधो-माधो रटति रहै
 जब माधो होइ जात सकल तनु, राधा विरह दहै।

सन् 1773 में उत्तर प्रदेश के बुलंदशहर जिले के बृजवासी क्षेत्र के एक गाँव में जन्मे घनानंद बादशाह मौहम्मद शाह के यहाँ मीर मुंशी थे। संगीत से इन्हें लगाव था और गायन-कला में ये निपुण थे। उनके जीवन के विषय में यह कथा प्रचलित है कि राजा के दरबार में रहते हुए सुजान नामक युवती से इन्हें प्रेम हो गया था। घनानंद ने दिल्ली के सम्राट मौहम्मद शाह रंगीले के अनुरोध पर दरबार में गाने से इंकार कर दिया था, किंतु सुजान के कहने पर गाना गाया। इससे सम्राट अप्रसन्न हो गए। उन्हें अपना अपमान लगा। उन्होंने इन्हें दरबार से निकाल दिया। कहते हैं राज्य छोड़ते समय ये सुजान के घर गए और अपने साथ चलने का आग्रह किया, किंतु सुजान ने जातीय गुणों की रक्षा करते हुए चलने से इंकार कर दिया। उसके इस व्यवहार ने कवि के हृदय को चोट पहुँचाई, लेकिन सुजान के प्रेम को हृदय से न निकाल पाए और ऐसे में विरक्त और रिक्त होकर ये वृंदावन आ गए। अनुभूति की तीव्रता और विरह की असहाय स्थिति ने घनानंद के प्रेम को माधुर्य भाव की भक्ति में परिणत कर दिया था। तब उनका अनन्य प्रेमी हृदय भगवान कृष्ण से निवेदन कर उठता है—

तुम गति हो तुम मति हो
 तुम ही पति हो अति दीनन की
 बरसो घनानंद जीवन को
 सरसो सुधि चातक छीनन को।

श्री जयकिशनप्रसाद, घनानंद का जीवन चरित्र वर्णन करते हुए कहते हैं—‘आलम के बाद महाकवि घनानंद ने स्वच्छंद प्रेम की कविता को समृद्ध किया। ये मौहम्मद शाह रंगीले के मीर मुंशी थे और सुजान नाम की वेश्या पर अनुरक्त थे। आगे चलकर इनकी सुजान अलौकिक कृष्ण का प्रतीक बन गई और इनका प्रेम चिन्मुख हो गया। शुक्ल जी के शब्दों में ‘लौकिक प्रेम की दीक्षा पाकर ही पीछे भगवान प्रेम में लीन हुए।’³

उनके यही भाव इन पंक्तियों में व्यक्त हुए हैं—

अंतर ही किथो अंत रहो

दृग फारि फिरौं कि अभागिन भीरों।

छायावाद के प्रतिनिधि कवि जयशंकरप्रसाद के सुप्रसिद्ध काव्य 'आँसू' में विरह का विशुद्ध रूप देखने को मिलता है। उसमें प्रेम का उदात्त चित्राण किया गया है आँसू एक प्रतीकात्मक खंडकाव्य है। उसमें प्रेमी हृदय का स्वर तो प्रसाद का जान पड़ता है, किंतु उनका प्रिय रहस्य के आवरण में ढका है। आँसू की विषयवस्तु पर प्रकाश डालते हुए डॉ० नगेंद्र लिखते हैं—'ध्यान देने की बात यह है कि आँसू एक स्मृति काव्य है—कवि ने अतीत जीवन की अनुभूतियों को स्मृति के माध्यम से दर्दभरी अभिव्यक्ति दी है। यही कारण है कि 'आँसू' की भावभूमि स्थाई नहीं विकासशील है। उसमें कवि का अतीत (जो स्मृति पथ पर आता है) ही नहीं उसका वर्तमान भी संयुक्त है। इसलिए अंत तक आते-आते कवि अपने व्यक्तिगत जीवन के नैराश्य और अवसाद से ऊपर उठकर अपनी वेदना को करुणा रूप में, विश्व प्रेम के रूप में रूपांतरित कर देता है...जहाँ पहुँचकर कवि सारे संसार की वेदना को खुद स्वीकार करके विश्व-जीवन को सुखमय बनाना चाहता है। इस दृष्टि से देखने पर ज्ञात हो जाता है कि आँसू प्रसाद की अनुभूति व्यक्तिगत निराशा के गत से निकलकर विश्व-वेदना के साथ तादात्म्य स्थापित करती हुई मानव जीवन को सुखी बनाने के लिए आकुल हो उठती है।'⁴

'आँसू' के कुछ छंदों में तो स्पष्ट प्रतीत होता है मानो कवि उस विराट के प्रति अपने प्रेम को वाणी दे रहा है—

गौरव था, नीचे आए, प्रियतम मिलने को मेरे

मैं इठला उठा अकिंचन देखे ज्यों स्वप्न सबेरे

अपनी फुटकर रचनाओं के संकलन 'कानन कुसुम' के 'समर्पण' शीर्षक⁵ में महाकवि जयशंकर प्रसाद ने स्वयं उस अज्ञात प्रियतम को संबोधित करते हुए लिखा है—

प्रियतम,

इस शुष्क हृदय कानन को किसने कुसुमित किया? तुम्हीं ने। तुम्हीं बताओ। हाँ, कुछ ध्यान में आता है यही कि कभी जो कानन से पवन संबंध हो जाएगा तो किसी शांत मस्तिष्क को कुछ आनंद दे देगा। दे या न दे। क्योंकि जो उद्यान से चुन-चुनकर हार बनाकर पहनते हैं, उन्हें कानन-कुसुम क्या आनंद देंगे? प्रिय, यदि उन्हें यह आनंद न दे तो कोई चिंता नहीं, क्योंकि उनके लिए नहीं है यह तुम्हारे लिए है। इसमें रंगीन और सादे, सुगंध वाले और निर्गंध मकरंद से भरे हुए, पराग में लिपटे हुए सभी तरह के कुसुम हैं। असंयत भाव से एकत्र किए गए हैं। भला ऐसी वस्तु को तुम न ग्रहण करोगे तो कौन करेगा? लो प्रियतम, यह तुम्हारी वस्तु है, तुम्हीं को समर्पित है।

ऐसी भावपूर्ण, हृदय को द्रवित कर देनेवाली भेंट को कौन अस्वीकृत करेगा? 'कानन-कुसुम' के 'प्रियतम' शीर्षक में कवि हृदय के कोमल उद्गार व्यक्त करते हुए लिखता है—

क्यों जीवन धन! ऐसा ही है न्याय तुम्हारा क्या सर्वत्र

लिखते हुए लेखनी हिलती, काँपता जाता है यह पत्र

औरों के प्रति प्रेम तुम्हारा, इसका मुझको दुख नहीं
जिसके तुम हो एक सहारा, उसको भूल न जाओ कहीं

प्रसाद के काव्य में उनकी व्यक्तिगत अनुभूति एक स्थान विशेष पर पहुँचकर ईश्वरीय प्रेम के रूप में व्यक्त होती दिखाई पड़ती है। ऐसे स्थलों पर कवि प्रार्थना कर उठता है कि हे प्रियतम! मैं धूल-धूसरित और काँटों से बिंधा अपार दुख साथ लिए तेरे द्वार आया हूँ। अब तुम द्वार खोलो और मुझे स्वीकार करो—

धूल लगी है पद काँटों से बिंधा हुआ है दुख अपार
किसी तरह से भूला-भटका आ पहुँचा हूँ तेरे द्वार
डरो न इतना धूलि-धूसरित होगा नहीं तुम्हारा द्वार
धो डाले हैं इनको प्रियवर, इन आँखों से आँसू ढार।

कवि द्वारा ईश्वर को प्रियतम कहकर संबोधित करना उनके हृदय की गंभीरता और भावुकता को स्पष्ट करता है।

गीत और कविता की कवयित्री महादेवी वर्मा ने अपने काव्य में विरह और मिलन का सुंदर समन्वय किया है। उनकी काव्य कृतियों—रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत आदि में जहाँ एक ओर करूणा, विषाद और वेदना को अभिव्यक्ति मिली है, वहीं दूसरी ओर प्रकृति में विराट की छाया का दर्शन भी है और अतींद्रिय प्रेम के आभास भी। 'संधिनी' काव्य-संग्रह की 'कौन तुम मेरे हृदय में' कविता में वे लिखती हैं—

अनुसरण निश्वास मेरे
कर रहे किसका निरंतर?
चूमने पदचिह्न किसके
लौटते यह श्वास फिर फिर?
कौन बंदी कर मुझे अब
बाँध गया अपनी विजय में
कौन तुम मेरे हृदय में?

सात्विक प्रेम में डूबकर अज्ञात को निमंत्रण—सा देती महादेवी की कविताएँ सर्वत्र रहस्य को समेटे दिखाई पड़ती हैं। इस संदर्भ में डॉ० नगेंद्र ने लिखा है—'महादेवी ने अज्ञात प्रियतम के प्रति प्रणय निवेदन किया है, किंतु उनका प्रणय दुख प्रधान है। वे प्रिय से मिलन की कामना नहीं करतीं, क्योंकि मिलन में व्यक्तित्व का ही नाश हो जाता है—'मिलन का मत नाम लो, मैं विरह में चिर हूँ।' महादेवी का यह दुखवाद, निराशा या अकमर्ण्यता का व्यंजक नहीं है, उनकी वेदना की तुलना प्रसाद के 'आँसू' काव्य के अंत में दिखाई देने वाली करूणा की अनुभूति से की जा सकती है।⁶

ऐसे और भी अनेक उदाहरण हिंदी काव्य-जगत में उपस्थित हैं, जहाँ कवि के सच्चे प्रणय-जनित विरह की परिणति ईश्वर के सात्विक प्रेम में हुई है। उपर्युक्त विवरण के द्वारा मैं स्पष्ट करना चाहती हूँ कि सच्चे प्रेम के द्वारा पदत्त विरह मानव जीवन के अंतिम उद्देश्य 'ईश्वर-प्राप्ति का समर्थ साधन बन सकता है।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, डॉ० जयकिशन प्रसाद खंडेलवाल, पृ० 212
2. हिंदी साहित्य का इतिहास, राजनाथ शर्मा, पृ० 95
3. हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, डॉ० जयकिशन प्रसाद खंडेलवाल, पृ० 277
4. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ० नगेंद्र, पृ० 546
5. कानन कुसुम, जयशंकर प्रसाद, पृ० 63
6. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ० नगेंद्र, पृ० 553

मन्० 636, गली नं०12
गांधी कालोनी
मुजफ्फरनगर (उ०प्र०)
मो० 09410623210

दिनकर की कविताओं में राष्ट्रियता के स्वर

डॉ० सुनिल डहाले

हिंदी विभाग

विनायकराव पाटील महाविद्यालय

वैजापूर जिला औरंगाबाद (महा०)

दिनकर हमारे युग के यदि एकमात्र नहीं, तो सबसे अधिक प्रतिनिधि कवि हैं।¹ किसी साहित्यकार का जीवनदर्शन उसके व्यापक दृष्टिकोण का परिचायक होता है, जिसके फलस्वरूप वह व्यक्ति समाज, राष्ट्र, आत्मा, परमात्मा आदि के बारे में चिंतन करता है। दिनकर सहज रूप से विनयशील थे। उनका व्यक्तित्व आडंबर रहित था। वे स्पष्टवादी थे। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है—

सच्चाई की पहचान कि पानी साफ रहे
जो भी चाहे, ले परख जलाशय के तल को
गहराई का वे भेद छिपाते हैं केवल
जो जान-बूझ गँदलाकर

राष्ट्रीयता का अर्थ किसी देश की भौगोलिक सीमा के भीतर निर्वासित जनसमूह की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक चेतना के समन्वित स्वरूप से है। राष्ट्रियता एक ऐसी भावना है, जो देश की जनता को संगठित करती है, गुलामी के दिनों में स्वतंत्रता की चेतना फूँकती है, मुक्तिसंग्राम में मर-मिटने का आह्वान करती है और कवियों तथा रचनाकारों को राष्ट्र, जाति और धर्म की रक्षा के लिए आंदोलन जगाने और राष्ट्र पर सर्वस्व समर्पण की भावना भरनेवाली रचनाएँ लिखने का प्रोत्साहन भी देती है।

श्री भगवतीचरण वर्मा ने लिखा है, 'दिनकरते अपने जल को।'²

मिथ्यावादी बनकर उन्हें अपने जल को गँदला करना अभीष्ट नहीं था। महाकवि एवं लोकप्रिय नेता होने का उन्हें रंजमात्र भी अहंकार नहीं था। वे अपने समीक्षकों के प्रति भी उदार भावना रखते थे। क्रोध एवं दया की भावनाएँ उनमें त्वरित गति से रूपांतरित हो जाती थीं। उनकी अधिकांश कविताएँ क्रोध एवं आवेश के फलस्वरूप लिखी गई थी। क्रोध उनकी सृजनात्मक प्रक्रिया का प्रेरणास्रोत रहा है।

काव्य में राष्ट्रिय-भावना की चर्चा दिनकर के बगैर अधूरी है। दिनकर छायावाद की उपज नहीं थे, बल्कि उनका उदय उस धारा से हुआ था, जो भारतेंदु, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, सुभद्राकुमारी चौहान, माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' से बहती आ रही

थी। दिनकर छायावादोत्तरकाल के श्रेष्ठ कवि होने के साथ ही एक श्रेष्ठ काव्य चिंतक और समर्थ समीक्षक भी थे। उन्होंने छायावाद की शक्ति को ग्रहण करके और उसके अभाव तथा दोषों का निरीक्षण करते हुए अपना काव्यमार्ग निर्मित किया।

सन् 1936 के आसपास देश में समाजवादी विचारधारा का प्राबल्य हुआ और काँग्रेस के बड़े-बड़े नेता भी समाजवादी जीवनादर्श की बात करने लगे। यह वह समय था, जब देश में स्वतंत्रता की भावना प्रबल होती जा रही थी। ब्रिटिश शासन का दमनचक्र और शोषण तीव्र होता जा रहा था। देश की आर्थिक और सामाजिक दशा अत्यंत शोचनीय होती जा रही थी। ऐसे युग और परिवेश की सहज स्वाभाविक माँग थी कि कविता धरती के नजदीक आए और कवि आकाशचारी मात्र होकर न रहे।

युग की इस आवाज को दिनकर जैसे जागरूक कवियों ने अपनी पूरी चेतना से सुना और रचनाओं में प्रतिध्वनि किया। रेणुका के प्रारंभिक गीत में ही उन्होंने कवि का भूचारी होने का संदेश दिया है। विदेशी शासन देश की तरुणाई को जब ललकारता हो, देश की विपन्न मानवता पर जुल्मोंभरा गुलामी का जुआ लदा हो, उस समय कविता आकाशचारी नहीं हो सकती।

‘दिल्ली और मास्को’ नामक कविता में दिनकर ने मास्को की वंदना उसी निष्ठाभाव से की है, जैसे हिंदू काशीधाम और मुसलमान मक्का शरीफ की किया करते हैं—

अरुण विश्व की लाली, जय हो,

लाल सितारोंवाली, जय हो।

दलित, दुभुक्ष भीषण मनुज की शिखा इंद्र मतवाली जय हो।³

दिनकर की राष्ट्रीय कविताएँ जनसाधारण में अत्यधिक लोकप्रिय हैं। कविवर ने समय की माँग के अनुसार अपने राष्ट्रीय उत्तरदायित्वों का वहन किया है। रेणुका से लेकर उर्वशी तक का प्रत्येक काव्य-ग्रंथ राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत है। रेणुका, हुंकार, सामधेनी की अधिकांश कविताओं में पराधीनता के प्रति आक्रोश, साम्राज्यवादी दुर्दशा का चित्रण एवं क्रांति की प्रेरणादायक ‘हुंकार स्पष्ट सुनाई देती है। बाद के काव्य-संग्रहों—‘नीम के पत्ते’, ‘नील कुसुम’ ‘उर्वशी’, ‘परशुराम की प्रतीक्षा’ आदि में राष्ट्रनिर्माण की प्रेरणा तथा भारत के उज्ज्वल भविष्य की कामना निहित है। ‘चक्रवाल’ की भूमिका में कवि ने अपने उद्गार प्रकट करते हुए लिखा है—‘राष्ट्रीयता मेरे व्यक्तित्व के भीतर से नहीं जन्मी, उसने बाहर से आकर मुझे आक्रांत किया। उस समय सारा देश उत्साह से उच्छल और दासता की पीड़ा से बेचैन था। अपने समय की धड़कन सुनने को मैं जब भी हृदय से कान लगाता, मेरे कान में किसी बम के धड़के की आवाज आती। फाँसी पर झूलनेवाले किसी नौजवान की निर्भीक पुकार आती अथवा मुझे दर्द भी ऐंठन की वह आवाज सुनाई देती, जो गांधीजी के हृदय में चल रही थी, जो उन सभी राष्ट्रनायकों के मन में चल रही थी, जिससे बढ़कर मैं और किसी को श्रद्धेय नहीं मानता था।⁴

इस कथन से स्पष्ट है कि उस समय कवि एक ओर तो उग्रदल से प्रभावित था और दूसरी ओर वह गांधीवादी विचारों को भी श्रद्धा की दृष्टि से देखता था।

दिनकर की राष्ट्रीयता आरंभ से ही क्रांतिगर्भित रही है, जिसमें पराक्रम, ओज एवं विस्फोटक प्रलय की अग्नि सतत् सुलगती रही है। ‘जनता लगी हुई है’ कविता में मुक्ति की बाजी जीतने के लिए जीवन को मरण के दाँव पर लगाने की ललकार लगाता हुआ कवि कहता

है—

खेल मरण का खेल
मुक्ति की यह पहली बाजी है
सिर पर उठा वज्र,
आँखों पर ले हरि का अभिशाप
अग्नि-स्नान के बिना धुलेगा नहीं राष्ट्र का पाप।⁵

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात क्रांति का स्वर कुछ मंद पड़ गया था और विद्रोह की आग लगभग बुझ गई थी। इसी के फलस्वरूप 1962 ई० में चीनी आक्रमण हुआ, तब कवि दिनकर का यह क्रांतिकारी स्वर पुनः 'परशुराम की प्रतीक्षा' काव्य में गूँज उठा और कवि ने भारत के प्रसुप्त पौरुष को जगाया—

सामने देशमाता का भव्य चरण है
जिह्वा पर जलता हुआ एक, बस प्रण है
काटेंगे अरि का मुँड कि स्वयं कटेंगे
पीछे परंतु सीमा से नहीं हटेंगे।⁶

'रेणुका' में संगृहीत 'हिमालय के प्रति' दिनकर की राष्ट्रीय भावना को प्रकट करनेवाली कविता है। 1933 में लिखित यह कविता प्रत्येक भारतीय में राष्ट्रीय चेतना-निर्माण करनेवाली ओजपूर्ण शैली में लिखी हुई कविता है। कवि हिमालय की महत्ता और गौरव का गुणगान कर भारतभूमि की रक्षा करने की अपील करता है—

उस पुण्यभूमि पर आज तपी
रे! आन पड़ा संकट कराल
व्याकुल तेरे सुत तड़प रहे
डस रहे चतुर्दिक विविध व्याल!
मेरे नगपति! मेरे विशाल।⁸

'जनता जगी हुई है' कविता में कवि जन-चेतना की विप्लवी शक्ति के उद्रेक की कामना कर रहा है। कवि का कहना है कि राष्ट्र के बाहर और भीतर कपटी, कुटिल, कृतघ्न, आसुरी प्रवृत्ति के मतवाले लोग गांधी के शांति-सदन में आग लगाने का प्रयास कर रहे हैं। इनको सबक सिखाना अब आपदधर्म बन गया है। अब अग्नि-स्नान के बिना इस राष्ट्र का पाप नहीं धुलेगा। जनता को अब जागना ही होगा। परशुराम को नवीन अवतार में शस्त्र उठाना ही होगा—

ओ गांधी के शांति-सदन में आग लगाने वाले!
कपटी, कुटिल, कृतघ्न, आसुरी महिमा के मतवाले
वैसे तो, मन मार शील से हम विनम्र जीते हैं
आततायियों का शोणित, लेकिन हम भी पीते हैं।
मुख में वेद, पीठ पर तरकस, कर में कठिन कुठार।
सावधान! ले रहा परशुधर फिर नवीन अवतार।⁸

'परशुराम की प्रतीक्षा' संकलन की कविताओं में स्वातंत्र्योत्तर भारत की दुर्दशा के प्रति कवि मन का आक्रोश प्रकट होता है। 'समर शेष है' कविता में कवि का मन आजाद भारत को

भूखा देखकर बैचेन हो उठता है। 'भारत की दुर्दशा का हाल' कविता के माध्यम से कवि दिल्ली में बैठे इस देश के सत्ताधारी नेताओं का हाल स्पष्ट करने की कोशिश करता है—

सकल देश में हालाहल है, दिल्ली में हाला है,
दिल्ली में रोशनी, शेष भारत में अँधियारा है।⁹

दिनकर की दृष्टि में सच्ची राष्ट्रीयता दूसरों पर आक्रमक स्वरूप नहीं ग्रहण करती, बल्कि विश्वबंधुत्व की एक स्वस्थ और सशक्त कड़ी बन जाती है। उनके चिंतन में राष्ट्र ही नहीं, समस्त मानवता समाहित है। हिंसा और युद्ध को कवि घृणित कर्म मानता है और मैत्री, त्याग और सहिष्णुता को सर्वोपरि महत्त्व देते हुए, राष्ट्रीय कंठ से विश्व-मानवता का राग अलापता है। इसलिए डॉ॰ अवधनारायण त्रिपाठी लिखते हैं—'दिनकर की राष्ट्रीय उपलब्धियों को देखते हुए इस राष्ट्रीय काव्य-युग को दिनकर की संज्ञा देना सर्वथा समीचीन है।'¹⁰

संदर्भ

1. रामधारीसिंह दिनकर, मम्मनाथ गुप्त, पृ० 15
2. राष्ट्रकवि दिनकर और उनकी साहित्य साधना, संपादक, प्रतापचंद्र जैसवाल, पृ० 69
3. छायावादोत्तर काव्य, डॉ॰ कृष्णचंद्र वर्मा, पृ० 7
4. दिनकर का काव्य, द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, पृ० 11
5. परशुराम की प्रतीक्षा, दिनकर, पृ० 20
6. वही, पृ० 14
7. काव्य सागर, हिंदी पाठ्य समिति, डॉ॰ बा॰आं॰मा॰ विश्वविद्यालय, औरंगाबाद पृ० 27
8. साहित्य सागर हिंदी पाठ्य समिति, डॉ॰ बा॰अं॰म॰, विश्वविद्यालय औरंगाबाद, पृ० 88
9. वही, पृ० 81
10. राष्ट्रकवि दिनकर और उनकी साहित्य साधना, संपादक प्रतापचंद्र जैसवाल, पृ० 47

संत तुलसीदास नाटक में संवेदना एवं शिल्प

काशीनाथ (शोध छात्र)

शोध निर्देशिका

डॉ० महाश्वेता चतुर्वेदी

पूर्व एसोशिएट प्रोफेसर हिंदी विभाग

राजेंद्रप्रसाद स्नातकोत्तर

महाविद्यालय मीरगंज, बरेली (उत्तर प्रदेश)

महाकवि संत तुलसीदास के जीवन में जो संघर्ष रहा है और उनके कृतित्व ने उनके यशःकाय को जिस प्रकार जन्म-मरण के भय से मुक्त बनाया है उन जीवन परिस्थितियों तथा प्रतिभा चेतना के गहन द्वंद्व को भावों के उत्थान-पतन तथा कला की मितव्ययीता के साथ नाटक में प्रस्तुत किया गया है। मानस चतुष्पाति के अवसर पर लिखे गए इस नाटक में पाँच अंकों में संत तुलसीदास का जीवन समाहित हुआ है अर्थात् प्रत्येक अंक में तुलसी के जीवन भाव संघर्ष तथा आत्मविकास के मार्मिक स्थलों का सुंदर चित्रण हुआ है उनके बाल्यकाल से उत्कर्ष-काल तक की कथा इस नाटक में है उनके मरणकाल का चित्र प्रस्तुत नाटक में नहीं खींचा गया है, क्योंकि इस संदर्भ में नाटक की भूमिका में डॉ० वर्मा जी ने लिखा है—

उनके मरणकाल का चित्र खींचना (संवत् सोलह सौ असी, असी गंग को तीर) मुझे रुचिकर नहीं हुआ, क्योंकि जो तुलसीदास घर-घर में बसे हुए हैं, उनका मरण कैसा? वे अमर हैं और जब तक मानवता के मूल्य मान्य होंगे तुलसी अपनी कृतियों के माध्यम से जीवित रहेंगे।

प्रथम अंक की कथावस्तु में तुलसीदास के माता-पिता द्वारा तुलसी का परित्याग हो जाता है। विषम परिस्थितियों का सामना करते हैं हुए भी रामबोला द्वारा राम-नाम का भजन करना तथा भिक्षा आदि माँगकर पेट भरना अंत में बाबा नरहरिदास से भेंट होती है। प्रभु के प्रसाद में तुलसी पत्र निकलने पर उनका नामकरण तुलसीदास हो जाता है। अंत में तुलसीदास बाबा नरहरिदास के साथ चले जाते हैं। यहीं पर प्रथम अंक की कथावस्तु समाप्त हो जाती है।

द्वितीय अंक में तुलसीदास के गृहस्थ जीवन का चित्रण है। तुलसीदास अपनी पत्नी रत्नावली से अत्यंत प्रेम करते हैं। पत्नी के चुपचाप मायके चले जाने पर तुलसीदास भी पीछे-पीछे वहीं पहुँचते हैं। पारिवारिक मान-मर्यादा से प्रेरित होकर पत्नी का भावावेश में आकर उपदेश देना, जिसे सुनकर तुलसी के अगाध प्रेम का राम की तन्मय भक्ति एवं अनन्य निष्ठा में परिणत होने का अत्यंत मार्मिक वर्णन व्यंजित है।

तीसरे अंक की कथावस्तु में तुलसीदास के रामाज्ञा प्रश्न का माहात्म्य, उनकी प्रसिद्धि

को देखकर शैवों और वैष्णवों में विरोध तुलसी को शारीरिक कष्ट देने तथा रामचरितमानस को नष्ट करने का षड्यंत्र में विफल होने का वर्णन होने के साथ तृतीय अंक की कथावस्तु समाप्त हो जाती है। चतुर्थ अंक में रामभक्ति का माहात्म्य अनेक कथाओं व प्रसंगों द्वारा तुलसी का रामभक्ति में अटूट विश्वास तथा शैव भक्तों की भ्रांतियों के निराकरण की अभिव्यक्ति व्यंजित है। पंचम अंक में चित्रकूट के एक मंदिर में कथा करते समय तुलसीदास 'वापस प्रसंग' को अत्यंत भावपूर्ण वाणी में समझाते हैं। तत्पश्चात् रामचरित मानस की आरती के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

ज्योतिषी गंगाराम थाल में आरती दीप सजाकर मानस की आरती करते हैं। तुलसीदास जी तथा अन्य सब संत खड़े हो जाते हैं। ज्योतिषी गंगाराम के स्वर में स्वर मिलाकर सब आरती गाते हैं। यथा—

आरती श्रीरामायणजी की
कीरति कलित-ललित सिय पी की
गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद
वाल्मीक विज्ञान विशारद
तात मात सब विधि तुलसी की।
आरती श्रीरामायणजी की।²

तुलसीदास जनकवि हैं इसलिए इस नाटक में डॉ० वर्मा जी ने तुलसी के जीवन में लोक तत्व का नियोजन बड़े ही स्वाभाविक ढंग से किया है। तुलसी के जीवन की उदात्त भावभूमि के लिए उनके विरोधी तत्त्वों का भी विश्लेषण किया गया है। कहीं-कहीं इस विरोध को स्पष्ट करने के लिए तथा परिस्थिति को स्वाभाविक और मनोरंजक बनाने के लिए हास्य व्यंग्य एवं विनोद का आश्रय लिया गया है। संत तुलसीदास के मामा जाग्रेसुरी पंडित विनोदी प्रकृति के तो हैं ही, लेकिन फिर भी वह कौतूहल की संयोजना करते हैं। जाग्रेसुरी की हीनता ही प्रकारांतर से उदात्त की संपुष्टि करती चलती है।

संत तुलसीदास नामक नाटक का शिल्पगत वैशिष्ट्य

'संत तुलसीदास' नामक नाट्यकृति के संवाद पात्रानुकूल हैं। शिक्षित पात्र सर्वज्ञ शुद्ध हिंदी का ही प्रयोग करते हैं। यथा—

'जैसी जिसकी भावना है वैसी उसकी अनुभूति है। भीतर से तात्पर्य हृदय से और बाहर से तात्पर्य जगत से समझा जा सकता है। रामनाम के मणि-दीप से हृदय तो पवित्र होता ही है, संसार का वास्तविक रूप भी समझ में आने लगता है। भीतर से मानसिक भक्ति का भी अर्थ लिया जा सकता है और बाहर से धार्मिक आचारों का भीतर से निर्गुण ब्रह्म की अनुभूति का और बाहर से सगुण साकार ब्रह्म के स्वरूप का।'³

दूसरी ओर अशिक्षित पात्र हिंदी के तद्भव तथा देशज शब्दों का ही प्रयोग अधिक करते हैं। यथा—

पुत्तन : अबे क्या बोलता है जुलाहे। तेरी एक टाँग टूटी है, दूसरी भी तोड़ दूँगा। अपने मन की बात कहने लगा तो मुझे सराप देने लगा।

चंदन सिंह: भाई सचमुच तुम बड़े गुस्सैल हो। एक सौ एक बैठकें क्या लगाने लगे, किसी को जिंदा भी नहीं रहने दोगे?

पुत्तन: मैं किसी का ताव सहने वाला नहीं। कोई एक बात कहेगा दस सुनाऊँगा।⁴

नाटक के अधिकांश सामान्य पात्र बुंदेली बोली का ही प्रयोग करते हैं जिससे एक ओर नाटक में स्वाभाविकता आ गई है, वहीं वातावरण निर्माण में भी सहायता मिली है। यथा—

चौथा भक्त : अरे! हमारी सुनो। हमारे कहीं सौ रुपया आ हिरा गए ते। ढूँढत-ढूँढत बिटया गए है भगवान! अब का करें? हम तुरतई बा दरिद्र मोचन सिला पै गए। मन्दाकिनी जू विनती करी, हे परमेश्वरीहमारे रुपैया मिल जाएँ। उते तें घरे आए। एलो, जो जाँघाँ रुपैया ढूँढ-ढूँढ हार गए ते, बई जाँघाँ वे रुपैया महाराज बिराजै हैं। और तो वे एक सौ सें एक सौ ग्यारह हो गए। हे परमेश्वरी! जा तुम्हारी कौन कला आय? और बाबा तुलसीदास को कैसो परताप आए।⁵

पात्रों के कथोपकथन हास्यरस की सृष्टि में सहायक हुए हैं शिवदत्त का हकलाकर बोलना पाठकों, दर्शकों को हँसी से सराबोर कर देता है। यथा—

शिवदत्त: हो...हो या न हो। प् प् पर हम तो श् श् शास्त्रार्थ क् क् क् करेंगे। अ अ अ अच्छा बतलाइए कि त् त् तुम्हारे राम स् स सीता के पास क् क् कोई वाहन नहीं है? ह ह ह हमारे शिवजी का वाहन न् न् न् नंदी और प् प् प् पार्वती जी का व् व् व् वाहन सिंह अलग एक घ् घ् घ् घर में दो-दो वाहन और तुम्हारे राम स् स् सीता के पास एक भी नहीं।

(परिहास की मुद्रा में)।⁶

एक अन्य स्थल पर भी जागोसुरी पंडित द्वारा शुद्ध संस्कृतनिष्ठ संवादों का अस्वाभाविक उच्चारण हास्यजनक स्थिति उत्पन्न करता है। यथा—

जागोसुरी: (लालच-भरी दृष्टि से रामबोला के हाथ की मिठाई देखकर) राहु महये चंद्रमा प्रवेश कर रहा है, सूखी रोटी के टुकड़े और यह स्वादिष्ट मिष्ठान्न (साधु से) स्वामी जी। इन बालक को इतना अधिक मिष्ठान्न मत खाने दीजिए। सूखी रोटी के बाद मिष्ठान्न खाएगा तो उदर में कष्ट हो जायेगा। अभी, जो है सो, बालक है।⁷

प्रस्तुत नाट्य कृति में अनेक स्थलों पर संवाद काव्यात्मक तथा भाषा आलंकारित हो गई है। यथा—

उषा की प्रथम किरण में तुम्हारा अनुराग राशि-राशि बिखरता है और पक्षियों के कलरव में तुम्हारा गुनगुनाया हुआ संगीत मुझे इस तरह आंदोलित करता है जैसे लहरों पर झूलता हुआ कमल जो नदी के प्रभाव में न जाने कितनी दूर चला जाता है।⁸

प्रस्तुत नाट्य में वातावरण को मूर्तिमंत तथा स्वाभाविक बनाने के लिए भजनों की भी संयोजना की गई है। राम बोला बड़े ही मधुर स्वर में गाते हैं यथा—

हमारे निर्धन के धन राम
चोर न लेत, घटत नाहिं
कबहूँ आवत गाढ़े काम
हमारे निर्धन के धन राम
जल नहिं बूडत, अग्नि न दाहत
ऐसो है हरि नाम।

बैकुंठ धाम सकल सुखदाता,
सूरदास सुख धाम।⁹

निष्कर्ष

उक्त नाट्यकृति का विवेचन करने के उपरांत कहा जा सकता है कि वर्मा जी ने संत तुलसीदास नामक नाटक में तुलसीदास के बाल्यकाल से उत्कर्षकाल तक का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। हास्य के प्रयोग द्वारा कथावस्तु में उदात्त भावना की संपुष्टि भी हो गई है। परंपरागत तथा काल्पनिक दोनों ही प्रकार के पात्र प्रभु राम की भक्ति में लीन प्रस्तुत किए गए हैं। संवाद पात्र तथा वातावरण के अनुकूल है। भाषा संवादों के उत्कर्ष में सहायक हुई। कहीं-कहीं हास्यरस की सृष्टि भी करती है। स्वाभाविक संवादों के साथ-साथ व्यंग्यात्मक एवं काव्यात्मक संवादों की संयोजना भी यत्र-तत्र हुई है।

संदर्भ

1. संत तुलसीदास, डॉ० रामकुमार वर्मा-नाटक रचनावली-भाग दो, संपादक डॉ० कमलकिशोर गोयनका एवं चंद्रिकाप्रसाद शर्मा (नाटक की भूमिका से), पृ० 235
2. वही, (पाँचवाँ अंक), पृ० 296
3. वही, (पाँचवाँ अंक), पृ० 291
4. वही, (पाँचवाँ अंक), पृ० 239
5. वही, (पाँचवाँ अंक), पृ० 286
6. वही, (चौथा अंक), पृ० 282
7. वही, (प्रथम अंक), पृ० 245-246
8. वही, (द्वितीय अंक), पृ० 256
9. वही, (प्रथम अंक), पृ० 246

सुपुत्र स्व० श्री श्रीकृष्ण
मोहल्ला गढ़ी पश्चिमी
कस्बा काँठ
तहसील सदर (शाहजहाँपुर) 242 223
मो० 0979422275

जैनेंद्रकुमार—व्यक्तित्व वैशिष्ट्य एवं जीवन—संदर्भ

कु० रीना रानी (शोध छात्रा)

डॉ० रेनु उपाध्याय (शोध निर्देशिका)

रीडर हिंदी विभाग

कन्या महाविद्यालय आर्य समाजभूड, बरेली

शोध केंद्र—बरेली कॉलेज, बरेली

यह पंक्तियाँ हैं श्री जैनेंद्र कुमार जी की, जो कि उनके द्वारा 'काम प्रेम और परिवार' पुस्तक की भूमिका में लिखी गई हैं—'सती गृहिणी का धर्म कोई जकड़बंद वस्तु नहीं है, यह सती शिरोमणि राध के आदर्श से साफ हो जाना चाहिए। पति तो दास है, स्त्री का समर्पण पति के द्वारा असल से समष्टि—जीवन—रूप परमेश्वर में ही पहुँचता है। ऐसी स्त्री की सहानुभूति के लिए सीमा नहीं रह जाती—न अधिकार पर अंकुश रहता है। समस्त समष्टि के साथ आत्मीयता का भाव उसमें खुला रहता है, यद्यपि केंद्रच्युत होने की भी उसके लिए कभी आवश्यकता नहीं होती। सीता और राधा के युग्म में जो स्त्रीत्व का आदर्श प्रस्फुटित होता है उससे बड़ी संपूर्णता मुझे और कहीं दिखाई नहीं देती है।'¹

वास्तविकता यह है कि जैनेंद्र जी हिंदी के एक ऐसे प्रतिष्ठित रचनाकार हैं जिन्होंने भाषा और साहित्य को अपनी मौलिकता, सहजता व दार्शनिकता से अपार समृद्धि प्रदान की है। हिंदी समाज के मेघ संकुल अंबर में जैनेंद्रकुमार का रचनात्मक आलोक प्रखर प्रकाश वाही ज्योतिपुंज के रूप में स्थापित हो चुका है। इनका जन्म कौड़ियाल गंज गाँव में 2 जनवरी सन् 1905 में अलीगढ़ में हुआ था। अलीगढ़ जो कि 'ताले' के लिए प्रसिद्ध है। इनके जन्म के उपरांत पास पड़ोस वाले इन्हें 'सकटुआ' कहकर पुकारने लगे। उस समय इनके पिताजी वहाँ उपस्थित नहीं थे। वह जब लौटकर आए तो उन्होंने इस बात का (सकटुआ नाम) का विरोध किया और उन्होंने कहा, 'यह क्या बकवास, सकटुआ। यह तो आनंद की घड़ी है। इसलिए उन्होंने आनंदी ही नाम दे दिया।'² फिर आनंदी से आनंदीलाल नाम हो गया। बचपन में इन्हें आनंदीलाल कहकर पुकारा जाने लगा। इनके जन्म के दो वर्ष उपरांत ही इनके पिताजी का देहांत हो गया। इनके पालन-पोषण का सारा उत्तरदायित्व माताजी एवं मामाजी पर आ गया। जैनेंद्र जी ने स्वयं इस समय का वर्णन करते हुए लिखा है, माताजी वैधव्य पर फिर अपने भाई यानी मामा के पास आ गईं। उस समय वे रेलवे में काम करते थे। हम लोग उनके साथ ही रहे। तब की इतनी याद है कि मेरी दो बहनें, मामी और उनका लड़का, यानी मेरा छोटा भाई, हम लोग सबके—सब बहुत आनंद से रहते थे। इसलिए प्रभाव की दृष्टि से माताजी का और उनके बाद हमारे मामा का प्रभाव रहा होगा। मामा

भगवानदीन जी थे।¹³

जैनेंद्रकुमार के पिता का नाम प्यारेलाल था। वे गाँव की पैठ में कपड़े बेचने का व्यवसाय करते थे। वे बहुत ही व्यवहार कुशल व सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। वे किस्से सुनाने में प्रसिद्ध थे। इनकी माताजी का नाम रामदेवी बाई था। वे व्यवहारशील गुणवान व स्वाभिमानी विदुषी महिला थीं। वे परिवार को जोड़े रखने में विश्वास रखती थीं।

सन् 1911 में मामा (भगवानदीन जी) ने हस्तिनापुर में एक गुरुकुल की स्थापना की थी। उसी गुरुकुल में इनका नाम जैनेंद्रकुमार रखा गया। सन् 1912 में इन्होंने गुरुकुल छोड़ दिया और मैट्रिक की परीक्षा के लिए बिजनौर आ गए। सन् 1919 में इन्होंने यह परीक्षा बिजनौर की अपेक्षा पंजाब से उत्तीर्ण की। उच्च शिक्षा के लिए यह काशी हिंदू विश्वविद्यालय गए, लेकिन सन् 1921 में इन्हें विश्वविद्यालय की पढ़ाई बीच में ही छोड़नी पड़ी। इसे इनका सौभाग्य कहें या दुर्भाग्य शिक्षा तो पूर्ण न हो सकी, पर काँग्रेस के असहयोग आंदोलन में भाग लेने का अवसर अवश्य प्राप्त हुआ और ये दिल्ली आ गए। जैनेंद्र जी ने स्वयं लिखा है, 'मैं लाहौर चला गया। वहाँ लाला लाजपतराय ने 'तिलक स्कूल ऑफ पॉलीटिक्स' खोला था। वहाँ गया और कुछ समय बाद चला आया।'¹⁴

सन् 1921 से 23 के बीच में इन्होंने अपनी माताजी के सहयोग से व्यापार प्रारंभ किया और उसमें सफल भी हुए। सन् 1923 में मामा भगवानदीन असहयोग आंदोलन में नागपुर में गिरफ्तार हो गए थे। इस कारण इन्हें नागपुर जाना पड़ा और वहाँ राजनीतिक पत्रों में संवाददाता के रूप में कार्य करने लगे। उसी वर्ष इन्हें जेल जाना पड़ा। फिर तीन माह के उपरांत छूट भी गए। दिल्ली आने के बाद इनका मन व्यापार में न लग सका। इन्होंने अपने-आपको व्यापार के कार्य से अलग कर लिया। फिर जीवनयापन के लिए नौकरी की तलाश में कलकत्ता चले गए, लेकिन वहाँ भी नौकरी न मिल सकी और वहाँ से भी खाली हाथ लौटना पड़ा। ये वापस दिल्ली आ गए। ये विवाहित थे। इनकी एक संतान भी थी। इनके अंधकारमय जीवन में एक उजाले की किरण नजर आई, वह थी इनका लेखन-कार्य आरंभ होना। जैनेंद्र जी का प्रथम लेखन था, 'देश जाग उठा', जो कि किसी कारणवश छप न सका। फिर भी इन्होंने हिम्मत नहीं हारी इनका दूसरा लेख 'देवी अहिंसे' था, जो चतुरसेन शास्त्री के नाम से छपा था। वह इनकी प्रथम रचना कहलाई। इनकी मुख्य देने उपन्यास तथा कहानी हैं। सन् 1929 में इनका प्रथम कहानी-संग्रह 'फाँसी' एवं प्रथम उपन्यास 'परख' प्रकाशित हुआ। जैनेंद्र जी पर उनके मामा और उनकी माताजी का गहरा प्रभाव था। उन्होंने स्वीकार किया कि 'मामा महात्मा भगवानदीन जी की मेरे मन पर बड़ी गहरी छाप है। माताजी तो अत्यंत विलक्षण महिला थीं। उनके लिए आधार रूप कोई भी नहीं रह गया था, भाई घरबार छोड़ बैठे थे। मेरे पिताजी का देहांत हो ही चुका था, लेकिन माताजी अदम्य साहसी थीं। निराशा नहीं आने दी, बंबई चली गईं। वहाँ थोड़ी कुछ पढ़ी-लिखीं, लेकिन उसी के आधार पर वे बढ़ती गईं।'¹⁵

जैनेंद्रकुमार जी एक कहानीकार, उपन्यासकार, एक अच्छे चिंतक दार्शनिक, नाटककार और निबंधकार भी हैं। वह हिंदी कथासाहित्य में मनोविश्लेषणवादी परंपरा के प्रवर्तक के रूप में विद्यमान रहे हैं। ज्योतिष जोशी के अनुसार, 'हिंदी कहानीजगत में जैनेंद्र एक ऐसे शिखर कहानीकार के रूप में स्वीकृत है, जिसकी कहानियाँ न केवल भारतीय, बल्कि विश्वसाहित्य में भी अपना गौरवपूर्ण स्थान रखती हैं।'¹⁶ 24 दिसंबर सन् 1988 को नई दिल्ली में इनका देहांत हो गया।

जैनेंद्र जी आकर्षक व्यक्तित्व से परिपूर्ण थे। वे शारीरिक गठन में लंबे-पतले स्वस्थ युवा

थे। रंग गोरा एवं चौड़ा ललाट था। चश्मा लगाते थे। काली घनी मूछें थीं। इनके संबंध में कहा जाता है कि, 'हल्का-दुबला जिस्म हौसला गायब और इरादा लापता। आँखों में उसके बेगानगी थीं और कदमों में कोई गति न थी।' उस समय जैनेंद्रकुमार अत्यंत साधारण होकर भी विशेष थे। इनकी वेशभूषा-धोती, कुर्ता एवं साल थी, जो कि अत्यंत साधारण होकर भी प्रभावोत्पादक थी। डॉ० देवराज उपाध्याय ने 'अपनी ओर' से स्मरण करते हुए लिखा है, 'एक बात मुझे खूब याद है और वह है इनकी वेशभूषा की सादगी। वह गाँधी का युग था और सादगी तेरा नाम ही गाँधी है। सब लोग अपनी वेशभूषा में सादगी लाने का प्रयत्न करते थे, पर उस युग में मुझे जितने साहित्यकों से मिलने का सौभाग्य मिला उनमें जैनेंद्र में मैंने सबसे अधिक सादगी पाई। आज के जैनेंद्र की रहन-सहन और पहिरन भी सादी ही है, पर उस समय इनमें ज्यादा सादगी थी। कपड़े तो खद्दर के ही थे, पर बगुले की आँख की तरह लकड़क होना उनके लिए आवश्यक नहीं था। कुर्ते के लिए पिंडलियों तक झूलना जरूरी नहीं था। वे कमर तक भी रहकर संतोष कर ले थे और आधी बाँह के भी हों, तो कोई परवाह नहीं जाँघिये से भी काम चल सकता था।'⁸

जैनेंद्र जी बड़े ही कुशाग्र बुद्धि के व्यक्ति थे। वह प्रत्येक वस्तु के प्रति जिज्ञासा का भाव रखते थे। उन्होंने विषम परिस्थितियों में भी संयम नहीं छोड़ा। क्रोध को कभी अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया। प्रो० नामवरसिंह के अनुसार, 'नई कहानी से जुड़े लोगों ने उन पर आरोप लगाए। एक अधिवेशन में कलकत्ता बुलाकर खूब खरी-खोटी सुनाई, लेकिन जैनेंद्रकुमार जरा भी उत्तेजित नहीं हुए। आज ऐसे कम साहित्यकार हैं, जो अपनी आलोचनाओं को इतनी सहजता से सुनते हैं।'⁹

जैनेंद्र जी में सरलता का गुण भी विद्यमान था। वह विनम्र स्वभाव के थे। उनके बातचीत करने का अपना ही एक ढंग था। एक तरीका था जो लोगों को उनकी ओर आकर्षित करता था। प्रेमचंद जी ने पूरब पर सम्मति देते हुए ठीक ही कहा था कि 'उनमें साधरण-सी बात को भी कुछ इस ढंग से कहने की शक्ति है, जो तुरंत आकर्षित करती है। उनकी भाषा में एक खास लोच एक खास अंदाज है।'¹⁰ जैनेंद्र विनम्रता व शांत स्वभाव के गुण से संपन्न थे।

जैनेंद्र जी के व्यक्तित्व की एक मुख्य प्रवृत्ति 'अपरिग्रह' भी है। गाँधी जी के अनुसार-'अपरिग्रह का अर्थ संतोष है। इसका अर्थ है कि व्यक्ति अपनी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति से संतुष्ट रहे तथा अधिक अर्जित करने के लिए लालायित न रहे।'¹¹ जैनेंद्र जी अनावश्यक के त्याग के मोह में कभी-कभी आवश्यकता को भी भूल जाते हैं।

जैनेंद्र जी के साहित्य पर विनोद भाव का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। जिसकी झलक कई जगह देखने को मिलती है जैसे-'मौत की कहानी, कश्मीर की वह यात्रा' में 'महात्माजी' शब्द का प्रयोग और अम्बुलकर 'टाइप' में और खासकर शांता का रंग में।¹² यह व्यवहार इनके व्यवहार में भी विद्यमान रहता है।

जैनेंद्र जी की भाषा सीधी-सरल व बनावटीपन से कोसो दूर है। उनकी भाषा में घरेलूपन है। इनकी भाषा शिल्प के विषय में एक विचारक का कथन है, 'जैनेंद्र जी की भाषा शैली, आत्मीयता एवं विश्वसनीयता के विशेष तत्त्वों से समन्वित है। भाषा-भावों का समाहार संक्षिप्तता और अपनत्व की प्रभविष्णुता वहाँ विशेष रूप से विद्यमान है। भाषा दार्शनिकता के कारण सजीव होते हुए भी लाक्षणिक-व्यंजना एक गौरखधंधा भी बन जाती है, किंतु प्रबुद्ध पाठक के लिए थोड़ा-सा बौद्धिक दबाव रखने वाले पाठक के लिए वह दुमेद्य तो नहीं की जा सकती। शैली में संक्षिप्तता

सांकेतिकता और थोड़े में अधिक कहने की प्रवृत्ति अपने कथ्य कथानक को विश्वसनीयता बना देने की शक्ति वहाँ विशेष रूप से विद्यमान है। हमारे विचार में जैनेंद्र जी के उपन्यासों में विश्वसनीय बना देने की क्षमता का तत्त्व ही सबसे अधिक आकर्षक एवं प्रभावी है।¹³

जैनेंद्र जी की शैली सचेत है। इनकी शैली शिल्प के संबंध में डॉ० वाष्णीय का कथन है—‘जैनेंद्र ने छोटे-छोटे वाक्यों, पूरे वाक्यों को तोड़-मरोड़कर और प्रश्न उठाकर स्वयं उनका उत्तर देने की जो अभिनय शैली अपनाई है वह पात्रों की अकुलाहट और उनकी वास्तविक मनःस्थितियों को यथार्थ धरातल पर प्रस्तुत करने में पूर्ण सफल है। शैली में तीव्रता और प्रभावी बनाने में भाषा का महत्त्वपूर्ण योगदान है।’¹⁴

जैनेंद्र जी ईश्वर की सत्ता में विश्वास रखते हैं। वह प्रेम को ही ईश्वर मानते हैं। वह कबीर के भक्त थे। ‘ईश्वर विषयक विचार-दर्शन के परिप्रेक्ष्य में जैनेंद्र के औपन्यासिक धरातल पर आस्तिकता के मूल्यों की स्थापना हुई है। उनके समस्त उपन्यासों में रहस्यात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम से ईश्वर का होना स्वीकार किया गया है। जिनका स्पष्ट उल्लेख सुखदा, जयवर्धन, अनामस्वामी में उपलब्ध होता है।’¹⁵

हिंदी गद्य को मनोवैज्ञानिक गहराईयों से जोड़ने वाले वह प्रथम लेखक हैं। जैनेंद्र जी व्यक्तिवादी लेखक हैं। डॉ० वाजपेयी के शब्दों में, ‘जैनेंद्रकुमार हिंदी के प्रथम तथा प्रमुख मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं जिन्होंने मध्यवर्गीय समाज की नवीन चेतना को मुखरित किया है। उन्होंने व्यक्ति को मूलतः व्यक्ति मानकर उसकी मान्यताओं को वाणी देने का प्रयास किया है। इसलिए उनके उपन्यासों को व्यक्तिवादी उपन्यास की भी संज्ञा दी जाती है।’¹⁶ जैनेंद्र जी मनुष्य की दैवीय विशेषताओं को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि मनुष्य एक विशिष्ट प्राणी है। इस विशिष्टता के गुण का समावेश होने के कारण ही उसमें मनुष्यता व्याप्त है। इस विशेषता की चिंगारी प्रतिक्षण उसमें व्याप्त रहती है। यह बात अलग है कि वह निष्क्रिय जान पड़ती है, पर अनुकूल परिस्थितियाँ होने पर वह मानव हृदय में उद्भाषित होने लगती है।

जैनेंद्र जी पर रवींद्रनाथ टैगोर, रूसी लेखक टालस्टॉय, दोस्तोयेवस्की, शरतचंद्र, महात्मा गांधी आदि का प्रभाव रहा। जैनेंद्र जी कहते हैं कि, ‘सबसे अधिक प्रभाव मैं समझता हूँ, मेरे ऊपर गाँधीजी का कहना चाहिए। एक समग्र संयुक्त पुरुष का चित्र मैं आँकना चाहूँ तो हठात् वह गाँधीजी का रूप बन जाता है। इसलिए सर्वाधिक प्रभावित तो मैं गाँधीजी के व्यक्तित्व से हूँ।’¹⁷ गाँधीजी के अहिंसा के सिद्धांत को इन्होंने स्वीकारा है। जैनेंद्र जी की ‘समय, समस्या और सिद्धांत’ पुस्तक की भूमिका में रामावतार का कथन है कि, ‘जैनेंद्र जी कहते हैं कि अगर कोई तुम्हें गोली मारने के लिए आए तो सीना खोल दो और मुस्कुराते हुए गोली खा लो, लेकिन शस्त्र न उठाओ।’¹⁸ जिस तरह गाँधीजी कहते थे कि तुम्हारे कोई एक गाल पर चाटा मारे तो दूसरा गाल सामने कर दो। यह गाँधीजी के अहिंसा के सिद्धांत से प्रेरित थे।

जैनेंद्र जी पर हिंदी कथा-सम्राट प्रेमचंद जी का भी विशेष प्रभाव रहा। प्रेमचंद के अंतिम दिनों में जैनेंद्र ने अपनी आस्था पर जोर देते हुए उनसे पूछा था कि अब ईश्वर के बारे में क्या सोचते हैं? प्रेमचंद ने दुनिया से विदाई के अवसर पर तब जवाब दिया था कि इस बदहाल दुनिया में ईश्वर है, ऐसा मुझे तो नहीं लगता। वे अंतिम समय में भी अपनी वैचारिक दृढ़ता बरकरार रख सके। यह देखकर जैनेंद्र अत्यंत प्रभावित हुए।¹⁹

जैनेंद्र जी के जीवन पर पाश्चात्य विचारक सिगमंड फ्रायड का भी प्रभाव रहा है। जैनेंद्र जी के साहित्य में मानसिक कुंठा एवं हार्दिक अतृप्तियों का जो सम्मिलित रूप है वह फ्रायड के जीवन-दर्शन एवं उनके भारतीय-दर्शन का मिश्रण है। डॉ० देवराज उपाध्याय भी जो कि जैनेंद्र के उपन्यासों में संपूर्णतावादी मनोविज्ञान की झलक पाते हैं, यह मानने के लिए विवश हो जाते हैं कि 'उनके प्रत्येक उपन्यास में अचेतन अहं (ego) और अचेत (id) का घात-प्रतिघात चलता ही रहता है। प्रत्येक के घर में अहं (ego) और बाहर अचेत (id) की आकांक्षा है, पुकार है और वह घर बाहर के प्रति आत्मसमर्पण करने के लिए विवश है।'²⁰

जैनेंद्र जी के उपन्यासों के मुख्य केंद्र में नारी है। अधिकांशता उनकी नायिकाएँ मध्यमवर्गीय परिवार से जुड़ी हैं। वह मानसिक कुंठा एवं अंतर्द्वंद्व के जाल में जकड़ी हुई हैं। चाहे वह 'सुखदा उपन्यास' की नायिका सुखदा हो, 'त्यागपत्र' की मृणाल बुआ, 'व्यतीत' की अनीता, 'कल्याणी' की कल्याणी हो, 'सुनीता' की सुनीता' आदि। यह सभी नारी पात्र अंतर्द्वंद्व के दलदल में फँसे हुए हैं और अपने-आपको भाग्य के सहारे छोड़ देते हैं। 'कल्याणी' उपन्यास में कल्याणी किसी के घर जाने में भी अपनी इच्छाशक्ति पर विश्वास नहीं करती और कहती है—'अच्छा भाग्य में होगा तो आऊँगी'²¹ सुखदा में भी सुखदा अपने पति को किसी कार्य के लिए दोष नहीं देती और कहती है, 'उन्होंने कुछ नहीं किया। सब भाग्य के अधीन हुआ है।'²² जैनेंद्र जी के उपन्यासों के पात्र अपने-आपको भाग्य के भरोसे छोड़ देते हैं। बिजली प्रभा प्रकाश का कथन है कि, 'जैनेंद्र जी का विश्वास नारी के समर्पण और विसर्जन में है—नारी भारतीय हो या इतर, अंत में नारी है। मैं व्यक्तित्व के उपार्जन में नहीं, विसर्जन में विश्वास करता हूँ और वह विसर्जन की क्षमता नैसर्गिक रूप से नारी को विशेष प्राप्त है।'²³

जैनेंद्र जी के उपन्यासों में जो प्रेम का रूप व्याप्त है, उसमें त्रिकोणात्मकता है। इसमें पत्नी, पति तथा प्रेमी तीनों के मध्य जीवन के अंतरंग पहलुओं में उतार-चढ़ाव, मानसिक कुंठा, अंतर्द्वंद्व, अतृप्ति आदि के भाव उपस्थित हैं। 'जैनेंद्र जी पति के लिए पत्नी के अलावा प्रेयसी की भी कल्पना करते हैं। उसी प्रकार पत्नी के लिए पति के अलावा एक प्रेमी का भी जीवन में होना ठीक मानते हैं।'²⁴

जैनेंद्र जी की राजनीति के क्षेत्र में सक्रिय भूमिका रही है। सन् 1921 में जैनेंद्र जी ने अपनी विश्वविद्यालय की पढ़ाई छोड़ दी थी और काँग्रेस के असहयोग आंदोलन में भाग लेने के लिए चल पड़े थे। यह उनका राजनीति में पहला कदम था। सन् 1922 में महात्मा भगवानदीन बैतूल जेल से छूटे थे। उस समय जैनेंद्र जी वहाँ उपस्थित थे। तभी महात्मा जी ने कहा, 'तुम यहाँ काँग्रेस का काम क्यों नहीं करते हो? कुछ देश का काम करो और मैं वहीं रह गया।'²⁵ यहाँ से जैनेंद्र जी की सतत् राजनीति यात्रा प्रारंभ हो गई। सन् 1922 के अंत में यह बैतूल से प्रांतीय काँग्रेस कमेटी के सदस्य बने। सन् 1923 में नागपुर झंडा सत्याग्रह में उन्हें प्रथम कारावास दिया गया था और तीन महीने के उपरांत यह छूट भी गए थे। फिर वापस दिल्ली आ गए। लेकिन राजनीति से इनका जुड़ाव बना रहा। सन् 1930 में इन्हें सत्याग्रह में शामिल होने वाले स्वयंसेवकों के जत्थे का हेड नियुक्त किया गया। सन् 1932 के आंदोलन के समय इन्हें दूसरा डिक्टेटर बनाया गया और उसी वर्ष इन्हें कारावास भी दिया गया। सन् 1932 के बाद इन्होंने किसी भी सक्रिय आंदोलन में भाग नहीं लिया।

जैनेंद्र जी का प्रथम मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास 'परख' है। परख उपन्यास को हिंदुस्तानी अकादमी पुरस्कार द्वारा पुरस्कृत किया गया है। इस उपन्यास की ख्याति से इन्हें अलग पहचान मिली। इसमें विधवा कट्टो एवं सत्यधन के मानसिक द्वंद्व एवं पारस्परिक संबंधों पर प्रकाश डाला गया है। सन् 1935 में इनका दूसरा उपन्यास 'सुनीता' आया, जिसमें मानव मन की व्यथा, मानसिक अंतर्द्वंद्व का मनोविश्लेषण किया गया है। 'त्यागपत्र' इनका बहुचर्चित उपन्यास है। इसमें प्रमोद, मृणाल, बुआ मुख्य पात्र हैं। इसमें मृणाल के अतृप्त जीवन एवं अतृप्त कामवासना का चित्रण किया गया है। यह एक ट्रेजडी उपन्यास है। डॉ० देवराज उपाध्याय के शब्दों में, 'त्यागपत्र एक ट्रेजडी है—वज्र हृदय को भी हिला देने वाली ट्रेजडी। मृणाल की नियति की कुटिलता को जरा देखिए—ट्रेजडी उसके अनाथ होने में नहीं, उसके जीवन में रोटियों के लाले पड़ने में नहीं, उसके तिल के मरने में नहीं, बल्कि पति के प्रति समर्पित होकर जीवन व्यतीत करने के कारण पति को उपेक्षित हो नारकीय जीवन को स्वीकार कर लेने पर बाध्य होने में है। परिस्थितियों के नीचे दबकर कब्र में चला जाना तो कुछ नहीं, पर परिस्थितियों के चक्कर में पड़कर एक सती साध्वी स्त्री का अपवित्र वेश्या जीवन की भयंकर यंत्रणा को स्वीकृत करने के लिए बाध्य होना यह आत्मा की ट्रेजडी है।²⁶ सन् 1939 में 'कल्याणी उपन्यास' प्रकाशित हुआ। जिसमें नारी जीवन में आए उतार-चढ़ाव घर और बाहर की समस्या के बीच सामंजस्य स्थापित कर पाना आदि पहलुओं को उजागर किया गया है।

इनका पाँचवा उपन्यास है—'सुखदा'। सन् 1953 में विवृत उपन्यास आया, जो कि पुरुष प्रधान उपन्यास है। इसके बाद इनका 'व्यतीत' उपन्यास आया। इसमें सभी नारी पात्र अतृप्त कामवासना से ग्रसित हैं। फिर 'जयवर्धन' उपन्यास प्रकाशित हुआ। 'मुक्तिबोध' उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है। इस उपन्यास पर इन्हें 1968 में साहित्य अकादमी सम्मान भी प्राप्त हुआ है। इसमें यथार्थ जीवन में आए उतार-चढ़ाव एवं मानव की मनोदशा का चित्रण किया गया है। 'अनंतर' उपन्यास भी आत्मकथा शैली में लिखा गया है। इसके बाद 'अनामस्वामी' उपन्यास प्रकाशित हुआ। 'दर्शाक' जैनेंद्र जी का अंतिम एवं महत्त्वपूर्ण उपन्यासों में से एक है।

उपन्यासकार के साथ-साथ जैनेंद्र जी को कहानीकार के रूप में भी ख्याति प्राप्त हुई है। 'फाँसी' इनका प्रथम कहानी-संग्रह है, जो कि 1929 में प्रकाशित हुआ। जिसकी प्रसिद्धि ने इन्हें एक प्रसिद्ध कहानीकार बना दिया। 1930 में वातायन, नीलम देश की राजकन्या, एक रात, दो चिड़ियाँ, पाजेब, जयसंधि, जैनेंद्र की कहानियाँ (सात भाग) आदि प्रकाशित हुईं। इनके निबंध-संग्रह, अनुदित ग्रंथ, संपादित ग्रंथ आदि भी प्रकाशित हुए। जिससे इन्हें हिंदी साहित्य के क्षेत्र में एक नवीन आयाम एवं उच्चकोटि का स्थान प्राप्त हुआ।

निष्कर्षतः जैनेंद्र-साहित्य ने हमें एक नई दिशा एवं नई सोच दी है। उन्होंने अपनी रचनाओं में विशेष रूप से कहानियों को घटनात्मक स्तर न देकर चरित्र और मनोवैज्ञानिक सत्य का रूप देने का भरसक प्रयास किया है। उन्होंने अपने उपन्यास एवं कहानियों को सामाजिक धरातल के साथ-साथ व्यक्तिगत और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान किया है। प्रभाकर माचवे के अनुसार—'वह मन की खदान से खुरदरी निकली हुई सम्मति अनुभूति की खराद पर चढ़कर अच्छी तरह कटी-छँटी साफ और निर्भीक, चिर-उद्यत् रहती है। इसी चाह के कारण ही तो जैनेंद्र हर प्रकार के व्यक्ति के साथ बड़ी ही आसानी से मिल जा सकते हैं और उस प्रयोग के लक्ष्य

के अंतरंग का कोना-कोना छानने-टटोलने पर ही उसे वे छोड़ते हैं।¹²⁷

संदर्भ

1. जैनेंद्र रचनावली खंड-8, (काव्य प्रेम और परिवार) भूमिका, पृ० 17, संपादक निर्मला जैन
2. जैनेंद्र रचनावली खंड-12, (मेरे भटकाव) पृ०-11, संपादक निर्मला जैन
3. वही, पृ० 11
4. वही, पृ० 29
5. वही, पृ० 17
6. जैनेंद्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, संपादक निर्मला जैन, कवर पृष्ठ पूर्वोदय प्रकाशन
7. जैनेंद्र रचनावली खंड-12, (ये और वे) पृ०-224, संपादक निर्मला जैन
8. जैनेंद्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, डॉ० देवराज उपाध्याय (अपनी ओर से) पृ०-क, संपादक निर्मला जैन।
9. Wikipedia.org/s/95/y
10. जैनेंद्र के विचार, प्रभाकर माचवे, पृ०-27, संपादक प्रभाकर माचवे पूर्वोदय प्रकाशन नई दिल्ली
11. समकालीन भारतीय दर्शन, वसंतकुमार लाल, पृ० 172, मोतीलाल बनारसी, प्रकाशन।
12. जैनेंद्र के विचार, पृ०, संपादक प्रभाकर माचवे, पूर्वोदय प्रकाशन नई दिल्ली
13. त्यागपत्र समीक्षा, प्रो० राजेश शर्मा, पृ०-151, प्रकाशन-अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली-6
14. वही, पृ० 169,
15. जैनेंद्र के उपन्यासों में नारी चरित्रों का मनोवैज्ञानिक, धरातल, बिजली प्रभा प्रकाश, पृ० 76
16. वही, पृ० 50
17. जैनेंद्र रचनावली खंड-12, (मेरे भटकाव) पृ०-18, संपादक निर्मला जैन, सहयोग प्रदीपकुमार भारतीय ज्ञानपीठ, प्रकाशन।
18. जैनेंद्र रचनावली खंड-7, (समय समस्या और सिद्धांत) भूमिका, पृ०-13, संपादक निर्मला जैन, सहयोग प्रदीपकुमार, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।
19. Wikipedia.org/s/95/y
20. त्यागपत्र समीक्षा, प्रो० राजेश शर्मा, पृ० 122, अशोक प्रकाशन
21. जैनेंद्र के उपन्यासों में नारी चरित्रों का मनोवैज्ञानिक धरातल, बिजली प्रभा प्रकाश, पृ० 80
22. वही, पृ० 80
23. वही, पृ० 83
24. वही, पृ० 87
25. जैनेंद्र रचनावली खंड-12, संपादक निर्मला जैन, पृ० 30,
26. जैनेंद्र के उपन्यासों में नारी पात्र, डॉ० सावित्री मठपाल, पृ० 57, मंगल प्रकाशन, जयपुर-1
27. जैनेंद्र के विचार, पृ० 28, संपादक प्रभाकर माचवे, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली-110002

रीना रानी
स्व० श्री छोटेलाल सागर
मन० 12, मो० कटघर पोस्ट
थाना किला, जिला बरेली

जुलाई-सितंबर 2013 ■ 235

हिंदी ललित निबंध के विकास में 'सनातन-संदेश' का योगदान

सुधा महला

एम० फिल्ड, हिंदी-विभाग

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

मो० 09255172160

ललित निबंध के विधगत अर्थ एवं स्वरूप को समझने के लिए 'ललित' शब्द को समझना अति आवश्यक है। सामान्यतः ललित शब्द का प्रयोग सुंदर एवं मनोहर वस्तु के संदर्भ में किया जाता है। कोमल, सुहावना, प्रिय, प्रांजल ललित के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द हैं। इस शब्द के सम्यक् रूप को समझने के लिए इसके विभिन्न कोषगत अर्थों पर दृष्टिपात करना अपेक्षित है। 'नालंदा विशाल शब्द सागर' में ललित शब्द के लिए पाँच अर्थ दिए गए हैं। 1. सुंदर मनोहर, 2. अभिलाषित, मनचाहा 3. हिलता-डोलता हुआ, 4. एक अलंकार, जिसमें वर्ण्यवस्तु के स्थान पर उसका प्रतिबिंब वर्णन किया जाता है। 5. पांडव जाति का एक राग, जो प्रायः गाया जाता था।

जब ललित शब्द की बात की जाती है, तो इससे जुड़े अन्य 'पद' भी स्वतः ही दृष्टिपथ में आ धमकते हैं। 'इसमें 'ललित पद' वह सुंदर पद या शब्द है, जिसमें 28 मात्रा हों।' 'वह छंद 'ललित पद' कहलाता है। 'ललित कला' वह कला है, जिसके व्यक्त करने में किसी प्रकार के सौंदर्य की अपेक्षा होती है, जैसे—'फाईन आर्ट' 'संगीत आदि' जब 'ललित' शब्द की दो बार पुनरावृत्ति कर दी जाती है, तो उससे अधिक का भाव परिलक्षित होता है और 'ललित' का अर्थ हुआ बहुत सुंदर।²

रामचंद्र वर्मा ने ललित शब्द के लिए मनोहर, कोमल, सुंदर, अभिलाषित शब्दों का प्रयोग किया है तथा 'ललित पद' उसे माना है जिसमें सुंदर पद या शब्द हो।³

'ललित शब्द' की व्युत्पत्ति लल धतु से क्तः प्रत्यय लगाने से हुई, जिसका तात्पर्य है—सुंदर'

डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु ने ललित निबंध की व्याख्या इस प्रकार की है—'सच्चे साहित्यिक निबंधों में तो लेखक अपने-आपको ही प्रकट करता है, विषय को बढ़ाना मात्र होता है। अभिव्यक्ति शैली में कलात्मक या लालित्य के दर्शन होते हैं। कहने का आशय यह है कि ललित निबंध ही सच्चे साहित्यिक निबंध होते हैं'⁴

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ललित निबंधों की परिभाषा इस प्रकार दी है—व्यक्तिगत निबंध का लेखक किसी एक विषय के छेड़ने से बाकी सभी तार झंकृत हो उठते

हैं, उसी प्रकार उस विषय को छूते ही लेखक की चित्तभूमि पर बँधे हुए सँकड़ों विचार बज उठते हैं। इसीलिए लेखक जितना ही बहुश्रुत और सहृदय होगा, निबंध उतना ही प्रेरक और सरस होगा⁵

कुबेरनाथ राय ने ललित निबंध की व्याख्या इस प्रकार की है, 'विषय के आसपास शिव के सौंदर्य की भाँति मुक्त विचरण ललित निबंध है।'

डॉ० बाबूराम ने ललित निबंध पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, 'ललित निबंधों में लालित्य चेतना, सौंदर्य बोध, माधुर्य और कोमलता के साथ-साथ सांस्कृतिक बोध की प्रधानता होती है। प्रभावोत्पादकता, लाक्षणिकता, कलात्मकता, रागात्मकता आदि ललित निबंध की विशेषताएँ हैं।'⁶

'वस्तुतः वैयक्तिकता, उद्देश्य, अनुभूति, विचार, कल्पना, संक्षिप्तता, शैली आदि ललित निबंध के महत्त्वपूर्ण तत्व माने जाते हैं। व्यक्ति मन का चित्रण, लोक-संस्कृति, लालित्य, रोचकता, रागात्मकता, भावात्मकता, सजीवता, स्वच्छंदता, एकसूत्रता, काव्यात्मकता, कलात्मकता आदि ललित निबंध की प्रमुख विशेषताएँ हैं।'⁷

हिंदी ललित निबंध का विकास भारतेंदु युग से माना जाता है। हिंदी ललित निबंधों और ललित निबंधकारों में 'पं० माधवप्रसाद मिश्र, अध्यापक पूर्णसिंह, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', 'आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र, विवेकीराय, शिवप्रसादसिंह, जयभगवान गोयल, कुबेरनाथ राय, मृदुला सिन्हा, रामअवध शास्त्री, गुप्तिसागर मुनि, मनोहरलाल, श्रीराम परिहार, संतराम देशवाल और बाबूराम प्रभृति उल्लेखनीय हैं'⁸

डॉ० बाबूराम अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। उन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं पर अपनी लेखनी सफलतापूर्वक चलाई है। वे सुप्रसिद्ध इतिहासकार, निबंधकार, उपन्यासकार, एकांकीकार, लघुकथाकार समालोचक, नाटककार, संपादक के साथ-साथ उच्चकोटि के शिक्षाविद् भी हैं। वे संत-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान हैं। हिंदी ललित निबंध परंपरा में उनका उल्लेखनीय योगदान है। वे 21वीं सदी के प्रथम दशक के ललित निबंधकारों में उदीयमान ललित निबंधकार हैं। इनका ललित निबंध-संग्रह 'सनातन-संदेश' (2010) में प्रकाशित है।⁹ यह हिंदी का प्रमुख ललित निबंध-संकलन है। 'इस संग्रह में वैदिककाल से लेकर आधुनिकयुग की अनेक समस्याओं जैसे-आतंकवाद, प्रदूषण, नशा, विज्ञान, सूचना और प्रौद्योगिकी, वैश्वीकरण, विश्वशांति, कर्म करने की प्रेरणा, मानव जाति का कल्याण, भक्ति, नीति, साहित्य, संस्कृति, धर्म, दर्शन, प्रकृति अनुशासन, व्यंग्य-विनोद आदि को स्पर्श किया गया है। निबंधकार ने बड़े कौशल से ललित निबंधों को क्रमबद्ध किया है, जिनमें प्राचीन भारतीय संस्कृति की झलक भी मिलती है और आधुनिक भौतिकवादी मानव-सभ्यता का सजीव चित्रण भी दिखाई देता है। सबसे ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि निबंधकार ने कलियुग के सुंदर रूप को भी चित्रित किया है। उन्होंने अपने निबंधों में इस ओर भी संकेत किया है कि पूरे विश्व में जो आज शांति है, इसके मूल में परमाणु बम का भय है। इन निबंधों में यत्र-तत्र मुहावरे, लोकोक्तियों और सूक्तियों के प्रसंगानुकूल दर्शन होते हैं। निबंधकार ने इन निबंधों में वर्णनात्मक, भावात्मक व्यंग्यात्मक, विचारात्मक और नाटकीय आदि शैलियों का आश्रय लिया है।'¹⁰

‘यह सनातन-संदेश उसके लिए रक्षा-कवच है, ‘प्रजापति के अनुशासन की मेघ-गर्जनारूपी दैवी वाणी आज भी द-द-द कहती है—हे भोग प्रधान देवो। इंद्रियों का दमन करो। अतः दमन, दान और दया तीनों ही मोक्ष के मार्ग हैं। अनादिकाल से मेघ-गर्जना करके यही सनातन-संदेश देते हैं’¹¹

निष्कर्षत कहा जा सकता है कि हिंदी ललित निबंध की अवस्था अपनी आरंभिक बाल्यावस्था से यौवन की परिपक्वता को प्राप्त करने जा रही है। अब हिंदी ललित-निबंध विधा एक स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित हो चुकी है। हिंदी ललित-निबंध के विकास में डॉ० बाबूराम द्वारा लिखित ‘सनातन-संदेश’ का महत्वपूर्ण योगदान है। भावी ललित-निबंधकार इससे प्रेरणा लेकर ललित-निबंध परंपरा को समृद्ध कर सकेंगे।

संदर्भ

1. नालंदा, विशाल शब्द सागर, पृ० 1205
2. वही, पृ० 1205
3. रामचंद्र वर्मा, मानक हिंदी कोश
4. डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु, हिंदी साहित्य का बृहद् इतिहास, पृ० 59
5. डॉ० दर्शनसिंह, ललित निबंधकार : विवेकीराय, पृ० 38
6. डॉ० बाबूराम, हिंदी निबंध साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 44
7. डॉ० दर्शनसिंह, ललित निबंधकार : विवेकीराय, पृ० 48
8. संभावना, हिंदी-विभाग (कु० वि० कु०), पृ० 76
9. डॉ० सरिता वशिष्ठ, हिंदी साहित्य वर्तमान दशक, पृ० 135
10. संभावना, हिंदी-विभाग (कु० वि० कु०), पृ० 83
11. डॉ० बाबूराम, सनातन-संदेश, आकाश पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स गाज़ियाबाद, संस्करण 2004, पृ० 18

हिंदी-विभाग

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

मो० 09255172160

ललित निबंधकार : डॉ० बाबूराम

विजेता रानी (शोध छात्रा)

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

मो० 08816871013

हिंदी ललित निबंध परंपरा में ललित निबंधकार बाबूराम और उनके द्वारा विरचित 'सनातन-संदेश' का उल्लेखनीय स्थान है। अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध साहित्यकार के ललित निबंध 'सनातन-संदेश' में 16 ललित निबंध संकलित हैं। ये निबंध विविध विषयों पर वैदिककाल से लेकर आधुनिक युग की समस्याओं और उनके सामाधान का मार्ग खोजते हैं। निबंधकार को निबंध-लेखन की प्रेरणा उपनिषदों से मिलती है। निबंधकार का युगबोध बड़ा विस्तृत और व्यापक है। आतंकवाद, प्रदूषण, नशा, विज्ञान, सूचना-प्रौद्योगिकी, वैश्वीकरण, विश्वशांति, कर्म करने की प्रेरणा, मानव-जाति का कल्याण, भक्ति-नीति- साहित्य, संस्कृति, धर्म, दर्शन, प्रकृति, अनुशासन, व्यंग्य-विनोद आदि उनके निबंधों की विशेषताएँ हैं। हिंदी ललित निबंधकारों में बाबूराम जी का योगदान अप्रतिम है।

हिंदी साहित्य की अनेक विधाओं में निबंध भी एक महत्वपूर्ण विधा है। ललित निबंध भी आज एक नवीन विधा के रूप में स्थापित हो चुका है। 'ललित' शब्द की व्युत्पत्ति 'लल्' धातु में 'क्त्' प्रत्यय लगने से हुई है, जिसका तात्पर्य है-सुंदर।¹ ललित शब्द के लिए अँग्रेजी में भी कई शब्द प्रयुक्त हुए हैं—Pleasant, Comely, Sweet, Elegant and Graceful.²

हिंदी साहित्य के कई विद्वानों, समालोचकों, ललित निबंधकारों ने ललित निबंध की अनेक परिभाषाएँ दी हैं—

बाबू गुलाबराय ने लिखा है—'इस प्रकार की विधा का विषय व्यक्ति ही होता है। ये निबंध प्रायः भावात्मक होते हैं, क्योंकि संस्मरणों के सहारे कुछ भावधारा कभी जुड़ी रहती है। ये आत्मकथात्मक होते हैं, पर आत्मकथा नहीं होते।'³

कुबेरनाथ राय के अनुसार—'विषय के आसपास शिव के सौंदर्य की भाँति युक्त विचरण ललित निबंध है।'⁴

विद्यानिवास मिश्र के अनुसार—'ललित निबंध व्यक्तिव्यंजक निबंध है।'⁵

डॉ० बाबूराम ने ललित निबंध पर प्रकाश डालते हुए कहा है—'ललित निबंधों में ललित्य चेतना, सौंदर्यबोध, माधुर्य, कोमलता के साथ-साथ सांस्कृतिक बोध की प्रधानता होती है। प्रभावोत्पादता, लाक्षणिकता, कलात्मकता और रागात्मकता आदि ललित निबंध की विशेषताएँ हैं।'⁶

भारतेंदु युग से हिंदी निबंधों का प्रारंभ माना जाता है, परंतु ललित निबंधों का उदय पं० माधवप्रसाद मिश्र के निबंधों से माना जाता है और ललित निबंधों का विकास सरदार पूर्णसिंह

के निबंधों से हुआ है सांस्कृतिक निबंधकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी भी कालांतर में ललित निबंधकार के रूप में सुप्रसिद्ध हुए। हिंदी के ललित निबंधकारों में पं० माधवप्रसाद मिश्र, अध्यापक पूर्णसिंह, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र, विवेकीराय, शिवप्रसादसिंह, जयभगवान गोयल, कुबेरनाथ राय, मृदुला सिन्हा, रामअवध शास्त्री, उपाध्याय गुप्तिसागर, मुनि, मनोहरलाल, श्रीराम परिहार, संतराम देशवाल, बाबूराम का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।⁷

डॉ० बाबूराम अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। उन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं पर अपनी लेखनी सफलतापूर्वक चलाई है। वे सुप्रसिद्ध इतिहासकार, लघुकथाकार, उपन्यासकार, एकांकीकार, समालोचक, निबंधकार, नाटककार, संपादक के साथ-साथ उच्चकोटि के शिक्षाविद् भी हैं। वे संतसाहित्य के मर्मज्ञ विज्ञान हैं।

डॉ० बाबूराम द्वारा रचित ललित निबंध-संग्रह 'सनातन-संदेश' में 16 निबंध संकलित हैं। ये निबंध विविध विषयों यथा—आतंकवाद-प्रदूषण, नशा, विज्ञान, सूचना प्रौद्योगिकी, वैश्वीकरण, विश्वशांति, कर्म करने की प्रेरणा, मानव जाति का कल्याण, भक्ति, नीति, साहित्य, संस्कृति, धर्म, दर्शन, प्रकृति, अनुशासन और व्यंग-विनोद आदि पर लिखे हैं। निबंधकार को इन निबंधों के विषय की प्रेरणा उपनिषदों से मिली है और इन निबंधों में विषय भी वैदिककाल से लेकर आधुनिककाल तक के हैं।

ललित निबंधकार डॉ० बाबूराम जी ने 'सनातन-संदेश' को अभिव्यक्त करते हुए इस प्रकार बताया है—'जब प्रजापति जी मनुष्यों को उपदेश दे रहे थे, उस समय दानव बड़े कौतुहल से उनकी ओर देख रहे थे। प्रजापति ने अपने दानव पुत्रों को बुलाया। उन्होंने भी प्रार्थना की कि हमें भी उपदेश दीजिए। उनसे भी प्रजापति जी ने 'द' अक्षर का उच्चारण किया और पूछा समझ गए क्या? दानव बोले पिता जी! विवेचन करने की कृपा करें। प्रजापति ने उनकी ओर देखा और कहा दुष्टों तुम बड़े निर्दयी हो। यदि तुम्हारे भीतर दया का भाव आ जाए, तो तुम दानव नहीं रहोगे। प्राणियों पर दया करो। यदि संसार के लोगों में दया, करुणा, सहिष्णुता का भाव आ जाए, तो यह संसार प्रेम से ओत-प्रोत हो जाएगा। संसार में हिंसा, बलात्कार, शोषण और परपीड़न समाप्त हो जाएगा। यह धरती स्वर्ग का रूप धारण कर लेगी।'⁸

'सनातन-संदेश' भूमंडीकरण, उदारीकरण, सूचना-प्रौद्योगिकी और विश्व बाजारवाद के दौर में मानव-जाति के अस्तित्व के लिए अत्यंत प्रासंगिक है। मेघ की गर्जना से भी हमें यही संदेश मिलता है।

'देवर्षिणां नारदोऽष्टम्' निबंध भी बड़ा महत्त्वपूर्ण है। यह ललित निबंध नारद के संबंध में है। नारद को मानव जाति का हितैषी माना जाता है। निबंधकार की धारणा इस प्रकार अभिव्यक्त हुई है—'देवर्षि नारद भी धन्य हैं, जो वीणा बजाते, हरि गुण गाते और मस्त होते हुए इस दुःखी संसार को आनंदित करते हैं।'⁹

'भारत की कुंभकर्णी निद्रा' में निबंधकार ने भारतवासियों को जाग्रत करने की प्रेरणा दी है। यदि भारत को सुरक्षित रखना है, तो निरंतर जाग्रत रहना पड़ेगा निबंधकार के विचार उल्लेखनीय हैं—'कुंभकर्णी निद्रा तोड़नी पड़ेगी। भारत में सांप्रदायिक सौहार्द स्थापित करना होगा। देश की स्वतंत्रता और अखंडता की जागरूक होकर रक्षा करनी होगी परिश्रम पूर्वक निर्धनता,

भ्रष्टाचार, सामाजिक शोषण मिटाकर भारत का पुनर्निर्माण करना होगा ताकि यह देश भूमंडल पर फिर अपना मस्तक सम्मानपूर्वक ऊँचा कर सके। मानवता के कल्याण और विश्वशांति के लिए अपना सहर्ष योगदान दे सके।¹⁰

‘बम-बम भोलेनाथ’ निबंध में भगवान शंकर को अद्वैत स्वरूप माना गया है। उनकी दृष्टि में कोई बुरा नहीं है। वे सबके लिए मंगलमय हैं। निबंधकार के विचारानुसार— ‘भोलेनाथ ही ऐसे देव हैं, जिनको अर्द्धनारीश्वर कहा जाता है। उनका आधा अंग शिव का है और आधा अंग पार्वती का। अर्थात् वे भोग और योग के समन्वय हैं। जब ब्रह्मा जी सृष्टि करते हुए थक गए थे। तब भगवान शंकर ने अर्द्धनारीश्वर-रूप धारण करके ब्रह्मा जी को प्रोत्साहन प्रदान किया था, ताकि ब्रह्मा जी सृष्टि रचना को बंद न करें और उसे निरंतर जारी रखें।¹¹

‘तीर्थराज कुरुक्षेत्र’ को धर्मक्षेत्र भी कहा गया है, जो हमें निरंतर अनुशासन का संदेश देता है। संसार में भलाई की रक्षा व बुराई का नाश करना चाहिए। निबंधकार ने लिखा है—‘कुरुक्षेत्र का इतिहास संक्षिप्त रूप से भारतीय इतिहास ही है। भारत की संस्कृति का यह केंद्र रहा है। ऋषियों ने सर्वप्रथम इस पावन भूमि में सरस्वती के पवित्र तटों पर वेद मंत्रों का उच्चारण किया था महर्षि वाशिष्ठ तथा विश्वामित्र ने ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त किया। भगवान श्री कृष्ण ने ‘भगवद्गीता’ का मानव जागृति का दिव्य ज्ञान का उपदेश यहीं दिया था। महर्षि वेदव्यास ने इसके संबंध में ‘महाभारत’ ग्रंथ की रचना की।¹²

‘पतितपावनी गंगा’ निबंध में गंगा को विश्व की सबसे पवित्र नदी माना गया है। प्रदूषण से इसकी रक्षा करना प्रत्येक भारतवासी का परम कर्तव्य है। निबंधकार ने कहा है—‘गंगा भारतीय संस्कृति का प्राण है। यह भारत की धरती को शस्य श्यामला बनाती है। इसके तट पर प्राचीनकाल से ही बड़े-बड़े नगर रहे हैं और आज भी हैं। गंगा ने भारत में इतिहास के उत्थान-पतन को देखा है। बड़े-बड़े साम्राज्य भारत की धरती से विलुप्त हो गए हैं, परंतु इस देव नदी की पावनता का अस्तित्व आज भी विद्यमान है। जब तक आकाश में सूर्य-चंद्र तारे हैं। धरती पर पर्वतमालाएँ हैं। तब तक गंगा भारत के लिए अवतारिणी बनी रहेगी।¹³

‘कलियुग का महत्त्व’ में लेखन ने बताया है कि कलियुग के संबंध में लोगों का धारणा बड़ी गलत है। कलियुग का संदेश है, जो कर्मशील है, वही जीवन में प्रगति करेगा। इसमें भगवान के केवल नाम स्मरण से ही मुक्ति हो जाती है। कलियुग ही सतयुग का सिंहद्वार है। निबंधकार की दृष्टि में—‘कलियुग में लोगों में योग, यज्ञ और ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति नहीं रही। उनके लिए तो एकमात्र रामनाम का गुणगान ही आधार है। सब प्रकार के भरोसों को छोड़कर, जो प्रेम के साथ राम के नाम का गुणगान करते हैं। निःसंदेह वे इस कलियुग में भी भवसागर से पार हो जाएँगे।¹⁴

‘प्रेम दीवानी मीरा’ निबंध में यह बताया गया है कि मीरा माधुर्य भक्ति का साकार स्वरूप भी और राधा का अवतार थी। निबंधकार लिखता है—‘मीरा प्रेम दीवानी थी इस काल में लोग उसे पागल कहते थे।’ मीरा स्वयं भी कहती हैं—‘मीरा तो भई बावरी (बावली)। मीरा तो कृष्णकाल में भी उनकी एक परम प्रिय सखी थी। परम प्रेम की यह सजीव मूर्ति धराधाम पर केवल प्रभु प्रेम का चरम सौंदर्य और अनंत माधुर्य का रहस्य बतलाने के लिए प्रकट हुई थी।¹⁵

‘भारहरण’ निबंध में अवतारवाद की सार्थकता पर प्रकाश डाला गया है। जब धर्म का

सिद्धांत संतुलन बिगड़ जाता है, तो अधर्म उस पर हावी हो जाता है और सारा संसार त्राहि-त्राहि मचाने लगता है तब भगवान सृष्टि के असंतुलन को ठीक करने के लिए ही अवतार धारण करते हैं—‘ब्रह्म सच्चिदानंद स्वरूप हैं और आनंद के सागर हैं। उनकी योग माया से ही उनका आविर्भाव होता है। उनका आविर्भाव होना ही अवतरण है। जब वे अपनी योगमाया से तिरोभाव हो जाते हैं, तो उसे आरोहण कहते हैं। फिर वे सच्चिदानंद एवं स्वरूप में स्थित हो जाते हैं।’¹⁶

‘विश्व शांति का रक्षक परमाणु बम’ एक आश्चर्यचकित निबंध है क्योंकि परमाणु बम तो विनाश का हथियार है फिर यह शांति कैसे ला सकता है? सच यह है कि प्रत्येक राष्ट्र डर के मारे और दूसरों को डराने के लिए इसका निर्माण कर रहा है। इसीलिए यह विश्व शांति का संदेश वाहक है—‘दूसरे विश्वयुद्ध के बाद अनेक देशों ने परमाणु बम बनाए। आपस में अनेक देशों की तनातनी रही। शीत युद्ध की स्थिति भी बनी रही। परमाणु बम का प्रयोग किसी ने भी नहीं किया। इसलिए यह तो ठीक ही है कि उस पर कोई परमाणु बम (प्रलय) न फेंक दे। न तो सचमुच ही प्रलय हो जाएगी।’¹⁷

‘प्रज्ञाचक्षु सूरदास’ निबंध का यह भाव है कि सूरदास जन्मांध होते हुए भी दिव्य ज्ञान से ओत-प्रोत थे। निबंधकार लिखते हैं—‘सूरदास को ग्वाल-बाल और जनता सदा घेरे रहती थी। उन्होंने श्रीकृष्ण भगवान की लीलाओं का गायन प्रारंभ किया था, जो सूरसागर के नाम से विख्यात हैं। वे लगभग 71 वर्ष तक पारसोली (परम रम्य स्थली) में चंद्रसरोवर के निकट रहे। पारसोली वह स्थान है जहाँ श्रीकृष्ण गोपियों के साथ रास रचाया करते थे। पारसोली में जगद्गुरु वल्लभाचार्य की बैठक के पास ही सूर कुटीर है।’¹⁸

‘परित्राजक सन्यासी ब्रह्मानंद सरस्वती’ को आधुनिककाल का अवधूत माना जाता है। निबंधकार कहता है—‘वे शास्त्र ज्ञान को तो एक प्रकार का बोझ समझते थे, जो अहंकार को जन्म देता है। वे अत्यंत सरल थे। अहंकार उनको छू तक भी नहीं गया था। एक दिन उनके जीवन में चमत्कार हुआ और तीन देवियों ने प्रकट होकर उनको पंचरंगा झंडा प्रदान किया। उनको प्रेरणा दी कि आपका जन्म तो केवल विश्वमंगल के लिए ही हुआ है। हिमालय को छोड़कर मैदान में चले जाओ। इस कलिकाल में अज्ञान और कुसंगत में डूबती हुई जनता को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करो।’¹⁹

‘मोर-पुराण’ निबंध में बताया है कि वैसे तो मोर भारत का राष्ट्रीय पक्षी है, परंतु इसके संरक्षण की ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। निबंधकार का कथन है—‘मोर कमल की तरह भारतीय संस्कृति का प्रतीक है। इसीलिए इसे राष्ट्रीय पक्षी घोषित किया गया है। भारत में मोर वध दंडनीय अपराध है। मोर की महिमा निराली है। जब पावस ऋतु में मेघ-मालाएँ घनघोर घटा का रूप धारण करती हैं। आकाश में मेघ गर्जन करते हैं और चपला कौंधती हैं, तब मोर अपने पंखों को फड़फड़ाकर नृत्य करते हैं। कहा भी जाता है कि नभ में छाई घटा घन घोर, मेरे वन में नाचे मोर।’²⁰

‘समुद्र मंथन’ निबंध में बताया गया है कि देव तो अमृत कुंभ ले जाते हैं और दानवों को केवल वारुणी ही मिलती है, जो विनाश का कारण है। निबंधकार के अनुसार—‘धर्मानुसार परिश्रम से अर्जित और नेक कमाई लक्ष्मी स्वरूप है, जिसके कारण घर में सुख-शांति और शोभा उत्पन्न होती है, यहीं श्री लक्ष्मी जी का सच्चा स्वरूप है। धोखे, छल-कपट, चोरी, डकेती,

भ्रष्टाचार और बेईमानी से अर्जित कमाई है, वही माया कहलाती है, जिसके कारण अशांति, कलह, परिवार और समाज का विघटन होता है तथा मानवीय मूल्यों का अवमूल्यन होता है। सुबुद्धि ही लक्ष्मी है और कुबुद्धि माया है।²¹

‘भक्त की भावना’ निबंध में एक भोले-भाले किसान की भक्ति-भावना का चित्रण है। निबंधकार का मानना है कि भगवान भाव के भूखे हैं। वे सच्चे एवं भोले लोगों के पवित्र हृदय में वास करते हैं—‘भक्त धन्ना जाट ऐसे ही एक बालक थे। वे अनपढ़ थे और शास्त्र ज्ञान से रहित थे। उनके हृदय में छोटी अवस्था में ही प्रेम का बीज अंकुरित हो गया था। धन्ना के पिता खेती-बाड़ी करते थे। पढ़े-लिखे नहीं थे। उनका हृदय सरलता और श्रद्धा से ओत-प्रोत था। वे यथाशक्ति और यथाश्रद्धा संतों, महात्माओं और भक्तों की सेवा करते थे। कोई भी साधु उनके घर से भूखा नहीं जाता था। जमीन थोड़ी थी। उसी से परिवार का गुजारा चलता था। धनी नहीं थे परन्तु भाव-भक्ति का धन उनके पास अपार था।’²²

‘भारतीय साहित्य की विविधता में एकता’ निषेध में एकता का सूत्र मिलता है। निबंधकार लिखते हैं—‘भारतीय स्वतंत्रता ने भारतीय भाषाओं ने साहित्य को सर्वाधिक प्रभावित किया है। भारत में आधुनिक साहित्य में बड़ी समानता है। राष्ट्रीय आंदोलन की प्रेरणा ने राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना को बल प्रदान किया। भारत में प्राचीनकाल से ही सांस्कृतिक और साहित्यिक एकता चली आई है। आधुनिक साहित्य भी इस एकता का प्रमाण है।’²³

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिंदी ललित निबंध और निबंधकारों में डॉ० बाबूराम का अप्रतिम स्थान है। निबंधकार का युगबोध बड़ा विस्तृत और व्यापक है। 21वीं सदी के प्रथम दशक में विरचित ‘सनातन-संदेश’ में वैदिककाल से लेकर आधुनिक युग तक की समस्याओं पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। आतंकवाद, प्रदूषण, नशा, विज्ञान, सूचना और प्रौद्योगिकी, वैश्वीकरण, विश्वशांति, कर्म करने की प्रेरणा, मानव जाति का कल्याण, भक्ति, नीति, साहित्य, संस्कृति, धर्म, दर्शन प्रकृति, अनुशासन और व्यंग्य-विनोद आदि इसकी विशेषताएँ हैं।

संदर्भ

1. संस्कृत शब्द कल्पद्रुम, पृ० 208
2. व्यावहारिक हिंदी, अँग्रेजी कोश, पृ० 668
3. संभावना, हिंदी-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, सं० 2013, पृ० 75
4. वही, पृ० 75
5. वही, पृ० 75
6. बाबूराम, हिंदी निबंध साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन, वाणी प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2002, पृ० 44
7. संभावना, हिंदी-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, संस्करण 2013, पृ० 76
8. बाबूराम, सनातन संदेश, लता साहित्य सदन, गाजियाबाद, संस्करण-2010, पृ० 16
9. वही पृ० 26
10. वही, पृ० 30
11. वही, पृ० 34
12. वही, पृ० 38
13. वही, पृ० 47

14. वही, पृ० 52
15. वही, पृ० 54-55
16. वही, पृ० 61-61
17. वही, पृ० 64
18. वही, पृ० 68
19. वही, पृ० 72
20. वही, पृ० 78
21. वही, पृ० 84
22. वही, पृ० 85
23. वही, पृ० 95

स्वातंत्र्योत्तरकालीन हिंदी-व्यंग्य की प्रेरक परिस्थितियाँ

पंकजकुमार डी० पटेल (शोध छात्र)

एम०ए०, एम०फिल०

स्वाधीन भारत के व्यंग्यकारों की सर्वोत्तम एवं उल्लेखनीय उपलब्धि देश की जनतांत्रिक प्रणाली रही है। अब वे स्वतंत्र ही नहीं हुए, बल्कि जनतांत्रिक प्रणाली के साझीदार भी बने हैं। अपनी बात अपने ढंग से कहने की पूरी आजादी उनके पास है। आज वे कटु-से-कटु सत्य को उग्रतम शब्दावली एवं आप्त वाक्यों में अभिव्यक्ति देने को आजाद है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी-व्यंग्य में आए बदलाव और उसके मूल में निहित, व्यंग्यकारों की वैचारिकता को समझने के लिए उन्हें प्रेरित करनेवाली विभिन्न परिस्थितियों का विहंगावलोकन उपयोगी होगा।

राजनीति परिस्थितियाँ

स्वाधीनता के बाद भारतीय जीवन में चौतरफा बढ़ते असंतोष, बदलाव की बैचेनी और नव-निर्माण की उत्कट कामना की स्थितियाँ जहाँ सामाजिक जीवन में एक गहरे द्वंद्व को उभारती हैं। वहीं व्यंग्य को धार भी देती हैं। अपने ही राष्ट्रपिता की अपने ही हाथों निष्ठुर हत्या आजादी के बाद की कितनी बड़ी विडंबना रही है। 1949 में स्वतंत्र भारत ने अपना जो संविधान तैयार किया था, उसमें (1) सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय (2) विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास और धर्म की स्वतंत्रता (3) सबको समान अवसर प्रदान करने की आशा बँधाई गई थी, किंतु पिछले 50 वर्षों में संविधान में अनेक वांछनीय परिवर्तन हो चुके हैं और मौलिक अधिकारों की कोई पवित्रता नहीं रह गई। संविधान बनने की देर न हुई थी कि राजनीतिक चूहों ने उसे कुतरना शुरू कर दिया। सरदार पटेल और जवाहरलाल नेहरू के समय में ही भीतर-भीतर षड्यंत्र चल पड़े थे। देश की राजनीतिक प्रासाद में दरारें पड़ने लगी थीं। चीन (1962) और पाकिस्तान (1965, 1971) के आक्रमणों के कारण देश में एकता की भावना दृढ़ होती हुई दिखाई अवश्य दी, किंतु ताशकंद में लालबहादुर शास्त्री की मृत्यु (1965) के बाद देश का राजनीतिक जीवन फिर लड़खड़ाने लगा। काँग्रेस-जैसी पुरानी और सुसंगठित राजनीतिक पार्टी भी डगमगा गई। नैतिक बल और चारित्रिक दृढ़ता के स्थान पर अवसरवादिता, पदलोलुपता तथा धनलोलुपता बढ़ी और काँग्रेस में भ्रष्टाचार घुस गया। गांधीजी के नाम की दुहाई देते हुए भी राजनीतिक कार्यकर्ताओं की कथनी और करनी में बहुत अंतर आ गया। काँग्रेसियों का सेवा-भाव लुप्त हो गया और मेवा-भाव के वशीभूत होकर वे अपनी जेबें भरने लग गए। देश-सेवक अब शासक बन बैठे हैं। अतः जीवन के पुराने मूल्य उनकी दृष्टि से ओझल हो गए हैं। उच्च पदस्थ राजनीतिक कार्यकर्ता और सरकारी कर्मचारी दोनों मिलकर अपने-अपने ढंग से जनता से रुपया ऐंठने में लगे हुए हैं—जैसे उनकी आत्मा मर गई हो। उनके आचरण में राजनीतिक जीवन कलुषित हो गया है। स्वयं राजनीतिज्ञ खरीदे जाने

लगे और थैलियाँ राजनीतिक समस्याएँ हल करने लगी हैं। दलबदल सामान्य राजनीतिक धर्म हो गया है। स्वभावतः ऐसे राजनीतिज्ञों में न चरित्र है, न कोई विश्वास और आस्था। राजनीति पेशा बन गई है—इसी से देश को सबसे बड़ा खतरा है। ऐसे ही राजनीतिज्ञों ने देश में पारस्परिक कलह, फूट, प्रांतीयता, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद आदि के बीज बोकर चारों तरफ़ अराजकता फैला दी है। देश की सबसे बड़ी बीमारी ये राजनीतिज्ञ ही छात्रों के अनुशासनहीनता के भी प्रमुख कारण हैं। इन्हीं के प्रयासों से मिल-मालिकों और मजदूरों के परस्पर झगड़ों के कारण आएदिन हड़तालें होती रहती हैं, जिससे देश की आर्थिक क्षति होती है। राजनीतिज्ञों के ही कारण न्यायालयों की स्वतंत्रता और पवित्रता समाप्तप्राय है। निष्कर्ष यह कि देश को जितना खतरा बाहर से है, उतना ही भीतर से भी है। कभी-कभी तो ऐसा लगने लगता है कि कहीं 18वीं शताब्दी के इतिहास की पुनरावृत्ति न हो जाए। सच्ची राष्ट्रीयता के स्थान पर जब तक पेरेशियलिज़्म बना रहेगा, तब तक यह डर भी बना रहेगा।

सामाजिक परिस्थितियाँ

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज मिथ्या संतोष, आशा एवं अपेक्षाओं का समाज रहा है। स्वतंत्रता-संग्राम के दौरान जिस स्वस्थ सामाजिकता का सपना लोगों ने देखा था, वह मिथ्या एवं भ्रम साबित हुआ है। नीतिविहीन राजनीति और न्यायहीन न्याय-व्यवस्था ने समाज में पाखंड, छल, धूर्तता और अनैतिकता को ही बढ़ावा दिया है। परिणामस्वरूप आज्ञादी के बाद का भारीय समाज उच्छृंखल खोखलेपन को प्राप्त होता है। निम्न एवं मध्यवर्गीय मनुष्य के लिए सम्मानपूर्ण जीवनयापन सपना बनकर रह जाता है। संपन्न वर्ग की पकड़ धन एवं सत्ता पर दृढ़तर होती जाती है, जबकि साधारण वर्ग निरंतर बढ़ते वैषम्य की यातना को झेलते-झेलते कुंठाग्रस्त होता जाता है। मानसिक यातना एवं द्वंद्व के बीच पिसने को वह अभिशप्त हो उठता है। इस प्रकार अमानवीय संबंधों का जंजाल पसरता जाता है। अनास्था, निराशा एवं भाग्यवाद से घिरा वह मानव जीवनमूल्यों की रक्षा चाहकर भी नहीं कर पाता। एक ओर सदियों के उदात्त जीवनमूल्य तिरोहित होने लगते हैं, तो दूसरी ओर धन का बोलबाला एवं धनिकों के हथकंडे खुलकर शोषण करते हैं।

शोषण की यह प्रक्रिया स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में और भी बारीकरी एवं नृशंसता को प्राप्त होती है। राजकीय परिवर्तन की तुलना में धीमी पड़ती सामाजिक प्रक्रिया इस नृशंसता के मूल में है। मानवीय-संबंधों से बना एवं टिका यह मानव-समाज उत्तरोत्तर अर्थकेंद्रित होता जाता है। जाति, धर्म, आयु अथवा पारस्परिक संबंधों का सामाजिक वर्गीकरण अब मात्र अर्थिक वर्गीकरण का रूप धारण कर रहा है, उच्च, मध्य एवं निम्न-वर्गों में विभक्त समाज अपनी समस्याओं के समाधान हेतु जो भी नियम बनाता है, वह वर्ग-विशेष के चंगुल में फँसकर रह जाता है। परिणामस्वरूप वैषम्य का बोल-बाला उत्तरोत्तर बढ़ता चला जाता है। शैक्षणिक, वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास के उत्कर्ष को प्राप्त करता यह समाज अशिक्षा बेरोजगारी जैसी समस्या से त्रस्त भी हो उठता है। राजनीतिक स्वार्थ की आँच सामाजिक वैषम्य को लगातार उग्रतर रूप देने संलग्न है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में कहें तो— 'भारतमाता की ऊपरी बेड़ियाँ कट गई हैं, लेकिन भीतर की जर्जरवस्था ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। रोग, अशिक्षा, कुरीति और अविश्वास से इस देश की कोटि-कोटि जनता आज भी जर्जर और पीड़ित है।'

स्वातंत्रता का उल्लास देश-विभाजन की पीड़ा एवं तज्जन्य समस्याओं में परिणत हो उठा

है। सही दिशा के अभाव में मानवीय शक्तियाँ रचनात्मक कार्य के बजाय ध्वंसात्मकता में ही लगी हुई है, किंतु नवनिर्माण के अभाव में विध्वंस मार्ग का रोड़ा ही बनता है। महादेवी वर्मा के शब्दों में हालत यह हो गई है कि जो टूट जाता है, वह हमारी आँखों की किरकिरी बनने के लिए वायुमंडल में मडराने लगता है और जो हमारे प्रहार से नहीं बिखरता, वह विषम तथा विरूप बनकर हमारे ही पैरों को आहत और गति को कुंठित करता रहता है।²

आर्थिक परिस्थितियाँ

स्वातंत्र्योत्तर भारत की सर्वाधिक विषम, व्यापक एवं जटिल समस्या आर्थिक समस्या रही है। आज़ाद देश में नवनिर्माण का कार्य गरीबोद्धार एवं गरीबी-उन्मूलन से शुरू करना था, किंतु आज़ादी के पचास वर्ष बाद भी यह वर्ग वहीं है, जहाँ आज़ादी से पूर्व था। तब से लेकर अब तक निरंतर यह वर्ग आज़ाद देश के आज़ाद-मिजाज लोगों के इस्तेमाल की चीज़ बना हुआ है। सत्ताधारी शासक-वर्ग से लेकर महत्वाकांक्षी विपक्षी नेता तक इसे अपना मोहरा बना, कुर्सियाँ हथियाने में संलग्न हैं। उनकी वोटों की कमाई और निज-लाभ की कामना इस वर्ग का सतत सुखियों में बनाए हुए है। गरीबी से बड़ी चुनौती, गरीब पहले भी था, आज भी है। कारण निःसंदेह गलत नीति, योजनाएँ एवं गलत उपचार रहा है। शरद जोशी के शब्दों में, 'किया सिर्फ यह गया है कि अपनी जेबें भरते हुए उन्होंने सवाल उठाया कि गरीबों के लिए कुछ हो क्यों नहीं रहा। स्वयं लाभकारी उद्योग और साधन-संपन्न जीवन से जुड़ यह चाहा कि हमारी राष्ट्रीय सुरक्षा मजबूत दीवार की तरह हो।'³

इस कथन से पूँजीवाद एवं सामंतवाद की मिलीभगत स्पष्ट है। प्रजातांत्रिक प्रणाली के रखवाले हम, भीतर से आज भी सामंती वृत्तियों को ही अपनाए हुए हैं। फलतः पूँजीवादी औद्योगिक क्रांति को पुश्तैनी शाही वृत्ति की शह मिलती है, जिसका सर्वाधिक घातक परिणाम निम्नतम वर्ग अर्थात् गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन करनेवाले लोगों पर पड़ता है। प्रजातांत्रिक छद्म आर्थिक छद्म से मिल संपन्न एवं शक्तिशाली उद्योगपतियों का वर्चस्व कायम करता है। सरकारी खजानों तथा अभावग्रस्त लोगों की झुगियों के बीच अनगिनत जेबों, बटुओं एवं भ्रष्ट सिलसिलों का बोलबाला बढ़ता है। प्रजातंत्रात्मक प्रणाली की श्वसन-प्रक्रिया कालाबाजारी की शोषण-प्रक्रिया का अंग बनकर रह जाती है। एक ओर भारी-भरकम आर्थिक योजनाएँ बनाई जा रही हैं, तो दूसरी ओर जनसामान्य गरीबी रेखा के नीचे जीवन जीने को अभिशप्त है। नवधानद्वय वर्ग संपन्नता की अतियों एवं विलासिता की नई मंजिलें छू रहा है। नित नए ऐश्वर्य और सुविधाओं का आविष्कार हो रहा है और दूसरी ओर जनता का विशाल-वर्ग अस्तित्व-रक्षा के लिए सामर्थ्य जुटाने में लगा हुआ है। अतियों एवं व्याधियों का साम्राज्य लहलहा रहा है। शिक्षित नवयुवक वर्ग भीषण बेरोजगारी का शिकार हो कुंठाग्रस्त नैराश्य से आपूर्ण है, तो नवधनिकों के पास समय-यापन की नई-नई सुविधाएँ उपलब्ध हैं। विडंबना यह कि दोनों ही समय काटने की समस्या से घिरे हुए हैं। एक का समय काटे नहीं कटता, दूसरा समय काटने को अभिशप्त है। एक को समय काट रहा है, तो दूसरा समय को ही काट रहा है। पूँजीपति और तथाकथित सामाजिक उन्नयन के ठेकेदार बुद्धिजीवी, आमलोगों को विकासशील संदर्भों तक फटकने नहीं देते। आज़ादी से पहले ये दूसरों के शिकार होते थे, अब अपनों के होते हैं।

वर्ग-वैषम्य की पराकाष्ठा यह है कि कुछ को मछली सस्ती लगती है, तो कुछ को

दूध महंगा लगता है। कुछ के बच्चों के पास देश-विदेश के पर्यटन की सुविधाएँ हैं, तो कुछ के बच्चे प्रारंभिक शिक्षा तक नहीं पाते। पिछले चालीस सालों से लगातार योजनाएँ बन रही हैं, कल्याणकारी बजट बन रहे हैं, जिनसे जनसामान्य का कल्याण हो या न हो योजनाएँ एवं बजट बनानेवालों का कल्याण अवश्य होता है। आज़ादी की सर्वप्रमुख आर्थिक उपलब्धि यह रही है कि कालाबाज़ारी और भ्रष्टाचार हमारे जीवन का अंग और हमारी जीवन-पद्धति बन गई है। परिणामतः एक ओर वैभव की अट्टालिका है, तो दूसरी ओर दरिद्र्य की गर्त। ग़रीब आदमी आज भी वहीं है, जहाँ वह आज़ादी से पूर्व था।

धार्मिक परिस्थितियाँ

सृष्टि के प्रारंभ से ही धार्मिक ठेकेदार, पंडे, पुजारी, महंत, मठाधीश पूजा-स्थलों का प्रयोग अपनी कदर्यताओं के लिए करते रहे हैं। धर्मग्रन्थ जनता को निहित स्वार्थियों ने धर्म की अफीम खिला-खिलाकर भटकाया है, बहलाया है, फुसलाया है। धार्मिक भावना के शोषण द्वारा नेता बनना आज के राजनेताओं का चरित्र है, तो जनता लोभ और भय की दुहरी रस्सी से कसी हुई है, त्रस्त है। संपूर्ण लोकतंत्र कर्मकांड का पर्याय बना हुआ है। राजनीतिक लाभ के लिए गौ-भक्त ब्राह्मण गौ-माता का ही मांस मंदिर में डाल हिंदू-मुस्लिम दंगे करवा देते हैं। सुबह नियम से चिड़िया चुगाते हैं और रात को मांस-भक्षण द्वारा आत्म-तृप्ति प्राप्त करते हैं। जनता की श्रद्धा-भक्ति को अपने स्वार्थ के लिए भुनाते हैं। पाखंड का अध्यात्म इस कदर पनपा है इस देश में कि हर पवित्र चीज़ झगड़े की जड़ है। समाजवाद एवं धर्मनिरपेक्षता की डोर सांप्रदायिक लोगों के हाथ में है। राजनीतिक झूठ का बोलबाला धर्म के क्षेत्र में भी खूब पनप रहा है। भीतर भक्ति, ईमान, श्रद्धा हो, न हो, बाहर जुलूस, नारे एवं धरने होते रहते हैं। धार्मिक ढोंग एवं पाखंड में भारत विश्व गुरु रहा है। इस भूमि की महिमा ही कुछ ऐसी है कि यहाँ 'बिनु पग चलै सुनै बिनु काना' की अलौकिकता आज भी कायम है। श्रद्धा-माता आज भी मार्केट में बिक रही है। साधु सन्यासियों का मार्केट दर तक चलता रहता है। इस मार्केट की पवित्रताएँ बदल गई हैं। भ्रष्टाचार वह सर्वव्यापी पवित्रता है, जिसको लेकर लड़ाईयाँ होते हैं। भ्रष्टाचार को लेकर होनेवाली लड़ाई प्रभु के चरणामृत को लेकर होनेवाली लड़ाई है। कलियुगी हनुमान का हाल यह है कि सीता का पता लगाने भेजो, तो रावण से ही मिलकर उपद्रव फैलाने लगते हैं। पौराणिक कथाओं का अर्थांतर ही नहीं हुआ है, रूपांतर भी हुआ है। निराकर ब्रह्म से लेकर प्रेत तक को पूजने की परंपरा रूपांतरित तो हुई, परंतु समाप्त नहीं हो पाई। धर्म पर लगातार हमले, हो रहे हैं, लेकिन धर्म का दरिया अभी अक्षुण्ण है, प्रवहमान है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में स्वार्थाचार के पक्षधर, ईश्वरीय चोले में जगह-जगह उदित हुए हैं। उन्होंने पुण्य की छवित तो धूमिल की ही है, पाप को भी दूषित किया है। पवित्रता की भाँति पाप के आयाम भी बदल गए हैं। भगवान के सहयोग के बिना पहले जहाँ पवित्र कार्य नहीं होते थे, वहीं अब पापाचार भी नहीं हो पाता। ईश्वर अंतर्दामी है, भक्तों की अंतरात्मा पहचानता है। भक्त व्यावसायिक, दो-नंबरी और घूसखोर हो गए हैं, उनकी अंतरात्मा घूस चाहती है, तो ईश्वरसुख-संपत्तिदाता बन भक्तों को आनंद पहुँचाता है। सुख-संपत्ति ऐश्वर्य प्राप्त कर भक्त संतों की सेवा की ओर उन्मुख होता है, उसमें परमार्थ की कामना जागती है। इस झूठी आस्था एवं ढोंग ने धर्म को धिनौना बना दिया है, उसका अपकर्ष कर दिया है। शब्दों का अर्थ तक भरभराकर

ढह गया है। संत धर्म एवं भक्त की यह मिलीभगत, उनका यह गठबंधन इस शस्य-श्यामल भूमि में निरंतर अमानवीयता और अनाचार के बीज बो रहा है और स्वार्थों की फसल काट रहा है।

स्वाधीनता-पूर्व से व्यंग्यकार निरंतर धर्म के इस ढोंग पर प्रहार करते रहे हैं। मध्ययुग तक यह धर्म मात्र धार्मिक कुत्सितताओं का शिकार था, किंतु आधुनिक युग तक आते-आते इसे राजनीति ने भी लील लिया। अतः व्यंग्यकार जहाँ मात्र भोली-भाली जनता की अज्ञानता और धार्मिक गुरुओं के ढोंग पर ही आघात करते थे, स्वातंत्र्योत्तर व्यंग्यकारों को धर्म के भीतर की राजनीति पर भी प्रहार करना पड़ा। धार्मिक विकृतियों ने अनेकानेक स्वाँग रचे, जिससे व्यंग्यकार भी उसी के अनुरूप बहुआयामी पैनापन अपनाने को विवश हुआ है। देश की इस प्राचीनतम, किंतु प्रबलतम विकृति पर आरंभ से ही धारदार प्रहार होता रहा है। स्वाधीनता के उपरांत का धार्मिक व्यंग्य भी उसी की अगली कड़ी है। ये धार्मिक विकृतियाँ ही हैं, जो मनुष्य की संस्कृति, आचार-विचार को दूषित करते हुए उसे निरंतर बौना बनाती जा रही हैं। मानवीय मूल्यों से गहरा सरोकार रखनेवाला व्यंग्यकार मनुष्य के इस धार्मिक टुच्चेपन को दूर करने हेतु संपूर्ण ईमानदारी से कटिबद्ध है। जन-चेतना का निर्माण करते हुए धार्मिक शोषण की परख कराने में आज वह सर्वाधिक सफल भी हुआ है। धार्मिक व्यंग्यप्रहार का ही प्रभाव है कि सामूहिक जड़ता तार-तार हुई तथा जन-मुंडन की प्रक्रिया शिथिल। धार्मिक गुरुओं के लिए अब शोषण आसान नहीं रह गया, बल्कि उनका अस्तित्व ही खतरे में आ गया है। स्वातंत्र्योत्तर धार्मिक व्यंग्यों की यही खूबी है तथा उपलब्धि भी।

सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

पाश्चात्य सभ्यता के चकाचौंधपूर्ण वायवी जाल ने भारतीय आत्मा एवं आध्यात्मिक संस्कृति को बुरी तरह आच्छादित किया है। भूत एवं भौतिकता का व्यामोह आज के व्यक्ति को संस्कृति-विकृत कर रहा है। तात्पर्य यह कि व्यापार एवं वाणिज्य-वृद्धि के लक्ष्य से ही भारत आनेवाले विदेशियों ने भारतीय आत्मा पर भीषण कुठाराघात किया है। व्यापार-वाणिज्य की समृद्धि, सामाजिक स्तर के उन्नयन की कामना ने आज भारतीयों को आनंद भोगी मुर्दों में रूपांतरित कर दिया है। धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में विश्वगुरु माना जानेवाला यह देश, आज अंतर्राष्ट्रीय बाजार में भिक्षुक का गौरव प्राप्त कर रहा है। कारण स्पष्ट है, सर्वांगीण अनुकरण की भाँति हम भारतीयों ने पश्चिमी सभ्यता का भी अंधानुकरण किया है। अँग्रेजों के जाने के बाद हमारी आत्मा अँग्रेज बनने को विवश हुई है। हालाँकि अँग्रेजी संस्कृति, हमारी संस्कृति से बिल्कुल विपरीत रही है। हमारा जीवनधर्म उनके जीवनधर्म से अलग रहा है, जीवनसंघर्ष की आधारभूमि अलग रही है। आज स्थिति यह है कि भौतिकता की चुंबकीय शक्ति के समक्ष समस्त आत्मा लोहवत् समर्पित है। आज के महात्वाकांक्षी व्यक्ति की स्थिति यहाँ भी दयनीय है। वह कहाँ जाए, किसे स्वीकार करे? सदियों की जड़ संस्कृति को अथवा विद्युत-गति से प्रसारित आधुनिकता को? वह हतप्रभ और दिग्भ्रंत है और फलतः असंतुष्ट भी। देखा जाए तो आज का युग ही असंतोष और अस्वीकार का है और ये दोनों बातें आज के नवयुवकों में सर्वाधिक दृष्टिगोचर होती हैं। आज का नवयुवक असंतोष और अस्वीकार का साक्षात् प्रतीक बन गया है। परतंत्र भारत में जनता के सामने एक आदर्श था, लक्ष्य था, अनुशासन था और एकता के सूत्र में बँधे रहने की प्रबल आकांक्षा थी, किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद ही पुरानी पीढ़ी का आदर्श छिन्न-भिन्न हो गया। जीवन में कोई अनुशासन न रह गया और देश के व्यापक हित के स्थान पर स्वार्थ एवं स्वरति का प्राधान्य हो

गया। नवयुवा पीढ़ी ने स्वतंत्र भारत में जन्म लिया और जब उन्होंने होश सँभाला, तो देश में भ्रष्टाचार का साम्राज्य स्थापित हो चुका था। अतः नई पीढ़ी के सामने न तो कोई आदर्श था, न कोई उच्च जीवन-मूल्य ही। पुराने जीवन-मूल्य खँडित हो चुके थे और उनके स्थान पर नए पुष्ट जीवन-मूल्यों की स्थापना नहीं हुई थी। जीवन के ऐसे वातावरण में नई पीढ़ी का दिग्भ्रमित हो जाना, कोई आश्चर्य की बात नहीं। देश में बढ़ती हुई हिंसा, चारित्रिक एवं नैतिक दृढ़ता का अभाव, अनुशासनहीनता, घूसखोरी, भ्रष्टाचार, चोरबाजारी, सांप्रदायिकता, भाषावाद, जातिवाद, प्रांतीयता, भाई-भतीजावाद, आर्थिक असंतुलन, अभाव, बेरोजगारी, बेकारी, मँहगाई आदि ने पुराने नेताओं, पुरानी आस्थाओं, विश्वासों और आदर्शों पुराने जीवनमूल्यों, पुरानी समाज-व्यवस्था, जीर्ण-शीर्ण धार्मिक-साहित्यिक-सांस्कृतिक परंपराओं के प्रति संक्षेप में हर प्रकार की अर्थारिटी, अंकुश के प्रति, आस्था की जड़ हिला दी है। आज का नवयुवक इतिहास का सबसे बड़ा मूर्ति भंजक है। पश्चिम की विचारधारा और वैज्ञानिक-तकनीकी प्रगति ने उसकी भावनाओं को प्रश्रय दिया है। वह विद्रोह और विप्लव में न कि परंपरागत क्रांति में विश्वास करने लगा है। मूलतः वह आदर्श वादी है और जीवन में आदर्श परिस्थितियों के अभाव में वह तिलमिला उठता है। समझदारी, संयम आदि न होने के कारण आज का नवयुवक उग्र रूप धारण कर लेता है। स्वतंत्रता-संग्राम के सेनानी अब्बल तो रह गए, जो बचे भी हैं वे एक तो उच्चकोटि के नहीं हैं, दूसरे वे श्लथआथ्र शिथिल हो गए हैं। उनमें ऊपर उठने-उठाने की शक्ति नहीं रह गई।

विदेश हमले एवं सांस्कृतिक विघटन भारतीय इतिहास का सतत सत्य रहा है। एक के बाद एक विदेशी आक्रमणों ने भारतीय संस्कृति को क्षति पहुँचाई, किंतु ब्रिटिश राज ने तो इसका कायाकल्प ही कर डाला। भारतीयों पर गोरी-जाति ने राज किया और भारतीय गोरी-जाति को आदर्श मान उसकी नकल करने लगे। रहन-सहन, लिबास, कमोड और छुरी-काँटे की नकल। इसके साथ ही ग़लत अँग्रेजी बर्थडे-केक, हैप्पी, दिवाली ट्यू। यह उपनिवेशवाद की हीनता की भावना है, जो नस्ल से ही अपने को हीन माने उसके लिए संस्कृति का कोई मतलब नहीं।

साहित्यिक परिस्थितियाँ

आजादी के बाद वर्षों में अन्य क्षेत्रों की भाँति शिक्षा और साहित्य का क्षेत्र भी दूषित हुआ है। शिक्षा-संस्थान गुटबाजी और भाई-भतीजेवाद के अड्डे बने हैं, तो ऐसे साहित्य और साहित्यकारों की संख्या भी कम नहीं है, जो साहित्य में या तो आत्मरुग्णता का संक्रामक रोग फैला रहे हैं अथवा परपीड़न की कला के प्रसार में ही अपनी बौद्धिक क्षमता खपाए जा रहे हैं। किसी भी देश का साहित्य वहाँ की राजनीति, समाज एवं सांस्कृतिक आचरण का दस्तावेज होता है। वह अपने समय की सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक घटनाओं, घात-प्रतिघात का ज्वलंत प्रमाण होता है। युगीन प्रवृत्तियाँ उसको रूप एवं आकार ही नहीं देतीं, अपितु संयमन एवं नियमन को विवेकपूर्ण हथियार भी बनाती हैं। ऐसे में स्पष्ट ही सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा राजनीतिक विसंगतियाँ साहित्य को प्रभावित करती हैं। स्वतंत्रताकालीन भारतीय समाज की स्थिति विचित्र नज़र आती है। एक ओर तो स्वतंत्रता की उपलब्धि के फलस्वरूप राष्ट्रीय जीवन के विविध पक्षों के संबंध में बड़े-बड़े सपने, दिन-रात दिखाए जा रहे हैं, दूसरी ओर यथार्थ में कुछ भी नहीं है। प्रजातंत्र की दुहाई देते हुए भी उसका दुरुपयोग, राजनेताओं, बुद्धिजीवियों और साहित्यकारों के बीच अलगाव तथा सही-सही परिप्रेक्ष्य के अभाव ने जीवन को एक विचित्र-सा बना दिया है। कोई

भी अपनी भूमिका ठीक से अदा नहीं कर पा रहा है। फलतः ऐतिहासिक संदर्भों और सामयिक समस्याओं का दबाव जितना आज है, उतना कभी नहीं था। वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति ने उस दबाव में और तेजी ला दी। आज प्रत्येक भारतवासी के जीवन के चारों ओर जो उलझनपूर्ण परिस्थितियाँ हैं, उनके बीच आज के लेखक और कवि का रचना-संसार, उसका चिंतन, उसकी सृजनात्मकता आदि सभी कुछ तेजी के साथ प्रभावित-परिवर्तित हुआ है। वह समाज को बदलने, राजनीति को नया रूप देने और आर्थिक दृष्टि से समृद्धि लाने का संक्षेपतः मानवी क्रांति का आह्वान करता है, किंतु सामयिक-राजनीतिक परिवेश में जब वह कुछ कर सकने में अपने को असमर्थ पाता है, तो एक परस्पर-विरोधी और जटिल स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिसका परिणाम वही होता है जिसे आज हम घुटन, कुंठा, संत्रास, विडंबना आदि नामों से अभिहित करते हैं। क्रांति लाने या जीवन को नया मोड़ देने के उत्साह में उसके सामने जीवन की असंगतियाँ और विसंगतियाँ ही अधिक आती हैं। कथनी और करनी का अंतर उसके सामने स्पष्ट हो जाता है। वह जीता है, किंतु यह महसूस करता हुआ कि वह एक छद्म ओढ़े हुए है।

साहित्य हमारे यहाँ व्यापार कभी नहीं रहा, वह एक धर्म रहा है, एक मिशन रहा है, साधना एवं तपस्या रहा है, किंतु ऐसे पवित्र क्षेत्र में भी आज गुटबाजी पैठ बना चुकी है। विदेशी शासकों के लिए संकट बननेवाले साहित्यकार अपने ही शासकों की कठपुतली बने हुए हैं। राजनीतिक नेताओं की तरह बड़े-बड़े साहित्यकार जगह-जगह अपने चंपू गाड़े बैठे हैं। जब उन्हें चांस मिलता है, तो बहुमतवाली पार्टी के मंत्रिमंडल बनाने-जैसा व्यवहार करते हैं-अपनी पार्टी के लोग मंत्रिमंडल में और शेष निष्कासित। इस गुटबाजी के चलते उद्भूत साहित्यकार अजनबीपन के कोने में पड़े-पड़े घुटते रहते हैं, जबकि बिकाऊ साहित्यकारों को नाम-ठाम के साथ-साथ अन्य राजनीतिक सुविधाएँ मिलती हैं, संरक्षण मिलता है। इस राजनायिक-संरक्षण एवं सुविधाओं के आकर्षण ने साहित्यकारों की आत्मा है, वे आत्मघाती समझौते के शिकार हुए हैं। जनसामान्य की वास्तविकताओं को स्वर न देकर दे उन्होंने राजनेताओं की वकालत की है। इन दंभियों के चलते साहित्य एवं शिक्षा-जगत में भी मिथ्या आचरण एवं बगुला-संस्कृति पनपी है।

व्यंग्यकार साहित्य के इस छद्म, इस झूठे प्रचार को प्रताड़ित करता है। जनता को सबसे बड़ा खतरा इन छद्म क्रांतिकारियों, समझौतावादी विनम्र साहित्यकारों से ही है। जो व्यापक पैमाने पर साहित्यिक प्रदूषण फैलाते हैं, सामाजिकों की रुचि विकृत एवं साहित्यकारों का अस्तित्व इन सभी छद्म भ्रष्ट साहित्यकारों के लिए खतरा बनकर उन्हें ललकारता है, तो आवाम के लिए वह सबसे बड़ा शरणस्थल बनता है। वह जनता के मौन आक्रोश, विकल व्यवस्था को गति एवं तीक्ष्णता प्रदान करता है।

संदर्भ

1. विचार प्रवाह, पृ० 274
2. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, पृ० 45
3. हिंदी गद्य लेखन में व्यंग्य और विचार

‘वृंदावन’

ग्राम पो० बालीसणा, तहसील प्रांतिज,
ज़िला साबरकांठा-383205, गुजरात
मो० 9879079353

प्रयोगवाद एवं नई कविता : परंपरा काव्य और प्रवृत्तियाँ

डॉ० राजकुमार

सिद्धिविनायक शिक्षण महाविद्यालय, काकड़ोद (जींद)

सन् 1943 ई० में अज्ञेय के नेतृत्व में हिंदी कविता के क्षेत्र में एक नए आंदोलन का प्रवर्तन हुआ, जिसे अब तक विभिन्न संज्ञाएँ—प्रयोगवाद, प्रपद्यवाद और नयी कविता आदि प्रदान की गई। प्रारंभ में जबकि कवियों का दृष्टिकोण एवं लक्ष्य स्पष्ट नहीं था, नूतनता की खोज के लिए केवल प्रयोग की घोषणा की गई थी, तो इसे प्रयोगवाद कहा गया। इसी आंदोलन की एक शाखा ने श्री नलिन विलोचन शर्मा के नेतृत्व में प्रयोग को अपना साक्ष्य स्वीकार करते अपनी कविताओं के लिए 'प्रपद्यवाद' का प्रयोग किया। डॉ० जगदीश गुप्त एवं लक्ष्मीकांत वर्मा ने इसे अधिक व्यापक क्षेत्र प्रदान करते हुए नई कविता नाम का प्रचार किया।

प्रयोगवाद और नई कविता का पारस्परिक संबंध व प्रयोगवाद और नई कविता के संबंध में भी विद्वानों में मतभेद रहा है। हिंदी काव्य में जिस व्यक्तिपरक यथार्थवादी या अतियथार्थवादी आंदोलन को प्रारंभ में आलाचकों ने प्रयोगवाद का नाम दिया था, आगे चलकर वही नई कविता में प्रतिष्ठित हुआ।

(अ) प्रथम 'तार सप्तक' की भूमिका में अज्ञेय ने इस संकलन के कवियों की मुख्य विशेषता का आख्यान करते हुए प्रयोगशील विशेषण पर अधिक बल दिया था, जिससे आलोचकों ने सप्तक के काव्य को प्रयोग की संज्ञा दी।

(आ) अज्ञेय ने प्रयोगवाद के नाम को स्वीकार नहीं किया दूसरी ओर तो दूसरा तार सप्तक की भूमिका में इस नाम का घोर अवरोध किया, तो दूसरी ओर 'प्रतीक' के जून 5 के अंक में काव्य के लिए 'नई कविता' संज्ञा का नाम प्रयोग करते हुए—'मैं आग्रहपूर्वक यह कहना चाहता हूँ कि 'नई कविता' की जिसके लिए मुझे प्रयोगवादी, शब्द अपूर्ण, अव्यक्त और पूर्वग्रह जान पड़ता है।'

(इ) इसके बाद प्रायः सभी वर्ग के लोगों ने 'प्रयोगवाद' के स्थान पर 'नई कविता' नाम का स्वीकार करते हुए इसके पक्ष या विपक्ष में लिखते समय इसी संज्ञा का प्रयोग करने लगे। इलाहाबाद में परिमल के द्वारा आयोजित एक गोष्ठी में तार सप्तक के कवि भारतभूषण अग्रवाल ने नई एक गोष्ठी में तार सप्तक के कवि भारतभूषण अग्रवाल ने नई कविता के रूप विधान और वस्तु-तत्त्व विषय पर लेख-लिखे।

विकास की व्यवस्था

इस आंदोलन का प्रवर्तन सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यानंद 'अज्ञेय' द्वारा संपादित 'तारसप्तक' (1943) के प्रकाशन से हुआ। आगे चलकर 'अज्ञेय' ने क्रमशः दूसरा सप्तक (1951), तीसरा

सप्तक (1959) प्रकाशित हुआ।

पूर्व-परंपरा और प्रेरणास्रोत

हिंदी की यह काव्यधारा यूरोप के अनेक आधुनिक काव्य-संप्रदाओं और काव्येतर सिद्धांतों से प्रेरित एवं प्रभावित है।

(क) **प्रतीकवाद**—प्रतीकवाद की स्थापना फ्रांस के कुछ तरुण लेखकों एवं कवियों ने 'फिगरों' पत्रिका में की थी।

(ख) टी०ए० ह्यूम, एजर पाउंड, रिचर्ड एलडिग्टन, एफ० एस० फिलंट आदि के नाम प्रमुख हैं।

(ग) **दादावाद**—यह यूरोप का कला-संबंधी आंदोलन था, जिसका प्रवर्तन जीन अर्प तथा अंस्ट्रि माक्स आदि चित्रकारों ने किया। इसका संचालन 'कबरे वोल्ट्येर 'दादा' आदि पत्र-पत्रिकाओं द्वारा समय-समय पर आयोजित चित्र प्रदर्शनियों के रूप में हुआ था।

(घ) **अति यथार्थवाद**—दादावाद का ही विकसित रूप अति यथार्थवाद है। दादावाद का मूल क्षेत्र चित्रकला का था, जबकि इसने साहित्य को केंद्र बनाया। उन्होंने काव्य रचना में नई रचना-पद्धति का आविष्कार करके, विषय क्षेत्र में भी भावनाओं एवं सामाजिक विचारों की अभिव्यक्ति दी है।

(ङ) **फ्रायडवादी मनोविश्लेषण**—प्रसिद्ध मनोविश्लेषक सिगमंड फ्रायड के अनुसार कला सर्जन के मूल में कलाकार की दमित वासनाओं एवं कुंठित काम-प्रवृत्ति का योग रहता है। कलाकार यहाँ अपनी कामवासना को समाज के भय से अथवा अन्य कारणों से सामान्य जनजीवन में व्यक्त होती है या स्वप्न या कला के माध्यम से विकसित। ऐसी स्थिति में कला में यौन अंगों वासनाओं एवं कुंठाओं का चित्रण होना स्वाभाविक माना गया है। कवियों ने इस पद्धति का प्रयोग किया है—

आह, सारी रात, चाय रख दो कागज़ों पर
या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागति संयमी
ई ईश्वर, उ उल्लू
चल हट बेटा।

—राधाकांत भारती

प्रवृत्तियाँ

व्यक्तित्व की प्रधानता-व्यक्ति-स्वच्छंदता का प्रतिपादन होने के कारण नया कवि स्वयं को समाज की विकासोन्मुख धारा-प्रवाह से अलग रखता है। वह सभ्यता एवं संस्कृति की गतिशील धारा के प्रवाह में योग देने की अपेक्षा उसके मार्ग का बाधक द्वीप बनना अधिक अच्छा समझता है, इसलिए अज्ञेय स्वयं को द्वीप के रूप में प्रस्तुत करते हैं—

किंतु हम हैं द्वीप
हम धारा नहीं हैं
स्थिर समर्पण है हमारा
हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के
किंतु हम बहते नहीं

क्योंकि बहना रेत होना

इस प्रकार भारतभूषण अग्रवाल अपने व्यक्तित्व का मनचाहा रूप देने की घोषणा करके व्यक्तिवाद की स्थापना करते हैं—‘मैं नहीं कागज़ की लुग्दी या कि निरा पिंड प्लास्टिक का मिट्टी का लोंदा नहीं, गले राँगे की धार हूँ, जिसे तुम साँचे में ढाल दो, मनमाना रूप दो, मनमानी चाल दो!’

2. पीड़ा अभिव्यक्ति-प्रयोग

काव्य में हिंदी काव्यचेतना को वेदना-भाव की अभिव्यक्ति देकर अपनी सामयिकता एवं समकालीनता को प्रमाणित कर दिया—

वहन करो, ओ मन।
वहन करो पीड़ा
यह अंकुर है
उस विशाल वेदना की
तुम भी जन्मजात
आत्मजा हो स्वीकार करो
आँचल में ‘डूबकर’ रक्षण कर दो वहन करो, पीड़ा।
सृष्टि प्रिया पीड़ा है कल्प वृक्ष,
दान समझ शीश झुका स्वीकारो

—नरेश महता

3. अनास्था

प्रयोगवादी कवि अनास्थामूलक स्वर को अभिव्यक्त करते हैं—

मेरे जन्म से पहले मर गई थी
देवताओं की बूढ़ी दुनिया।

—अशोक वाजपेयी

जिनको तुम कहते हो प्रभु
उसने जब चाहा
मर्यादा को अपने हित में बदल लिया, वंचक है।

—धर्मवीर भारती

इसी अनास्था के कारण ही भारतभूषण अग्रवाल को सभी परंपरागत पथ अँधेरे की तरफ ले जाते हैं—

जितने भी पथ थे सबकी परिणति होती है अँधियारे में
प्राणों के पंथी सहमे सिमटे बैठे हैं गलियारे में

अतः इन कवियों ने अनास्था की अभिव्यक्ति अनेक रूपों की है। अतीत की परंपराओं के प्रति विद्रोह और सामाजिक मर्यादाओं के प्रति वितृष्णा भी अनास्था का सूचक है।

दीवारें दरारें पड़ जाती हैं इसमें
दीवारें दरारें बढ़ जाती हैं इसमें

—दुष्यंतकुमार

3. अस्तित्वबोध का सूचक

प्रयोगवादी काव्य एवं नई कविता में मनुष्य को अस्तित्व को गुरुवर अज्ञेय अपने शिष्यों के साथ ऋषि अगत्य का रूप धारण करते हुए क्षण-विरोध के समुद्र का आचमन करते दिखाई देते हैं—एक क्षण होने का अस्तित्व का अजस्र अद्वितीय क्षण होने के सत्य का सत्य के साथ का साक्षात् के क्षण का क्षण के अखंड पारावार का आज हम आचमन करते हैं।

एक क्षण होने का

अस्तित्व का अजस्र अद्वितीय क्षण

इसी क्षण-विशेष के अस्तित्व-बोध को सार्त्र आदि ने व्यक्ति का विस्तार या मनुष्य का मुक्ति लाभ या मुक्ति बोध कहा है। अज्ञेय जी अपने भगीरथ प्रयास का परिचय देते हैं— केवल बना रहे विस्तार—हमारा बोध मुक्ति का सीमाहीन खुलेपन का। दूषित वृत्तियों का नग्नरूप में चित्रण जिन वृत्तियों को अश्लील, असामाजिक एवं अस्वस्थ कहकर समाज और साहित्य में दमन किया जाता रहा, उन्हीं को उभारकर प्रस्तुत करने में नए कवि गौरव का अनुभव करते हैं। अपनी अतृप्त कुंठाओं का प्रकाशन वे निःसंकोच रूप में करते हैं—

मेरे मन की अँधियारी कोठरी में अतृप्त आंकाक्षा की वेश्या बुरी तरह खाँस रही है।

—अनंतकुमार 'पाषाण'

इसी प्रकार श्रीमती शकुंतला ने 'सुहाग वेला' में जो 'लपक-झपक' दिखाई, वह भी द्रष्टव्य है—

चली आई वेला सुहागिन पायल पहने वाणविद्ध हिरणी-सी बाँहों लिपट जाने की,
उलझने की, लिपट जाने की मोती की लड़ी समान...

5. भदेस का चित्रण

नए कवियों ने अपनी अस्वस्थ सौंदर्य चेतना एवं विकृत रुचि के कारण कुरूप, असुंदर एवं भद्दे दृश्यों का भी चित्रण किया है—

मूत्र-सिंचित मृत्रिका के व्रत में तीन टाँगों पर खड़ा एक नत ग्रीव धैयहीन गदहा।

—अज्ञेय

लगता है, कोई ठौर नहीं—

आज का मनुष्य,

गर्भ के धक्के देकर निकाला हुआ-ऋषि पुत्र!

—राजेंद्र किशोर

मुहब्बत एक गिरे हुए गर्भ के बच्चे-सी होती है

चाहत वह मजबूरी हो सकती है

जिसे मरीज खाँसकर थूक न सके।

—मुद्राराक्षस

6. साधारण विषय का चित्रण

नए कवि के पास कहने के लिए कोई बड़ी बात या कोई विषय नहीं है। इन्होंने साधारण विषयों का वर्णन किया है जैसे—चूड़ी का टुकड़ा, चाय की प्यालियाँ, बाटा की चप्पल, साईकिल, फ्रैंच लेदर, कुर्ता, वेटिंगरूम, होटल, दाल, तेल लकड़ी इधर-उधर की कुछ कह देता—

बैठकर ब्लेड से नाखून काटे
बढ़ी हुई दाढ़ी में बालों के बीच की

—सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

इसी प्रकार—

दिन मर गया है, मैं भी मर गया हूँ,
हींग और हल्दी से वासित मेरी बीबी, मगर
अभी जिंदा है।
और उसके पेट में कुछ और नई जिंदगी है
मेरा कोट फटा है उसने ही सिया है

—अनंतकुमार 'पाषाण'

व्यंग्य के माध्यम से वास्तविक घटनाओं का वर्णन

नए कवियों ने कहीं-कहीं आधुनिक जीवन के विभिन्न पक्षों पर व्यंग्य करने का प्रयास किया है। यथा—

साँप! तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया
फिर कैसे सीखा डसना
विष कहाँ से पाया?

—अज्ञेय

अतः कवि मानकर चलता है कि आधुनिक सभ्यता साँप से भी अधिक विषैली है साँप तो बेचारा निर्दोष प्राणी था, फिर उसने डसना कहाँ से सीख लिया है? फिर भी यह तो नहीं कि कवि नगर में नहीं रहा हो।

असंबद्ध प्रलाप

फ्रांयडीय चिकित्सा-प्रणाली में रोगी के द्वारा निद्रित या अनिद्रित अवस्था के कहे गए असंबद्ध उद्गारों का अध्ययन करके उसकी कुंठाओं का पता लगाया जाता है तथा इस पद्धति को उन्मुक्त साहचर्य की पद्धति कहते हैं। नई कविता में उदाहरण द्रष्टव्य है—

आह, सारी रात
चाय रख दो कागज़ों पर
या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागति संयमी
ई ईश्वर, उ उल्लू
चल हट बेटा।

—राधाकांत भारती

स्पष्ट है कि प्रयोगवाद और नई कविता में जनमानस, आधुनिकबोध, रोज-मर्रा की वस्तु तथा व्यंग्य के द्वारा समाज की कुसंगतियों का यथार्थ वर्णन किया है।

संदर्भ

1. Existentialism" Robert G. olson

2. दूसरा सप्तक पृ० 63
3. नया हिंदी काव्य, डॉ० रामकुमार मिश्र, पृ० 204
4. तीसरा सप्तक, पृ० 286
5. नई कविता और उसका मूल्यांकन : सुरेशचंद्र सहल पृ० 158-160
6. वही पृ० 261
7. आधुनिक हिंदी कविता में शिल्प, डॉ० कैलाश वाजपेयी, पृ० 305

सुपुत्र श्री रामचंद्र शर्मा
ग्राम व पोस्ट भोंगरा
तहसील नरवाना (जींद) 126115
मो० 9728902191

कबीर-साहित्य में चिंतन, कला और समाज-सुधार की महत्ता

डॉ० राजकुमार

सिद्धिविनायक शिक्षण महाविद्यालय, काकड़ोद (जींद)

जब हम एक ऐसा कवि ढूँढने लगे, जिसकी प्रतिभा, बुद्धि और काव्य शक्ति में अनेक विरोधी तत्त्वों का आश्चर्यजनक समन्वय हो, जिसने समाज के निम्नतम वर्ग में जन्म लेकर भी उच्चतम वर्ग को अपनी प्रतिभा के बल पर परास्त कर दिया हो, जिसने सर्वथा अशिक्षित होते हुए भी अपने युग के समस्त शिक्षित विद्वानों के मस्तिष्क को अपने तर्क से प्रभावित कर दिया हो और जिसने 'कागज और मसि' न छूकर भी अपनी काव्य रचनाओं द्वारा कोटि-कोटि जनता के हृदय में अजस्र भावधाराओं को प्रभावित कर दिया हो, तो हमारा साक्षात्कार महाकवि महासुधारक और महान समाजसुधारक कबीर से होगा। कबीर से उनका कितना संबंध है, उनके काव्य में भावनाओं का अगाध स्तोत्र किस रूप में प्रभावित हो रहा है? इन प्रश्नों का स्टीक उत्तर देना किसी भी आलोचक के वश की बात नहीं है। कबीर के शब्दों में यही कहना पड़ता है—'कहिए कूँ शोभा नहीं देख्या ही नहीं उनमान। डॉ० रामकुमार वर्मा जो स्वयं भी कवि हैं, उनकी महानता के प्रभाव से अविभूत होकर लिखते हैं—'ऐसी स्वतंत्र प्रवृत्ति वाला कलाकार किसी साहित्य क्षेत्र में पाया गया।'

वह किन-किन स्थलों में व्यवहार करता है, कहाँ-कहाँ सोचने के लिए जाता है। किस प्रशांत भूमि के वातावरण में जाता है। यह सब स्वतंत्रता के साधन उसी को ज्ञात थे। किस अन्य को नहीं। उनकी शैली इतना अपनापन लिए हुए है कि कोई उसकी नकल भी नहीं कर सकता। कबीर के भार्वतत्व का विश्लेषण करते हुए डॉ० इंद्रनाथ मदान ने उनकी तुलना महात्मा गांधी से की है। कबीर और महात्मा गांधी दोनों ही अपने-अपने युग के सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति थे। दोनों ने ही सब धर्मों में समन्वय स्थापित किया था, दोनों ने ही जीवन के सभी क्षेत्रों में एकता स्थापित करने का प्रयास किया था, फिर भी दोनों में गहरा अंतर इसलिए मिलता है कि कबीर राजनीति से दूर रहे तथा गांधी जी अपना काव्य-क्षेत्र जीवन के प्रत्येक भाग में स्थापित नहीं कर सके।

परिस्थितियाँ और प्रेरणास्रोत

कबीर का आविर्भाव एक ऐसे युग में हुआ, जब सारा राष्ट्र राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से पतन की ओर था। उस समय उत्तरी भारत का राजनीतिक दृष्टिकोण अव्यवस्थित था। सन् 1317 ई० में तैमूर के आक्रमण ने दिल्ली की नींव हिला दी थी और समस्त

मान्यताएँ पंक के जल की भाँति मलिन हो गई थीं। 15 वीं शताब्दी में तुगलक सैयद और लोदी तक सोलह शासक दिल्ली के तख्त पर बैठे और उन्होंने अपने राज्यकाल में शासन-व्यवस्था के बदले अधिकार आक्रमण और युद्ध ही किए थे। राजनीति की भाँति धर्म की अवस्था भी मलिन हो चुकी थी। मुस्लिम आक्रमणकारियों की गदा ने हमारे देवताओं की मूर्तियों को चकनाचूर करके हमारी परंपरागत भावनाओं और धारणाओं पर प्रश्नचिह्न लगा दिए थे।

केवल दक्षिण से ही भक्ति का एक स्रोत महाराष्ट्र होता था, लेकिन कबीर ने अपना तेज दिखाकर उत्तर भारत को उज्ज्वल कर दिया था। समाज की दशा राजनीति और धर्म से प्रभावित होती है। कबीर के युग में ये दोनों विकृत हो रहे थे, तो समाज की दशा अविकृत कैसे रह सकती थी? शैव, सिद्ध एवं नाथ पंथियों में परंपरागत वर्ण-व्यवस्था के प्रति तो सदेह उत्पन्न कर दिया, किंतु उसके स्थान पर कोई सुव्यवस्थित रूप प्रदान नहीं कर पाये थे। जनता के मानसिक और नैतिक स्तर का हास बहुत हो चुका था। इससे संस्कृत से वंचित था, जब कि लोगो में अपभ्रंश का प्रचलन हो रहा था। हिंदू सम्राटों के पतन के कारण हमारे विभिन्न शिक्षा-केंद्र नष्ट हो रहे थे। संस्कृत के विद्वानों को सम्मान प्राप्त नहीं था। तत्कालीन युग में नारी की आस्था तो और भी सोचनीय हो गई थी। स्वयं कबीर का जन्म इसी प्रकार की स्थिति का परिचय देता है—

कोई लरिका बेचई, लरिकी बेचे कोई
साझा करे कबीर सिऊ, हरि संग जनिज करेई।

कबीर साहित्य पर अपभ्रंश का सिद्ध साहित्य, नाथपंथ का प्रभाव वैष्णव भक्ति-आंदोलन का प्रभाव प्रमुख रहा है।

कबीर के विचार तत्कालीन भारतीय समाज पर गहरी छाप डाले हुए हैं, जो कि आधुनिक समाज को जोड़ने का प्रयास करते हैं। वे मुसलमानों के एकेश्वरवाद या खुदावाद के समर्थक नहीं थे। उनका निर्गुण संबंधी दृष्टिकोण इस्लाम के अनुकूल नहीं है। राम से उनका प्रभाव कुछ और ही था—‘दशरथ सुत तिहूँ लोक बखाना। राम नाम का मरम है आना।’ उन्होंने राम को निर्गुण रूप में ग्रहण करते हुए उपदेश दिया—‘निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई।’ उनकी राम-भावना भारतीय ब्रह्म-भावना से सर्वथा मिलती है। कबीर में भौतिक या बाह्यार्थवाद कहीं मिलता ही नहीं और आत्मवाद की उन्होंने वकालत की है—

पाणी ही ते हिम भया, हिम हैं गया बिलाया।
जो कुछ भी था सो भया, अब कुछ कहा न जाया।

अतः कबीर में प्रकृति को सजोने की शक्ति थी। उन्होंने सृष्टि और ब्रह्म का संबंध दिखाने के लिए अद्वैतवादी उदाहारण दिए हैं। जिस प्रकार एक छोटे-से बीज में वट का बृहदाकार वृक्ष अंतर्निहित रहता है, उसी प्रकार यह सृष्टि भी ब्रह्म में अंतर्निहित रहती है तथा जिस प्रकार दूध में भी घी व्याप्त रहता है, उसी प्रकार ब्रह्म भी इस विश्व में सर्वत्र व्याप्त है—

खालिका खलक, खलक में खालिक सब जग रहो समाई।

कबीर अद्वैतवादी भावना को मानते हुए भी पूर्णतः अद्वैतवादी नहीं थे। अद्वैतवाद ज्ञात के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति पर बल देता है, किंतु कबीरदास ने इनके स्थान पर प्रेम की प्रतिष्ठा की वे ज्ञान की अपेक्षा प्रेम की महत्ता को स्वीकार करते हैं। उनके शब्दों में—

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय
ढाई आखर प्रेम के, पढ़ै सो पंडित होय।
प्रेम की महत्ता द्रष्टव्य होती है—

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं हम नाहि
प्रेम गली अति साकरी, ता में दो न समाहि
जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जानु मसान
जैसे खाल लोहार की साँस लेत बिन प्रान
जहाँ प्रेम तहं नेमि नाही, जहाँ न बुद्धि त्यौहार
प्रेम भगत जब मन भया: कौन गिने तिथि वार।

आधुनिकयुग की तरह कबीर के समाज में भी लोग पूजा के विभिन्न विधानों को लेकर ही विभिन्न संप्रदाओं के लोग परस्पर लड़ाई-झगड़े कर रहे थे। कबीर के युग में भी ऐसा दिखाई देता था। अतः उन्होंने विभिन्न धर्मों के पारस्परिक मतभेद को दूर करने के लिए हिंदू और मुसलमानों के विधि-विधानों, कर्मकांडों और अंधविश्वासों की कटु आलोचना की—

साधो देखो जग बोराना।
साँचि कहैं तो मारन धावै: झूठे जग पतियाना
हिंदु कहत है राम हमारा, मुसलमान रहिमाना
आपस में दोउ लड़े मरतु है, मरम कोई नहीं जाना
बहुत मिले मोहि नेमी धर्मी, प्रात करैं असनाना
आतम छोड़ि पखानै पूजै, थोथा ज्ञाना
आसन मोरि डिंग धारि बैठ, मन मैं बहुत गुमाना
पीतर पाथर पूजन लागे, तीरथ व्रत भुलाना
माला पहिरे टोपी पहिरे,छाप तिलक अनुमाना।

अतः स्पष्ट है कि कबीर ने हिंदू और मुसलमान दोनों धर्मों की बुराइयों का खंडन निष्पक्ष रूप से किया है। उन्होंने मुसलमानों की नमाज तथा जीव-हत्या आदि का तीव्र विरोध किया है, तो हिंदू की रूढ़ियों का भी तीखा खंडन किया है—

जौ तू बांभन बांभनी जाया, तो आन बान बाट है क्यों नहीं आया
जौ तू तुरक तुरकनी जाया, तो भीतर खतना क्यों नहीं कराया।

कबीर ने खंडन के साथ ही धर्म के सत् स्वरूप का मंडन भी किया है। उन्होंने गुरु-भक्ति, ईश्वर-स्मरण, संसार से विरक्ति, कथनी-करनी, सुसंगति, प्रेममहिमा, संयम और सदाचार का प्रतिपादन विधेयात्मक रूप में किया—

सतगुरु सर्वो न तो लगा, सोधी सई न दाति
हरिजी सर्वो न तो हितू, हरिजन सई न जाति।

इसी प्रकार दूसरी ओर कबीर ने संसार की असारता का वर्णन किया है—

झूठे सुख को सुख कहैं, मानत है मन मोद
जगत चबेना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद।

इसी प्रकार उन्होंने बुराइयों का भी विरोध किया—

कबीरा संगत साधु की, ज्यों गंधी की बास
जो कछु गंधी दे नहीं, नहीं तो भी बास सुबास
मथुरा भावे द्वारिका, भावे जा ना जगन्नाथ
साधु संगति हरिजन बिनु, कछु न आवे हाथा।

वस्तुतः कबीर अपूर्व प्रतिभा-संपन्न कवि थे। उनके काव्य में भाव और विचार, तथ्य और कल्पना भाषा और अलंकार का आश्चर्यजनक रूप में समन्वय हुआ। उनके महत्त्व के सम्मुख हिंदी के बहुत कम कवि ही आते हैं उनका समूचा काव्य विभिन्न वर्गों में एकता, समन्वय भातृत्व एवं राष्ट्रीय एकता की स्थापना करता है। तुलसीदास महान कवि कहे जाते हैं, उनके पास शिक्षा, ज्ञान और संस्कारों की एक ऐसी थाती थी, जिसके बल पर आगे बढ़ना अधिक कठिन नहीं था, परंतु समाज की एक निम्नतम श्रेणी में जन्म लेकर अक्षर ज्ञान से सर्वथा दूर होते हुए भी कबीर, भाव विचार और साधना के जिस ऊँचे स्तर तक पहुँचे, वह अदभुत था। भक्तिकाल की धारा में कबीर ने मुगलों का शासन होते हुए भी मुसलमानों को भी फटकारा था। वे समूचे राष्ट्र को एकता में बाँधना चाहते थे। कबीर की तुलना प्रसाद से भी उपयुक्त है कि दोनों अपने युग के सबसे बड़े रहस्यवादी कवि माने जाते हैं किंतु फिर भी दोनों में बड़ा अंतर है। कबीर ने अपने दिव्य अनुभूतियों को सांसारिक शब्दावली में व्यक्त किया था। कबीर जिस महान् सत्ता के साक्षात्कार से इसी जीवन में तेजोमेय हो चुके थे और जिनके प्रकाश के कारण उनके शब्दों में अपूर्व शक्ति आ गई थी, प्रसाद उसका कदाचित् आभास-मात्र ही प्राप्त कर सके।

कबीर के विषय में सुकरात ने कहा था—‘जब परमेश्वर को धरती के जीवों से वार्तालाप करना होता है, तो वह कवियों की वाणी के माध्यम से बोलता है। वह अपना दिव्य संदेश कवि के दिव्य शब्दों में देता है। सुकरात का यह कथन विश्व के कुछ ही कवियों पर लागू होता है।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य, द्वितीय खंड, पृ० 226
2. कबीर का रहस्यवाद, पृ० 2568
3. कबीर चिंतन और कला हिंदी साहित्य, द्वितीय खंड, पृ० 116
4. कबीर ग्रंथावली, पृ० 278

सुपुत्र श्री रामचंद्र शर्मा
ग्राम व पोस्ट भोंगरा
तहसील नरवाना (जींद) 126115
मो० 9728902191

डॉ० बाबूराम द्वारा विरचित उपन्यास 'एक और अवधूत' की कथ्यगत विशेषताएँ

जयकुमार, शोधार्थी

डॉ० रणधीरसिंह, शोध निर्देशक

एसोसिएट प्रोफेसर, अध्यक्ष, हिंदी विभाग,

दयालसिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय, करनाल (हरियाणा)

'कथ्य' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'कथ्' धातु में 'यत्' प्रत्यय लगाने से हुई है। 'कथ्य' का अर्थ है—कहने योग्य, कथनीय।¹ साहित्यकार के कथ्य के द्वारा ही हम उसके उद्देश्य से अवगत होते हैं। साहित्यकार अपने अनुभवों, घटनाओं और परिस्थितियों से प्रभावित होकर जो कुछ अपनी रचनाओं में लिखना चाहता है, वही कथ्य कहलाता है।²

कथ्य शब्द के लिए अनेक पर्याय शब्दों का प्रयोग किया जाता है—कहना, समाचार देना, वार्तालाप करना, बातचीत करना, संकेत करना, निर्देश करना, ब्यान करना, वर्णन करना, सूचना देना, शिकायत करना। डॉ० श्यामसुंदर दास के मतानुसार, 'जो कहना उचित हो, वह कथ्य है।'³ साहित्यकार अपने अनुभवों, घटनाओं और परिस्थितियों से प्रभावित होकर जो कुछ अपनी रचनाओं में लिखना चाहता है, वही कथ्य कहलाता है। समाज में व्याप्त विसंगतियों को आत्मसात् करता है। उसका जीवन और जगत के प्रति जैसा दृष्टिकोण होता है, उसका कथ्य भी उसी के अनुरूप आकार धारण करता है।

भारतीय संत-परंपरा के अनुयायी स्वामी शिवानंद सरस्वती के घर में अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध बहुमुखी प्रतिभा के धनी विद्यावाचस्पति प्रोफेसर डॉ० बाबूराम जी का जन्म 8 अक्टूबर, 1959 को किसान परिवार में, ग्राम खानपुर रोड़ान, जिला कुरुक्षेत्र में हुआ। इन्होंने साहित्य की विविध विधाओं पर सफलतापूर्वक लेखनी चलाई। सुप्रसिद्ध साहित्यकार होने के साथ-साथ वे एक उच्चकोटि के शिक्षाविद् और समाजसेवी भी हैं। हिंदी में जीवनीपरक उपन्यास लेखन की परंपरा आधुनिककाल में प्रारंभ हुई। इसी परंपरा में डॉ० बाबूराम द्वारा विरचित 'एक और अवधूत' हिंदी का नवीनतम प्रकाशित जीवनीपरक उपन्यास है। इस उपन्यास की यह विशेषता है कि उपन्यासकार चरितनायक के जीवन से पूर्णतः सुपरिचित हैं। जीवनीकार ने स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती के जीवन को स्वयं अपनी आँखों से देखा और दीर्घकाल तक उनके संपर्क में रहे। डॉ० बाबूराम द्वारा विरचित जीवनीपरक 'एक और अवधूत' उपन्यास की किसान जीवन, ग्रामीण परिवेश, प्रकृति-चित्रण, यात्रा-वृत्तांत, मनोविज्ञान, वैराग्य-भावना, समाज-सुधार, अवसरवादी सिद्धांतहीन राजनीति, देशप्रेम, धार्मिक आस्थाएँ, पर्यावरण-संरक्षण, वृक्षारोपण, गोवंश-संवर्धन,

नारी जाति का कल्याण, बाह्यडंबरों का विरोध, दार्शनिक विचारधारा, त्यौहार, पर्वों और मेलों का चित्रण, मादक द्रव्यों के सेवन का निषेध, कुसंस्कारों का उन्मूलन, मांसाहार का खंडन और शाकाहार का मंडन, यज्ञ अनुष्ठान, साक्षरता का प्रचार-प्रसार, पीड़ित मानवता की प्रति प्रेम, मूक पशु-पक्षियों के प्रति करुणा के भावना आदि उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

‘एक और अवधूत’ का कथ्य बड़ा विस्तृत है, क्योंकि स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती का जीवन बहुआयामी था। उन्होंने भारत के इतिहास के दो युगों को अपनी आँखों से देखा था। एक तो वह युग जिस समय भारत विदेशियों के अधीन था, दूसरे भारत ने जब स्वतंत्रता का अरुणोदय देखा। उनके जीवन के अनेक प्रकार की घटनाएँ हैं, जिनसे हमें पता चलता है कि स्वामीजी महान साधक थे।

ग्रामीण जीवन का सजीव चित्रण स्वामीजी का बाल्यकाल ग्रामीण वातावरण में व्यतीत हुआ। ग्रामीण वातावरण में दो प्रधान स्थान होते हैं—एक चौपाल, जहाँ गाँव के सब पुरुष साँझ-सवेरे इकट्ठे होते हैं और अनेक विषयों से संबंधी चर्चा करते हैं। दूसरा स्थान पनघट होता है, जहाँ गाँव की महिलाएँ कुएँ से पानी भरती हैं। इसका एक सजीव चित्रण इस प्रकार है। ‘गाँव में पनघट एक ऐसा स्थान होता है, जहाँ महिलाएँ पारस्परिक सुख-दुःख की बात करती हैं और एक-दूसरे का परिचय भी प्राप्त करती हैं। जब नयी-नवेली दुल्हन पहली बार कुएँ पर पानी भरने आती है, तो कुएँ पर खड़ी महिलाएँ उसका मुँह देखती हैं और एक-दूसरे से कहती हैं— ‘हैं री चौली! आज तो बहुत दिनों में दिखाई दी। भाभी मुझे तो आए एक महीने से ऊपर हो गया है। मेरे भाई बदामे के लड़का हुआ है। जापे में आई थी। परसों मुझे लेने आ रहे हैं। मैं तो परसों चली जाऊँगी।’⁴

स्वामीजी आजीवन प्रकृति की गोद में रहे। स्वामीजी शहरों के किनारे, सरोवरों के निकट बीहड़ वनों में, श्मशान आदि में एकांतवास करना अधिक पसंद करते थे। पशु-पक्षियों से उनका विशेष प्रेम था। उपन्यासकार लिखते हैं—‘प्रातःकालीन पेड़ों पर बैठे पक्षी कलरव करते थे। स्वामीजी बांसुरी बजाकर पक्षियों के कलरव में अपना स्वर मिलाते थे। मानो प्रकृति देवी चारों ओर से अमृत वर्षा कर रही हो। कभी-कभी उनकी अंतरात्मा से यह ध्वनि निकलती थी कि ब्रह्मानंद वन में अकेले रहने से क्या लाभ है? वन में अनेक प्रकार के वन्य-जंतु, रीछ, भालू, सिंह, हाथी, भेड़िए, लोमड़ी, गीदड़ आदि भी रहते हैं। न तो उनका कल्याण होता है, न ही वे किसी का कल्याण करते हैं।’⁵

स्वामीजी यात्रा-प्रेमी भी थे। भारत के ऋषि-मुनि, साधु-संन्यासी, राजा-महाराजा, धनी-मानी व्यक्ति प्राचीनकाल से ही यात्रा-प्रेमी रहे हैं। विशेषकर संसार में सबसे अधिक तीर्थ स्थान भारतीय महाद्वीप में ही है। तीर्थ उसे कहते हैं—‘जो भवसागर से तारता है।’⁶ ‘तारयति इति तीर्थः।’⁷ स्वामीजी अनेक तीर्थ स्थानों पर अकेले भी गए और दल-बल के साथ भी गए। विशेषतया ये अपने सहयोगियों, साथियों, भक्तों, शिष्यों और शिष्याओं के साथ तीर्थों की यात्राएँ करते थे। उन्होंने लगभग भारत के सभी तीर्थस्थानों की यात्राएँ कीं। कुरुक्षेत्र, पिहोवा, फल्गु, कपालमोचन, हरिद्वार, ऋषिकेश, रुद्रप्रयाग, जोशीमठ, गंगोत्री, बद्रीनारायण, काशी, नासिक, उज्जैन, पुष्करराज, जगन्नाथपुरी, गंगासागर, मथुरा, वृंदावन आदि तीर्थ स्थानों की यात्राएँ कीं। उपन्यासकार ने उनकी बद्रीनारायण की यात्रा का वर्णन इसप्रकार किया है, ‘रुद्रप्रयाग आदि तीर्थों की यात्रा के बाद स्वामीजी जोशी मठ पहुँचे। वस्तुतः उनका असली नाम ज्योतिर्मठ है। आदि

शंकराचार्य ने उत्तराखंड में इस धाम की स्थापना की थी। ऐसा कहा जाता है कि जगतगुरु शंकराचार्य को भगवती ज्योतिर्मय रूप में दिखाई पड़ी थी। यहीं से गंगोत्री जाने का मार्ग भी है, जहाँ गोमुख हिमनद से गंगा का स्रोत है। वहाँ गंगा जी का प्रवाह बड़ा तेज माना जाता है। उसमें प्रवेश करके कोई स्नान नहीं कर सकता।⁸ इस प्रकार स्वामीजी ने गाँवों, शहरों, प्रदेशों और महानगरों की यात्राएँ कीं।

स्वामीजी दूरदर्शी एवं भविष्यवक्ता भी थे। प्रत्येक मनुष्य चाहे शिक्षित हो या अशिक्षित, न्यूनधिक रूप में भविष्यदर्शी होता है। स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती कभी-कभार भविष्यवाणी किया करते थे और उनकी भविष्यवाणी सत्य प्रतीत होती थी, क्योंकि वे कोई साधारण व्यक्ति नहीं थे। वे बड़े महापुरुष, ज्ञानी और योगी थे और वे ज्योतिषशास्त्र से भी परिचित थे। जिसका एक उदाहरण इस प्रकार है, 'स्वामीजी मेघ गंभीर वाणी में बोले—'सज्जनों भारत देश पर एक बड़ा संकट आने वाला है, जिसके कारण यह महान देश टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा और लाखों निर्दोष लोग अकारण मौत के घात उतार दिए जाएँगे। यह भयंकर प्रलय का दृश्य मुझे दिखाई दे रहा है।' यह सुनकर उत्सव में सन्नाटा छा गया। संत-महात्मा कहने लगे स्वामी ब्रह्मानंद तो तीनों कालों की बात जानने वाले सिद्ध संत हैं।⁹

विरक्त या वैरागी उस संतपुरुष को कहते हैं जिनको संसार की मोहमाया से विरक्ति हो गई हो और यह संसार दुःख या बंधन रूप दिखाई देने लगा हो। स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती पूर्वजन्म के योगी होने के कारण संस्कारवश जन्मजात वैरागी थे। ओ३मपुरा गुरुकुल में उनकी वैराग्य-भावना प्रबल हो गई। 'मैंने ओ३मपुरा गुरुकुल की स्थापना लोक को अज्ञान, अंधकार से निकालने के लिए की थी। ऐसा प्रतीत होता है मैं स्वयं अंधकार के गर्त में डूबा-सा प्रतीत होता हूँ। भगवान की लीला बड़ी विचित्र है। मैं जब यहाँ सघन वन में आया, तो मेरे पास भौतिक पदार्थों का स्तूप नहीं था। मेरे हृदय में केवल विश्वमंगल का पावन संकल्प था। ये ब्रह्मचारी ऊब बंधन स्वरूप प्रतीत होते हैं। गुरुकुल मुझे एक जंजाल-सा प्रतीत होता है। मैं विश्वकल्याण शीघ्र करना चाहता था, परंतु लगभग एक दशक रहते हुए हो गया है। बड़े-बड़े उत्सव किए और मेलों का आयोजन किया, यहाँ मेरी आंतरिक शांति लुप्त होती जा रही है।'¹⁰ स्वामीजी श्रीमद्भगवद्गीता और पतंजलि के योगदर्शन का नित्यप्रति अभ्यास करते थे। अभ्यास और वैराग्य को वे बहुत महत्त्व देते थे।

स्वामीजी गुरु-शिष्य परंपरा के प्रबल समर्थक थे और उनके अनेक शिष्य और शिष्याएँ थीं। स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती अपना गुरु ओंकार (ब्रह्म) को ही मानते थे, किंतु वे स्वयं एक महान् गुरु थे। उपन्यासकार ने गुरु-शिष्य परंपरा के बारे में इसप्रकार बताया है—'भारत में गुरु-शिष्य परंपरा प्राचीनकाल से ही प्रचलित रही है। वेद में भी कहा गया है—आचार्य देवो भवः अर्थात् गुरु को भगवान का रूप मानना चाहिए। गुरु के विषय में संस्कृत में कहा गया है—गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुर्साक्षात् परब्रह्मं तस्मै श्रीगुरुवेः नमः।'¹¹

उपन्यास में सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है। स्वामीजी एक महान् समाज-सुधारक थे। संसार में जब अधर्म अत्याचार बढ़ जाता है, तो कोई महापुरुष समाज-सुधार के कार्य में तल्लीन होकर समाज को संमार्ग की ओर प्रेरित करते हैं। 'समाज में व्याप्त कुरीतियों को देखकर, समाज-सुधार के लिए पंचरंगा झंडा लेकर मैदान में कूद पड़े। उनके समाज-सुधार

कार्यक्रम के कई रूप थे। सर्वप्रथम उन्होंने शिक्षा के प्रचार पर विशेष बल दिया। दूसरे पर्यावरण का सुधार, वृक्षारोपण एवं यज्ञों के द्वारा करने का प्रयत्न किया।¹² इसके साथ 'साध्वियों का कार्य घरों में जाकर महिलाओं में जागृति उत्पन्न करना था और उन्हें अंधविश्वास से मुक्ति दिलाना था।'¹³ 'हमें छोड़कर सारा गाँव इसका भक्त हो गया। ये तो जाति-पाँति का कोई भेदभाव नहीं रखते हैं।'¹⁴ यथा—'स्वामीजी धर्म, जाति, रंग, वर्ण, देश-प्रदेश, मजहब, संप्रदाय, भाषा के आधार पर मनुष्यों में अंतर नहीं समझते थे।'¹⁵ स्वामीजी बड़े आदर्शवादी थे और एक आदर्श समाज का निर्माण करना चाहते थे। जिसके फलस्वरूप सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक सुधार हो, आत्मत्याग से ही परोपकार संभव है।

सर्वधर्म समभाव के बारे में स्वामीजी की मान्यता थी—'स्वामीजी सबका अपना-अपना मत है। हम तो सभी धर्मों के ग्रंथों, वेद-पुराण, बाइबल, कुरान, श्रीमद्भगवद्गीता, रामायण, महाभारत, जैन-ग्रंथों, बौद्ध-ग्रंथों और गुरु-ग्रंथसाहिब को पढ़ते हैं।'¹⁶ और 'वे सभी मतमतांतरों, धर्मों और मजहबों का आदर करते थे।'¹⁷

स्वामीजी अवसरवादी सिद्धांतहीन राजनीति के विरोधी थे। 'सांप्रदायिक वैमनस्य, अवसरवादी सिद्धांतहीन राजनीति गुटबंदियाँ देश को रसातल (पतन) में ले जाएँगे।'¹⁸ इसके साथ ही स्वामीजी कट्टर देशप्रेमी थे। स्वामीजी कहते थे कि 'यदि तुम अपने राष्ट्र का कल्याण चाहते हो, तो अपने कर्तव्यों का पालन करो।'¹⁹ स्वामीजी ने समय-समय पर विकट परिस्थितियों और विरोधों का भी सामना किया। 'कुछ आर्यसमाजियों का गुप यज्ञ में विघ्न डालना चाहता था, जिससे खिल्ली उड़े। स्वामीजी सदा शांत भाव में रहते थे।'²⁰

स्वामीजी धार्मिक आस्थावान और दानवीर भी थे। स्वामीजी धार्मिक अंधविश्वासों के विरोधी थे। स्वामीजी धर्म को कोरी कल्पना नहीं मानते थे, बल्कि धर्म को मानव-जीवन का आधार मानते थे। एक बार स्वामीजी ने लोगों को बताया कि 'ग्रहण के सुअवसर पर दान-पुण्य अवश्य करना चाहिए। ग्रहण के अवसर पर परमंत्र भी सिद्ध हो जाते हैं।'²¹ स्वामीजी समदर्शी होने के कारण सबको समान दृष्टि से देखते थे।

स्वामीजी भारत ऋषियों और दार्शनिकों की परंपरा में उत्पन्न हुए थे। अतः वे एक दार्शनिक भी थे। उनका सिद्धांत था कि साधु या संन्यासी को संसार में जल में कमलवत निर्लिप्त रहना चाहिए। जनता की एकता और मेल-मिलाप के लिए पर्व-त्यौहारों को आवश्यक मानते थे। 'जन्माष्टमी का दिन था। स्वामीजी सहसा रसीना गाँव प्रकट हो गए। वर्षा की बूँदों ने उनका स्वागत किया। स्वामीजी को अचानक आया देखकर आश्चर्यमिश्रित आह्लाद हुआ।'²² स्वामीजी पर्यावरण के पोषक, गौवंश हितकारी, हिंदीप्रेमी, नारी-जाति के उद्धारक, आयुर्वेद व प्राकृतिक-चिकित्सा के पक्षधर भी थे।

अंत में कहा जा सकता है कि स्वामीजी का आविर्भाव दैवीय संपदा के रूप में हुआ था और वे आजीवन आसुरी संपदा के साथ संग्राम करते रहे। वे जन्मना वैरागी थे और उन्होंने भारतीय ऋषियों की परंपरा को आगे बढ़ाया। वे निर्लिप्त होकर संसार की मोहमाया से दूर रहे। इसलिए लोगों में उन्हें 'अवधूत' के पद से सुशोभित किया जो डॉ॰ बाबूराम द्वारा विरचित 'एक और अवधूत' की कथ्यगत विशेषताओं से दृष्टिगोचर होता है।

संदर्भ

1. हिंदी शब्द कोश, संपादक डॉ. हरदेव बाहरी, पृ० 144
2. संस्कृत हिंदी कोश, संपादक शिवराम वामन आप्टे, पृ० 242
3. हिंदी शब्द सागर, संपादक श्यामसुंदर दास, पृ० 255
4. एक और अवधूत, डॉ. बाबूराम, आकाश पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, गाज़ियाबाद, संस्करण 2010, पृ० 23
5. वही, पृ० 36-37
6. संस्कृत हिंदी कोश, संपादक शिवराम वामन आप्टे, पृ० 461
7. कल्याण (विशेषांक) तीर्थक, पृ० 30
8. एक और अवधूत, डॉ. बाबूराम, आकाश पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, गाज़ियाबाद, संस्करण 2010, पृ० 38
9. वही, पृ० 43
10. वही, पृ० 44
11. वही, पृ० 189
12. वही, पृ० 50
13. वही, पृ० 50
14. वही, पृ० 59
15. वही, पृ० 110
16. वही, पृ० 160
17. वही, पृ० 164
18. वही, पृ० 148
19. वही, पृ० 120
20. वही, पृ० 139
21. वही, पृ० 69
22. वही, पृ० 126

साँझी लोकगीतों में लोकविश्वास

रामबहादुरसिंह

भारत की लोकसंस्कृति अनादिकाल से भारतीय जनमानस को गतिशीलता प्रदान करती हुई निरंतर चली आ रही है। भारतीय संस्कृति विविधताओं से परिपूर्ण है। देश के प्रत्येक स्थान की अपनी संस्कृति है। भारतीय लोकसंगीत का बहुत महत्त्व है, क्योंकि इसके द्वारा व्यक्ति अपनी संस्कृति को व्यक्त करता है। प्रत्येक स्थान पर लोकसंगीत की उपस्थिति व्याप्त रहती है।

साँझी अर्थात् संझया, संजा, साँजुली, उत्तरप्रदेश, मालवा, राजस्थान और निमाड़ की कुमारी कन्याओं का एक अनुष्ठानिक व्रत एवं बालगीतों का एक प्रकार विशेष, जो उक्त व्रत के संदर्भ में गाए जाते हैं। ब्रज के साँझी-व्रत और उसके गीतों से सभी परिचित हैं। महाराष्ट्र में 'गुलबाई', बुंदेलखंड में 'मामुलिया' और कागड़ा जिले में 'रली' का त्योहार इसके अनुरूप है। आश्विन मास की प्रतिपदा से कुँवारी कन्याएँ साँझी का व्रत आरंभ करती हैं। दीवार पर गोबर से आकृतियाँ उकेरकर उन्हें फूल की पंखुड़ियों और अन्य प्राकृतिक उपादानों से सजाती हैं, इन्हीं आकृतियों के सम्मुख साँझी के गीत मिलकर गाए जाते हैं। साँझी का आकृति पक्ष आनुष्ठानिक महत्त्व रखता है। ऐतिहासिक दृष्टि से ब्रह्मा की कन्या संध्या का साँझी से किसी तरह से भी संबंध नहीं है। गीतों के आधार पर साँझी का पीहर 'साँगानेर' में था और उसका विवाह अजमेर में हुआ था। साँगानेर के कल्यास जी उसे विवाह के पश्चात् ससुराल ले जाने का आग्रह करते हैं। ब्रज के गीतों में 'सजलदे' नाम प्रचलित है। यह बात पुष्ट आधारों से प्रकट है कि साँझी का राजस्थान से मूल संबंध रहा है। मालवा के गीतों में साँझी के भाई सूरजनारायण बताए गए हैं। वह भरेपूरे परिवार की लाडली कन्या थी। दीवार पर बनाई जानेवाली साँझी उसकी प्रतीकवत् आकृति है। यह क्रम 16 दिन तक चलता रहता है। अंतिम दिन साँझी सिराई जाती है और विदा के गीतों से कन्याएँ अपनी साँझी को ससुराल भेजती हैं। साँझी के गीतों में सामूहिक लय, लघुचरण एवं द्रुतगति, संपदात्मकता तथा लघुकथासूत्र समाविष्ट है। गीतों का मूल स्वभाव कुतूहल, विनोद और बालप्रवृत्तियों से प्रभावित है।

साँझी लोकगीत मुख्यतः पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद, रामपुर बिजनौर और ज्योतिबाफुले नगर (अमरोहा) में गाए जाते हैं। ये जनपद वास्तव में रुहेलखंड परिक्षेत्र अंतर्गत आते हैं। इन जनपदों की अपनी विशेष पहचान है। इन जनपदों में अपनी लौकिक धरोहर के रूप में लोक-संगीत, बंजारा, लावनी, काँवर, बम-बम भोले शिवभक्तों के जयकारे के साथ साँझी, टेसू, झाँझर के लोकगीत समय-समय पर सुनाई पड़ते रहते हैं।

साँझी लोकगीत के संबंध में कोई भी प्रमाणित ग्रंथ प्राप्त नहीं होता है। यह लोकगीत जनसामान्य के मुँहबोले अर्थात् स्वयं के द्वारा गाए जाने वाला गीत है। साँझी गाने के लिए उसे

किसी प्रकार की कोई पुस्तक या प्रमाणित ग्रंथ की आवश्यकता नहीं होती, यह तो स्वयं के द्वारा गाया जाता है। इस गीत को गाने के लिए किसी विशेष स्थान की आवश्यकता नहीं होती है बल्कि इसे कहीं पर भी गाया जा सकता है। साँझी गीतों में लोगों का बहुत गहरा विश्वास है, और इन गीतों को वृद्ध, युवा, नर-नारी, बालक-बालिकाएँ सभी गाते हैं। साँझी गीत के माध्यम से घरेलू पशु-पक्षियों के साथ ही साथ प्राकृतिक छटा के अंतर्गत व्याप्त पेड़-पौधों तथा कूप-तड़ाग आदि का भी वर्णन बहुत अच्छे ढंग से करते हैं और ये घरेलू पशु-पक्षी एवं प्राकृतिक छटा ही इनके रमण-स्थल तथा प्रेरक तत्त्व माने जाते हैं।

साँझी लोकगीतों से लोगों का गहरा संबंध है। साँझी गीत एकमात्र अश्विन माह के पितृपक्ष (श्राद्ध मास) में गाया जाने वाला मुख्य लोकगीत है। इन गीतों के माध्यम से यहाँ की संस्कृति संरक्षित होती दिखाई पड़ती है, जिसका प्रभाव आनेवाली पीढ़ी पर परिलक्षित होता दिखाई पड़ता है। इन गीतों के माध्यम से लोग अपनी पुरानी संस्कृति एवं सभ्यता को भी व्यक्त करते हैं। साँझी लोकगीतों का गायन सायंकाल से प्रारंभ होकर देर रात तक चलता रहा है। इन गीतों को गाने से पहले अविवाहित लड़के-लड़कियाँ अपनी टोली बनाते हैं। टोली में ये लड़के-लड़कियाँ घर-घर जाकर साँझी गीत गाते रहते हैं। जब ये बालक-बालिकाएँ गाने के लिए निकलते हैं तो अपने साथ में साँझी, झांझर, टेसू के रंग-बिरंगे पुतले बनाकर उसमें तेल एवं दीप जलाकर अनेक प्रकार की गीत सुनाते फिरते हैं और साथ ही साथ लोगों को साँझी का आशीर्वाद भी दिलाते हैं।

लोगों का विश्वास है कि पौराणिक राजा वभु वाहन की कथा इसी से संबंधित है। वभु अर्थात् नकूल (सेठा) वनस्पति से तीन स्तंभों वाला टेसू बच्चे बहुत ही सुंदर ढंग से तैयार करते हैं। ये रंग-बिरंगे टेसू बहुत ही अच्छे लगते हैं और इन्हीं तीन स्तंभों वाले टेसू छोटा कलश रखकर उसमें तेल डालकर दीप जलाकर पूरे उत्साह एवं सज-धज के साथ साँझी गीतों का गायन सर्वत्र चलता रहता है, जिससे लोगों का हृदय आनंदित एवं प्रफुल्लित हो उठता है और लोग उन बच्चों से कहते हैं कि अगले दिन पुनः तुम लोग गीत गाने आना।

जिस प्रकार पितृपक्ष समाप्त हो जाने पर माँ दुर्गा की मूर्ति का विसर्जन सरोवर, नदी या कूप में किया जाता है, ठीक उसी प्रकार इन प्रतीक पुतलों का भी विसर्जन सरोवर या नदी कूप में किया जाता है। ऐसा लेखक का विश्वास है कि समाज की समृद्धि, शांति, प्रगति एवं कल्याण के लिए इन गीतों का सुनना, सुनाना लोगों के लिए हितकर है। इन गीतों के सुनने-सुनाने से इस क्षेत्र के लोगों में प्रेम-सौहार्द, पारस्परिक मेल-जोल आदि की भावना देखने को मिलती है। ये गीत इस क्षेत्र के लोगों की भावना का आदर्श रूप माने जाते हैं, क्योंकि इसके माध्यम से जनमानस में प्रेम, स्नेह, लगाव, भाई-चारे आदि सामाजिक संबंधों का विकास होता है।

साँझी गीत के अंतर्गत जाहरवीर बाबा की पौराणिक कथा को भी सुनाया जाता है। सर्वप्रथम साँझी गाने वाला व्यक्ति मंगलाचरण करता है। इसके बाद माँ सरस्वती की वंदना करता है—

मैया जल्दी आओ, न पल भर विलम लगाओ।
मैंने तोसे आस लगाई
आकर ज्ञान बता दे, मुझको मेरी भगवती माई।

वंदना के बाद साँझी गानेवाला व्यक्ति गीत के माध्यम से ही कथा प्रारंभ करता है—
कर कृपा सुनिए सभी, भाई, बहन श्रीमान्
सुने होएँगे आपने, जाहर जी चौहान
जाहर जी चौहान जिनको व्याही सिरियल रानी थी
राजस्थान जिला चुरु में ददरेबा राजधानी थी
पिता जेबर रनधरिमां बाछल पटरानी थी
बाबा उम्मर बुआ छबीली, मौसी आछल रानी थी।

जाहरवीर की शादी राजस्थान के चुरु जिले के सिरियल रानी के साथ हुई। इनके पिता राजा जेबर एवं माँ रानी बाछल थी। इनके बाबा का नाम उम्मर और बुआ छबीली और मौसी रानी आछल थी।

एक दिन प्रातः काल का समय था। राजा जेबर अपने घर के ड्योढ़ी पर बैठे थे। उसी समय एक दुष्ट नारी यह कहने लगी कि यदि निरवंशी का मुख सुबह-सुबह दिखाई पड़ जाए, तो दिवस कटना भारी हो जाता है और उस दिन कहीं-न-कहीं अपमान का सामना करना पड़ता है—

जब ऐसी बानी सुनी हुए दुखी अपार।
महलों में करने लगे ऐसे सोच विचार।
दुष्ट महिला की वाणी सुनकर राजा जेबर बहुत दुखी हुए और सोच-विचार करने लगे—
एक जोगी आया महल जेबर जी के पास
हाथ देख कहने लगा सुन राजा मेरी बात
राजन चिंता छोड़िए, धर दिल अपने धीर
युक्ति तुझे बताऊँगा, होगा तेरे वीर।

इसी समय राजा जेबर के महल में एक जोगी आया और राजा जेबर का हाथ देखकर कहने लगा कि राजा मेरी बात ध्यान से सुनिए और चिंता करना छोड़ दीजिए। मैं एक उपाय बताऊँगा, जिससे आपको पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी—

कुँआ राजन खुदवादो। बाग अच्छा लगवादो।
मंदिर देऊ बनवाय।
प्यारु बैठ जा कुँएँ पर, सबको जल मिल जाए।

हे राजन, आप कुँएँ का निर्माण कराओ, अच्छा बाग लगवाओ, एक मंदिर बनवाओ और कुँएँ पर पानी पिलानेवाला बैठाओ, जिससे हर प्यासे व्यक्ति को जल मिल जाए। जोगी की बात सुनकर राजा जेबर ने माली को बुलाकर कहा कि हे माली, तुम जितनी जल्दी हो सके, उतनी जल्दी एक अच्छे बाग एवं कुँएँ का निर्माण करवाओ और कुँएँ पर पानी पिलाने वाले को बैठा दो तथा मंदिर का निर्माण भी करवा दो। बाग, कुँआँ एवं मंदिर का निर्माण हो जाने पर राजा ने रानी एवं कुलपुरोहित के साथ जैसे ही बाग के अंदर प्रवेश किया, वैसे संपूर्ण बाग सूख गया और कुँएँ का पानी भी खारा हो गया। यह देखकर राजा जेबर बहुत दुखी हुआ और वापस महल में लौट आया है। उसी समय महल के अंदर एक ज्योतिषी आया और कहने लगा कि हे रानी, चाहे संपूर्ण बाग उजड़ जाए, परंतु एक भी लकड़ी बाग से मत कटवाना। तुम गोरखनाथ की

सेवा करो, यदि वे प्रसन्न हो गए तो अनहोनी को होनी में बदल देंगे। तुम्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी और तुम्हारा बाग भी हरा-भरा हो जाएगा।

ज्योतिषी की बात मानकर रानी बाछल प्रतिदिन बाबा गोरखनाथ का ध्यान एवं पूजापाठ करने लगी। रानी की सेवा से बाबा गोरखनाथ प्रसन्न हो जाते हैं और औघड़नाथ से कहते हैं कि आप समस्त चेलों के साथ रानी बाछल के बाग में जाइए और धूनी रमाइए एवं रानी के सारे कष्ट दूर करिए। औघड़नाथ अपने चौदह सौ चेलों के साथ बाग में पहुँच जाते हैं। उन सबके पहुँचने से ही बाग हरा-भरा हो जाता है और कुएँ का पानी मीठा हो जाता है। यह सारी बातें एक सेविका महल में आकर रानी बाछल को बताती है, तो रानी को विश्वास नहीं होता है। रानी बाग को देखने के लिए तैयार होने लगी। तभी एक बुढ़िया, रानी को समझाते हुए कहने लगी—

ऐ रानी बाछल मेरी सुनले कान लगाय
धूने पर तुम पहुँचकर दीजो शीश नवाय

रानी बाछल बुढ़िया की बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुई और मन-ही-मन विचार करने लगी कि यदि मैं उनकी सच्ची भक्त हूँ, तो बाबा गोरखनाथ मुझे मेरे घर आकर दर्शन देंगे। मैं तो राजपुत्री हूँ, मुझे बाग में जाने का जरूरत नहीं है। रानी की इस बात पर बुढ़िया कहने लगी कि जोगी तुम्हारे नौकर नहीं है, जो तुम्हारे घर आएँगे। वे तो भिक्षा का भोजन करते हैं, लेकिन मैं तुम्हें एक उपाय बताती हूँ—तुम नगर में कहला दो कि कोई भी व्यक्ति जोगी को भिक्षा न दे, यदि कोई ऐसा करता है, तो उसे कोल्हू में पेरा जाएगा—

गोरख को लागी छुधा, औघड़ लिया बुलाय
पास बिठाकर फिर उसे, कहन लगे समझाय
भूख लगी बेटा मुझे, सुनले कान लगाय
भूखे भजन न होत है, खुददया रही सताय।

इधर बाबा गोरखनाथ ने एक औघड़ को पास बुलाकर कहा कि तुम नगर से भिक्षा माँगकर ले आओ। मुझे बहुत तेज भूख लगी है, लेकिन भिक्षा लेने से पहले पात्र-कुपात्र और अच्छे-बुरे का ध्यान रखना। पुत्रवती महिला से ही भिक्षा लेना, बाँझ से नहीं। इस पर औघड़ ने कहा, इसकी पहचान हम कैसे करेंगे? तब बाबा गोरखनाथ ने कहा कि मैं तुम्हें एक विद्या का पात्र देता हूँ—

ये विद्या का पात्र है, हूँ तुझको समझाय
कितनाउँ डाले बाँझ पात्र न भरने पाय।

जोगी भिक्षा लेने के लिए नगर को निकल पड़ता है, लेकिन रानी के आदेशानुसार उसे कोई भी भिक्षा नहीं देता। तब साधु कहता है—

भूखा नंगा नगर मैं देखा ऐसा नाय
जहाँ भिक्षा में अन्न तक पाए साधु नाय।

जोगी की बात सुनकर बुढ़िया ने उसे भिक्षा न मिलने के विषय में बताया कि रानी का आदेश है कि सबसे पहले भिक्षा राजमहल से मिलेगी। यह बात सुनकर जोगी बाछल रानी के घर पहुँच जाता है। वहाँ रानी की सेविका ने बाबा को प्रणाम करके कहा कि जल्दी झोली खोलिए और भिक्षा लीजिए। भिक्षास्वरूप आपको बहुमूल्य पदार्थ मणि-माणिक दे रही हूँ।

जीवनभर इससे भोजन करना। इस बात को सुनकर जोगी को बहुत क्रोध आ गया और तब औघड़नाथ ने बाबा गोरखनाथ का सुमिरन करके झोली का कोना पकड़कर झटक दिया। देखते-ही-देखते झोली से मन, लाल, पुखराज और हीरे-पत्तों का ढेर लग गया। इस पर सेविका औघड़ के चरणों पर गिर गई और कहने लगी, 'हे प्रभु मुझे माफ करना।'

सेविका यह सारी बात रानी को बताती और रानी बाछल आकर औघड़ के पैरों में पड़ती है, लेकिन औघड़ पीछे हट जाता है। वह कहता है—हम तो पुत्रवती माता से ही भिक्षा लेंगे। गोरखनाथ जी का ऐसा ही आदेश है। तब रानी ने अपनी सारी बात जोगी को बताई और कहा कि मैं तो जन्म से निपूती रही हूँ। मेरा जन्म व्यर्थ हो गया है। मुझे लोग हीन-दृष्टि से देखते हैं। इस पर औघड़नाथ कहने लगे कि बाबा गोरख की कृपा से तुझे पुत्र मिलेगा। वे अनहोनी को होनी करते हैं। औघड़ की बात सुनकर रानी बाछल बाग में पहुँच जाती है। गोरख बाबा ने रानी बाछल से पूछा कि बाग में आने का कष्ट क्यों किया? तब औघड़ ने गोरखा जी को बताया कि रानी बहुत दुखी हैं, इन्हें कोई संतान नहीं है। आप इन्हें पुत्र-प्राप्ति का आशीर्वाद दीजिए। गोरखनाथ ने रानी बाछल से कहा कि आपकी सेवा से हम बहुत खुश हैं। आप अपने महल से भोजन बनाकर ले आओ, ईश्वर ने चाहा तो आपको पुत्र प्राप्त होगा। इस बात की जानकारी रानी बाछल की बहन आछल को हुई, तो वह अपनी बहन से पूजा के बहाने कपड़े माँगकर स्वयं भोजन तैयार करके बाग में बाबा गोरखनाथ के पास पहुँच गई। बाबा गोरखनाथ ने उसे आशीर्वाद दिया कि तुम्हें दो पुत्रों की प्राप्ति होगी। फिर सभी जोगी वहाँ से अपना डेरा उखाड़कर चल दिए। जब रानी बाछल भोजन लेकर बाग में पहुँची, तो वहाँ पर कोई साधु दिखाई नहीं पड़ा। उन्हें मालूम हुआ कि मेरी बहन आछल ने मुझसे कपड़े माँगकर धोखे से वरदान प्राप्त कर लिया है और हमारे साथ विश्वासघात किया है।

रानी बाछल किसी तरह बाबा गोरख के पास पहुँची और सारी बात बताई। गोरख जी के आशीर्वाद स्वरूप रानी बाछल की कोख में पुत्र आ गया। यह बात सुनकर रानी की नंद छबीली ने अपने पिता उम्मर से सारी बात बताई और कहा कि यह जोगियों के बीच रहती है, इसने तो राजा जेबर का नाम डुबो दिया और कुल की इज्जत को धूल में मिला दिया। इसे तो घर से निकाल दीजिए। पिता उम्मर ने छबीली की बात सुनकर रानी बाछल को घर से निकाल दिया। इस प्रकार रानी ने बहुत कष्ट सहते हुए पुत्र को जन्म दिया। रानी बाछल का वह पुत्र यशस्वी एवं पराक्रमी था। उसने अपनी मौसी आछल के लड़कों से संघर्ष करते हुए दिल्ली के शहंशाह को परास्त कर विजय की पताया लहराई।

इस प्रकार की कथाएँ साँझी लोकगीतों का मुख्य आधार मानी जाती हैं और भारतीय समाज में इनको बड़े विश्वास के सुना और गाया जाता है।

84, लोको कालोनी
खुरजा जंकशन (बुलंदशहर)
09456622417

वैदिक संस्कृति का केंद्र स्थल : हरियाणा

डॉ० एस०के० आत्रेय, प्राचार्य

भारत के उत्तर पश्चिम में स्थित हरियाणा एक छोटा-सा प्रांत है, लेकिन छोटा होते हुए भी देश में इसका अति विशिष्ट योगदान है। इस प्रांत की स्थापना 01 नवंबर 1966 को हुई। इससे पूर्व यह हिंदीभाषी प्रदेश, पंजाब का ही एक हिस्सा था। अपनी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक धरोहर के कारण हरियाणा का अस्तित्व प्राचीनकाल से ही मान्य रहा है।

मनु के अनुसार इस प्रदेश का अस्तित्व देवताओं से हुआ था, शायद इसलिए ही इसे 'ब्रह्मवर्त' की संज्ञा मिली। हरियाणा के नामकरण संबंधी भिन्न-भिन्न धारणाएँ व मत प्रचलित हैं—कुरू, जांगला, श्रीकंठ, हरियाल, हरियाला आदि। यह समस्या चौदहवीं शती तक रही तत्पश्चात् सही 'हरियाणा' ही प्रयोग में आने लगा।

वर्तमान हरियाणा राज्य की पूर्वी सीमा का निर्धारण यमुना नदी करती है, तो पश्चिम में पंजाब और राजस्थान उत्तर दिशा में पंजाब का थोड़ा भाग और हिमाचल प्रदेश एवं शिवालिक की खूबसूरत, सुंदर पहाड़ियाँ। दक्षिण की सीमाओं का निर्धारण राजस्थान राज्य का खूबसूरत मरुस्थल और अरावली की पहाड़ियाँ करती हैं। लगभग डेढ़ करोड़ जनसंख्या वाला यह प्रांत भारतीय संस्कृति का मूलकेंद्र है। पुरातत्त्ववेत्ताओं के अनुसार अद्यैतिहासकालीन प्राग्हड़प्पा, हड़प्पा, परवर्ती हड़प्पा एवं चित्रित-धूसर मृदभांड संस्कृतियों के विशद प्रमाण हरियाणा के दौलतपुर, सीसवाल, मिर्जापुर, कुमाल और भगवानपुरा आदि स्थानों के उत्खननों से प्राप्त हुए हैं। इन स्थानों से प्राप्त स्थापत्यसंबंधी अवशेषों, ताम्रनिर्मित वस्तुओं, आभूषणों तथा दैनिक जीवन से संबंधित वस्तुओं से हरियाणा की इन कालों की संस्कृति एवं भौतिक समृद्धि का आभास मिलता है। इन प्रमाणों से जानकारी मिलती है कि परवर्ती हड़प्पा संस्कृति के लोग कच्ची ईंटों के मकानों में रहते थे। इनके आभूषण बहुमूल्य पत्थरों और पक्की मिट्टी से बने होते थे। वे अपने अस्त्र-शस्त्र व दैनिक उपयोग की वस्तुएँ ताँबे की बनाते थे। उत्खनन से विदित हुआ है कि इस संस्कृति के लोग पहले अर्ध-चंद्राकार झोंपड़ियों में रहते थे फिर मिट्टी के मकान बनाए गए और उसके पश्चात् पक्की मिट्टी के मकान बनाए जाने लगे। हरियाणा में समय-समय पर खुदाई से जो प्रमाण उपलब्ध हुए हैं, वे यहाँ के निवासियों की विभिन्न कालों की सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं कलात्मक गतिविधियों व अभिरुचियों के परिचायक हैं।

खोकराकोट, सोनीपत, हाँसी, जींद, सिरसा, हिसार, गुड़गाँव और करनाल आदि स्थानों से मिले सिक्कों से इतिहासकालीन यौधेय गणतंत्र की जानकारी मिलती है। अनुमान लगाया जा सकता है कि यहाँ ई०पू० द्वितीय से ईसा की चतुर्थ शती के मध्य तक यौधेयों का शासन रहा हो। यौद्ध स्वतंत्रता, अदम्य-साहस और शौर्य के प्रतीक थे। इन्होंने गणतंत्रीय-व्यवस्था की स्थापना

की। नागों और कुषाणों को इन्होंने भारी क्षति पहुँचाई। यौधेयों के पश्चात् हरियाणा में गुप्त वंश के भी कुछ प्रमाण मिले हैं। हूणों के आक्रमण की धूल से भी यह प्रांत प्रभावित रहा है।

छठी शती में स्थाण्वीश्वर (थानेसर) में पुष्पभूति वंश का शासन रहा। हर्षवर्धन इसी वंश का एक महाप्रतापी राजा था, जिसका शासनकाल इस वंश की शक्ति, समृद्धि का चरमोत्कर्ष था। हर्ष के राज्यकाल में राजधानी को थानेसर से बदलकर कन्नौज ले जाया गया तथापि इस क्षेत्र का सांस्कृतिक महत्त्व ज्यों-का-त्यों बना रहा।

इसके पश्चात् प्राप्त साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि यह प्रदेश गुर्जर प्रतिहारों के अधीन था। इस वंश के दो प्रतापी सम्राटों भोज एवं महेंद्रपाल के अभिलेख पिहोवा से प्राप्त हुए हैं। 11वीं-12वीं शती में यहाँ क्रमशः तोमर और चौहानों का आधिपत्य रहा। इसी काल में यवन आक्रमणकारियों ने अपनी शक्ति को आजमाया, लेकिन हरियाणा के वीरों ने साहसपूर्वक उनका सामना किया। 12वीं शती में दिल्ली यवनों के कब्जे में आ गई। फिर यह क्षेत्र (हरियाणा) भी यवनों के अधीन हो गया। यवनों के पश्चात् यहाँ मुगलों ने शासन किया। दिल्ली और लाहौर के मध्य स्थित होने के कारण इस प्रदेश को बहुत से निर्णायक युद्धों का साक्षी रहना पड़ा। नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के अत्याचारों को भी अपनी छाती पर झेलना पड़ा। सन् 1850 में हरियाणा अँग्रेजों के अधिकार क्षेत्र में चला गया, लेकिन स्वतंत्रता की लौ यहाँ के निवासियों के हृदय में निरंतर प्रज्वलित हो रही और स्वतंत्रता-संग्राम में बढ़-चढ़कर भाग लिया। उनके महत्त्वपूर्ण बलिदानों के बल पर आज हम स्वतंत्रता का सुख भोग रहे हैं।

हरियाणा का वैदिक संस्कृति का केंद्रस्थल को माना जाता है। भारतीय संस्कृति का आदि स्रोत ऋग्वेद है। यह प्रमाणित हो चुका है कि भागवत, वामन और मार्कण्डेय आदि अनेक पुराणों का प्रणयन यहीं हुआ।

हरियाणा में वैदिक संस्कृति के प्रवर्तक अनेक ऋषि-मुनियों के आश्रम थे, जिनमें महर्षि विशिष्ट एवं महर्षि विश्वामित्र, च्यवन, भृगु, दुर्वासा एवं कपिल मुख्य हैं, जो अपने त्याग एवं तपस्या, चिंतन एवं मनन तथा ज्ञान साधना से वैदिक संस्कृति के उन्नयन एवं प्रसार में संलग्न थे। इन्हीं ऋषियों, महात्माओं ने मानव धर्म का प्रवर्तन और विकास किया।

हरियाणा की इस प्राचीन सांस्कृतिक संपदा एवं पवित्रता का प्रतीक है—‘कुरुक्षेत्र’। भारत के पवित्रतम तीर्थों में कुरुक्षेत्र का स्थान प्रथम-पंक्ति में आता है। कुरुक्षेत्र एक स्थान मात्र नहीं है, वरन् अपने भौगोलिक स्वरूप में हरियाणा प्रदेश का पर्यायवाची है। अनेक प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में कुरुओं का उल्लेख मिलता है। उन्हीं के नाम पर इस प्रदेश का नाम कुरुक्षेत्र पड़ा था। भारतीय संस्कृति के अभ्युदय और विकास में ‘धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र’ का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वैदिककाल में यज्ञों के अनुष्ठान एवं ऋचाओं के गान से यहाँ का वायुमंडल पवित्र रहता था। वामन पुराण के अनुसार राजा कुरु ने यहाँ, तप, संयम, सत्य, दया, पवित्रता, दान, योग आदि आठ प्रकार के बीज बोए थे, जो इस क्षेत्र की आध्यात्मिक धरोहर हैं। ‘महाभारत’ में भी कुरुक्षेत्र को सर्वोत्तम तीर्थ बताया गया है।

कुरुक्षेत्र को मात्र एक तीर्थ मानना उचित प्रतीत नहीं होता। यह तो अदितिवन, सोमतीर्थ, कपलियक्ष, श्रीतीर्थ, सूर्यतीर्थ, कोटितीर्थ, पुंडरीक, ब्रह्मासरोवर, कपालमोचन, विश्वामित्रतीर्थ, तीर्थों का समुच्चय है। सत्य एवं असत्य तथा धर्म एवं अधर्म का निर्णायक युद्ध ‘महाभारत’ भी

इस धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्र में हुआ था। यहीं भगवान श्रीकृष्ण ने कर्मयोग एवं भक्ति के समन्वय, सुख-दुःख, हानि-लाभ, अहंकार, काम, क्रोध आदि से मुक्त होकर स्थितिप्रज्ञ होने, परमात्मा के प्रति सर्वभावेन समर्पित होकर निष्काम कर्म एवं कर्तव्य-पालन करते हुए लोक-कल्याण करने का अमर संदेश मानवता को दिया था।

हरियाणा प्रदेश के विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुई मूर्तियों से भी इस प्रदेश की प्राचीन संस्कृति एवं धर्म के स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। इन मूर्तियों एवं मंदिरों के प्रस्तर-खंडों से आभास मिलता है कि हरियाणा में चौथी-पाँचवी शताब्दी में शिव की उपासना की जाती थी, जो आज भी पूरी श्रद्धा एवं भक्ति के साथ प्रचलित है। शिवपुत्र कार्तिकेय का एकमात्र मंदिर इसी प्रदेश के जनपद पेहोवा में है। आज भी हरियाणा के गाँव-गाँव में शिवालय मिलेंगे और घंटियों की मधुर ताल पर बम-बम-बम भोलेनाथ, बम-बम भोलेनाथ सदाशिव गाते हुए शिवभक्त जंगम हरियाणा के कस्बों और गाँवों में अभी भी देखे जा सकते हैं। बहुत से विद्वानों का मत है कि 'हर' अर्थात् शिव का उपासना-क्षेत्र होने के कारण ही इस प्रदेश का नाम हरियाणा पड़ा।

बौद्ध धर्म के अवशेष भी हरियाणा में मिले हैं। ऐसी भी मान्यता है कि भगवान बुद्ध भी हरियाणा प्रदेश में पधारे थे। कुछ ही वर्ष पूर्व स्थानेश्वर सरोवर पर एक बौद्धस्तूप मिला है, जो जहाँ के बौद्धमत के प्रभाव का परिचायक है। कुरुक्षेत्र के उत्तर में एक प्राचीन शक्तिपीठ है, जिसे सिद्धपीठ माना जाता है इससे इस क्षेत्र में शक्तिमत के प्रभाव का पता चलता है।

हरियाणा का मध्यकालीन सांस्कृतिक परिदृश्य भी ऐतिहासिक महत्त्व का है। पिंजौर में हरिहर शिव, उमा, अग्नि एवं विद्याधर की, जींद में विष्णु की, पिहोवा में गणेश तथा ब्रह्मा की, रोहतक में याक्षिणी की, झज्जर में मतस्य, कच्छप, वराह, परशुराम एवं सभी अवतारों की तथा अस्थल बोहर में पार्श्वनाथ की जो मूर्तियाँ मिली हैं, उनमें स्पष्ट है कि भागवत तथा अन्य धार्मिक संप्रदायों का यहाँ काफी प्रभाव था। सिद्धों, नाथों, संतों, सूफियों का भी हरियाणा प्रचार-केंद्र रहा है।

रोहतक के निकट अस्थल-बेहतर का मठ नाथों का प्रमुख साधना-केंद्र रहा है। कुरुक्षेत्र के भौरव के प्राचीन 'सिद्ध-पीठ' की भी बहुत मान्यता है। शेख, फरीद, शेख चेहली जैसे सुप्रसिद्ध सूफी फकीरों ने भी यहाँ के सांस्कृतिक जीवन को कम प्रभावित नहीं किया। हांसी, हिसार, पानीपत, करनाल, कुरुक्षेत्र, कैथल सूफियों के मुख्य साधना-केंद्र रहे हैं। गुरुनानक, गुरुहरगोविंद, गुरुगोविंदसिंह आदि अनेक गुरुओं ने भी हरियाणा की धरती को पवित्र किया है और उनका प्रभाव सर्वत्र परिलक्षित होता है। वस्तुतः इस प्रदेश के निवासी उदार, सहिष्णु व समन्वयवादी हैं। यहाँ अनेक धर्मों, मतों व संप्रदायों का प्रचलन रहा है।

वस्तुतः क्षेत्रफल तथा जनसंख्या की दृष्टि से काफी छोटा होते हुए भी हरियाणा का भारतीय इतिहास एवं संस्कृति में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। अपनी इन्हीं सांस्कृतिक विशेषताओं के कारण इसे वैदिक संस्कृति का केंद्रस्थल समझा जाने लगा है।

श्री कपिल मुनि महिला कॉलेज
कलायत (कैथल), हरियाणा
मो० 9813104027

प्रवासी महाकवि हरिशंकर आदेश

विजेता रानी शोध छात्रा

डॉ० बाबूराम (डी०लिट्०) शोध-निर्देशक

प्रोफेसर, हिंदी-विभाग

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

साहित्य में रुचि रखनेवाले किसी भी व्यक्ति के लिए आदेश जी का नाम नया नहीं है पिछले कई वर्षों से विदेशों में हिंदी भाषा-साहित्य व संगीत का प्रचार-प्रसार करने में कार्यरत हैं। भारतीय संस्कृति व हिंदी भाषा की जड़ों को विदेशी धरा पर फैलाने में इन्होंने अपना बहुत बड़ा योगदान दिया है। आदेश जी के अथक् परिश्रम व दृढ़ निष्ठा का ही परिणाम है कि आज कैनेडा, अमेरिका व ट्रिनिडाड तथा अन्य देशों में हिंदी फल-फूल रही है। आदेश जी की प्रेरणास्वरूप आज कितने ही प्रवासी कवि तथा लेखक सुंदर रचनाएँ एवं लेख प्रस्तुत कर रहे हैं। इनके आचरण, स्वभाव एवं गंभीर ज्ञान के कारण ही ये बहुत सम्मान पाते हैं। श्रद्धा भक्ति व महान आदर के कारण इन्हें गुरु जी कहा जाता है। इन्होंने विदेशों में 'आदेश आश्रम' भी स्थापित किए हैं।

बहुआयामी काव्य-प्रतिमा के धनी आदेश जी ने हिंदी साहित्य को अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इन्होंने गद्य व पद्य में असाधारण सृजन किया है। आदेश जी एक कवि, गीतकार, मुक्तक-रचनाकार, निबंधकार, कथाकार, प्रबंधकार, संस्मरण लेखक, पत्र-लेखक, समीक्षक, अनुवादक, संपादक आदि के रूप में पूरे विश्व में प्रसिद्ध हैं। इन्होंने हिंदी, उर्दू व अँग्रेजी भाषाओं में अपना लेखन किया है। आदेश जी की साहित्य, संस्कृति, संगीत व दर्शन से संबंधित तीन सौ से अधिक रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं, जिन्हें पढ़कर सुखद अनुभूति होती है। साहित्य की लगभग सभी विधाओं, यथा-कविता, गीत, दोहा, मुक्तक, महाकाव्य, खंडकाव्य, बालकाव्य, उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, पत्र आदि में रचित विपुल और विशिष्ट साहित्य आदेश जी की प्रतिभा का लोहा मनवाता है और भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति के प्रति उनकी अनन्य निष्ठा को भी प्रकट करता है।

सहृदय कवि किसी भी देश में क्यों न हो, अपने देश को नहीं भूल सकता। आदेश जी को भी विदेश में रहकर अपने भारत देश की बड़ी याद आती है। वे कहते हैं—

तन रहते हैं भले यहाँ, पर प्राण वहीं रहता है।

हम लेते हैं साँस यहाँ, पर ध्यान वहीं रहता है।

रक्त धमनियों में बहता है भाव तुम्हारा लेकर।

जाति-राष्ट्र-संस्कृति की माँ! अभिमान वहीं रहता है।¹

कविवर आदेश जी सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् की स्थापना के द्वारा राष्ट्रनिर्माण, सद्भाव व लोककल्याण के संकल्प का वर्णन करते हैं—

कल्पनाएँ सत्य हो शुभ कामनाएँ पूर्ण हों
प्रिय न जग नैष्ठुर्य से सद्भानाएँ चूर्ण हों।²

आदेश जी 'विश्वकवि' माने जाते हैं। इनको अपने देश से प्रेम है, परंतु संपूर्ण सृष्टि के कल्याण की मंगलकामना भी करते हैं—

हर प्राणी में आत्मभाव हो,
आत्मीयतामय स्वभाव हो।
नैतिकता की हिलें न नीवें,
पुनः प्रबल दैवी प्रभाव हो!
रोगों का निदान हो समूल,
प्राणों को मृत्युंजय कर दे।³

आदेश जी मानवतावाद के साथ-साथ मानवीय मूल्यबोध के नवीन आयामों की स्थापना पर भी बल देते हैं—

हो न सुख में दर्प, दुःख में
हृदय नहीं अधीर हो।⁴

आदेश जी को अपनी सभ्यता, संस्कृति व मातृभाषा के प्रति अटूट प्रेम है। वे कहते हैं—

अंग्रेजी के बीहड़ घने-घने जंगलों में,
कल्पलता हिंदी की पौधों लगाता हूँ।
अमेरिकी संस्कृति के भीषण प्रभंजन में,
भारतीय संस्कृति के दीपक जलाता हूँ।⁵

आदेश जी मानते हैं कि इंसान को भाग्यवादी नहीं होना चाहिए, क्योंकि केवल भाग्य के भरोसे बैठे रहने से व्यक्ति अपनी मंजिल कभी प्राप्त नहीं कर सकता। उसे अपनी मेहनत पर विश्वास होना चाहिए। व्यक्ति को कर्मशील बनना चाहिए—

रामभरोसे जा रहे, करें परंतु न कर्म,
लक्ष्य न मिलता, जो करे, पालन कभी न धर्म।⁶

विद्या व्यक्ति का जीवन सँवारती है, उसे सुसभ्य व सुसंस्कृत बनाती है और विद्यावान व्यक्ति ही संसार का सबसे धनी व्यक्ति होता है, परंतु जो विद्या जनहित व समाज का कल्याण न करें वह विद्या किसी काम की नहीं—

जो विद्या देती न यश, धन संपत्ति सम्मान।
जिससे हो जनहित नहीं, उसे विद्या न जान।⁷

एक ओर—

जो विद्या करती नहीं सामाजिक कल्याण।
उसे न कभी सराहिए, जो हर लेती प्राण।⁸

आदेश जी ने प्रेम को बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना है। वे इस संपूर्ण सृष्टि की आधारशिला

प्रेम को मानते हैं, प्रेम ही परमात्मा का दूसरा रूप है और प्रेम ही शाश्वत सत्य है। प्रेम का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है—

प्रेमनगर का पथिक हूँ, प्रेम धर्म है मेरा,
प्रेम भावना, प्रेम साधना, प्रेम कर्म है मेरा,
प्रेम देश है, प्रेम अर्चना, प्रेम वर्ग है मेरा,
मात्र प्रेम के, आज माँगता, अन्य उपहार न कोई।⁹

कवि का मानना है कि आज पूरे विश्व में जातिवाद, संप्रदायवाद, अवसरवादिता, स्वार्थपरता, क्षेत्रीयता, अराजकता आदि सामाजिक विसंगतियाँ फैली हुई हैं, जो मानवता के विनाश की कारक हैं। कवि इन्हीं विसंगतियों का वर्णन अपनी रचना 'सेतु बने रामायण' में करते हैं—

जातिवाद ने, प्रांतवाद ने, भाषा ने बाँटा है,
वर्णभेद के विषधर ने मानव-मन को काटा है।
बिखर रहा है विश्व गुटों में, धर्म हुआ है विस्मृत।
आहत मानवता के गृह में छाया सन्नाटा है।¹⁰

कवि का मन इन सामाजिक विसंगतियों को देखकर आहत होता है, परंतु आदेश जी आशावादी विचारधारा से प्रेरित है, वे जानते हैं कि एक दिन नया सवेरा अवश्य होगा—

जानता हूँ एक दिन फिर आएगा निर्मल सवेरा,
दूर होगा प्राण जग से, यह निराशा का अंधेरा,
आज अंतर में नए विश्वास जाग रहे हैं।¹¹

निःसंदेह हरिशंकर आदेश जी आधुनिकयुग में महान प्रवासी साहित्यकारों में सर्वोच्च स्थान के अधिकारी हैं। उन्होंने भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति भाषा व संगीत का परचम विदेशी धरा पर लहराया है। वे मानवीय मूल्यों के रचनाकार हैं। वसुधैव कुटुंबकम का भाव इनकी रचनाओं में है। इन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं पर लिखकर हिंदी के साहित्य कोष में वृद्धि की है। इन्होंने समाज को एक नई दिशा दी है।

संदर्भ

1. प्रो० हरिशंकर आदेश, प्रवासी की पाती भारत माता के नाम, पृ० 110
2. प्रो० हरिशंकर आदेश, आहत आकांक्षाएँ, पृ० 26
3. प्रो० हरिशंकर आदेश, शताब्दी के स्वर, पृ० 3
4. प्रो० हरिशंकर आदेश, आहत आकांक्षाएँ, पृ० 25
5. प्रो० हरिशंकर आदेश, आहत आकांक्षाएँ, पृ० 12
6. प्रो० हरिशंकर आदेश, सुरभि सप्तशती, दो० सं० 296
7. प्रो० हरिशंकर आदेश, सुरभि सप्तशती, दो० सं० 529
8. प्रो० हरिशंकर आदेश, सुरभि सप्तशती, दो० सं० 530
9. प्रो० हरिशंकर आदेश, जीवन नाटक, पृ० 23
10. प्रो० हरिशंकर आदेश, सेतु बने रामायण, पृ० 44
11. प्रो० हरिशंकर आदेश, आहत आकांक्षाएँ, पृ० 73

सूफीमत और हिंदी साहित्य

कविता मीणा

व्याख्याता, हिंदी

जा.दे.ब. राज० कन्या महाविद्यालय, कोटा

मध्ययुग की कठोर सामंतवादी व्यवस्था एवं हिंदू-मुस्लिम संस्कृति के समन्वय के सार्थक प्रयास के रूप में एक ऐसे दर्शन, चिन्तन एवं अवधारणा का आगमन हिंदी साहित्य में हुआ, जिसने पावन एवं निर्मल आध्यात्मिक प्रेम द्वारा न केवल ईश्वर को प्राप्त करने का प्रयास किया, अपितु तत्कालीन कट्टर सामंती व्यवस्था में प्रेम-भावना का प्रसार भी किया। शंकर के अद्वैतवाद तथा विशिष्टाद्वैतवाद एवं इस्लाम के एकेश्वरवाद से प्रभावित सूफीदर्शन केवल ईश्वरीय अवधारणा से जुड़ा हुआ नहीं था। सूफी ऐसे उदार दृष्टिकोण अपनाने वाले संत थे, जिन्होंने प्रेम कहानियों के माध्यम से ईश्वरप्रेम के साथ-साथ मानवप्रेम का संदेश दिया। जाति से मुसलमान (अधिकांशतः) इन सूफियों ने इस्लाम के कट्टरवादिता को न अपनाकर हिंदू लोकपक्ष एवं संस्कृति को अपनाया। 'सूफी साधक मूलतः वे मुसलमान थे, जिनकी आत्मा इस्लाम के कट्टर विधान में रहकर उस आनंद से वंचित रहती थी, जिसे प्रेम की उन्मत्तता के द्वारा ही अनुभव किया जा सकता है। इस्लाम ने ईश्वर के जिस भयावह रूप को प्रस्तुत किया है, वह भी साधक की अंतरात्मा में अंकुरित सहज प्रेम पर अंकुश लगा रहा था। परिणामस्वरूप उसे दूसरे धर्मों की बातें रुचिकर प्रतीत होती थीं, जिनके द्वारा ईश्वर के साथ व्यक्तिगत रागात्मक संबंध स्थापित किया जा सकता था। अतः इन मुसलमान साधकों ने विभिन्न धर्मों से प्रभाव ग्रहण ईशप्राप्ति को नितांत वैयक्तिक अनुभव बना लिया।' सूफी संतों ने प्रेम जैसे वैयक्तिक मूल्य की स्वतंत्रता को स्थापित कर इस्लाम की कट्टरवादिता के विरुद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त की। मजहबी दस्तूर को मानवीय दृष्टि से देखकर इन सूफी साधकों ने प्रेम व सौहार्द के संदेश द्वारा परस्पर विरोधी संस्कृतियों को एकता के सूत्र में बाँधने का स्तुत्य प्रयास किया। मध्यकालीन सामंती सोच एवं जनवादी चेतना की वैचारिक टकराव को सूफीमत की उदार चिंतनधारा ने समन्वयात्मक दृष्टिकोण द्वारा सामाजिक सहिष्णुता से जोड़ने का कार्य किया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'जायसी ग्रंथावली' में कहा है—'अपनी कहानियों द्वारा इन्होंने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए उन सामान्य जीवन-दशाओं को सामने रखा, जिनका मनुष्य-मात्र के हृदय पर एक-सा प्रभाव दिखाई पड़ता है। हिंदू हृदय और मुसलमान हृदय को आमने-सामने करके अजनबीपन मिटानेवालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा।'² ऊनी (सूफ़) वस्त्र का चोगा पहनकर भक्ति करनेवाले इन सूफियों का मत था कि खुदा अर्थात् ईश्वर एक है। आत्मा उसी परमतत्त्व का अंश है, लेकिन शैतान अर्थात् माया के कारण दोनों में

भेद की प्रतीति होती है। सद्गुरु के मार्गदर्शन, आध्यात्मिक प्रेम एवं कठोर साधना के चारों सोपान शरीरगत, तरीकत, हकीकत एवं मारिफत को पार करके ही उस नूर अर्थात् ज्योतिस्वरूप ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। अपने इन्हीं सिद्धांतों का प्रसार करने के लिए सूफियों ने लोकप्रचलित कथाओं को आधार बनाकर प्रेमाख्यानों की रचना की। 'सूफी प्रेमाख्यानों का उद्देश्य अपना लोकसंदेश लोकजीवन में प्रसारित करना था। अतः उन्होंने अपने काव्यों को भारतीय वातावरण में प्रस्तुत किया, लोकजीवन से उन्होंने कथाएँ लीं, परंपराएँ लीं, प्रवृत्तियाँ लीं, लोकमानस में उनके संदेश इन्हीं माध्यमों से प्रसार पा सकते थे।'¹³ हिंदी साहित्य के अंतर्गत ईश्वरोन्मुख अलौकिक सूफी प्रेमाख्यानों की एक लंबी परंपरा दिखाई देती है। अमीर खुसरो एवं नरपति नाल्ह (बीसलदेव रासो) जैसे रचनाकारों से शुरू हुई सूफीकाव्य-यात्रा का चरम स्वरूप भक्तिकाल में दिखलाई पड़ता है। प्रेमाश्रयी सूफीकाव्य धारा की प्रथम रचना (अधिकांश विद्वानों की सहमति) मुल्ला दाउद कृत 'चंदायन' में लोरिक एवं चंदा की प्रेम-कहानी की मार्मिकता के साथ-साथ आध्यात्मिक प्रेम का ऐसा उज्ज्वल स्वरूप दिखाई देता है, जो भावविभोर कर देता है। कुतुबन कृत, 'मृगावती' मंज़न कृत 'मधुमालती' भी सूफी-सिद्धांतों के पावन एवं निर्मल स्वरूप को उद्घाटित करती हैं। सूफी तत्त्वों के बेजोड़ संगम से युक्त जायसी कृत 'पदमावत' सूफी प्रेम काव्य का अनूठा ग्रंथ है। ईश्वर (पदमावती) के अलौकिक रूप का वर्णन 'रवि ससि नखत दीन्हीं ओहि जोति, रतन पदारथ मानक मोती'¹⁴ परमतत्त्व के प्रति विरहानुभूति (रत्नसेन में) एवं प्रिय मिलन की आकांक्षा का जैसा वर्णन जायसी ने किया, वह सूफियों की रुहानी भावना को प्रकट कर देता है। 'इश्क-हकीकी' की बात जाने भी दें तो लौकिक तथा मानवीय भूमि पर भी जायसी द्वारा चित्रित प्रेम किसी प्रकार के 'इश्क-हकीकी' से कम नहीं है, वह यहाँ भी प्रशांत, गंभीर, मन को भीतर तक शीतल करनेवाला, आदमी को कुंदन की तरह निखारकर पेश करनेवाला, सुख-दुख में सम तथा आत्मा की गहराइयों में उपजा निष्कलुष और अकुंठित प्रेम है।¹⁵ जायसी के अतिरिक्त उसमान कृत 'चित्रावली', शेखनवी कृत 'ज्ञानदीप', हुसैन अली कृत 'पुहुपावती', नूर मुहम्मद कृत 'इंद्रावती' और शेख निसार कृत 'युसुफ जुलेखा' इत्यादि सूफी प्रेमाख्यान परंपरा के ही ग्रंथ हैं। न केवल इन मुसलमान कवियों में अपितु निर्गुण संत कवि कबीर पर भी सूफी प्रभाव दिखाई देता है। कबीर की जीवात्मा में परमात्मा से मिलन की जो उत्कंठा एवं पीड़ा दिखाई देती है। 'नैना अंतरि आव तू, नैन झाँपि तोहि लेउँ। नाँ हौं देखौं और कूँ, ना तुझ देखन देउँ।'¹⁶ वह सूफीवाद ही है। इसी तरह मीरा का अलौकिक प्रियतम के प्रति प्रेम-निवेदन प्रेम की उदात्तता 'नैनन बनज बसाऊँ री जो मैं साहिब पाऊँ री। इन नयनन मेरा साहिब बसता डरती पलक न नाउँ री।'¹⁷ एवं ईशमिलन की कामना में सूफी स्वरूप का अनुकरण है। हिंदी साहित्य के अंतर्गत भक्तिकाल के उपरांत सूफी काव्यधारा में क्षीणता ज़रूर नज़र आती है परंतु आधुनिककाल में छायावाद के अंतर्गत इसका उन्नत स्वरूप फिर प्रकट होता है। जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, हरिवंशराय बच्चन के काव्य सूफी-पद्धति से प्रभावित नज़र आते हैं। 'उनकी रचनाओं में विद्यमान निराकार के प्रति प्रेम-पीड़ा, विरह-विकलता और मिलन की कामना हमें स्पष्ट बतला रही है कि वे सूफी-पद्धति से किसी-न-किसी प्रकार अत्यधिक प्रभावित हैं। इस काल में मधु भरे मधुकलशों के साथ मधुशालाओं में जो मधुपायी और मधुपायिता दिख पड़े बस सब उमर खैयाम, हाफिज़े शीराजी तथा अन्य ईरानी सूफियों का ही अनुकरण है।'¹⁸ छायावादी कवयित्री महादेवी का

सौंदर्य-संबंधी दृष्टिकोण बहुत-कुछ आध्यात्मिक है। आध्यात्मिकता एवं रहस्यात्मकता से युक्त उनकी सौंदर्य-चेतना में आत्मा की विशालता एवं सत्यता के दर्शन होते हैं। उनके गीतों में उमड़ती पीड़ा, करुणा, वेदना में सूफी तत्त्वों की झलक दिखलाई देती है। 'कवयित्री मृण्मय धरातल के ऊपर उठती हैं। उनके भावों की उदात्तता सीमातीत गरिमा तक पहुँचने में समर्थ होती है। महादेवी स्वयं कहती हैं कि कवि का सत्य मानवीय संवेगों का उदात्तीकरण ही है। यह उदात्तमूलक मूल्यवान भावना उसके लिए सुंदर है। उस उदात्तीकरण से मानव-संस्कृति का उत्कर्ष होता है और वही शिव है।'⁹ छायावादी कवि को सर्वत्र उसी व्यापक ब्रह्म की छटा दिखाई देती है, जैसे ब्रह्म की अनुभूति सूफी साधक करता है। सूफियों जैसा उन्माद, वेदना एवं तड़प छायावादी काव्य में दिखाई देती है। अतः छायावाद में सूफीवाद पुनर्स्थापित होता हुआ दिखाई देता है। परंतु छायावादोत्तर काव्यधाराओं में सूफीमत का प्रभाव कम नजर आता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सूफीवाद इस्लाम की रूढ़ धारणाओं के विरोध में आया हुआ ऐसा दर्शन एवं चिंतन था, जिसने उदारता एवं प्रेमिल भावना से हिंदूजन एवं संस्कृति को न केवल प्रभावित किया, अपितु हिंदुओं में इस्लाम के प्रति आकर्षण भी पैदा किया। अजमेर का चिश्तिया दरगाह इसका प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत करता है।

संदर्भ

1. सूफीमत और हिंदी सूफी काव्य, डॉ० नरेश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 28
2. मध्यकालीन भारतीय साहित्य : समाज और संस्कृति, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय मानविकी विद्यापीठ, पृ० 76
3. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, श्याममनोहर पांडेय, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृ० 302
4. हिंदी साहित्य का इतिहास एवं साहित्य परिचय-इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, पृ० 31
5. भक्ति-आंदोलन और भक्तिकाव्य, शिवकुमार मिश्र, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ० 97
6. भक्तिकाव्य, प्रमिला मिश्रा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृ० 41
7. भक्तिकाव्य, संपादक, प्रमिला मिश्रा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृ० 69
8. सूफीमत और हिंदी साहित्य, डॉ० विमलकुमार जैन, हिंदी अनुसंधान परिषद्, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृ० 230
9. गवेषणा, केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, जनवरी 2006 पृ० 81

403, संरचना एवेन्यू
नया पुरा, कोटा (राज.)
09875144600

भूमंडलीकरण और हिंदी का बदलता स्वरूप

नीलम

प्राध्यापिका, हिंदी विभाग
राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय,
बडागांव, करनाल (हरियाणा)

भूमंडलीकरण एक व्यापक अवधारणा है, जिसकी कड़ी में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से जुड़ता है, एक समाज दूसरे समाज से और एक देश पूरे विश्व के साथ संबंध स्थापित करता है। इस प्रकार भूमंडलीकरण वह प्रक्रिया है, जिसमें सभी गुजरते हैं। वास्तव में आदान-प्रदान की प्रक्रिया का नाम ही भूमंडलीकरण है। यह आदान-प्रदान की प्रक्रिया किसी सभ्यता, संस्कृति या वैचारिकता के संदर्भ में भी हो सकती है। भारतीय संदर्भ में, भूमंडलीकरण पर दृष्टिपात करें तो हम देखते हैं कि पहले भूमंडलीकरण शब्द की जगह, वसुधैव कुटुंबकम्, वैश्वीकरण प्रक्रिया का मूलभूत था, जिसके तत्त्व सहजता, आत्मीयता, संवेदना, सहनशीलता, उदारता, क्षमाशीलता के थे। जो 'कुटुंब' बनाम भूमंडलीकरण को बनाते थे। परंतु आज भूमंडलीकरण का विश्वपटल पर जो चित्र अंकित है, वह भारतीय विद्वानों के दृष्टिकोण से बिल्कुल भिन्न स्थिति में है। भारत में इस भूमंडलीकरण का प्रारंभ अँग्रेजों के आगमन से शुरू हो चुका था। वर्तमान में भूमंडलीकरण, अंतर्राष्ट्रीयकरण, वैश्वीकरण और विश्वग्राम ये चारों शब्द समान रूप से प्रयोग किए जाते हैं। आज भूमंडलीकरण का जो रूप हमें दिखाई देता है, इसकी धारणा 1960 के आसपास शुरू हुई। सन् 1967 के करीब 'ग्लोबलाइजेशन' शब्द का प्रयोग हुआ। 'ग्लोब' के साथ 'इजेशन' शब्द प्रक्रिया को सूचित करता है, जो कि परिस्थितियों के अनुसार गढ़ा गया है। शुरुआती दौर में लोगों की यह धारणा थी कि भूमंडलीकरण केवल विश्वव्यापी व्यापार तक ही सीमित है। परंतु यह तो उससे भी व्यापक दृष्टिकोण लिए हुए है। आज चाहे आर्थिक क्षेत्र हो, चाहे सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक क्षेत्र, सभी में इसका प्रसार दिखाई देता है। भूमंडलीकरण के केंद्र में प्रमुख रूप से व्यक्ति की इच्छाएँ और अर्थ होता है और यही प्रवृत्ति आगे जाकर भूमंडलीकरण को आधार प्रदान करती है। भूमंडलीकरण जीवन और जगत् दोनों को प्रभावित करता है। आज सबसे बड़ा बदलता स्वरूप साहित्य, संस्कृति और भाषा में दिखाई देता है। भाषा किसी भी समाज की संस्कृति की प्रथम प्रहरी होती है। भाषा मनुष्य के जीवन का आधार-स्तंभ है। संपूर्ण धरा पर किसी भी देश, जाति, समुदाय या समाज की प्रगति उसकी भाषा के आधार पर आँकी जा सकती है। भाषा का काम लोगों को जोड़ना है, तोड़ना नहीं। हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा है, जनभाषा है, संपर्क भाषा है एवं मातृभाषा है। आजादी से पूर्व हिंदी हमारे लिए स्वतंत्र भारत का चमकता हुआ सितारा थी। स्वतंत्रता प्राप्ति का आधार थी, हम लालायित थे, हिंदीभाषा के उत्थान के लिए। परंतु क्या हुआ

कि हम राजनीतिक तौर पर आज़ाद होने पर भी भाषायी स्तर पर अपनी आज़ादी की जंग आज तक लड़ रहे हैं। वैश्विक स्तर पर देखें तो हिंदी विश्व के अनेक देशों में बोली, समझी व पढ़ी जाती है। विश्व के अनेक देशों में हो चुके आठ विश्व हिंदी सम्मेलनों में हिंदीभाषा के महत्त्व को समझा गया है। विश्वस्तर पर यह संदेश जाता है—हिंदीभाषा दुनिया की सर्वाधिक दूसरे नंबर पर बोली जानेवाली भाषा है। आज हिंदी की थाली में स्वाद बढ़ाने के लिए अँग्रेजी मसालों से युक्त व्यंजन परोसे जा रहे हैं। वर्तमान में हिंदी समाचार-पत्रों में अँग्रेजी के शब्दों का प्रयोग धड़ल्ले से हो रहा है, जिससे समाचार-पत्रों की बिक्री तो बढ़ रही है, परंतु इससे हिंदीभाषा की गरिमा को ठेस पहुँच सकती है। तकनीकी संचार-माध्यमों की तो बात ही क्या है? वे तो चटपटी ख़बरें परोसने में अपनी हदें पार कर चुके हैं। जैसे ठंडा-ठंडा, कूल-कूल आदि शब्दों का प्रयोग विज्ञापन के रूप में किया जा रहा है।

संचार माध्यमों से सारा विश्व एक गाँव की तरह हो गया है। हिंदी कार्यक्रमों और इंटरनेट पर हिंदी में ई-मेल के उपयोग से विश्वव्यापी स्तर पर हिंदी की जड़ें मजबूत हो रही हैं। हिंदी की बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखते हुए संचार-माध्यमों द्वारा सांस्कृतिक और आध्यात्मिक रूप से हिंदी का प्रचार ज़रूरी है। आज हिंदी विश्वबाज़ार के साथ भूमंडल में खड़ी है। अमेरिका जैसा समर्थ देश अपना बाज़ार खोजने के लिए हिंदीभाषा सीखने के लिए साढ़े बाईस हज़ार करोड़ रुपये खर्च करने को तैयार है। विश्व के सौ से अधिक विश्वविद्यालय हिंदी में अध्यापन और शोध कर रहे हैं। हिंदी ने विश्वशक्तियों को भले ही बाज़ार के रास्ते से आकर्षित किया है। निःसंदेह इससे हिंदी का स्वरूप परिवर्तित हो गया है, लेकिन उसने यह बता दिया है कि अब यह केवल 60-70 करोड़ हिंदीभाषियों की भाषा न होकर पूरी दुनिया के दरवाज़ों पर दस्तक दे चुकी है। विदेशी फ़िल्मों की हिंदी-डबिंग और विभिन्न सूचनात्मक, ज्ञानवर्धक टी०वी० चैनलस के अँग्रेजी से रूपांतरित हिंदी-प्रसारण, हिंदीभाषा की शक्ति-क्षमता का परिचय देते हैं। हिंदी के बढ़ते वर्चस्व के कारण अन्य देशों में हिंदीभाषा के ज्ञान को अब सामयिक आवश्यकता के रूप में देखा जा रहा है। एक महत्त्वपूर्ण भाषा के रूप में हिंदी को स्वीकार करते हुए टेक्सास प्रांत में स्कूलों में अपने हाईस्कूल के छात्रों के लिए हिंदी की पाठ्य पुस्तक, जिसका नाम है—‘नमस्ते जी’, 486 पृष्ठों से संलग्न यह पुस्तक भारतीय मूल के शिक्षक श्री अरुणप्रकाश ने लगभग 8 वर्षों की मेहनत से तैयार की है, पूरे वैश्विक धरातल पर हिंदी की पताका फहरा रही है। आज हिंदी केवल साहित्य-रचना का माध्यम ही नहीं है, वरन् बाज़ार, विपणन एवं वाणिज्य, विज्ञापन, फ़िल्म, शोध, अनुसंधान एवं प्रबंधन आदि क्षेत्रों में भी अपना वर्चस्व स्थापित कर रही है। भाषावैज्ञानिकों का एक बड़ा वैश्विक वर्ग, जिसमें नोम चॉमस्की भी शामिल हैं, हिंदी की प्रशंसा में कहते हैं कि यह इस भाषा का कमाल है कि इसमें उद्गम के मात्र एक सौ वर्ष के भीतर कविता रची जाने लगी। हिंदीभाषा में अपार शक्ति है। हिंदी हमारे देश के संस्कारशील चरित्र की परिचायक है। वह जो कहती है, वह उसकी ऊर्जा है, वह जो सहन करती है वह उसका शील है। उसमें न केवल मनुष्य बोलता है, बल्कि मानव के राग-विराग, मर्म-कर्म, संस्कार-विचार, सर्जन और विसर्जन सब-कुछ बोलते हैं। आज समस्त हिंदीप्रेमी हिंदी को विश्वभाषा के रूप में देखने के लिए लालायित हैं और इसमें कोई बुराई नहीं है, क्योंकि दुनिया की किसी भी भाषा ने मात्र एक शताब्दी में इतना उत्कृष्ट साहित्य नहीं रचा, जितना हिंदी ने रचा है। यदि शेक्सपीयर से लेकर आज तक

अँग्रेजी भाषा को अपना साहित्य रचने में 500 वर्ष लगे, तो हिंदी ने खड़ीबोली के रूप में अपने उदय से केवल 100 वर्ष में वह रच दिया, जिसके लिए कोई भी भाषा हिंदी की सृजनात्मकता से ईर्ष्या कर सकती है। हिंदीभाषा की विशेषता ही यह है कि वह सबको अपने अंदर समेट लेती है। आप भारत के किसी भी राज्य में चले जाएँ, आपको हर राज्य की अपनी अलग-अलग हिंदी मिल जाएगी। हिंदी का लचीलापन ही है, जो उसे कहीं भी रुकने नहीं देता। वह जहाँ भी जाती है, वहाँ की भावनाओं, विचारों को कुछ नए शब्दों को अपने अंदर समाहित कर लेती है और फिर उनकी अपनी भाषा बन जाती है और यही हिंदी का बदलता स्वरूप है, जो उसके विकास के लिए अति आवश्यक है। अँग्रेजी भाषा प्रतिवर्ष लगभग 250 नए शब्द अपने शब्दकोश में जोड़ती है। समय के साथ-साथ नए शब्दों का जुड़ाव भाषा का विकास करता है। उसे नवीनता प्रदान करता है। प्रत्येक समय की अपनी माँग होती है और उस माँग के अनुसार नई संवेदना, नया भाव, नई शब्दावलियाँ भाषा के स्वरूप को सकारात्मक रूप में परिवर्तित करती हैं, और हिंदीभाषा का बदलता स्वरूप भी सकारात्मक रूप से इसे समृद्ध कर रहा है—

हिंदी पढ़ो, हिंदी पढ़ाओ
हिंदीभाषा है महान
हिंदी बोलो, हिंदी लिखो
हिंदीभाषा है आसान
हिंदीभाषा को अपनाओ
हिंदी है सबकी भाषा।

हिंदीभाषा का महत्त्व इन महापुरुषों के विचारों से स्पष्ट हो जाता है। पंडित जवाहरलाल नेहरू के अनुसार, 'हिंदी एक जानदार भाषा है। वह जितनी बढ़ेगी देश का उतना ही लाभ होगा।' जाकिर हुसैन के अनुसार, 'हिंदी देश की एकता की कड़ी है।'

हिंदीभाषा की अपनी शक्ति है, जो इसे निरंतर लोगों से जोड़ रही है। वैश्वीकरण के दौर में यह जरूर हुआ है कि हिंदी देश की सीमाओं को लाँघकर व्यापक फलक पर लोकप्रिय हो रही है। यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि हिंदी दिनोंदिन समृद्ध हो रही है। वह दिन दूर नहीं, जब हिंदी का परिवर्तित रूप-स्वरूप बहुत बढ़ा हो जाएगा। वह हिंग्लिश तो बनेगी ही, साथ ही मलयालम हिंदी, पंजाबी हिंदी, कन्नड हिंदी, असमिया हिंदी आदि अनेकानेक हिंदियों के रूप में सामने आएगी।

संदर्भ

1. भाषाविज्ञान, भोलानाथ तिवारी
2. हिंदी भाषा का इतिहास, डॉ॰ धीरेंद्र वर्मा
3. संचार और सामाजिक परिवर्तन, बेलारानी शर्मा
4. हरिगंधा, शब्द सरोकार, प्रतियोगिता दर्पण
5. दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण, अमर उजाला, पंजाब केसरी
6. शब्दकोश, वृहत् हिंदी कोश

1757/9, अर्वन एस्टेट
करनाल (हरियाणा)
09050200900

विचारधारा और साहित्य

नीलम

प्राध्यापिका, हिंदी विभाग
राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय,
बडागाँव, करनाल (हरियाणा)

भूमिका

विचारधारा और साहित्य का गहरा संबंध है। किसी विचार के बिना साहित्य की कल्पना करना असंभव है। साहित्य में विचारधारा किस रूप में कार्य करती है, यह प्रश्न विचारणीय है। जब हम हिंदी साहित्य के इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें हिंदी के साहित्यिक इतिहास के पूरे कालक्रम में उस समय के रचित साहित्य के अंतर्गत उनके विचारों के दर्शन होते हैं। वर्तमान समय में हिंदी साहित्य में विचार का समावेश विशेष दृष्टिकोण में मिलता है। यदि हिंदी साहित्य के कालविभाजन पर दृष्टिपात किया जाए तो वैचारिक दृष्टिकोण से अनेक इतिहास दृष्टियाँ हमारे सामने आती हैं। जैसे—भक्तिकाल के निर्गुण साहित्य पर विचारधारा-संबंधी अध्ययन किया जाए तो हम पाते हैं कि भक्तिकाल से आधुनिककाल तक चलनेवाली निर्गुण परंपरा का स्वरूप निरंतर परिवर्तित दिखाई पड़ता है। निर्गुण ब्रह्म की परिकल्पना उपनिषदों से प्राप्त है। कबीर शंकराचार्य के द्वैतवाद के विचार, इस्लाम का एकेश्वरवाद और सूफियों के प्रेमदर्शन के विचार से प्रभावित दिखाई देते हैं। अतः साहित्य में विचारधारा का स्वरूप हर शताब्दी में बदला हुआ दिखाई देता है।

साहित्य का स्वरूप

‘साहित्य’ शब्द संस्कृत की ‘सहित’ धातु में ‘यत्’ प्रत्यय लगने से बनता है। इसका सामान्य अर्थ है शब्द और अर्थ का यथावत् सहभाव, अर्थात् ‘साथ होना।’ इस प्रकार सार्थक शब्द-मात्र का नाम ‘साहित्य’ है। कवींद्र रवींद्रनाथ टैगोर के अनुसार, ‘साहित्य का ‘सहित’ शब्द मिलन-भाव का सूचक है। वह (मिलन) भाव और भाव का, भाषा और भाषा का, ग्रंथ और ग्रंथ का ही मिलन नहीं है, अपितु मनुष्य के साथ मनुष्य का, अतीत के साथ वर्तमान का और दूर के साथ निकट का अंतरंग मिलन भी है, जोकि साहित्य के अतिरिक्त अन्य से संभव नहीं है। कुछ विद्वानों ने ‘साहित्य’ में से ‘सहित’ अर्थात् स+ हित (हित सहित) को पृथक् करते हुए हितकारक रचना को ‘साहित्य’ बताया है। मुंशी प्रेमचंद ने ‘जीवन की आलोचना’ को ‘साहित्य’ कहा है। साहित्य शब्द मूल रूप में ‘शास्त्र’ के अर्थ में प्रयुक्त होता था, परंतु बाद में ‘काव्य’ के लिए इस शब्द का प्रयोग होने लगा। सातवीं शताब्दी में साहित्य शब्द काव्य के लिए प्रयोग

हेने लगा था 'साहित्यशास्त्र' से 'काव्यशास्त्र' का ही बोध होता है। 'भावना का सत्य ही साहित्यकार का सत्य है, जिसमें रंग कर वैज्ञानिक और दार्शनिक का सत्य भी मनोरम बन जाता है।'

परिभाषाएँ—

आचार्य विश्वनाथ—रसात्मक वाक्य ही काव्य है।

मुंशी प्रेमचंद—जीवन की अलोचना ही साहित्य है।²

आचार्य भामह—शब्द और अर्थ मिलकर साहित्य का निर्माण करते हैं।³

पं० जगन्नाथ—रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य या साहित्य कहा जाता है।⁴

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं के अनुसार साहित्य विज्ञान में साहित्य की सामान्य परिभाषा इस प्रकार निर्धारित है—'साहित्य भाषा के माध्यम से रचित व सौंदर्य या आकर्षण से युक्त रचना है, जिसके अर्थबोध से सामान्य पाठक को आनंद की अनुभूति होती है।'

विचार

शब्दकोश के अनुसार विचार के अनेक अर्थ होते हैं—1. मन में सोचा या सोचकर निश्चित किया हुआ तत्त्व या बात;⁵ 2. मन में उत्पन्न होने वाली बात; 3. किसी बात के सब अंग देखना या सोचना—समझना; 4. भावना; 5. ख्याल; 6. संकल्प।

ये अर्थ विचार संज्ञा से संबंधित हैं, किंतु इसका प्रयोग क्रिया के रूप में भी होता है। जैसे विचारना या विचार करना। एक ओर तो विचार बुद्धि के द्वारा उपलब्ध या गृहीत विशेष मानसिक तत्त्व का नाम है। दूसरी ओर उन तत्त्वों की उपलब्धि के लिए जो बौद्धिक क्रिया की जाती है, वही विचार करना है। विचार का अँग्रेजी पर्याय थिंकिंग (Thinking) और थॉट (Thought) से प्रमाणित होता है।

मनोवैज्ञानिकों ने विचार की परिभाषा करते हुए लिखा है कि 'विचार मन की वह प्रक्रिया है, जिसमें हम पुराने अनुभव को वर्तमान समस्याओं के हल करने में काम लेते हैं।'⁶

विचार के लक्षण

1. किसी लक्ष्य की ओर उन्मुख होना।
2. लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इधर-उधर ढूँढना।
3. आंतरिक भाषण एवं मुद्राएँ।
4. स्मृत तथ्यों या अनुभवों का परिस्थिति के अनुसार उपयोग करना।
5. पूर्व निर्धारित तत्त्वों या अनुभवों का स्मरण।

विचारधारा का स्वरूप

'विचारधारा' दो शब्दों विचार और धारा के योग से बना है। इनमें 'विचार' शब्द 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'चर्' धातु से 'घ' प्रत्यय (वि+चर्+धन) करने पर बनता है। इसका आशय है विमर्श, आदान-प्रदान, चिन्तन, परीक्षण निर्णय, विवेचन, तर्कना आदि। दूसरा शब्द है 'धारा' जो 'धार' शब्द से स्त्रीलिंग में 'टाप्' प्रत्यय करने पर (धार+टाप्) निष्पन्न होता है। इसका अर्थ है—सँभालने वाली, प्रवाहित होने वाली, समुच्चय, सर्वोपरिता आदि। इस आधार पर विचारधारा का अर्थ हुआ विशिष्ट चिंतन सरणि। विचारधारा एक वर्ग विशेष से जुड़ी हुई चिंतन-पद्धति और समझ को कहते हैं।

‘परिस्थितियों के सम्यक् ज्ञान से विचारों की जो तर्कसंगत सरणि बनती है, वही विचारधारा होती है।’⁷

परिस्थितियों में परिवर्तन आने के कारण जीवन के प्रवाह में भी परिवर्तन आना स्वाभाविक है। इस परिवर्तन के अनुरूप नयी जीवन-दृष्टियों का विकास होता है।

साहित्य और विचारधारा का संबंध

विचारों का मूल क्षेत्र दर्शन विज्ञानशास्त्र आदि से संबंध है। साहित्य का संबंध मन के अनुभूति पक्ष से है, जबकि विचार का संबंध मस्तिष्क के ज्ञानात्मक पक्ष से है। साहित्य में बुद्धि का महत्त्व है, किंतु भावना और कल्पना की अपेक्षा गौण। साहित्य का उद्देश्य है भावानुभूति को मूर्त रूप से प्रस्तुत करना। विचार और साहित्य एक-दूसरे के परस्पर विरोधी हैं, तो पूरक व सहायक भी हैं। प्रत्येक दार्शनिक अपनी अनुभूतियों के विश्लेषण के द्वारा विचारों का विकास करता है। व्यावहारिक जीवन में विचारों की अनुभूति भी प्राप्त करता है। जिस प्रकार पानी को जमाकर बर्फ का रूप दिया जाता है और उसी बर्फ को पिघलाकर पानी में परिवर्तित किया जा सकता है। वैसे ही मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया से तर्क और कल्पना की सहायता से अनुभूतियों को विचारों में और विचारों को पुनः अनुभूतियों में परिवर्तित किया जा सकता है। साहित्यकार अपने साहित्य में जिस सामग्री का उपयोग करता है, वह मात्र उसके प्रत्यक्ष बोध एवं स्वानुभूतियों पर ही आधारित न होकर, बहुत सी सामग्री ऐसी भी होती है, जो विभिन्न व्यक्तियों, लेखकों एवं शास्त्रों के माध्यम से विचार के रूप में प्राप्त होती है, जिसे वह अपनी अनुभूति में परिवर्तित कर साहित्य में स्थान देता है।

1. साहित्य में विचारधारा का प्रयोग

साहित्य में विचारों को ठीक उसी प्रकार से प्रस्तुत नहीं किया जाता, जिस रूप में उन्होंने दर्शन और विज्ञान के क्षेत्र में, इनमें तर्क व प्रमाण के बल पर बुद्धिग्राह्य बनाया जाता है। साहित्य में विचारों (विचारधारा) के प्रतिपादन एवं प्रस्तुतीकरण की कोई एक विधि नहीं है। अनेक प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है।

1. विचार के सहयोग से प्रस्तुतीकरण

इस वर्ग में मुख्यतः उस प्रकार से प्रस्तुतीकरण को ले सकते हैं, जिसमें एक विचार को पुष्ट करने के लिए दूसरा विचार प्रस्तुत किया जाता है। उदाहरणस्वरूप—

करत-करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान
रसरी आवत जात ते सिल पै परत निसान।

2. भाव के सहयोग से प्रस्तुतीकरण

विचार को साहित्य में प्रस्तुत करने की दूसरी विधि यह है कि किसी भाव का अंग बना दिया जाता है। जैसे—युद्धभूमि में मरने से स्वर्ग प्राप्त होता है। इस विचार से सैनिक का उत्साह और भी अधिक बढ़ जाता है।

3. कल्पना के सहयोग से प्रस्तुतीकरण

विचारों को प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत करने में कल्पनाशक्ति भी पर्याप्त सहयोग देती है। कल्पना एक ओर तो विचारों की आधारभूत सामग्री में अभिवृद्धि करके अधिक स्पष्ट एवं

अनुभूतिगम्य रूप प्रदान करती है, दूसरी ओर उसे प्रतीकों, बिंबों आदि शैली-संबंधी तत्त्वों के द्वारा आर्कषण रूप प्रदान करती है—माखी गुड में गडि रही पंख रही लपटाय, ताली पीटै सिर धुनै मीठे बोई माया।

संतकाव्य धारा में वैचारिकता (निर्गुण काव्यधारा)

निर्गुण संतों की विचारधारा के बीज सिद्ध, नाथकवियों की रचनाओं में तो मिलते हैं। आदिकाल में नामदेव ने इस दिशा में योग दिया था। भक्तिकालीन निर्गुण भक्तकवियों में कबीर, दादू, नानक, रैदास संतों ने भक्तिभावना के प्रसार और भक्तिकाव्य की रचना में न केवल स्वयं उल्लेखनीय योग दिया, बल्कि इनकी शिष्य परंपरा ने बाद में भी निर्गुण भक्तिकाव्य की रचना होती रही है।

1. कबीर

भारतीय धर्मसाधना के इतिहास में कबीर महान विचारक और प्रतिभाशाली महाकवि हैं। कबीर ने बाह्य आडंबरों का विरोध किया। कबीर का 'राम' बौद्धों के शून्य का ही प्रतिरूप है। वह ब्रह्म के निराकार स्वरूप का उपासक है। कबीर की विचारधारा का अध्ययन दो रूपों में किया जाता है—सैद्धांतिक पक्ष और व्यावहारिक पक्ष। प्रथम पक्ष की दृष्टि से कबीर को किसी एक संप्रदाय से संबंधित नहीं कर सकते, रामानंद से रामभक्ति का मंत्र प्राप्त किया था। राम से उनका अभिप्राय कुछ और ही था—'दसरथ सुत तिहुँलोक बखाना, रामनाम का मरम है आना।'⁸

उन्होंने राम को निर्गुण रूप में ग्रहण करते हुए उपदेश दिया—'निर्गुण राम जपहु रे भाई, अविगत की गति लखी न जाई'⁹ कबीर की विचारधारा में शंकराचार्य के अद्वैतवाद का प्रभाव दिखाई देता है—

जल में कुंभ कुंभ में जल है भीतर बाहर पानी।

फूटा कुंभ जल जलहिं समाना, यह तत कथौं गयानी।'¹⁰

यह कबीर मत के सैद्धांतिक पक्ष की बात है। कबीर ने व्यावहारिक पक्ष में धर्म-संप्रदायों की कटु आलोचना की—

काँकर पत्थर जोरि के, मस्जिद लई बनाया।

ता चढि मुल्ला बांग दे, बहिरा हुआ खुदाया।

पत्थर पूजे हरि मिले तो मैं पूजूँ पहार।

ताते वह चक्की भली पीस खाय संसार।

रविदास

रविदास ने मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा आदि का विरोध कर आभ्यंतरिक साधना पर बल दिया। ये निर्गुण काव्यधारा के कवि थे—

अब कैसे छुटे राम नाम रट लागी

प्रभु जी तुम चंदन हम पानी, जाकी अंग-अंग बास समानी।

सूफ़ी काव्यधारा में वैचारिकता

सूफ़ी काव्यधारा में प्रेमकाव्य की प्रधानता रही है।¹¹ भक्ति के सामान्य मार्ग की प्रतिष्ठा की और ईश्वर को ज्ञान रूप एवं प्रेमप्राप्य कहकर हिंदुओं-मुसलमानों के बीच भेदभाव की

खाई-पाटने का प्रयत्न किया। आत्मसमर्पण से ईश्वर का साक्षात्कार संभव है। मनुष्य में इच्छाएँ लुप्त हो जाती हैं तो वह ब्रह्म में मिल जाता है। संतों ने आत्मा को पत्नी और परमात्मा को पति के रूप में माना है, जबकि सूफियों ने आत्मा को प्रियतम और परमात्मा की प्रियतमा के रूप में कल्पना की है। सूफ़ीकाव्य के प्रमुख कवि जायसी, मंझन, उस्मान आदि हैं।

सगुण काव्यधारा में वैचारिकता

15वीं और 16वीं शताब्दी में वैष्णवधर्म का जो आंदोलन देश के एक छोर से दूसरे छोर तक रहा, श्री बल्लभाचार्य जी उसके प्रधान प्रवर्तकों में से एक थे। शंकराचार्य के अद्वैतवाद का विरोध करते हुए भक्तिमार्गीय उपासना को आश्रय दिया और अपनी सांप्रदायिक दृष्टि के साथ नवीन अद्वैतदर्शन स्थापित किया। तुलसी, सूरदास आदि कवियों ने इन आचार्यों के द्वारा प्रतिपादित सगुण भक्तिमार्ग को प्रशस्त करने में योगदान दिया।

कृष्णकाव्यधारा (परंपरा) में वैचारिकता

सर्वप्रथम आचार्य निंबार्क ने विष्णु के स्थान पर कृष्ण का सगुणरूप भक्ति के लिए तैयार किया था और राधा को उनकी शक्ति मानकर राधा-कृष्ण के युगलरूप की उपासना का विधान किया। बाद में बल्लभाचार्य ने कृष्ण की माधुर्य व उनके बाल व सखास्वरूप की उपासना की। महाकवि सूरदास ने अपने साहित्य में अपने इष्ट कृष्ण की कथा और महत्त्व को प्रतिपादित करने के लिए इस साहित्य की ओर संकेत दिया। वल्लभाचार्य के बाद उनके पुत्र विट्ठलनाथ ने 'अष्टछाप' की स्थापना की, जिसमें सूरदास, कुंभनदास, परमानंददास, कृष्णदास, नंददास, गोविंदस्वामी, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास शामिल थे। प्रथम चार कवि आचार्य वल्लभ के तथा शेष चार विट्ठलनाथ के शिष्य थे। कृष्णमार्गीय काव्यधारा के मूल प्रेरक आचार्य वल्लभ थे। उन्होंने 16वीं शताब्दी में पुष्टिमार्ग की स्थापना की। इस मत में भगवान की भक्ति साधन-साध्यगम्य न होकर प्रभु के अनुग्रह पर ही अवलंबित होती है। मीरा की भक्तिभावना मूलतः मधुर भाव की रही। इनकी रचनाओं में आत्मसमर्पण का भाव है। रसखान जाति से मुसलमान थे। इनकी रचनाओं में इन्होंने श्रीकृष्ण के प्रति एकनिष्ठ प्रेमभावना को व्यक्त किया है।

रामकाव्य परंपरा और वैचारिकता

स्वामी शंकराचार्य जी ने जिस अद्वैतवाद का निरूपण किया था, वह भक्ति के सन्निवेश में उपयुक्त न था। यद्यपि उसमें ब्रह्म की व्यावहारिक सगुण सत्ता को स्वीकार किया गया था। भक्ति के प्रसार के लिए जैसे दृढ़ आधार की आवश्यकता थी, वैसा दृढ़ आधार स्वामी रामानुजाचार्य जी ने खड़ा किया। उनके विशिष्टाद्वैतवाद के अनुसार ब्रह्म के ही अंश जगत के सारे प्राणी हैं, जो उसी से उत्पन्न होते हैं और उसी में लीन हो जाते हैं। रामानंद जी ने उपासना के लिए बैकुंठनिवासी विष्णु का स्वरूप न होकर लोक में लीलाविस्तार करनेवाले अनेक अवतार राम का आश्रय लिया।

संदर्भ

1. डॉ० लालचंद गुप्त 'मंगल', हिंदी साहित्य : वैचारिक पृष्ठभूमि, पृ० 21
2. वही
3. डॉ० रमेशचंद्र गुप्त, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 11

4. डॉ० नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास पृ० 19
5. संपादक डॉ० शिवप्रसाद भारद्वाज शास्त्री, मानक विशाल हिन्दी शब्दकोश, पृ० 620
6. डॉ० एस०के० मंगल, शिक्षामनेविज्ञान, पृ० 30
7. डॉ० लालचंद गुप्त 'मंगल', हिंदी साहित्य : वैचारिक पृष्ठभूमि, पृ० 4
8. डॉ० शिवकुमार शर्मा, हिंदी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, पृ० 124, 126
9. वही
10. वही
11. डॉ० शिवकुमार शर्मा, हिंदी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, पृ० 157
12. पत्रिकाएँ, हरिगंधा शब्द सरोकार, प्रतियोगिता दर्पण
13. समाचारपत्र, दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण, अमर उजाला, पंजाब केसरी।
14. शब्दकोश, वृहत् हिंदी कोश

757/9, अर्वन एस्टेट
करनाल (हरियाणा)
09050200900

‘नृशंस’ कहानी-संग्रह में चित्रित सामाजिक विकृतियों के विविध आयाम

डॉ० कृष्णाकुमार

सहायक प्रोफेसर हिंदी

सरदार मिल्खासिंह ऐजुकेशनल इंस्टीट्यूट, बरेटा (पंजाब)

‘नृशंस’ कहानी-संग्रह की अधिकांश कहानियाँ अपनी ताजगी, सादगी और बेबाकी के कारण चर्चित और प्रशंसित हुईं। अपनी संप्रेषणीयता, व्यापकता और ग्राह्यता के चलते इन्होंने नाट्य-निर्देशकों को भी आकर्षित किया है। ग्रासरूट, नृशंस, तालीम और फलितार्थ कहानियों का पटना से दिल्ली तक हुआ सफल मंचन इसका प्रमाण है। नृशंस का अर्थ है—क्रूर, निर्दयी, अत्याचारी, अपकारी, अनिष्टकारी। प्रस्तुत संग्रह की कहानियाँ मौजूदा समय में स्खलित होती संवेदना और सामाजिक संबंधों के बीच चौड़ी होती दरारों की ओर हमारा ध्यान खींचती हैं। भाषा की सहजता, शिल्प की सजगता और कथानक की व्यापकता, इन कहानियों की खूबियाँ हैं। इन कहानियों में सामाजिक विकृतियों को भी प्रस्तुत किया गया है। सामाजिक विकृति से तात्पर्य है—समाज में फैले विकार या दोष। किसी भी वस्तु में विकार या दोष का उत्पन्न होना सहज स्वाभाविक है। जब किसी वस्तु में विजातीय तत्त्वों की प्रधानता हो जाती है, तो विकार उत्पन्न होता है। जिस प्रकार शरीर में कफ, पित्त, वात आदि दोष उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार समाज में भी अनेक प्रकार के दोष समय-समय पर उत्पन्न होते रहते हैं। वास्तव में ये दोष समाज की अनास्था-बोध के प्रतीक हैं। दूसरे शब्दों में इसे समाज की क्रमिक टूटन भी कहा जा सकता है। ‘सामाजिक विकृति’ के लिए समाज में रहने वाले लोग जिम्मेदार हैं।

नृशंस कहानी-संग्रह में सामाजिक विकृतियों के विविध आयाम

जब हम नृशंस कहानी-संग्रह की कहानियों पर दृष्टिपात करते हैं, तो यह पाते हैं कि समाज में अनेक विकृतियाँ फैली हुई हैं। प्रत्येक कहानी में किसी-न-किसी सामाजिक विकृति का वर्णन किया गया है। ऐसी सामाजिक विकृतियों का वर्णन इस प्रकार है—

सांप्रदायिकता का चित्रण

आज के इस वैज्ञानिक युग में भी तथाकथित धर्म के ठेकेदार अपने निजी स्वार्थ के कारण आम जनता को सांप्रदायिकता की आग में झोंक देते हैं। वे किसी संप्रदाय-विशेष की भावनाओं को भड़काकर, तबाही का मंजर देखते हैं। वस्तुतः सांप्रदायिकता के इस हवनकुंड में

निरीह मनुष्यों की आहुति दे दी जाती है। भारत चूँकि विविध धर्मों और संप्रदायों का देश है, अतएव इसमें सांप्रदायिकता को भड़काना कोई नई अथवा मुश्किल बात नहीं है। प्रस्तुत कहानी-संग्रह 'नृशंस' में भी अवधेश प्रीत ने सांप्रदायिकता की इसी भयावहता को यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत किया है—'बब्बन खां ने हाजी साहब और मौलवी साहब ने इस एलान से शह पाकर एक-एक लफ्ज पर जोर देते हुए कहा, साहेबान जब यह साफ़ हो गया है कि वह जगह मुसलमानों की कब्रगाह है, तो तय है कि उस पर मुसलमानों का कब्जा होना चाहिए। अब आप जो फ़ैसला करें। फ़ैसला तो हो चुका है, रमेसर बाबू। शिवनाथ बाबू ने दो टूक जवाब दिया, टीला भले भुतहा सही, है तो मेरे पुरखों की निशानी। उसे कब्रिस्तान कैसे मान लें?'¹¹

लेकिन पुलिस की कवायद का असर धीरे धीरे ढीला पड़ने लगा। दिन जैसे-जैसे चढ़ता गया, मंगलपुर में फिर सरगामी बढ़ने लगी। हाँ, इतना जरूर है कि इस बार सब खुलेआम नहीं था। खिचड़ी भीतर-ही-भीतर पक रही थी। मियां टोली की बागडोर मौलवी साहब ने अपने हाथ में ले ली थी। जिस वक़्त पुलिस ने बब्बन खां एवं हाजी साहब को गिरफ़्तार किया, उस समय मौलवी साहब मस्जिद में आराम फरमा रहे थे। इसीलिए पुलिस का तवज्जो उनकी ओर नहीं गया और वह साफ़ बच गए। दिन चढ़ते ही मौलवी साहब ने कुछ चुने हुए मुसलमानों की बैठक बुलाई और पूरे हालात पर तपशिरा करते हुए ऐलान किया, 'जनाब यह हम मुसलमानों के साथ ज्यादाती है। हमारे लोगों को गिरफ़्तार कर पुलिस ने हमें चुनौती दी है।'

इसहाक मियां का कलेजा काँप गया। उन्होंने जमात के सामने हाथ जोड़कर मिन्नत की, 'साहेबान, यह फ़ैसला बहुत ख़तरनाक है। हिंदुओं और मुसलमानों के बीच दुश्मनी का जहर मत बोड़ए। खुदा के लिए इतनी सी बात...।' इसहाक मियां आप अहमक हैं। बब्बन मियां ने खून का घूँट पीते हुए इसहाक मियां की बात को कड़ककर बीच में काट दिया। ...इसे आपको जरा-सी बात कहते शर्म नहीं आती। आप काफ़िरों की हिमायत...। पहली बार बब्बन खां की बात काटने की हिम्मत दिखाई बुजुर्ग शमशाद अली ने, 'बब्बन खां कुछ भी कहने से पहले गिरेबां में झाँको। किसी कौम को जलील करने की इजाज़त न पाक कुरान देता है, न हम देंगे।'¹²

वास्तव में इस कहानी के माध्यम से कहानीकार यह स्पष्ट करना चाहता है कि धर्म तो सब एक ही हैं, किंतु राजनीतिक लोग अपने फ़ायदे के लिए उन्हें बाँट देते हैं।

रिश्वतखोरी

भारत जैसे विकासशील देश की प्रगति में सबसे बड़ी बाधा है, रिश्वतखोरी। वास्तव में आज भारत में हर सरकारी और ग़ैरसरकारी दफ़्तर में इसका इतना प्रचलन हो चुका है कि इसे लोग अपनी मर्यादा समझने लगे हैं। ईमानदार अधिकारी तो आज मूर्ख व्यक्ति समान बनकर रह गया है। इस प्रवृत्ति ने समाज को अनैतिकता के गर्त में धँसा दिया है। अधिकारी से लेकर चपरासी तक कोई भी बिना रिश्वत लिए कार्य करने को तैयार नहीं होता। सबके अपने-अपने हिस्से निर्धारित होते हैं कि किसको कितना पैसा मिलेगा। वेतन को ये लोग मात्र पेंशन के रूप में स्वीकारते हैं। रिश्वतखोरी ने हर विभाग को अपने कब्जे में ले रखा है, जिससे समाज में अन्य विकृतियाँ जैसे लूटमार, डकैती, बलात्कार इत्यादि बड़ी तेजी से फैल रही हैं। एक साधारण-से अध्यापक को भी नौकरी प्राप्त करने के लिए लाखों रुपए रिश्वत देनी पड़ती है। यदि वह ऐसा

नहीं करता है, तो केवल उसे भगवान के सहारे पर ही नौकरी मिल सकती है। रिश्वत न देने की क्षमता के फलस्वरूप रामबाबू को सालों नौकरी का इंतजार करना पड़ता है। वास्तव में यह अकेले रामबाबू की ही नहीं, वरन् उन सभी नौजवानों की कहानी है, जिनके पास शिक्षा और उपाधियाँ तो हैं किंतु रिश्वत देने लिए पैसा नहीं है। इसी तथ्य को लेखक ने भी भलीभाँति स्पष्ट किया है—‘अच्छा ई बताइए मास्साब कि नियुक्ति में आप कितना खरच किए हैं? बजरंगीलाल के प्रश्न में जिज्ञासा कम, हमदर्दी ज्यादा थी?’ पलभर को अचकचाया, फिर बजरंगीलाल की मासूमियत पर उसके भीतर तुरंत ही कुछ उमंगा, बड़ी सहजता से उसने उत्तर दिया—‘घूस नहीं दिया, इसीलिए तो इतने सालों इंतजार करना पड़ा।’⁴

राजनीति

आज विश्व के लगभग हर कोने में राजनीति अपनी गहरी जड़ें जमा चुकी है। समाज का हर वर्ग इससे प्रभावित है। धर्म, शिक्षा तथा अन्य कल्याणकारी संस्थाएँ भी राजनीति के इसी दुष्चक्र में बुरी तरह फँसी हैं। राजनीति का स्वरूप भी दिनोदिन भयावह होता जा रहा है। वास्तव में निजी स्वार्थों की पूर्ति-मात्र के लिए ही राजनीति आबद्ध हो गई है। राजनीति वास्तव में आज कूटनीति अथवा स्वार्थनीति का पर्याय बन चुकी है। राजनीति के इस भयावह यथार्थ को कहानीकार अवधेश प्रीत ने अपने आलोच्य कहानी-संग्रह में बड़ी कलात्मकता के साथ व्यक्त किया है। आज की राजनीति इतनी गंदी हो चुकी है कि तथाकथित देश सेवक अपनी स्वार्थलिप्सा के कारण, हिंदुओं और मुसलमानों में झगड़ा करवाने में स्वयं को गौरवान्वित महसूस करते हैं। शिक्षा में बढ़ते राजनैतिक प्रभाव का चित्रण कहानीकार ने ‘तालीम’ नामक कहानी में किया है—

‘उस दिन रामबाबू रोज़ की तरह जैसे ही स्कूल पहुँचा, हेडमास्टर पंडित रामप्रसाद तिवारी सहित स्कूल के शेष शिक्षकों को एक साथ देखकर दंग रह गया। उसे याद आया कि आज वेतन का दिन तो नहीं है। फिर? उसके चेहरे पर आश्चर्य का भाव स्पष्ट हो आया था, क्योंकि उसे देखते ही बदरी उपाध्याय ने तपाक से कहा, ‘आइए, माटसाब, हम लोग आपके इंतजार में थे।’

‘क्यों, ऐसी बात हो गई? उसने कुर्सी खींचते हुए पूछा।’

‘अरे भाई, बात ही है कि...। हेडमास्टर पंडित रामप्रसाद तिवारी उत्साह से भरकर बोले, ‘आपका तबादला हो गया है।’ रामबाबू जैसे आसमान से गिरा। उसने मुंह से बेसाख्ता निकल पड़ा, ‘क्यों?’ हाँ भाई, राते एक विभागीय मुलाजिम आपका तबादला लेकर आ गया।’ मास्टर तपेश्वरराय बोले, ‘आपको तुरंत रिलीफ के नई जगह पर जोगदान देने के लिए कहा गया है।’⁵

राजनीतिक हस्तक्षेप ने तो ईमानदार शिक्षकों को तबादले की जंजीरों में जकड़कर रख दिया है—रामबाबू कलर्क के साथ बाहर आया। चाय की दुकान में समोसे का आर्डर देकर बेंच पर बैठ गया। वह कलर्क उसके बेहद निकट बैठते हुए फुसफुसाया, ‘माट साब आपके खिलाफ गंभीर शिकायत है। आप पर गाँव में गुटबाजी करने और लोगों को भड़काने का आरोप है। सरकारी काम में बाधा पहुँचाने की भी शिकायत है। आपका तबादला तो इलाके के विधायक दीनानाथ पासवान के कहने पर किया गया है।

सहसा विश्वास नहीं हुआ रामबाबू को, वह हैरानी से उस कलर्क का चेहरा ताकने लगा।

ऐसे गंभीर आरोपों के चलते तो निर्लंबित किया जा सकता था, लेकिन चेतावनी के रूप में फिलहाल तबादला कर दिया गया है।

यह सारी जानकारी रामबाबू के हैरतअंगेज थी। वह बुरी तरह लहूलुहान हो गया था। भीतर-ही-भीतर अपना तबादला रद्द कराने की उसकी इच्छा ने दमतोड़ दिया था। वह बड़ी देर तक खामोश रहा। उसकी खामोशी को लक्ष्य करते हुए उस कलर्क ने कहा, 'देखिए माट साब, नौकरी में यह सब चलता ही है। अभी आप नए हैं, इसीलिए हैरानी हो रही है। धीरे-धीरे आप खुद एडजस्ट कर जाइगा।'⁶

राजनीतिज्ञों की स्वार्थपरता ने लोगों में राजनीति के रूढ़ि घटना और टूटन के भाव जाग्रत कर दिए हैं। इसी तथ्य को कहानीकार प्रीत ने 'ग्रासरूट' शीर्षक कहानी में व्यक्त किया है—

'वह पलंग से उठकर खड़े हो गए थे। पैरों से टो-टोकर चप्पल पहनी थी। अँधेरे में ही चहलकदमी शुरू कर दी गई थी। इस छोर से उस छोर। उस छोर से इस छोर। बेचैनी के इस आलम में उन्हें लगा था, कोई परछाई लगातार उनका पीछा करते हुए ललकार रही है, 'बहुत अनेक कर दिए बाबू साहिब... अब नहीं चलेगी बाबू साहिबी।'

अँधेरे में भी तर्जनी ताने रघुपतियों उन्हें चुनौती देता दिख रहा था। जिनगी-भर जिसके माँ-बाप उनकी बेगारी करते-करते मर-खप गए, उन्हीं का बेटा उनके सामने सिर ताने खड़ा था। दस ख्याल से ही तड़पकर रह गए थे। वह मन-ही-मन रघुपतिया की सूत्र को पचासों को लगाते हुए दाँत किटकिटाए थे—'साब खुराफात का जड़ ईहे है ससाला। इसकी नेतागिरी छटकाना अब जरूरी हो गया है।'⁷

जातीय-विद्वेष :

भारत में विविध धर्मों, जातियों और संप्रदायों के लोग रहते हैं। विभिन्नताओं से भरे इस देश में हर किसी का अपना स्वतंत्र धर्म अथवा संप्रदाय है, किंतु कुछ तथाकथित असामाजिक तत्त्वों ने इसी विभिन्नता को सांप्रदायिकता का रंग दे दिया है। वह जातीय आधार पर अपने निजी स्वार्थलिप्सा की पूर्ति हेतु जातीय-विद्वेष फैलाते हैं और समाज को विकृत कर देते हैं। फलस्वरूप समाज में जाति के आधार पर एक-दूसरे के अंदर वैमनस्य का भाव उत्पन्न हो जाता है। वैसे भी भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में शुरू से ही मानव को चार जातियों यथा ब्राहमण, वैश्य, क्षत्रिय और शूद्र में विभक्त किया गया है, किंतु आज इन्हीं परंपराओं का अनुचित लाभ उठाते हुए तथाकथित समाज के ठेकेदारों ने मनुष्य को असंख्य जातियों में बाँट दिया है। जातीय-विद्वेष की इसी भयावहता को कहानीकार ने अपनी कहानियों में व्यक्त किया है—

ऐन इसी वक्त फेंकना ने पंडित रामप्रसाद तिवारी को पाँव लागी की। फेंकना पर नजर पड़ते ही उनकी तयारी चढ़ गई। लगभग घुड़कते हुए उन्होंने कहा, 'कारे। फेंकना ई पलटन लेके इहां कइसे?'

फेंकना के बदले रामबाबू ने तपाक से जवाब दिया, 'इसको हमने बुलाया है पंडित जी।'

'लगता है इसका अल्ला आपको बहुत पसंद आया।' पंडित ने कपास लगाते हुए ठिठोली की, 'इहो ससुरा बूझ गया है कि बढिया भुल्ला धराया है।' 'ऐसी बात नहीं है पंडित जी।' रामबाबू ने बगैर किसी भूमिका से अपनी बात का खुलासा किया, 'फेंकना अपने बच्चों को स्कूल में भर्ती

कराने आया है।' मानो बिजली का नंगा तार छू लिया हो, पंडित प्रसाद तिवारी ने। क्षणांश में ही उनके चहरे पर कई भाव आए-गए। उनकी तिखी-तन्नाई आवाज में भी गहरा आश्चर्य चस्पा था, 'का कहते हैं आप? अब मुसहर डोम स्कूल में पढ़ेगा?'⁸

इसी जातीय-विद्वेष के चलते उच्चजाति के लोगों ने शिक्षा जैसे पवित्र कर्म पर एकाधिकार कर लिया है। इसी तथ्य को कहानीकार ने व्यक्त करते हुए लिखा है—

'देखिए मास्टर जादा तीन-पाँच करिएगा, तो मतलब हम बढ़िया से समझा देंगे।'

फिर लगभग घुड़कते हुए उसने सवाल दागा, 'ई मुसहर डोम का उद्धार करे खातिर सरकार आपको भेजा है का?'

'तालीम पाने का अधिकार तो सबको है मुखिया जी।'

रामबाबू का धैर्य भी टूट गया, 'इसे मुसहर क्या, राजपूत क्या?'⁹

भारत में जाति एक बड़ी सच्चाई है कामरेड। 'बीच में ही दखल देते हुए कामरेड रामराज ने दलील दी, हम जातीय-चेतना के बगैर वर्गीय-चेतना को ठीक से नहीं समझ सकते। दलितों, वंचितों, शोषितों की लड़ाई में इस जातीय उभार का कारगर इस्तेमाल किया जा सकता है। आप यकीन मानिए, पिछड़ी दलित जातियों का इन बुर्जुवा, दृष्टिहीन पार्टियों से मोहभंग अवशंभावी है।'¹⁰ अतएव कहा जा सकता है जातीय-विद्वेष को फैलाने में राजनीतिक पार्टियों की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।

अव्यवस्था का बोलबाला

प्रकृति ने हर वस्तु को बड़े ही व्यवस्थित रूप से सहेजकर रखा है, किंतु मनुष्य ने सदैव ही अव्यवस्थित तरीके अपनाए। फलस्वरूप समाज में विकृतियों का जाल बिछता चला गया। यही कारण है कि आज समाज के हर क्षेत्र, सरकारी और गैरसरकारी विभागों में चारों ओर अव्यवस्था का बोलबाला है। किसी भी व्यक्ति में अपने कर्तव्य के प्रति कोई निष्ठा नहीं रह गई है। यहाँ तक कि चिकित्सा जैसे क्षेत्र में भी यह अव्यवस्था दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। यह वह क्षेत्र है जहाँ लोग जिंदगी और मौत के बीच झूलते हैं और जिंदगी पाने की आस लेकर आते हैं किंतु कुछेक लापरवाह व्यक्तियों की वजह से उन्हें अपनी जान तक गवानी पड़ती है। इसी स्थिति का यथार्थ अंकन कर कहानीकार ने इस सामाजिक विकृति को 'नृशंस' नामक कहानी के माध्यम से चित्रित किया है—

'मेरी हिम्मत नहीं हुई कि मैं इस भीड़ से आँख मिला पाऊँ। बचकर निकल जाने की कोशिश में डाक्टर्स चैंबर की ओर बढ़ा ही था कि यकायक पूरा इंस्टीट्यूट घुप्प अँधेरे में डूब गया। बिजली गुल हो गई थी। अछोर अँधेरे में जैसे हर चीज अपनी जगह पर ठहर गई। इस भयावह अँधेरे के बीच एक बारगी मेरे दिमाग में एक साथ दो चहरे कौंधे, पहला मेरी पत्नी का चेहरा, दूसरा आई॰सी॰सी॰यू॰ में अपनी मौत से लड़ रहे पेशेंट विजय मित्र का। दोनों चहरे एक-दूसरे में गडमड्ड हो गए और मैं किंकर्तव्यविमूढ़-सा रोशनी आने का इंतजार करता रहा। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि अभी इंस्टीट्यूट का जेनरेटर चालू क्यों नहीं किया गया? उस अप्रत्याशित विलंब और अँधेरे के आतंक में मेरे लिए और प्रतीक्षा करना मुश्किल हो गया। आई॰सी॰सी॰यू॰ में दाखिल होते-न-होते बिजली आ गई थी, बिजली आ गई थी या कि जेनरेटर चालू कर दिया गया। झपाक

से आई रोशनी में मेरी आँखें चुंधियाँ गईं।

मैंने पलके झपकाते हुए ई०सी०जी० पर मॉनीटर स्क्रीन पर आँखें टिका दीं। वहाँ हाट बीट्स बताने वाली रेखाओं का ग्राफ नदारत था।मैंने आनन-फानन में पेशेंट को कार्डियल पल्मोनरी रिससिटेशन देने की कोशिश की, लेकिन डॉ० सुजाता रॉय ने मुझे रोकते हुए कहा, 'सर पेशेंट इज नो मोर।'¹¹

वास्तव में हर विभाग में अव्यवस्था का बोलबाला है। इसी अव्यवस्था के चलते पेशेंट की मृत्यु हो जाती है, जिसे डॉ० भगत कलमबद्ध भी करते हैं जो कि अव्यवस्था का कच्चा चिट्ठा खोलता है—'डॉ० भगत ने डेथ सर्टिफिकेट पर पेशेंट मित्र की मृत्यु का कारण लिखा था—ड्यू टू फेल्योर आफ सिस्टम (व्यवस्था के विफल हो जाने के कारण)'¹²

यह अव्यवस्था इस कदर अपने पंख फैला चुकी है कि शिक्षाक्षेत्र भी इससे अप्रभावित नहीं रह सकता। शिक्षकों को विद्यालय में पढ़ाने से कोई सरोकार नहीं है, वे तो मात्र खानापूर्ति निमित्त ही स्कूल में आते हैं—

अगले दिन रामबाबू कुर्ता और सदरी में पूरा मास्टर होकर स्कूल पहुँचा। पता चला हेडमास्टर पंडित रामप्रसाद तिवारी अभी नहीं आए हैं। एक मास्टर बजरंगीलाल मिल गए, पीपल के नीचे बंसखट पर पसरे हुए। उनके इर्द-गिर्द ज़मीन पर तमाम बच्चे बैठे हुए थे। दो लड़के उनके पैर दाब रहे थे। उनकी धोती जाँघों तक सिमटी हुई थी और वह इस सबसे बेखबर बीच-बीच में बच्चों पर खिसिया पड़ते थे, 'अरे हरामजादो, हल्ला काहे करते हो? मछरी बाजार बूझ लिया है का? मार-मारके भुरकुस निकाल दूँगा।'¹³

अश्लीलता का प्रचार

नवयुवकों को पथभ्रष्ट करने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका अश्लीलता और इससे संबद्ध सामग्री ने निभाई है। आज युवापीढ़ी का मन इसी के चलते कुंठित और वासनामय हो चला है। हर शहर की गली-गली में अश्लील पुस्तकें, फ़िल्में और पोस्टर मिलते हैं, जिन्हें देखकर उनकी मानसिकता संकुचित होती जा रही है। अश्लीलता की आकर्षणमयी बेड़ियों में बँधकर नवयुवक स्वयं को कल्पनालोक में खो देते हैं और जब वे वास्तविक स्थिति में लौटकर आते हैं, तो उनके पास सिवाय कुंठा के कुछ नहीं रहता। फलस्वरूप वे अपनी वासनापूर्ति निमित्त नाबालिग लड़कियों का बलात्कार तक करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें मार भी देते हैं। इसी कारण समाज में विकृतियाँ बढ़ती चली जाती हैं। वास्तव में अश्लीलता ही अन्य कई विकृतियों की जन्मदात्री है। पार्टियाँ यद्यपि अश्लीलता के विरुद्ध आवाज उठाती हैं, आंदोलन करती हैं, किंतु विंडबना यह है कि यह सब स्वार्थलिप्सा के कारण ही हो रहा है। इसी कटु यथार्थ को कहानीकार ने 'ग्रासरूट' शीर्षक कहानी के माध्यम से अश्लीलता के प्रचार का भंडाफोड़ किया है—

कामरेड रामराज को जैसे एकदम से वस्तुस्थिति का भान हुआ हो, वह अपनी झंप छिपाते हुए पूछ बैठे, अरे हाँ, मैं तो भूल ही गया था। कैसी चल रही है तैयारी?'

'तैयारी तो युद्धस्तर पर जारी है, सर। व्यथा से भरी भारती जी का स्वर तिक्त हो गया, 'जिस तेज़ी से अपसंस्कृति फैलती जा रही है, उससे तो औरतों का जीना दूभर हो गया है। दीवारों पर अश्लील पोस्टरों की भरमार नंगी फ़िल्मों का प्रदर्शन भद्दे गानों की बाढ़.... विज्ञापन में

औरत के जिस्म की नुमाइशऊँ लगता है, औरत नहीं बिकाऊ माल हो कोई। पहली बार रघुपति ने नज़र उठाई। हिम्मत करके भारती जी को दस तरह निहारा कि कामरेड रामराज को नागवार न लगे। शुरू में उसे लगा था, सो यह सावधानी उसने जानबूझकर बरती। 'हाँ सचमुच स्थिति काफी भयावह है। कामरेड रामराज अफ़सोस में सिर हिला रहे थे, 'पानी वाकई सिर से ऊपर होता जा रहा है।' देखिएगा सर, इस बार ज़बरदस्त आंदोलन छेड़ा जाएगा। अश्लील पोस्टरों पर कालिख पोती जाएगी.... नंगी फ़िल्मों के ख़िलाफ़ सिनेमाहालों में प्रदर्शन होगा... अपसंस्कृति का पुतला जलाया जाएगा.... डी॰एम॰ का घेराव होगा और।' भारती जी हाँफने लगी थीं। रघुपति अवाक् था उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि नंगई रोकने का यह कौन-सा तरीक़ा है? उसकी आँखों में निरीह रजुली घूम गई। बबुआन टोल में नंगी की जा रही रजुली....रोती कलपती रजुली....अपनी इज्जत बचाने की गुहार करती रजुली.... होशोहवास खोकर भागती हुई रजुली.....कटे पेड़ की तरह चमर टोल में धराशाई होती हुई रजुली....।¹⁴

चोरी करने की बढ़ती प्रवृत्ति

आज के इस वैज्ञानिक युग में जब मनुष्य चाँद पर बसने की तैयारी कर रहा है, वहीं कुछ ऐसे असामाजिक तत्त्व भी हैं, जो अपने भरण-पोषण के लिए चोरी-जैसी आपराधिक गतिविधियों में संलिप्त रहते हैं। उन्हें इस बात से कोई सरोकार नहीं है कि जिसके घर में चोरी कर रहे हैं। उसकी आर्थिक स्थिति क्या है, इन्हें तो बस कुछ प्राप्त करने की लालची प्रवृत्ति जकड़े रहती है। चोरी की इसी प्रवृत्ति के कारण सामाजिक व्यवस्था में रुकावट उत्पन्न होती है और एक के बाद दूसरी विकृतियाँ जन्म लेती हैं। इसी सामाजिक विकृति को कहानीकार ने 'मायामहल का बक्सा' शीर्षक कहानी के माध्यम से यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत किया है—

'वे चार चोर थे चारों अपने-अपने फ़न में माहिर। पहला कैसा भी कोई भी ताला खोलने में एक नंबर उस्ताद। बाक़ी के तीनों उसके दस करिश्मे के जबर्दस्त मुरीद थे। उनका मानना था कि पेचीदा से पेचीदा ताला भी वह जिस सफ़ाई से खोल लेता है। वह हर किसी के वश की बात नहीं।

दूसरा कैसा भी कोई भी, समान हो उसकी असलियत परखने में दक्ष। एक नज़र में वह गहना, जेवर, बर्तन बासन की कलाई खोलकर रख देता। तीसरा कैसी भी कोई भी आहट हो, समय पर भाप लेने में विज्ञ। चौथा कैसी भी कोई भी विपत्ति हो, पलक झपकते ही उबार लेने में कुशाग्र।'¹⁵

लालची वे ऐसे थे कि जिस घर में भी चोरी करते सब कुछ झाड़पोंछ देते और मौक़ा मिलने पर एक-दूसरे की नज़र बचाकर, हाथ लगे माल पर भी हाथ साफ़ करने से नहीं चूकते। फिर माल हाथ लगने और उसे ठिकाने लगा देने के बाद हाथ आई रकम जब तक जब में रहती वे एक-दूसरे के साथ नज़र नहीं आते। वे सारा पैसा मौजमस्ती, शराब, शबाब और कबाब पर खर्च कर डालते।

वे एक-दूसरे से तभी मिलते, जब वे खाली जेब खाली हाथ और खाली पेट होते। ऐसे में उनकी एकमात्र चिंता कोई लंबा हाथ मारने की होती। ऐसा ही कोई लंबा हाथ मारने के उद्देश्य से वे चारों आज की रात 'मायामहल' में घुसे थे। उनकी तजबीज थी कि रंग-रोगन उड़ जाने

के बावजूद नोनी खाई ईंटों के झरने के बावजूद, उनके कई हिस्सों में बैठने और बिक जाने के बावजूद राजा बहादुर राय साहब महामाया प्रतापसिंह की हवेली में 'माया' की कोई कमी नहीं।¹⁶

अध्यापक वर्ग की अकर्मण्यता

शिक्षा जीवन को सुधारने की पद्धति का नाम है। शिक्षक वास्तव में बच्चे के माता-पिता समान होते हैं, क्योंकि वे ही उसके आचार, व्यवहार और शिष्टाचार का निर्माण करते हैं। शिक्षक का दर्जा भगवान से भी बड़ा होता है। वास्तव में जीवन को सही तरीके से जीना, उसका सदुपयोग करना अथवा कुछ रचनात्मक कार्य करके समाज को प्रगतिशील करना इत्यादि संस्कार माता-पिता के बाद बच्चे को शिक्षक ही देते हैं। समय परिवर्तन के साथ शिक्षा-पद्धति में भी परिवर्तन आता चला गया, किंतु यही शिक्षा एक सामाजिक विकृति बन जाएगी, इसका भान किसी को नहीं था। कारण स्पष्ट है कि शिक्षा आज राजनीतिक चकले कि रखल बनकर रह गई है और शिक्षक उस चकले के दलाल। वे अपने कर्तव्यों को भूलकर मात्र वेतन पाने के लिए ही स्कूलों में जाते हैं। अध्यापक-वर्ग आज के दौर में शिक्षा से बहुत दूर चला गया है, मानो शिक्षा और उसकी कोई दुश्मनी हो। वे तो नौकरी कागजों में ही करते हैं। वास्तविकता तो यही है कि वह स्कूल के नाम अपने निजी कार्य करता है। चाहे उसे स्कूल को बंद ही क्यों न करना पड़े। अध्यापक-वर्ग की इसी अकर्मण्यता का यथार्थ 'तालीम' शीर्षक कहानी में मिलता है—

रामबाबू ने पूछा, 'ये हेडमास्टर साहब कब तक आएँगे? बजरंगीलाल ने मुँह बिचका लिया, जैसे लाल मिर्च दाँतो तले आ गई हो। तीताई-भरे मुँह से बोल फूटे, 'ई पंडितवा हे बहुत काईयां। स्कूलों का पैसा फिरिए में उठाता है। सारा समय तो जजमानिए में बिताता है। देखिए, ई इस्कूल में एक दूढ़ों पंडित है, एक ठो बाबू साहेब। सभे अपना घर का कामधंधा देखता है। आप नया आदमी है। एही से सचेत कर दिया। तनी ई लोग से दूरे-दूरे रहिएगा।'¹⁷ रामबाबू बंजरगीलाल की इस नसीयत पर धन्यवाद देने की सोच रहा था कि हेडमास्टर रामप्रसाद तिवारी लपकते हुए आते दिखाई दिए। पसीना-पसीना हो रहे थे। वाह।

वह धोती धुटनों तक चढ़ी थी। पैर कीचड़ में सने थे। मुँह में बबूल का दतवन दबा था। रामबाबू को देखकर पूछा, 'कब आए आप?' रामबाबू ने उठते हुए जवाब दिया, हम तो सुबअह ही आ गए पंडित जी।' हेडमास्टर साहब पलभर को झंपे फिर स्वयं सफ़ाई देने लगे, का बताएँ भाई, आज राते से खेत में पटवन चल रहा था। जानबे करते है, सरकारी टिबूल से पानी मिलना कीता मुश्किल होता है। बड़ा हाथ-गोंड़ जोड़ने पर तो रात पानी मिला। ऊ हो बीच-बीच में बिजलिए कठ जाए। राम-राम करके अब जाकर खेत पूरा हुआ है। सीधे खेत से चले-चले आए।'¹⁸

बंजरगीलाल बीच में ही बोल पड़े, 'पंडितजी, कल्ह हम छुट्टी पर रहेंगे। बचिया की बिदाई है न, कुछ बर-बाजार करना है।'¹⁹ यह रामबाबू के आश्चर्य की पराकाष्ठा थी। उसकी समझ में नहीं आया कि अपने निजी कामों के चलते स्कूल कैसे बंद हो सकता है। यह अधिकार उन्हें किसने दिया?²⁰

डॉक्टर की कर्तव्यहीनता

शिक्षक की तरह डॉक्टर भी भगवान का रूप होता है, क्योंकि वह भी लोगों का जीवन

बचाता है। आज डॉक्टर भी अपने कर्तव्यों से विमुख होते जा रहे हैं। उन्हें पैसे के जाल ने जकड़ लिया है। कोई जीए या मरे उन्हें इस बात की कोई चिंता नहीं। डॉक्टरों की इसी कर्तव्यहीनता को कहानीकार ने यथार्थ के धरातल पर उकेरा किया है—

‘मैंने जब राहत की साँस ली, जब डॉक्टर्स चैंबर में प्रवेश करके देखा। डॉ० चौधरी हैरान और हाँफते हुए—से अंदर आए और सीधे मुझसे मुखातिब हो गए। डॉ० भगत, यह क्या माजरा है? बाहर इतनी भीड़... नारेबाजी, सब कुशल है।’

‘एक पेशेंट... नक्सल लीडर...उसी की सपोर्टर हैं ये।’ अनमने ढंग से उत्तर देते हुए मैं घर जाने के लिए उठ खड़ा हुआ। डॉ० चौधरी मैं चलता हूँ। अब आप आ गए है... डेथ सर्टिफिकेट दे दीजिएगा।

म.....मैं। डॉ० चौधरी हकलाए। उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगी थी, मैं कैसे दे सकता हूँ डेथ सर्टिफिकेट। मैंने पेशेंट को नहीं देखा.... मैं उसकी केस-हिस्ट्री तक नहीं जानता।’

मैं आवाकू डॉ० चौधरी को देखता रह गया। बाहर नारों का शोर मद्धिम पड़ने लगा था। भीतर एक अनपेक्षित स्थिति सर उठा चुकी थी। मेरी समझ में नहीं आया, मैं क्या करूँ? मैंने संयत स्वर में डॉ० चौधरी को याद दिलाया, डॉ० चौधरी आप ड्यूटी पर है। कायदे से तो यह आपका ही केस है।²¹

‘पेशेंट विजय मित्र की ब्लड बायोकेमेस्ट्री उपलब्ध न होने से मायोकार्डियल इंफेक्शन (हार्ट अटैक) की पुष्टि नहीं होती, लेकिन ब्लड प्रेशर और ई०सी०जी० रिपोर्ट से जाहिर होता है कि पेशेंट विजय मित्र की हालत गंभीर थी। उसका प्रॉपर केयर और आब्जर्वेशन जरूरी था, जो नहीं हुआ। यह स्पष्टतः लापरवाही का मामला है और डॉक्टरों की नैतिकता के विरुद्ध है।²²

लचीली कानून व्यवस्था

क़ानून और नियम आज गुंडों और राजनेताओं की रखैल बनकर रह गए हैं। वास्तव में सारे क़ानून और नियम आम जनता के लिए ही होते हैं, जबकि ये लोग चाहे कुछ भी कर दें। इन पर कोई आँच नहीं आती। लचीली क़ानून व्यवस्था के चलते ईमानदार कर्तव्यनिष्ठ आदमी को यह लोग अपने जाल में फँसाकर उसका भविष्य अंधकार में डूबो देते हैं। इसी तरह का एक उदाहरण हमें ‘नृशंस’ कहानी में मिलता है। जब डॉ० भगत को बिना कसूर के निलंबित कर दिया जाता है—

जाँचदल ने डॉ० सी०के० भगत द्वारा जारी डेथ-सर्टिफिकेट की वैधानिक हैसियत के बारे में अपनी राय देते हुए लिखा—डॉ० सी०के० भगत द्वारा जारी एक जनवरी की रात को ड्यूटी पर नहीं थे, इसीलिए नियमत उन्हें डेथ सर्टिफिकेट जारी नहीं करना चाहिए था। इस तरह न सिर्फ अराजकता बढ़ेगी, बल्कि एक ग़लत परिपाटी भी जन्म लेगी। डॉ० भगत द्वारा जारी डेथ सर्टिफिकेट सिद्धांत नियम के विरुद्ध है।²³ जाँचदल के विशेषज्ञों की राय, गवाहों के संलग्न बयान और परिस्थितियों के आलोक में प्रमाणित है कि डॉ० सी०के० भगत का नक्सल लीडर विजय मित्र के साथ गहरा संबंध था और इसी कारण उन्होंने सरकार को बदनाम करने के लिए सुनियोजित साजिश के तहत असंवैधानिक डेथ सर्टिफिकेट जारी किया, जो घोर अनुशासनहीनता का परिचालक है और एक सरकारी सेवक की आचार-संहिता के विरुद्ध है। डॉ० के०सी० भगत को चिकित्सकीय मर्यादा के उल्लंघन और आपत्तिजनक आचरण के कारण तत्काल प्रभाव से

सेवामुक्त किया जाता है।²⁴

परंपरावादी विचारधारा से विमुखता

स्वतंत्रता के पश्चात् लोगों ने आजादी की खुशी मनाई। अनेक सुनहरे स्वप्नों को हृदय में संजोया, किंतु आजादी का प्रभाव युवावर्ग पर उल्टा पड़ा। दरअसल, अँग्रेजों द्वारा छोड़ी गई सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव उन्हें उद्वेलित कर रहा था, उन्हें आकर्षित कर रहा था। इसी के चलते लोगों में परंपरावादी विचारधारा की ओर विमुखता बढ़ती गई। उसी कारण युवावर्ग और पुरानी पीढ़ी के लोगों की विचारधारा मेल नहीं खाती। उनमें वैचारिक मतभेद बढ़ते ही जा रहे हैं। साथ ही राजनीतिज्ञों और आम जनता में भी इसी तरह के मतभेद दिखाई देते हैं। प्रस्तुत कहानी-संग्रह की कई कहानियों में भी कहानीकार ने इन मतभेदों को यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत किया है—

‘आप बे-सिर-पैर की बातें कर रहे हैं। आप पत्रकारों को तो जैसे और कोई काम नहीं रह गया है।’ गहरे कुएँ से आते कामरेड रामराज के स्वर में बेकली थी। रघुपति के भीतर सनसनी-सी दौड़ गई, उसने धड़कते दिल से दरवाजे के चिपके दोनों पल्लों के बीच हल्की-सी दरार बनाई। पत्रकार भी कम घबराया हुआ नहीं था। उसने धैर्य छोड़े बगैर कामरेड रामराज को फिर घेरने की कोशिश की—‘आपके क्षेत्र में बिशनपुर के प्रधान की आपकी पार्टी वालों ने क्यों हत्या की?’

रघुपति की ऊपर की साँस ऊपर, नीचे की साँस नीचे रह गई—‘ग्रामप्रधान की हत्या पार्टी ने नहीं, अपराधियों ने की है। कामरेड रामराज ने कड़ा विरोध किया।²⁵

‘एम०एल०ए० दीनानाथ पासवान पूर्ववत् बोलते रह जाते हैं—ई बहुत गंभीर मामला है। हमको एजूकेशन मंत्री के सामने कुछ बोलते नहीं बना। भागते-भागते आए हैं कि देखे भइया, हमारे क्षेत्र में एतना बड़ा अनर्थ कइसे हो रहा है? कहिए तो भला, का मामिला है?’

हेडमास्टर पंडित रामप्रसाद तिवारी इस तरह हो गई अपनी पेशी पर सकते में आ गए। जबान हकलाने लगी, ‘ऊ....ऊ....का है सर कि मुसहर सबका बच्चे लोग खुदे पढ़ना नहीं चाहते हैं।

यह सफेद झूठ रामबाबू से सहा नहीं गया। वह वहीं से लगभग फट पड़ा, यह बात नहीं है, सर। पंडितजी झूठ बोल रहे हैं।²⁶

वह एक कुर्सी पर पसरते हुए रामबाबू से मुखामिब हो गया, ‘तो आप हैं नवका मास्टर? समाज सुधारने आए हैं इहाँ?’

रामबाबू ने धैर्य से काम लिया। बेहद विनम्रता से बोला, ‘मैं आपका मतलब नहीं समझा।’

देखिए मास्टर, जादा तीन-पाँच करिएगा, तो मतलब हम बढ़िया से समझा देंगे। फिर लगभग घुड़कते हुए उसने सवाल दागा, ‘ई मुसहर डोम का उद्धार करे खातिर सरकार आपको भेजा है का?’

‘तालीम पाने का अधिकार तो सबको है मुखिया जी। रामबाबू का धैर्य भी टूट गया, मुसहर क्या, राजपूत क्या?’²⁷

अवैध शारीरिक संबंध

पुरुष-प्रधान भारतीय समाज में सदैव पुरुषों पर ही यह आक्षेप लगाया जाता है कि वे स्त्रियों को प्रताड़ित करते हैं। उसे अपनी हवस का शिकार बनाने की कुचेष्टा करते हैं, लेकिन एक वास्तविकता यह है कि स्त्रियाँ भी इस मामले में कम दोषी नहीं हैं। हमारे समाज में यदि किसी जवान स्त्री का पति मर जाए, तो वह अपनी शारीरिक भूख मिटाने के लिए अन्य लोगों से संबंध बना लेती है। समाज में अवैध शारीरिक संबंधों से कुप्रभाव पड़ता है। समाज विशृंखलित और विकृत हो जाता है। इन्हीं अवैध-संबंधों को कहानीकार ने 'वजूद' शीर्षक कहानी में जैनुल फूफी नामक पात्र के माध्यम से यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत किया है—

'बंद कमरे में फूफी होती है, मास्टर आब्दीन होता है और होती हैं—चीखें और आहों की नग्न परछाइयाँ। मास्टर आब्दीन की परछाई अक्सर फूफी से पूछती, 'जैनुल ऐसा कब तक चलेगा? बेहतर होगा हम निकाह कर लें।'

फूफी की परछाई हँसती, 'बेवा निकाह करें, क्या कहेंगे लोग?'

मास्टर आब्दीन मायूस हो जाता है और कई-कई दिनों तक फूफी के पास नहीं आता। उसकी इच्छा होती कि मास्टर आब्दीन आए और फूफी से निकाह कर ले, लेकिन फूफी ने मास्टर आब्दीन के लिए अपने कमरे का दरवाजा बंद कर दिया था। उस बंद कतरे में कभी फैजल आता, तो कभी लालचंद। फूफी के बंद कमरे में आहों चीखों वाली नंगी परछाइयाँ आती-जाती रहीं।²⁸

अंधविश्वास

भारतीय समाज में धर्म को प्रमुख स्थान दिया जाता है, लेकिन धर्म की आड़ में लोग तांत्रिकों के चक्करों में पड़कर अपना जीवन तो बरबाद करते ही हैं, साथ ही अंधविश्वास भी पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनमें हस्तांतरित होता रहता है। लोगों में आज अंधविश्वास घर कर गया है। इसीलिए वे कर्म करने की बजाए और अंधश्रद्धा में अधिक विश्वास करते हैं। इसी सामाजिक विकृति का चित्रण 'दूह' नामक कहानी में हुआ है—'एक दिन अचानक पता नहीं, क्या हुआ कि भगवानी बाबू के सारे जानवर खूँटे पर बँधे-बँधे ही पटपटाकर ज़मीन पर गिरे और देखते-देखते दम तोड़ गए। भावनी बाबू इस दुर्घटना से बुरी तरह आहत हुए। उनकी आत्मा काँप उठी। कई दिन अन्न-जल ग्रहण नहीं किया। बस, एक ही ज़िद पकड़ ली, 'बथान में भूत-प्रेत का वास हो गया है, उसे खाली कर दो।'²⁹ मैं चौंका। दिमाग में तरह-तरह के ख़्याल उभरे। कुदाल तेज़-तेज़ चलने लगी और जब ढेर हो आई। मिट्टी को हाथों से हटाकर देखा तो दंग रह गया। वहाँ इंसानी हड्डी दबी पड़ी थी। आनन-फानन में कुछ और मिट्टी हटाई, तो पूरा-का-पूरा इंसानी कंकाल सामने आ गया। मेरे हाथ-पाँव फूलने लगे। मैं पसीने से तर-ब-तर हो गया, घिग्घी बँध गई। बड़ी मुश्किल से बदहवासी के आलम में वहाँ से भागा—

'इससे साफ़ जाहिर होता है कि वह मलबा मुसलमानों की कब्रगाह है।'³⁰

कथनी और करनी में अंतर

भारतीय समाज का लगभग हर तबका इस विकृति से आबद्ध है। आम आदमी से लेकर राजनेता तक कहने और करने में बहुत अंतर रखने लगे हैं। मानव के दोहरे चेहरे उभरकर सामने आ रहे हैं, क्योंकि कि जो लोग देश में समानता की बात करते हैं, समाजवाद की बात करते हैं और मार्क्सवाद के आधार पर समाज लाना चाहते हैं, वास्तव में वे सब बेईमान और स्वार्थी हैं।

वे केवल झूठी दिलासा देकर सत्ता हथियाना चाहते हैं, क्योंकि जो मार्क्सवाद की बात करते हैं उनके पास अनेक कोठियाँ और अथाह संपत्ति है। कहानीकार ने इनकी कथनी-करनी को बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया है—

‘लेकिन ख़बर है कि ग्रामप्रधान ने रजुली नाम की किसी औरत को सरेआम नंगा करके पीटा था। उसके आदमी को जेल भिजवाया था ...प्रतिक्रिया में ग्रामप्रधान की हत्या कर दी गई। पत्रकार ने कामरेड रामराज को कठघरे में खड़ा कर दिया था।’

बिल्कुल मनगढ़ंत ख़बर है यह। कामरेड रामराज के बजाए इस बार कवि जी गरजे, वह तैश में थे। उनकी आवाज काँप रही थी, ‘बिशनपुर में कोई औरत नंगी नहीं की गई है... ग्रामप्रधान की हत्या में रजुली के आशिकों का हाथ है... ग्रामप्रधान का कसूर यही था कि उन्होंने गाँव में बढ़ रही बदचलनी रोकने की कोशिश की थी।’

वाह रे कवि! इतना बड़ा झूठा। रघुपति क्रोध के मारे काँपने लगा। उसकी आँखें जलने लगीं। मुट्ठियाँ भिंच गईं। जबड़े कस गए। जी में आया दरवाजा भड़ाक से खोले और लोगों को चीख-चीखकर बताए कि कवि फ़ॉड है।³¹

निष्कर्ष :

कथ्य की दृष्टि से भी यह कहानी-संग्रह भारतीय समाज में पनप रही विविध विकृतियों को उजागर करने में पूर्णतः सक्षम है। आज़ादी के बाद कुछ राजसत्ता के भोगी और लालची लोगों ने आम जनता की धार्मिक भावनाओं को भड़काने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। इसी कारण हिंदू-मुस्लिम दंगे होते हैं और लाखों मासूम लोग मारे जाते हैं। धर्म के ठेकेदार आम जनता को सांप्रदायिकता की भट्टी में झोंक देते हैं। रिश्वतखोरी की हालत हमारे देश में बहुत अच्छी है। सरकारी कर्मचारी तो रिश्वत में आकंठ तक डूबा है और मुर्दे के कपड़े तक बेचकर पैसा एंठ लेने की जुगाड़ करता फिरता है। नौकरियाँ उन्हें ही प्राप्त होती हैं, जो लाखों रुपए बतौर रिश्वत देते हैं। विविध धर्मों और जातियों का देश होने के कारण भारतवर्ष में जातीय-विद्वेष भी एक बड़ी सामाजिक विकृति है। समाज में अपने को स्वर्णजाति का कहने वाले लोग निम्नजाति के लोगों के बच्चों को शिक्षा से वंचित कर देना चाहते हैं। सरकारी विभागों में अव्यवस्था भी चरम पर है, जिसके कारण मरीज व्यक्ति को अपनी जान से हाथ तक धोना पड़ जाता है। कुछ लोग मात्र पैसा कमाने के चक्कर में अश्लील फ़िल्मों का प्रचार प्रसार करते हैं और नवयुवकों को गंदी सेक्स की दुनिया में धकेलने के लिए प्रेरित करते हैं। नौकरी न पाने के कारण कुछ लोग चोरी तक करते हैं। अध्यापक, जिन्हें कि भगवान का दर्जा है, वे अपने कार्य के प्रति बिल्कुल लापरवाह रहते हैं, स्कूलों में मात्र तनखाह लेने के लिए ही जाते हैं। डॉक्टर लोग भी अपने कर्तव्यों के प्रति लापरवाह होते हैं, जिसके कारण मरीजों की मौत भी हो जाती है। इसी तरह लचीली क़ानून-व्यवस्था, अवैध शारीरिक-संबंध, कथनी-करनी में अंतर आदि अनेक विकृतियाँ हैं, जिनके चलते भारतीय समाज विशृंखलित होता जा रहा है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अवधेश प्रीत कृत ‘नृशंस’ कहानी-संग्रह सामाजिक विकृतियों का खुला दस्तावेज है।

संदर्भ

1. प्रीत अवधेश, नृशंस, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 14-15

2. वही, पृ० 19-20
3. वही, पृ० 18
4. वही, पृ० 30
5. वही, पृ० 47-48
6. वही, पृ० 49
7. वही, पृ० 55
8. वही, पृ० 38
9. वही, पृ० 40
10. वही, पृ० 72
11. वही, पृ० 94
12. वही, पृ० 100
13. वही, पृ० 29
14. वही, पृ० 75
15. वही, पृ० 136-137
16. वही, पृ० 137
17. वही, पृ० 31
18. वही, पृ० 31
19. वही, पृ० 32
20. वही, पृ० 32
21. वही, पृ० 97
22. वही, पृ० 101
23. वही, पृ० 101
24. वही, पृ० 102
25. वही, पृ० 82
26. वही, पृ० 43
27. वही, पृ० 40
28. वही, पृ० 151
29. वही, पृ० 22
30. वही, पृ० 14
31. वही, पृ० 82

भारत में सामाजिक परिवर्तन का इतिहास (गांधीवादी अस्पृश्यता-निवारण कार्यक्रमों के विशेष संदर्भ में)

डॉ० (श्रीमती) राजबाला सिंह
उपाचार्य, इतिहास विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

अवधारणात्मक तथा ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

साम्राज्यवादी तथा उपनिवेशवादी शक्तियों की संरचना में यूरोप तथा इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांतियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उक्त क्रांतियों के परिणामस्वरूप यूरोपीय देश शक्तिशाली तथा संपन्न बन गए। स्वतंत्रता, समानता तथा भातृत्व के आदर्शों व विचारों की अभिव्यक्ति भी इन राष्ट्रों ने समय-समय पर की। आधुनिकीकरण, औद्योगिकीकरण तथा उदारवाद ने एशिया, अफ्रीका के देशों को उनकी वर्तमान स्थिति को सुधारने के लिए आधार स्तंभ का कार्य किया। जैसा कि डेनियल लरनर का मत है 'आधुनिकीकरण एक पुरानी प्रक्रिया के लिए समकालीन शब्द है। सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया द्वारा कम विकसित समाज अधिक विकसित समाजों में पाई जानेवाली विशेषताओं को प्राप्त करते हैं। यह प्रक्रिया अंतर्राष्ट्रीय अथवा अंतःसमाज संपर्क के द्वारा कार्यशील होती है।' सामाजिक आंदोलन का उद्देश्य किसी न किसी रूप में सामाजिक परिवर्तन से होता है। दोनों के अंतःसंबंधों की प्रकृति के निर्धारण में परिवर्तन-ग्राह्यता, विरोध तथा संदर्भित आंदोलन के प्रचालन के निर्देश आदि कारक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।²

सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा आर्थिक आयामों से आधुनिकीकरण या सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया संचालित होती है। भारत में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया की शुरुआत 19वीं तथा 20वीं शताब्दी में हुई थी। सामाजिक आयाम में ही भारतीय समाज की कुरीतियाँ आती हैं। सामाजिक परिवर्तन में राजा राममोहन राय से लेकर बाबा आमटे जैसे सामाजिक चिंतकों तथा समाज-सुधारकों का महत्वपूर्ण सकारात्मक योगदान है। सांस्कृतिक क्षेत्र में 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' जैसी अनेक संस्थाएँ कार्यशील रही हैं। राजनीतिक दासता से मुक्ति दिलाने में दादाभाई नौरोजी, बालगंगाधर तिलक, मदनमोहन मालवीय तथा महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस ने प्रभावशाली भूमिका का निर्वहन किया था। आर्थिक क्षेत्र में उद्योगपतियों ने राष्ट्रीय स्वावलंबन की प्राप्ति का बीड़ा उठाया और पं० जवाहरलाल नेहरू जैसे नेताओं ने देश को विश्व के अग्रणी देशों की पंक्ति में बैठाने का संकल्प किया तथापि भारत के आधुनिकीकरण और 'सामाजिक परिवर्तन' के संदर्भ में महात्मा गांधी जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

भारत में गांधी और सामाजिक परिवर्तन पर लिखते हुए प्रो० जे०एस० माथुर ने कहा है, एक राष्ट्र के इतिहास में ऐसे क्षण भी आते हैं, जब परिवर्तन की शक्तियाँ एक अकेले व्यक्तित्व के इर्द-गिर्द ताना-बाना बुन लेती हैं। यह व्यक्ति सुदूर और अर्वाचीन अतीत के समन्वय का प्रतिनिधित्व करता है। वह भावी प्रारब्ध की ऊँचाई का रूप तथा भूत-वर्तमान का प्रधान संचालक होता है।³ गांधीजी भारतीय समाज की समकालीन समस्याओं का विश्लेषण करने में तथा कार्यवाही की एक एकीकृत योजना की रचना करने में सफल रहे। गांधीजी विचारों के भी एक नेता थे और मनुष्यों के भी।⁴ सामाजिक परिवर्तन की जिस प्रक्रिया को उन्होंने जन्म दिया था वह इतनी व्यापक थी कि पूरा राष्ट्र उन्हें 'राष्ट्रपिता' कहकर संबोधित करता है।

अस्पृश्यता विषयक वैचारिक, सामाजिक तथा धार्मिक मान्यताएँ तथा प्रतिक्रियाएँ—

महात्मा गांधी आधुनिकता और सामाजिक परिवर्तन के सूत्रधार थे। वे आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता के तकनीकी, धर्मनिरपेक्ष, आक्रामक और भोगवादी संस्कृति के विरोधी थे। उन्होंने प्लेटो, रूसो और टॉस्टाय की भाँति समान 'प्रकृति की ओर वापस जाओ' का संदेश दिया। अपनी परम्परागत शैली के बावजूद गांधीजी रूढ़िवादी नहीं, वरन आधुनिकतावादी थे। के०एल० कमल के अनुसार गांधीजी का लक्ष्य समाज का आधुनिकीकरण करना था, यद्यपि उनके कार्य करने की पद्धति परंपरागत प्रतीत होती थी।⁵ अस्पृश्यता-निवारण के संबंध में पं० मदन मोहन मालवीय गांधी जी के आदर्श थे। मालवीय जी ने प्रयाग में सभी शंकराचार्यों तथा वैदिक विद्वानों की सभा में यह प्रस्ताव पारित कराया कि 'अस्पृश्यता' वैदिक नहीं है। इसका भारतीय शास्त्रों में कोई स्थान नहीं है। अस्पृश्यता सर्वाधिक कष्टपूर्ण सामाजिक समस्या है, जिसके निवारण में इतिहास ने सभ्य लोगों को शामिल किया।⁶ अस्पृश्यों को मंदिरों में प्रवेश करने, सार्वजनिक कूपों और स्कूलों का उपयोग करने और कभी-कभी सड़कों तक के उपयोग के प्रारंभिक अधिकारों से वंचित कर दिया जाता था।⁷

अस्पृश्यता की संस्था कोई आधुनिक विकास नहीं थी और न ही इसके विरुद्ध संघर्ष कोई नई वस्तु थी। यह संस्था ईसा से हजारों वर्ष पहले उत्पन्न हो गई थी तथा इसके विरुद्ध संघर्ष भी हजारों वर्ष पुराना है।

अस्पृश्यता की प्रथम अवस्था में गौतमबुद्ध के सुधारवादी आंदोलन ने हिंदूधर्म के कर्मकांड के विरुद्ध समानता, सहिष्णुता के सिद्धांतों पर बल देकर जाति-व्यवस्था की सुदृढ़ मान्यता पर कठोर आघात किया था। बौद्धधर्म ब्राह्मणवाद से पराजित हो गया और अस्पृश्यता की नींव हिलाने में सफल नहीं हुआ। दूसरी अवस्था में हजारों वर्षों के अमानवीय व्यवहार और असहनीय शोषण के विरुद्ध मध्ययुग में स्वयं अस्पृश्यों में प्रतिक्रिया हुई। कबीर, रैदास, दादू, नानक ने धार्मिक अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाई।

अस्पृश्यता के विरुद्ध तीसरी अवस्था में ईसाई मिशनरी ने एक हाथ में बाइबिल और दूसरे हाथ में आर्थिक सहायता के वचन के साथ अवतरित होकर अस्पृश्यों के एक रक्षक से प्रतीत होने लगे। अस्पृश्यों ने भी उनके समानता और भौतिक सुविधाओं के वचन को बड़ी आतुरता और कृतज्ञता के साथ सुना।

अस्पृश्यता की विभिन्न अवस्थाएँ : धार्मिक तथा सामाजिक सुधार आंदोलन

अस्पृश्यता के विरुद्ध संघर्ष की चौथी, पाँचवी और छठी अवस्थाएँ क्रमशः 19वीं शताब्दी

के हिंदूधर्म सुधार-आंदोलनों, पं० मदनमोहन मालवीय, महात्मा गांधी तथा डॉ० भीमराव अंबेडकर के सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक क्रियाकलापों से संबंधित हैं। इनमें से पहली तथा दूसरी अवस्थाओं में 'अस्पृश्यता' को हिंदूधर्म का अंग मानने से इंकार करते हुए, उक्त बुराई के प्रति प्रभावशाली आवाज को उठाया गया। दूसरे ने अस्पृश्यता-निवारण को राष्ट्रीय आंदोलनों का अनिवार्य अंग बनाकर, उसके विरुद्ध जन-जन में जागृति उत्पन्न की। तीसरे ने शूद्रों को 'आत्म सहायता' का मंत्र देकर, उन्हें अपनी जंजीरों को स्वयं तोड़ने के लिए प्रेरित किया। सभी अवस्थाओं ने संयुक्त रूप से उस वातावरण का निर्माण किया, जिसे स्वतंत्र भारत के संविधान के अनुच्छेद-17 में कहा गया—'अस्पृश्यता से उत्पन्न किसी अयोग्यता का लागू करना दंडनीय अपराध है।'

19वीं शताब्दी के हिंदूधर्म सुधार-आंदोलनों में राजा राममोहन राय द्वारा स्थापित 'ब्रह्मसमाज' ने अस्पृश्यता के विरुद्ध आवाज उठाई। 'आर्यसमाज' के प्रणेता स्वामी दयानंद सरस्वती ने बताया कि जाति एक धार्मिक संस्था नहीं वरन् एक सामाजिक संगठन है। अस्पृश्यता का धर्म या जन्म से कोई संबंध नहीं है। वेदों में अस्पृश्यता के लिए कोई स्थान नहीं है। स्वामी दयानंद के प्रयत्नों से 'अछूतोद्धार' आर्यसमाज के कार्यक्रम का प्रमुख अंग बन गया। उनके अनुयायियों में स्वामी श्रद्धानंद ने 'दलितोद्धार' आंदोलन और लाला लाजपत राय ने अछूतोद्धार आंदोलन, मालवीय जी ने 'मंत्रदीक्षा आंदोलन' द्वारा इस क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया। वीर सावरकर और हिंदू महासभा ने भी अस्पृश्यता की प्रथा को समाप्त करने के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने अस्पृश्यता की प्रथा को समाप्त करने के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने अस्पृश्यता-निवारण का न केवल उपदेश दिया, अपितु उस पर आचरण भी किया था।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपने अछूतोद्धार कार्यक्रम के द्वारा अछूतों को हिंदू धर्म को छोड़ने और धर्म-परिवर्तन के द्वारा दूसरे धर्मों को ग्रहण करने से रोका। उन्होंने शुद्धि के कार्यक्रमों द्वारा हिंदूसमाज के बंद द्वार अछूतों के लिए खोल दिए। गांधी जी के शब्दों में—स्वामी दयानंद सरस्वती ने हमारे लिए जो अनेक मूल्यवान धरोहर छोड़े हैं, उनकी अस्पृश्यता के विरुद्ध असांदिग्ध घोषणा निःसंदेह उनमें से एक है।⁸ गांधी जी के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अस्पृश्यता के विरुद्ध धर्मयुद्ध अस्पृश्यता के विरुद्ध संघर्ष की सर्वाधिक प्रभावशाली अवस्था थी, क्योंकि इस अवस्था में 'अस्पृश्यता' केवल सामाजिक महत्वाकांक्षी समस्या नहीं रह गई, अपितु राष्ट्रीय मुक्ति के संघर्ष का एक आवश्यक अंग बन गई थी।⁹

अस्पृश्यता विषयक गांधीवादी अवधारणा : सिद्धांत तथा व्यवहार

महात्मा गांधी जी के अस्पृश्यता-निवारण कार्यक्रम की सफलता की पृष्ठभूमि में दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की स्थिति, भारतीय अछूतों की स्थिति से काफी मिलती-जुलती थी। जैसा कि लुई फिशर महोदय का मत है 'यह कैसे हो सकता था कि दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों की समानता के लिए ताज़ लड़ाई लड़कर आए महात्मा गांधी जी भारत में भारतीयों के द्वारा भारतीयों पर आरोपित निर्मम असमानता को देखकर चुप रह जाते।'¹⁰

अस्पृश्यता के विरुद्ध जिस निष्ठा के साथ गांधीजी ने संघर्ष किया था, वैसा किसी और ने नहीं किया। अन्य सुधारकों के कार्यक्रमों में 'अस्पृश्यता का उन्मूलन' तीन महत्त्वपूर्ण कार्यों में से एक था। अन्य दो थे—हिंदू, मुस्लिम एकता और खादी। उन्होंने कहा—जब तक हिंदू अपने

भाईयों के एक भाग (अंश) को छूना पाप मानते रहेंगे, स्वराज्य की प्राप्ति असंभव रहेगी।

गांधी जी से न केवल अस्पृश्यता-निवारण का उपदेश दिया, अपितु स्वयं व्यावहारिक जीवन में उस पर अमल भी किया था। उन्होंने अपने अस्पृश्यता-निवारण अभियान का शुभारंभ एक अछूत परिवार को आश्रम में प्रवेश देकर और उसकी कन्या लक्ष्मी को अपनी पुत्री के रूप में अपनाकर किया।¹¹ इस घटना का भारतीय समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा। कांग्रेस गांधी के आगमन से पहले भी सन् 1917 में दलित जातियों की दशा सुधारने की दिशा में प्रयास प्रारंभ कर चुकी थी पर इसका कोई व्यावहारिक प्रभाव नहीं पड़ा, परंतु गांधी जी ने कांग्रेस को अस्पृश्यता को उखाड़ फेंकने का एक दृढ़ संकल्प प्रदान किया।

सन् 1921 ई० में अहमदाबाद कांग्रेस ने यह निश्चय किया कि कोई भी व्यक्ति कांग्रेस का स्वयंसेवक नहीं बनाया जाएगा, जब तक वह शपथ-पत्र पर हस्ताक्षर नहीं करेगा, जिसमें यह भी कहा गया था कि 'भगवान को साक्षी मानकर मैं विश्वास करता हूँ तथा सभी संभव अवसरों पर दलित वर्गों से व्यक्तिगत संबंध स्थापित करने का प्रयास करूँगा और उनकी सेवा करूँगा।'¹² 12 फरवरी, 1922 को कांग्रेस कार्यसमिति ने अपनी वारदोली बैठक में अस्पृश्यता निवारण को कांग्रेस कार्यक्रम का एकीकृत भाग घोषित कर दिया।¹³ सन् 1931 में लंदन के द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में डॉ० भीमराव अंबेडकर के पृथक् निर्वाचक-मंडल की माँग के विपरीत कहा कि पृथक् निर्वाचक-मंडल अस्पृश्यों के बंधन को शाश्वत बना देंगे।¹⁴ उन्होंने घोषणा की कि यदि मैं इस बात का प्रतिरोध करनेवाला अकेला व्यक्ति होऊँगा, तब भी मैं इसका अपना जीवन देकर भी प्रतिरोध करूँगा।¹⁵ जब ब्रिटिश सरकार ने सन् 1932 ई० में सांप्रदायिक निर्णय की घोषणा करके इन लोगों को हिंदू-समाज से पृथक् करने की चेष्टा की, तब महात्मा गांधी जी ने इसके विरोध में आमरण प्रारंभ करके अपने वचन को पूरा किया।

महात्मा गांधी का युगप्रवर्तक अनशन अस्पृश्यता के इतिहास में एक नया मोड़ सिद्ध हुआ। इसके परिणामस्वरूप पूना समझौता ही नहीं हुआ, जो स्पष्ट रूप से पिछड़े हुए वर्ग के लिए लाभदायक था¹⁶ क्योंकि उसने प्रांतीय विधान मंडलों में पिछड़े वर्ग के कोटे की सीटों को 71 से बढ़ाकर 148 कर दिया, अपितु एक ऐसी लंबी जंजीर को तोड़ दिया जो प्राचीनकाल से चली आ रही थी। जिसने करोड़ों लोगों को दास बना रखा था। अस्पृश्यता की सार्वजनिक मान्यता नष्ट हो गई तथा उसमें विश्वास समाप्त हो गया।¹⁷ भारतीय नेताओं की एक बैठक हुई, जिसने 25 सितंबर 1932 को एक प्रस्ताव पारित किया कि आगे से हिंदुओं में कोई भी व्यक्ति अपने जन्म के कारण अस्पृश्य नहीं माना जाएगा कि सभी हिंदू नेताओं का यह कर्तव्य होगा कि सभी उचित और शांतिपूर्ण उपायों के द्वारा मंदिरों में प्रवेश करने पर निषेध-सहित उन सब सामाजिक अयोग्यताओं के शीघ्र निवारण को प्राप्त करें, जो रीति-रिवाजों ने तथा कथित पिछड़े हुए वर्ग पर आज थोप दी हैं।¹⁸ अब अस्पृश्यता को मुक्त कराना गांधीजी के जीवन का केंद्रीय लक्ष्य हो गया।¹⁹ उन्होंने अस्पृश्यता के विरुद्ध एक प्रकार का धर्मयुद्ध प्रारंभ कर दिया, जिससे हिंदुओं में अस्पृश्यों के लिए मंदिरों के द्वार खोलने की होड़-सी प्रारंभ हो गई।²⁰ साथ ही हरिजन सेवक संघ की स्थापना हुई, जिसे आर्थिक सहायता, शिक्षा और अस्पृश्यता को अवैध बनाने के लिए विधि निर्माण के इसके त्रिसूत्रीय कार्यक्रम के साथ हरिजन समुदाय के लिए महात्मा की महान और अनुपम सेवा मानी जाती है।²¹

अस्पृश्यता विषयक संक्रमणकालीन तथा समन्यवादी अवस्थाएँ—गांधी तथा अंबेडकर

अस्पृश्यता के विरुद्ध संघर्ष की छठी अवस्था के नायक डॉ० भीमराव अंबेडकर थे। अस्पृश्यतारूपी दैत्य के विरुद्ध संघर्ष करने वालों में उनका स्थान अद्वितीय है।²² उन्होंने उनमें जागृति लाने और अन्य लोगों का समर्थन प्राप्त करने के लिए पत्रिकाएँ निकालीं। उन्होंने उनके शैक्षणिक और आर्थिक उत्थान के लिए कार्य किया। उन्होंने उनके लिए नागरिक अधिकार और सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए निष्क्रिय प्रतिरोध आंदोलन चलाया तथा उनके लिए राजनीतिक अधिकार पाने के लिए कड़ा संघर्ष किया। वे गांधीवादी हृदय-परिवर्तन की पद्धति में निहित मंदगामिता की प्रवृत्ति को सहन नहीं कर सके तथा अक्टूबर 1935 में संपूर्ण भारत को चकित करते हुए, उन्होंने नासिक में धर्म-परिवर्तन का नारा दिया, जिससे अस्पृश्यता-विरोधी आंदोलन अपनी छठी अवस्था में पहुँच गया। एक ऐसी अवस्था जिसमें तथाकथित अस्पृश्य इतिहास में प्रथम बार स्वयं अपनी लड़ाई लड़ने के लिए उठ खड़े हुए। यह बाहर से सुधार नहीं था, वरन् अंदर से एक विद्रोह था।²³

कुछ समय तक डॉ० अंबेडकर के आंदोलन को भारी सफलता मिली परंतु अंततः उनके आंदोलन का ज्वार उतनी ही शीघ्रता से उतर गया, जितनी शीघ्रता से वह चढ़ा था। गांधी जी ने ठीक ही कहा था—हरिजनों के लिए कहीं भी तब तक सामाजिक समानता नहीं है, वास्तविक स्वतंत्रता नहीं है जब तक कि वे प्रथम हिंदूधर्म से प्राप्त नहीं कर लेते।²⁴ इस प्रकार कुछ ही वर्षों में हरिजनों ने अंबेडकर के आह्वान को लगभग भुला दिया तथा अस्पृश्यता-निवारण के आंदोलन ने पुनः गांधीजी के 'हृदय-परिवर्तन' की पद्धति को अपना लिया।

सन् 1937 से 1939 तक काँग्रेस मंत्रिमंडलों ने हरिजनों के उत्थान के लिए अनेक कानून बनाए। प्रोफेसर कूपलैंड जैसे आलोचकों ने भी गांधीजी के हरिजन उत्थान कार्यक्रम के महत्त्व को स्वीकार किया है। उनके शब्दों में 'सन् 1920 से दलित वर्गों का उत्थान काँग्रेस के कार्यक्रम का प्रधान विषय रहा है। 'हरिजनों' या 'भगवान की संतान' जैसा कि गांधी उन्हें कहते हैं, गांधी की गहरी रुचि असंदिग्ध है।²⁵ डॉ० अंबेडकर गांधीजी के सुधार आंदोलन की प्रकृति को ठीक प्रकार से समझ नहीं सके थे। गांधीजी की सफलता का रहस्य उनकी अनुदारवादिता में निहित है। गांधीजी अस्पृश्यता की नींव को इसलिए हिला सके, क्योंकि उन्होंने हिंदूधर्म की मूलभूत शिक्षाओं को स्वीकार कर लिया था, बुरी प्रथाओं को अस्वीकार कर दिया था। ए०एफ० ब्रोकवे का मत है 'यह एक असंदिग्ध तथ्य है, किसी भी व्यक्ति ने अस्पृश्यों के लिए गांधीजी से अधिक नहीं किया है और किसी को भी अस्पृश्यों का उतना प्यार नहीं मिला है, जितना गांधीजी को मिला है।'²⁶

सारे मतभेद के बावजूद दोनों एक-दूसरे के पूरक थे। यदि अंबेडकर ने अपने समुदाय का अपने अधिकारों के लिए संघर्ष और आंदोलन करने के लिए आह्वान नहीं किया होता तो गांधीजी का अस्पृश्यता-विरोधी आंदोलन उतनी सफलता प्राप्त नहीं कर पाता, जितनी उसने प्राप्त की। श्रीधरानी जी के शब्दों में—तथाकथित अस्पृश्य इतिहास में पहली बार अपनी लड़ाई स्वयं लड़ने के लिए उठ खड़े हुए थे। यह बाहर से सुधार न होकर, अंदर से एक विद्रोह था।²⁷ इसने सुधारकों के मार्ग को काफी सरल बना दिया। संविधान प्रारूप समिति के चेयरमैन डॉ० भीमराव अंबेडकर द्वारा निर्मित संविधान में घोषणा की गई कि अस्पृश्यता का अंत किया जाता है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है। अस्पृश्यता से उपजी किसी नियोग्यता

को लागू करना अपराध होगा, जो विधि के अनुसार दंडनीय है। सन् 1955 ई० में संसद ने अस्पृश्यता अपराध अधिनियम पारित कर दिया।

संदर्भ

1. लरनर, डेनियल, मार्डनाइजेशन-सोशल आस्पेक्ट, डेबिट एल० शिल्ज-इंटरनेशनल इन साइक्लोपीडिया ऑफ़ द साइंसेज, पृ० 386
2. द्विवेदी, रमेशनंदन, आंदोलन का समाजशास्त्र, पृ० 196-197
3. माथुर जे०एस०, गांधी एंड सोशल चेंज इन इंडिया, मोनोग्राफ, पृ० 1
4. वही
5. पांडे, राम, कांग्रेस हन्ड्रेड इयर्स में कमल, के०एल०, 'दी इंडियन नेशनल कांग्रेस इज ए माडर्नाजिंग फोर्स, पृ० 222-23
6. क्रेल्स फोर्ड, एच०एन०, सब्जेक्ट इंडिया, पृ० 11
7. फिशर, लुई, द लाइफ ऑफ़ महात्मा गांधी, पृ० 16
8. गांधी, एच०बी० शारदा (संपा०), दयानंद कोमेमोरेशन वाल्यूम, वैदिक मंत्रालय, अजमेर
9. कौशिक, पी०डी०, द कांग्रेस आइडियोलॉजी एंड प्रोग्राम 1920-1985
10. फिशर, लुई-पूर्वोक्त, पृ० 164
11. गांधी, एम०के०, आटोबायोग्राफी एंड प्रोग्राम 1920-1985, पृ० 24
12. द इंडियन नेशनल कांग्रेस 1920-23, अ०मा०का०क०, इलाहाबाद 1924, पृ० 150-151
13. वही, पृ० 180-181
14. यंग इंडिया, नवंबर, 1931
15. इंडियन राउंड टेबुल कॉन्फरेंस (सेकेंड सेशन, वाल्यूम-3, पृ० 1385
16. इंडिया इन 1931-32, गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया, कलकत्ता, पृ० 73
17. फिशर, लुई, पूर्वोक्त, पृ० 347
18. अंबेडकर, बी०आर०-व्हाट कांग्रेस एंड गांधी हैव इन टू-देखिए द अनटचेबुल्स, थेकर एंड कंपनी, बंबई, दूसरा संस्करण 1946, पृ० 103
19. पोखर एंड ब्रदर्स (संपा०), महात्मा गांधी में वेल्स फोर्ड, ओडम प्रेस, लंदन 1941, पृ०-2000
20. अंबेडकर, बी०आर०, देखिए पूर्वोक्त, पृ०-103
21. इलामी मरकज (संपा०), व्हाट गांधीजी हेज इन फा इंडिया में एल०एन० राव, पृ० 93
22. कौशिक, पी०डी०, अंबेडकर, प्रोफेक्ट ऑफ़ सेल्फ हेल्थ एंड सेवियर ऑफ़ अनटचेबल्स
23. श्रीराधरानी, कृष्णलाल, माई इंडिया, माई वेस्ट, विक्टर गोलमेज, लंदन 1942, पृ० 207
24. हरिजन, 21 नवंबर, 1936
25. कूपलैंड, आर०, द इंडियन प्रॉब्लम्स भाग-2, पृ० 143
26. ब्रोकवे, ए०एफ०, द इंडियन क्राइसिस, पृ० 143
27. श्रीराधरानी, के०एल०, पूर्वोक्त, पृ० 207

पत्नी डॉ० आर०एस० सिंह

एन 4/35, बी-72

महामना नगर कालोनी, करौंदी

पोस्ट-बी०एच०यू०, वाराणसी 221005

मो० 0945812379

‘कमरा नंबर 103’ में प्यासी भारतीय संवेदनाएँ

डॉ० रेनू यादव

सुधा ओम ढींगरा का कहानी संग्रह शकमरा नंबर 103 भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति, परिवेश, भाषा और परंपरा का, शरीरविज्ञान, मनोविज्ञान और मानवीयता का, संवेदना और वेदना का, मानव जीवन के सहजता और असहजता का एक ऐसा शनैः शनैः प्रवाहित होने वाला कॉकटेल है जो पाठक के मानसपटल पर दूरगामी प्रभाव बनकर अंकित रहता है। बनावटीपन से दूर कहानियाँ लेखिका के जीवन का अभिन्न हिस्सा-सा प्रतीत होती हैं। प्रवासी होने का दर्द भी लेखिका बखूबी समझती है और अपनी कहानियों में अभिव्यक्त भी करती हैं। अपनी संवेदनशीलता के कारण व्यथा-कथा के अनोखे संजाल से सहज ही पाठक को प्रभावित कर लेती हैं। उनकी हर कहानी की शुरुआत एक साधारण कथा की तरह होती है और धीरे-धीरे पात्र कथाओं में साँस लेने लगता है। अमेरिका का हर परिदृश्य प्रवासियों के साथ भारतीयता की साँसें लेता है और वापसी के लिए अथवा अपने परिजनों के लिए आहें भर-भर कर रह-सह लेता है। लेखिका की सबसे बड़ी विशेषता है कि ये कहानियाँ में संघर्षों के आलोड़न से उत्पन्न संवेदना को सहज और वैज्ञानिक रूप देती हैं, इन्होंने कभी भी किसी भी परिस्थिति में किसी भी पात्र पर दोषारोपण नहीं किया बल्कि उन्हें नदी की धारा के साथ-साथ सहज ही प्रवाहित होने दिया है।

‘कौनसी जमीन अपनी’ कहानी में अपने जमीन को तलाशते पात्र अमेरिका से भारत लौट आते हैं पर जमीनवासी उन्हें ठुकरा देते हैं, पर शकमरा नंबर 103 पराये जमीन पर ही संघर्षों का घर बना लेते हैं। हर कहानी का शीर्षक मन में एक प्रश्न खड़ा कर देता है और कहानी का अंत मन में एक एहसास छोड़ जाता है, जो परिस्थितिवश उपजी संवेदना का सूत्र सपनों की अमेरिका के भूमि पर सुख का सपना ही लिए रह जाती है। तटस्थता के साथ लिखी गई ये कहानियाँ देश और परदेश के अंतःसूत्र को मजबूत बना देती हैं।

इस कहानी-संग्रह की सातों कहानियाँ अलग-अलग परिस्थितियों में बुनी गई हैं, पर सबमें एक ही भाव समान है प्रवासी अस्मिता का दर्द। ‘आग में गर्मी कम क्यों है’, ‘और बाड़ बन गई’, ‘कमरा नंबर 103’, ‘वह कोई और थी’, ‘दृश्य भ्रम’, ‘सूरज क्यों निकलता है’ और ‘टारनेडो’ साधारण जीवन का असाधारण अंतर्पाठ है। ये कहानियाँ अपने आप में आज के विमर्शों से परे दृष्टिगत होती हैं, पर हर कहानी जैसे ‘आग में गर्मी कम क्यों है’ समलैंगिक तथा स्त्री-संवेदना, ‘और बाड़ बन गई’ उत्तरआधुनिक तथा प्रवासी भारतीयों की संवेदना, ‘कमरा नंबर 103’ वृद्धाओं की स्थिति एवं संवेदना, ‘वह कोई और थी’ पुरुष और प्रवासी भारतीयों की

संवेदना, 'दृश्य भ्रम' जाति-धर्म एवं परंपराओं के प्रति गहरे लगाव से उत्पन्न प्रेम और जीवन में ऊथल-पुथल के परप्रेक्ष्य में मानवीय संवेदना, 'सूरज क्यों निकलता है' कफन के तर्ज पर अमेरिका के भिखारियों की स्थिति तथा 'टारनेडो' उत्तरआधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में सशक्त और विकृति स्त्री-विमर्श आदि अलग-अलग संवेदनाओं और विमर्शों की ओर इंगित भी करती है।

'आग में गर्मी कम क्यों है' समलैंगिक सहजीवन से प्रभावित परिवार की दास्तान और एक पत्नी की पीड़ा की कहानी है। गिरिराज किशोर का उपन्यास "मछली मरी हुई" में जिस बेबाक तरीके से लेस्बियननिज्म का वर्णन है, सुधा जी ने उस बेबाकीपन को तो नहीं अपनाया पर एक मर्यादा के साथ समलैंगिकता का एक वैज्ञानिक परिदृश्य अवश्य प्रस्तुत किया है। समलिंग या विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण शरीर में उत्पन्न केमिकल्स कारण है जिसे वैज्ञानिक नायिका साक्षी बखुबी समझती है, उसे जितना अधिक दुःख उसके पति शोखर के समलिंगी होने से नहीं है; उससे कहीं अधिक दुख शोखर के झूठ से है कि उसने इतने दिनों तक साक्षी को धोखे में रखा और प्यार का ढोंग रचता रहा। इस कहानी की खास बात है कि यहाँ कोई भी पात्र एक-दूसरे को दोषी नहीं ठहराते बल्कि वैज्ञानिकता को समझते हुए सहज रूप से गतिशील होते हैं। शोखर साक्षी से अपने अंदर हुए बदलाव को चिकित्सकीय ढंग में प्रस्तुत करता है ख "अभी नए शोधों से पता चला है कि पुरुषों में मेनोपाज होता है, जिसे एनड्रोपाज कहते हैं और उनमें धीरे-धीरे शारीरिक परिवर्तन होते हैं, महिलाओं की तरह एकदम नहीं। बाई सेक्सुअल इंसान उम्र के किसी भी हिस्से में, स्त्री-पुरुष, दोनों की तरफ आकर्षित हो सकता है और मेरी बदकिस्मती है कि मैं बाई सेक्सुअल हूँ"। (सुधा ओमढींगरा, कमरा नंबर 103, पृ.19)

साक्षी एक सुलझी हुई स्त्री है वह जेम्ज के साथ शोखर के रिश्ते को बच्चों की खातिर स्वीकार कर लेती है। यह सुधा की एक नयी स्त्री है—वह संवेदनशील है, अपने पति से अत्यधिक प्रेम करती है और अपने साथ हुए धोखे से वह परेशान भी है, फिर भी सच्चाई स्वीकार करती है, परिवार तोड़ने के बजाय उसे जोड़े रखने में समझादारी समझती है। भले उसके अंदर से प्यार की गर्मी कम पड़ने लगे, पर वह साथ नहीं छोड़ती। यह सुधा की स्त्री का मजबूत पक्ष है पर पुरुष शोखर का कमजोर पक्ष है कि वह जेम्ज से मिले धोखे को सहन नहीं कर पाता बल्कि आत्महत्या कर लेता है—'जेम्ज उसे किसी और के लिए छोड़ गया, वह उसका अलगाव सह नहीं सका। वह जेम्ज को बहुत प्यार करता था, उसके जीवन का कोई अर्थ व औचित्य नहीं रहा। ऐसे जीवन को समाप्त करना उसने बेहतर समझा"। (कमरा नं 103, पृ. 22.)

यह काम साक्षी भी कर सकती थी पर उसने ऐसा नहीं किया, और न ही पति से अपना अधिकार माँगा। यह एक उत्तरआधुनिक नारीवाद का प्रतीक है। वह परिस्थितियों से भागती नहीं, बल्कि रोष का घूँट पीकर भी समझदारी से सच्चाई स्वीकार करती है और उसका सामना करती है, क्योंकि उसके ऊपर परिवार की जिम्मेदारी है और उसे बहुत कुछ करना है।

यह कहानी समलैंगिक-विमर्श के माध्यम से नैतिकता की दुनियाँ को चुनौती है तथा समलैंगिकता से पड़े परिवार पर प्रभाव की कहानी है; जिसके कारण पति-प्रेम में संवेदना कम पड़ जाती है और उसके मृत्यूपरांत भी नायिका की संवेदना जड़वत ही रहती है।

'और बाड़ बन गई' एक बेहद सहजता के दायरे में बँधी असहज उम्मीदों की कहानी है। देश हो या विदेश, हर जगह व्यक्ति अपने संवेदना का सूत्र ढूँढना चाहता है, चाहे वह प्रेमी

हो, परिवार हो, पड़ोसी हो या समाज... जिससे वो अपना सुख-दुख बाँट सके। यही स्थिति प्रवासी भारतीयों के साथ भी है कि भारतीय पड़ोसी होगा तो अवश्य सुख-दुःख में साथ देगा, एक-दूसरे को समझेगा। यह जाने बगैर नए पड़ोसी से यह उम्मीद लगा बैठना कि वह सामान्यतः साथ रहेगा, पर नए पड़ोसी को किसी की आवश्यकता नहीं है, इसलिए उसने गमलों से बाड़ बनवा लिया जो अलगाव का प्रतीक है।

‘कमरा नंबर 103’ मूक पात्र अर्थात् कोमा में लेटे एक वृद्धा की संवेदना की कहानी है। यह कहानी एक ओर वृद्धों की परिस्थितियों को दर्शाता है तो दूसरी ओर युवा वर्ग के युवागत-संवेदना पर प्रश्नचिह्न भी खड़ा करता है। उत्तरआधुनिकता की भागदौड़ में व्यक्ति भौतिक चीजों से कमी तो पूरा कर लेता है, परंतु मन से खाली हो अपने माँ-बाप को, अपने बच्चों के खालीपन ही दे पाता है। बार्नज अस्पताल के कमरा नंबर 103 के बिस्तर पर कोमा से पीड़ित मिसेज वर्मा उन प्रत्येक वृद्धाओं का प्रतीक हैं, जिन्होंने अपनी प्रिय संतान से उपेक्षित हो जीते-जी चुपपी साध ली है। वे कोमा मंन हों या न हों पर उनका जीवन किसी कोमा से कम भी नहीं। उन्होंने जीजिविशा इसलिए समाप्त हो गई है कि उन्हें समझने वाला कोई नहीं है, जिन औलादों को उन्होंने कलेजे से लगाकर रखा, वे ही उनके कलेजे के टुकड़े करने में कसर नहीं छोड़ते। वे चुपचाप उन्हें पराये देश में परायों की भाँति अस्पताल के सामने छोड़ जाते हैं और अपने कर्तव्यों से निवृत्त हो जाते हैं। प्रवासी वृद्धों के लिए यह दोहरा श्राप है—एक; वे पराये देश में आकर भाषा-संस्कृति से गहरा आघात खाये रहते हैं, दूसरा; जिनके लिए वे अपना सब-कुछ छोड़कर अपनों की खातिर आते हैं काम समाप्त हो जाने पर उन्हें पराये लोगों के बीच टुकरा दिए जाते हैं। अस्पताल की नर्स टैरी और ऐमी निस्वार्थ भाव से मरीजों की देखभाल करती हैं और आपस में अन्य वृद्धाओं का दर्द भी बतियाती हैं, जो कई महीनों से कोमा में पड़े मिसेज वर्मा की आँखों के कोरों से बह निकलता है। यह कहानी भारतीय परिप्रेक्ष्य हो पाश्चात्य, वृद्धा-विमर्श के लिए पाठक को विवश करती है।

‘वह कोई और थी’ कहानी पुरुष-विमर्श पर आधारित है। यदि पत्नी पति से पीड़ित हो सकती है तो पति भी पत्नी से पीड़ित हो सकता है। जहाँ सत्ता बदलती है शोषण का रूप और आश्रय भी बदलता है। इसलिए स्त्री-विमर्शियों ने पितृसत्ता का उल्टा मातृसत्ता नहीं कहा, बल्कि समानता कहा है। प्रवासी भारतीय जहाँ पाश्चात्य संस्कृति में घुलने-मिलने का निरंतर प्रयास कर रहे हैं; वहीं अपनी भारतीय जड़ों को भुला नहीं पा रहे। यदि जड़ों की संस्कृति भारतीयों पर पाश्चात्य में भी हावी है, तब तो वे संस्कृति का विकृत कॉकटेल नहीं बनते अन्यथा परिणाम घातक होता है। इसी विकृत कॉकटेल को प्रस्तुत करती यह कहानी प्रत्येक भारतीयों को सीख दे जाती है कि अपनी मजबूरियों को किसी कमजोर हाथों में मत सौंपें; जो तुम्हें और भी कमजोर बना दे या फायदा उठाये। एक ओर जहाँ भारतीय स्त्रियों से विवाह कर एन.आर.आई. उन्हें आजीवन रोने-बिलखने हेतु देश में ही छोड़ जाते हैं, वहीं दूसरी ओर धन कमाने की इच्छा और ग्रीन कार्ड पाने की ललक पुरुष को आजीवन पाश्चात्य संस्कृति के विकृत परिवार के कारावास में रहने को विवश कर सकते हैं। अभिनंदन वत्स प्रवासी सपना से विवाह तो कर लेता है, पर विवाह के पूर्व उसके ओढ़े हुए शिष्ट और सुसंस्कृत मुखौटे को पहचान नहीं पाता। वह अपने प्रति हो रहे अन्याय का विरोध करना चाहता है पर उसकी मजबूरियाँ अन्याय सहने के लिए विवश

कर देती हैं। किंतु लगातार हो रहे अन्याय से अभिनंदन के सब्र का बाँध टूट जाता है वह कहता है—‘यह धौंस किसी और को देना। अपना ग्रीनकार्ड भी किसी और लड़के के लिए सुरक्षित रखना। मुझे तुमसे कुछ नहीं चाहिए। मैंने तुमसे इसके लिए शादी नहीं की थी। हाँ जिस लड़की को मैंने पसंद किया था, वह कोई और थी, तुम नहीं...।’ (कमरा नंबर 103. पृ. 54.)

बलात्कार के आरोपी को सजा मिलना न्यायसंगत है, किंतु जब बलात्कार हुआ ही न हो फिर भी सजा मिल जाये, वह कितना घातक हो सकता है ? जाति-धर्म के नाम पर साजिशों तहत बलात्कार का आरोप में पिसते डॉ. जशन की कहानी है शृश्य भ्रम’। “मनोवैज्ञानिकों की राय में, यह उनका अपराधबोध है, जो उनके अवचेतन में घर बना चुका है और रात भर की गहरी नींद से ढील पड़े मस्तिष्क के स्नायुओं से मुक्त होकर, अवचेतन में बनाए घर से, उस बच्चे-सा, दबे पाँव निकल आता है, जो अपने माँ-बाप को घर में सोता छोड़, चुपके से बाहर खेलने भाग जाता है। उनकी बेचौनी का कारण वह राज है, जो उन्होंने अपने भीतर, कहीं गहरे दबाया हुआ है, जिसकी तह तक मनोवैज्ञानिकों को वह पहुँचने नहीं देते। वहाँ पहुँचे बिना, डॉक्टर उनका उपचार नहीं कर सकते ? वे क्षण डॉ. जशन के जीवन के साथ चुंबक की तरह चिपक गए हैं। उन क्षणों से वह छूट नहीं पा रहे और वे पल उन्हें छोड़ भी नहीं रहे”। (कमरा नं 103. पृ. 55.)

डॉ. जशन जानते हैं कि वे बलात्कारी नहीं हैं, फिर भी जो आरोप उनपर लगाया गया और उन्हें देश छोड़ना पड़ा उस आरोप के शर्मिन्दा और पलायन के भय से वे हर क्षण मरते हैं जिसे चिकित्सा की भाषा में स्क्रिप्सोफीनिया कहते हैं। लेखिका अपने चिकित्सकीय ज्ञान के कारण कहानी को पिराने और समापन में सफल भूमिका निभाती हैं। डॉ. जशन को मात्र इतना याद था कि स्वेच्छा से इरा के समर्पण आवेगों में बह गए थे, किन्तु उन्हें यह याद नहीं कि यह प्रेमावेश कैसे बलात्कार बन जाता है। क्या यह बलात्कार जातिवाद नहीं, क्या यह बलात्कार अंधाधर्म नहीं जो प्रेमियों को अलग करने हेतु कोई भी तरीका अपना लेता है ? और उन्हें आजीवन गहरे सदमें ढकेल देता है। डॉ. जशन की दादी ने निचली जाति की इरा से विवाह के डर से अपने ही पोते पर बलात्कार का आरोप लगा उसे डरा कर अमेरिका भेज देती है, जिसके कारण डॉ. जशन अपराधबोध से मानसिक रोग के शिकार हो जाते हैं तथा यदि इरा जशन को ढूँढने नहीं आती तो यह अपराधबोध कभी समाप्त नहीं होता, यह दृश्य भ्रम सदैव डॉ. जशन के जीवन में नासूर बनकर चुभता रहता।

कर्मठ व्यक्ति के लिए सूरज का उदय और अस्त जीवन को गतिमान बनाने हेतु आवश्यक है, किंतु कार्यों के लिए सूरज का अस्त ही सुखदायक होता है उदय नहीं, क्योंकि सूरज डूबने के साथ ही भीख माँगने, बेरोजगारी और आजीविका जुटाने से छुटकारा मिल जाता है। रात को सड़कें अपनी फुटपाथ की बाँहें फैला उन्हें निद्रा का सुख प्रदान करती हैं, जिसपर मात्र इनका ही अधिकार होता है। सुबह होते ही फुटपाथ और सड़कों से इनका एकमात्र अधिकार भी छिन ही नहीं जाता, बल्कि दुत्कारे भी जाते हैं। किसी विवशतावश फुटपाथ पर सोना करुणामय होता है किंतु अकर्मण्य व्यक्ति सहानुभूति अर्जित नहीं कर पाते। इन्हीं सहानुभूतियों से दूर, भीख माँगने के धंधे से उकताए और शराब में डूबे अकर्मण्य तथा फुटपाथ से दुत्कारे गए लोगों की कहानी है—‘सूरज क्यों निकलता है’।

इस कहानी के पात्र पीटर और जेम्स प्रेमचंद की कफन कहानी के घीसू और माधव

की याद दिलाते हैं, जो आधुनिक युग में रूप बदलकर अमेरिका के सड़कों पर गते लेकर भीख माँगते नजर आते हैं। भीख न मिलने पर आर्थिक मंदी पर चर्चा करना और रात में क्लब में जाकर सुरा-सुंदरी के साथ ऊधम मचाना। इनके लिए रात ही वह खूबसूरत पल है; जहाँ भीख माँगने के धंधे से छुटकारा पाकर नशे में ऐशो-आराम की जिन्दगी जीते हैं। यह आराम महिलाओं के साथ डांस करने से लेकर क्लब के बाहर सिक्स्योरिटी गार्ड द्वारा फेंके जाने और सुबह होने तक होता है, तत्पश्चात् सूरज निकलते ही सफ़ाई के सिक्स्योरिटी गार्ड द्वारा दुत्कारकर भगाये जाने की प्रक्रिया इनके लिए दुखदायक होता है कि सूरज क्यों निकलता है? पात्रों के आधुनिकीकरण में यह अन्तर प्रतीत होता है कि कहानी के पात्रों की स्थिति प्रेमचंद के घीसू और माधव से थोड़ी अच्छी है, कम से कम ये भीख तो माँगते हैं। जिस प्रकार घीसू-माधव पर दया करके गाँववाले कफन के लिए चंदा देते हैं, जिसे वे शराब के लिए उड़ा ले जाते हैं, उसी प्रकार पीटर और जेम्ज भीख माँगे हुए पैसे से क्लब जाते हैं, क्योंकि यह शहरी परिवेश है; यहाँ पर मुफ्त में कोई चंदा भी नहीं देगा। कहानी का आधुनिकीकरण और लालित्य तब उत्पन्न होता है जब उनके साथ नाचने वाली महिलाएँ लौरा और सहरा इनका पैसा उड़ा ले जाती है। घीसू माधव को काम मिलता नहीं इसलिए वे अकर्मण्य है और वे काम करना भी नहीं चाहते, क्योंकि उनके पास बुधिया है, ये अकर्मण्य हैं, इनके पास सरकारी सहायता है; जो गरीबीरेखा से नीचे के लोगों को दी जाती है। फूड स्टेम्स। इनकी अकर्मण्य माँ टैरी, इनकी रोल मॉडल है; जो हर साल मशीन की तरह बच्चों का पालन-पोषण हेतु वेलयफेयर से पैसा लेकर बच्चा पैदा करती है, और फिर उस पैसे से बिंदास जीवन यापन करती है। पीटर और जेम्ज भी काम नहीं करना चाहते, भीख माँग कर और फूड स्टेम्स बेचकर जो पैसा इकट्ठा होता है; उससे शराब और शबाब चाहते हैं। सोने के लिए ये दोनों भाई शेल्टर होम चले जाते हैं और खाना बेघर लोगों की रसोई से खा कर अपनी फूड स्टेम्स बचा लेते हैं, ताकि उन्हें बेच सकें।

उत्तरआधुनिकता के दौर में जहाँ एक ओर सुनामी, केटरिना आदि विभिन्न प्रकार के तुफान आते हैं और शहर के शहर तबाह हो जाते हैं वहीं दूसरी ओर समाज में उत्तरआधुनिकता की विकृति के फलस्वरूप टारनेडो आता है जिसमें देश, समाज और परिवार बिखर जाता है। भारतीय दृष्टि से नैतिकता-अनैतिकता, मर्यादा-मर्यादाहीन, संस्कृति-कूसंस्कृति, संस्कार-संस्कारहीनता की सीमा में बंधे दो परिवारों की कहानी है-‘टारनेडो’। जो अमेरिका के धरातल पर घटित होता है।

प्रवासी भारतीयों का अति तीव्र गति से पाश्चात्य का नकल कर लेना और तत्काल सब-कुछ पाने की चाह क्या टारनेडो नहीं है, जिसमें आनेवाली भावी पीढ़ी बिखरकर रह जाती है, जिसे समेटने के होश आते ही सब-कुछ हाथ से निकल चुका रहता है? स्वच्छंदता और स्वेच्छाचारिता के मध्य पतली लकीर ही क्या टारनेडो नहीं है, जो परिवार में गहरी दरार डाल देती है, जिसे भरना युगों-युगों तक संभव ही नहीं? भारतीय संस्कार और पाश्चात्य संस्कारों का संक्रमण क्या टारनेडो नहीं है, जो ‘घर का न घाट की’ स्थिति को स्वभावतः जन्म दे देता है?

जैनेफर ने अपने पति की मृत्यु के पश्चात् सच्चे जीवनसाथी की तलाश में अनेक पुरूषों के साथ डेट की किन्तु उसे सच्चा प्रेम केलब में नजर आया इस बात से अंजान कि उसकी नजर उसकी बेटी क्रिस्टी पर भी है। क्रिस्टी के संकेत करने के पश्चात् भी प्रेम में अंधी जैनेफर को उसे अपनी बेटी से अलग कर देता है। क्रिस्टी अपनी माँ और उसके ब्वॉयफ्रेंड से डरी-सहमी

अपनी दोस्त सोनल की माँ वंदना के आश्रय में रहने लगी। वंदना अपने पति की मृत्यु के पश्चात् जिन्दगी के उतार-चढ़ाव को हृदय की गहराइयों से आत्मसात कर चुकी है, वह एक सुलझी हुई महिला है और समझदारी के साथ सोनल और क्रिस्टी को सँभालती भी है। इस कहानी के दो पहलू हैं ख एक, प्रायः युवा पीढ़ी या किशोरावस्था के बच्चों को संक्रमण का शिकार होते हुए दिखाया जाता है, किंतु यहाँ उम्र के परिपक्व पड़ाव पर माँ को समाज और संस्कृति से संक्रमित दिखाया गया है, जिसका परिणाम चाइल्ड एब्यूज के रूप में सामने आया है। दूसरा, स्त्री-विमर्श का सशक्त और विकृत दोनों ही रूप दृष्टिगत हुआ है। सशक्त वंदना का रूप है, जिसमें भटकाव नहीं स्थिरता है। वह सुख-दुःख से परे आने वाली पीढ़ी, परिवार के विषय में भी सोचती है, जिसे उत्तरआधुनिक स्त्रीवाद स्वीकार करता है। विकृत रूप जैनेफर का है, जो स्वच्छंदता और स्वेच्छाचारिणी होने के कारण अन्य व्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन कर जाती है। डॉ० गोविंदचंद्र पांडेय के अनुसार—‘स्वतंत्रता का अर्थ निरपेक्ष स्वतंत्रता नहीं है। स्वतंत्रता के लिए विवेक का जाग्रत रहना बहुत आवश्यक है। विवेक के समाप्त हो जाने पर मनुष्य उच्छृंखल और समाज विरोधी हो सकता है। मनुष्य अपने विवेक के अनुसार अपने को बना सके, अपने आदर्शों का अनुसरण कर सके, अपने व्यक्तित्व का विकास अपनी मूल्य चेतना के अनुसार कर सके, इसलिए इसे स्वतंत्र होना चाहिए’। (डॉ० हरीश सेठी, जीवनमूल्य विमर्श, पृ. 176. (मूल्य मीमांसा, डॉ० गोविंदचंद्र पांडेय, पृ० 115)

दोनों ही पहलू जीवन में तूफान की स्थिति पैदा करते हैं और क्रिस्टी पलायन की ओर उन्मुख हो जाती है।

निष्कर्षतः, इस कहानी-संग्रह की सभी कहानियाँ मनोवैज्ञानिक हैं तथा लेखिका के मनोवैज्ञानिक ज्ञान के कारण इनकी कहानियाँ जैनेंद्र, अज्ञेय और सुनिता जैन की कहानियों से अलग दृष्टिगत होती हैं। जहाँ एक ओर पवन किरण और अनामिका की ब्रेस्ट कैंसर की कविताओं पर विवाद उठा था कि चिकित्सा को साहित्य से अलग रखा जाए और इन कविताओं में संवेदना की कमी है अथवा इन्हें स्त्री-विमर्श के अंतर्गत न रखा जाय क्योंकि वे कविताएँ पुरुष दृष्टि से लिखी हुए नजर आती हैं, वहीं सुधा ओम ढींगरा की कहानियाँ किसी एक दृष्टि पर खरे ही नहीं उतरतीं बल्कि समाज, परिवेश, संस्कृति, नैतिकता, मर्यादा, संस्कारों आदि की बहुमुखी पहलुओं पर विचरण करते हुए कथा में एक नई उर्जा प्रवाहित कर देती हैं। कथा की संवेदना पाठक के मानस पटल पर स्थाई रूप अंकित होने में सक्षम हैं। भावुकता से परे सहज गति से प्रवाहित अमेरिका के सम्पुट में भारतीयता का पुट लिए परायेपन के बोध में अपने देशप्रेम को जीवित रखते हुए ये मनोवैज्ञानिक कहानियाँ हिंदी डायस्पोरा में अद्वितीय हैं।

फैकल्टी एसोसिएट, हिंदी विभाग
गौतमबुद्ध विश्वविद्यालय
यमुना एक्सप्रेस-वे, नियर कासना
गौतमबुद्ध नगर, ग्रेटर-नोएडा (उ.प्र.) २०१३१२
ई-मेल—renuyadav0584@gmail.com

कमरा नं० 103 (कहानी-संग्रह), सुधा ओम ढींगरा, प्रकाशक : हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहारए बिजनौर (उ०प्र०), मूल्य सजिल्द 150 रुपए

हिंदी साहित्य निकेतन

महत्त्वपूर्ण कोश एवं संदर्भ ग्रंथ

● निश्तर खानकाही एवं डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल गज़ल और उसका व्याकरण	250.00
● डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ० मीना अग्रवाल हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश : भाग-1	495.00
हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश : भाग-2	700.00
शोधसंदर्भ- भाग-1	500.00
शोधसंदर्भ- भाग-2	550.00
शोधसंदर्भ- भाग-3	525.00
शोधसंदर्भ- भाग-4	595.00
शोधसंदर्भ- भाग-5	895.00
हिंदी तुकांत कोश	300.00
शोध अंक भाग-1	100.00
शोध अंक भाग-2	100.00
शोध अंक भाग-3	100.00
शोध अंक भाग-4	100.00
शोध अंक भाग-5	100.00
शोध अंक भाग-6	100.00
शोध अंक भाग-7	100.00
शोध अंक भाग-8	100.00
शोध अंक भाग-9	100.00
शोध अंक भाग-10	100.00
शोध अंक भाग-11	100.00
शोध अंक भाग-12	100.00
शोध अंक भाग-13	100.00
शोध अंक भाग-14	100.00
शोध अंक भाग-15	100.00
शोध अंक भाग-16	100.00
शोध अंक भाग-17	150.00
शोध अंक भाग-18	200.00
शोध अंक भाग-19	200.00

शोध अंक भाग-20	200.00
शोध अंक भाग-21	200.00
शोध अंक भाग-22	200.00

समीक्षा एवं समालोचना

सवाल साहित्य के • डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
डॉ. कुँअर बेचैन के साहित्य में प्रतीक विधान • डॉ. अंजु भटनागर	500.00
मृदुला गर्ग कृत अनित्य : इतिहास और आख्यान का संबंध • डॉ. ज्योति सिंह	150.00
मृदुला गर्ग और नारी-अस्मिता का प्रश्न • डॉ. ज्योति सिंह	300.00
काका हाथरसी : एक समीक्षा-यात्रा • डॉ. मिथिलेश माहेश्वरी	300.00
सांप्रदायिकता और हिंदी कथासाहित्य • डॉ. मनोजकुमार	250.00
अपनी कविताओं में अशोक चक्रधर • डॉ. दीपा के	250.00
आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य में संगीत (पुरस्कृत) • डॉ. मीना अग्रवाल	450.00
डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल : व्यक्ति और साहित्य • डॉ. हरीशकुमार सिंह	350.00
डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल का व्यंग्य-साहित्य : कथ्य एवं भाषा • डॉ. वी. जयलक्ष्मी	450.00
साठोत्तरी हिंदी-गज़ल : डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल का योगदान • डॉ. अनिलकुमार शर्मा	350.00
एक साक्षात्कार : पं. अमृतलाल नागर के साथ • डॉ. शंकर क्षेम	150.00
गज़ल : सौंदर्य और यथार्थ • अनिरुद्ध सिन्हा	150.00
समय के हस्ताक्षर (हिंदी के आधुनिक कवि) • डॉ. ज्योति व्यास	150.00
कालिदास के साहित्य में भौगोलिक तत्त्व • डॉ. लालबहादुर रावल	300.00
जनपद बिजनौर के आधुनिककालीन साहित्यकार • डॉ. अशोककुमार	350.00
बिजनौर क्षेत्र की ग्रामोद्योग-संबंधी शब्दावली का अध्ययन • डॉ. ओमदत्त आर्य	500.00
आस्थावाद एवं अन्य निबंध • डॉ. मिथिलेश दीक्षित	300.00
साहित्य और संस्कृति • डॉ. मिथिलेश दीक्षित	300.00
हिंदी व्यंग्य-निबंध : स्वतंत्रता के बाद • डॉ. आशा रावत	350.00
आज़ादी के बाद का हिंदी गद्य व्यंग्य • डॉ. प्रेम जनमेजय	500.00
हिंदी बालकाव्य के विविध पक्ष • विनोदचंद्र पांडेय	300.00
हिंदी बालसाहित्य : डॉ. सुरेंद्र विक्रम का योगदान • डॉ. स्वाति शर्मा	450.00
वादविवाद प्रतियोगिता : पक्ष और विपक्ष • डॉ. गिरिराजशरण, डॉ. मीना अग्रवाल	200.00
फिजी में प्रवासी भारतीय • डॉ. शुचि गुप्ता	300.00
मुक्तिबोध का रचना-संसार • डॉ. शिवशंकर लधवे	200.00
भीष्म साहनी का कथासाहित्य : सांप्रदायिक सद्भाव • डॉ. पी.आर. वासुदेवन	300.00
हिंदी ब्लॉगिंग : अभिव्यक्ति की नई क्रांति • अविनाश वाचस्पति, रवींद्र प्रभात	495.00
हिंदी ब्लॉगिंग का इतिहास • रवींद्र प्रभात	300.00

साठोत्तरी हिंदी रेखाचित्र : शैलीवैज्ञानिक अध्ययन • डॉ० मीनल रश्मि	250.00
सिनेमा, साहित्य और संस्कृति • नवलकिशोर शर्मा	150.00
हिंदी सिनेमा में दांपत्य-संबंध • डॉ० चंद्रकांत मिसाल	450.00
डॉ० महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (गीत खंड) • डॉ० आदित्य प्रचण्डिया	700.00
डॉ० महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (दोहा खंड) • डॉ० आदित्य प्रचण्डिया	700.00
अमरकांत का कथासाहित्य • डॉ० योगेश पाटिल	450.00
नारी-समस्याओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन • डॉ० अनुभूति भटनागर	450.00
हास्य-व्यंग्य	
मेरी हास्य-व्यंग्य कविताएँ • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	150.00
मेरे इक्यावन व्यंग्य • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	300.00
चुनी हुई हास्य कविताएँ • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	250.00
मंचीय व्यंग्य एकांकी • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
बाबू झोलानाथ • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	60.00
राजनीति में गिरगिटवाद • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	100.00
आदमी और कुत्ते की नाक • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	150.00
भज्जी का जूता • महेशचंद्र द्विवेदी	150.00
क्विलयर फंडा • महेशचंद्र द्विवेदी	120.00
प्रिय-अप्रिय प्रशासकीय प्रसंग • महेशचंद्र द्विवेदी	170.00
काका की विशिष्ट रचनाएँ • काका हाथरसी	300.00
काका के व्यंग्य-बाण • काका हाथरसी	200.00
कक्के के छक्के • काका हाथरसी	200.00
लूटनीति मंथन करी • काका हाथरसी	200.00
खिलखिलाहट • काका हाथरसी	200.00
वसीयतनामा • पं० सूर्यनारायण व्यास, सं० राजशेखर व्यास	150.00
पैसे कहाँ से दें • डॉ० आशा रावत	200.00
चाहिए एक और भगतसिंह • डॉ० आशा रावत	100.00
नमस्कार प्रजातंत्र • महेश राजा	150.00
ए जी सुनिए • अशोक चक्रधर	100.00
इसलिए बौद्धम जी इसलिए • अशोक चक्रधर	100.00
चुटपुटकुले • अशोक चक्रधर	60.00
तमाशा • अशोक चक्रधर	60.00
सो तो है • अशोक चक्रधर	60.00
हँसो और मर जाओ • अशोक चक्रधर	60.00
नमस्ते जी • डॉ० बलजीत सिंह	150.00
अब हँसने की बारी है • डॉ० बलजीत सिंह	200.00
अजगर करे न चाकरी • बाबूसिंह चौहान	200.00

दूध का धुला लोकतंत्र • गोपाल चतुर्वेदी	150.00
सच का सामना • हरीशकुमार सिंह	150.00
• डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	
1995 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	65.00
1996 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	100.00
1997 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	100.00
1998 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	100.00
1999 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	120.00
2002 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	150.00
2003 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	150.00
2004 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	170.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कहानियाँ	200.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कविताएँ	200.00
पिछले दशक के श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य एकांकी	200.00
शिवशर्मा के चुने हुए व्यंग्य • डॉ० शिव शर्मा	50.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) • डॉ० शिव शर्मा	150.00
अपने-अपने भस्मासुर • डॉ० शिव शर्मा	150.00
प्रतिनिधि व्यंग्य • दामोदरदत्त दीक्षित	100.00
धमकीबाषी के युग में • निशतर खानकाही	60.00
नो टेंशन • डॉ० सुरेश अवस्थी	170.00
ला खर्चा निकाल • गजेंद्र तिवारी	200.00
जलनेवाले जला करें • गजेंद्र तिवारी	60.00
ये है इंडिया • डॉ० हरीशकुमार सिंह	120.00
आँखों देखा हाल • डॉ० हरीशकुमार सिंह	150.00
लिफ्ट करा दे • डॉ० हरीशकुमार सिंह	200.00
देवेंद्र के कार्टून • देवेंद्र शर्मा	80.00
कार्टून कौतुक • देवेंद्र शर्मा	120.00
लिफ्राफ़े का अर्थशास्त्र • डॉ० पिलकेंद्र अरोरा	120.00
पेट में दाढ़ियाँ हैं • सूर्यकुमार पांडेय	100.00

कहानी

जिज्ञासा और अन्य कहानियाँ • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
छोटे-छोटे सुख • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
कथा जारी है • बाबूसिंह चौहान	150.00
इक्कीस कहानियाँ • सत्यराज	100.00
अंदर धूप बाहर धूप (नारी-मन की कहानियाँ) • डॉ० मीना अग्रवाल	150.00
उत्तराखंड की लोकगाथाएँ • डॉ० दिनेशचंद्र बलूनी	200.00

एक बौना मानव • महेशचंद्र द्विवेदी	100.00
लव जिहाद • महेशचंद्र द्विवेदी	200.00
हैं आस्माँ कई और भी • नीरजा द्विवेदी	200.00
कौन कितना निकट • रेणु 'राजवंशी' गुप्ता	120.00
लघु कथाएँ • डॉ० हरिशरण वर्मा	150.00
कमरा नंबर 103 • सुधा ओम ढींगरा	150.00
इमराना हाज़िर हो • महेशचंद्र द्विवेदी	150.00
कहानियाँ अमेरिका से • सं० इला प्रसाद	150.00
कुत्तेवाले पापा • मीना अग्रवाल	150.00
प्रेमचंद की कालजयी कहानियाँ • सं० डॉ० कमलकिशोर गोयनका	150.00
लघुकथाएँ मानव-जीवन की • सं० सुकेश साहनी, रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु'	150.00

उपन्यास

इतिहास की आवाष • राजेन्द्र मिश्र	450.00
अनोखा उपहार • श्रीमती सुषमा अग्रवाल	200.00
आसरा • श्रीमती सुषमा अग्रवाल	100.00
तीन बीघा षमीन • श्रीमती सुषमा अग्रवाल	200.00
मन के जीते जीत • श्रीमती सुषमा अग्रवाल	200.00
कालचक्र से परे • श्रीमती नीरजा द्विवेदी	200.00
भीगे पंख • महेशचंद्र द्विवेदी	200.00
मानिला की योगिनी • महेशचंद्र द्विवेदी	200.00
और लहरें उफनती रहीं • डॉ० तारादत्त निर्विरोध	200.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) • डॉ० शिव शर्मा	150.00
अराज-राज • डॉ० मोहन गुप्त	200.00
सुराज-राज • डॉ० मोहन गुप्त	350.00
एक गुमनाम फौजी की डायरी • डॉ० आशा रावत	150.00
एक चेहरे की कहानी • डॉ० आशा रावत	150.00
गुरुदक्षिणा (व्यंग्य-उपन्यास) • डॉ० आशा रावत	100.00
इतिहास की आवाज़ • डॉ० राजेन्द्र मिश्र	450.00

एकांकी-नाटक

• डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	
मंचीय व्यंग्य एकांकी	200.00
बच्चों के हास्य नाटक	200.00
बच्चों के रोचक नाटक	200.00
बच्चों के शिक्षाप्रद नाटक	200.00
बच्चों के अनुपम नाटक	200.00

बच्चों के उत्तम नाटक	200.00
भारतीय गौरव के बाल-नाटक	200.00
प्रेमचंद की कहानियों पर आधारित नाटक	200.00
ग्यारह नुक्कड़ नाटक	200.00
नीली आँखें	60.00
संसार : एक नाट्यशाला • बाबूसिंह चौहान	150.00
ग्यारह एकांकी • डॉ० हरिशरण वर्मा	200.00
दमन • रामाश्रय दीक्षित	100.00
स्वप्न पुरुष • डॉ० उर्मिला अग्रवाल	150.00
अफलातून की अकादमी • डॉ० शिव शर्मा	150.00

ललित निबंध एवं रेखाचित्र

कैसे-कैसे लोग मिले • निश्तर खानकाही	125.00
यादों का मधुवन • कृष्ण राघव	150.00
समय के चाक पर • डॉ० लालबहादुर रावल	125.00
समय एक नाटक • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	160.00
दर्पण झूठ बोलता है • बाबूसिंह चौहान	60.00
मकड़जाल में आदमी • बाबूसिंह चौहान	80.00
उफनती नदियों के सामने • बाबूसिंह चौहान	100.00
पीठ पर नील गगन • बाबूसिंह चौहान	100.00
इन दिनों समर में (प्रकाशनाधीन) • डॉ० कृष्णकुमार रत्नू	250.00
अनुभव के पंख • चंद्रवीरसिंह गहलौत	250.00

गीत-गुजल

निश्तर खानकाही समग्र (प्रकाशनाधीन)/ निश्तर खानकाही	500.000
ग़षल मैंने छेड़ी (ग़ज़ल-संग्रह)/ निश्तर खानकाही	80.00
ग़षलों के शहर में (ग़ज़ल-संग्रह)/ निश्तर खानकाही	200.00
मेरे लहू की आग (ग़ज़ल-संग्रह)/ निश्तर खानकाही	150.00
कोई आवाष देता है • डॉ० कुँअर बेचैन	150.00
दिन दिवंगत हुए • डॉ० कुँअर बेचैन	150.00
कुँअर बेचैन के नवगीत • डॉ० कुँअर बेचैन	200.00
कुँअर बेचैन के प्रेमगीत • डॉ० कुँअर बेचैन	150.00
पर्स पर तितली (हाइकु) • डॉ० कुँअर बेचैन	200.00
अक्षर हूँ मैं (कविताएँ) • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	150.00
सन्नाटे में गूँज (ग़ज़ल-संग्रह) • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
भीतर शोर बहुत है (ग़ज़ल-संग्रह) • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00

मौसम बदल गया कितना (ग़ज़ल-संग्रह) ● डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
रोशनी बनकर जिओ (ग़ज़ल-संग्रह) ● डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
शिकायत न करो तुम (ग़ज़ल-संग्रह) ● डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
आदमी है कहाँ (ग़ज़ल-संग्रह) ● डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
प्रतिनिधि ग़ज़लें ● डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
मातृभूमि के लिए ● रमेश पोखरियाल 'निशंक'	200.00
संघर्ष जारी है ● रमेश पोखरियाल 'निशंक'	170.00
जीवन-पथ में ● रमेश पोखरियाल 'निशंक'	150.00
देश हम जलने न देंगे ● रमेश पोखरियाल 'निशंक'	150.00
तुम भी मेरे साथ चलो ● रमेश पोखरियाल 'निशंक'	150.00
उजियारा आशाओं का ● तारा प्रकाश	150.00
बुलंदी इरादों की ● तारा प्रकाश	150.00
चलने से मंथिल मिलती है ● तारा प्रकाश	200.00
इंद्रधनुष ● तारा प्रकाश	200.00
संवेदनाओं के रंग ● तारा प्रकाश	200.00
तारा प्रकाश समग्र ● तारा प्रकाश	600.00
शमा हर रंग में जलती है ● रामेश्वरप्रसाद	150.00
आदमी के हक़ में (ग़ज़ल-संग्रह) ● रामगोपाल भारतीय	100.00
यहाँ तक वहाँ से (कविताएँ) ● रमेश कौशिक	200.00
हास्य नहीं व्यंग्य (कविताएँ) ● रमेश कौशिक	150.00
गांधारी का सच (खंडकाव्य) ● आर्यभूषण गर्ग	200.00
राधेय (खंडकाव्य) ● डॉ० आकुल	120.00
असित चंद्र : अवदात चंद्रिका (काव्य-नाटक) ● डॉ० आकुल	120.00
ज़िदगी गाती तो है/(ग़ज़ल-संग्रह) ● डॉ० आकुल	120.00
आसमान मेरा भी है (ग़ज़ल-संग्रह) ● किशनस्वरूप	100.00
बूँद-बूँद सागर में (ग़ज़ल-संग्रह) ● किशनस्वरूप	100.00
आँचल-आँचल खुशबू (ग़ज़ल-संग्रह) ● कर्नल तिलकराज	100.00
ज़ख़्म खिलने को हैं (ग़ज़ल-संग्रह) ● कर्नल तिलकराज	100.00
हिरना लौट चलें (गीत-संग्रह) ● शचींद्र भटनागर	150.00
तिराहे पर (ग़ज़ल-संग्रह) ● शचींद्र भटनागर	150.00
ढाई आखर प्रेम के (गीत-संग्रह) ● शचींद्र भटनागर	200.00
अखंडित अस्मिता (मुक्तक) ● शचींद्र भटनागर	200.00
सुरों के ख़त ● अश्विनीकुमार 'विष्णु'	100.00
सुनहरे मंत्र का जादू ● अश्विनीकुमार 'विष्णु'	100.00
सुनाते हुए ऋतुगीत ● अश्विनीकुमार 'विष्णु'	150.00
सुबह की अंगूठी ● अश्विनीकुमार 'विष्णु'	150.00

सफ़र में साथ-साथ (मुक्तक-संग्रह) ● डॉ० मीना अग्रवाल	150.00
जो सच कहे (हाइकु-संग्रह) ● डॉ० मीना अग्रवाल	150.00
यादें बोलती हैं (कविताएँ) ● डॉ० मीना अग्रवाल	200.00
गुलमुहर की छाँव में (ग़ज़ल-संग्रह) ● मनोज अबोध	100.00
मेरे भीतर महक रहा है (ग़ज़ल-संग्रह) ● मनोज अबोध	150.00
अग्निसुता ● राजेंद्र शर्मा	150.00
सीतायनी ● डॉ० शंकर क्षेम	150.00
एक मुट्ठी धूप ● नीरजा सिंह	100.00
कटे हाथों के हस्ताक्षर ● डॉ० कमल मुसद्दी	150.00
फ़ासले मिट जाएँगे (ग़ज़ल-संग्रह) ● डॉ० बलजीत सिंह	150.00
शब्द-शब्द संदेश (दोहे) ● डॉ० बलजीत सिंह	150.00
जीवन है मुस्कान (दोहे) ● डॉ० बलजीत सिंह	150.00
भीतर का संगीत (दोहे) ● डॉ० बलजीत सिंह	200.00
सुख के बिरवे रोप (दोहे) ● डॉ० बलजीत सिंह	200.00
इंद्रधनुष के रंग (दोहे) ● डॉ० बलजीत सिंह	200.00
बहती नदी हो जाइए (ग़ज़लें) ● डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	150.00
औंधियारों से लड़ना सीखें (ग़ज़लें) ● डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	200.00
जीवन-अमृत : पर्यावरण चेतना (दोहा-संग्रह) ● डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	200.00
अक्षर-अक्षर हो अमर (दोहा-संग्रह) ● डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	200.00
वैदुष्यमणि विद्योत्तमा (खंडकाव्य) ● डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	200.00
अनजाने आकाश में ● महेशचंद्र द्विवेदी	170.00
बातें कुछ अनकही ● सत्येंद्र गुप्ता	200.00
मैंने देखा है ● सत्येंद्र गुप्ता	200.00
हौसला तो है ● सत्येंद्र गुप्ता	200.00
षिंदगी रुकती नहीं ● सत्येंद्र गुप्ता	200.00
जष्वात की धूप ● धूप धौलपुरी	250.00
मैं एक समुद्र ● डॉ० तारादत्त 'निर्विरोध'	200.00
आड़ी-तिरछी यादों-सा कुछ ● नवलकिशोर शर्मा	180.00
जब चाँद डूब रहा था ● नवलकिशोर शर्मा	200.00
एड्स शतक ● पूरणसिंह सैनी	150.00
श्रीगोगाचरित (महाकाव्य) ● पूरणसिंह सैनी	300.00
खोजें जीवन सत्य (दोहे) ● डॉ० ओमदत्त आर्य	150.00
अपनी एक लकीर (दोहे) ● डॉ० ओमदत्त आर्य	200.00
राष्ट्र-शक्ति ● सलेकचंद संगल	150.00
माँ तुझे प्रणाम ● सलेकचंद संगल	150.00
लहरों के विरुद्ध ● डॉ० रामप्रकाश	200.00

हर वृक्ष महाबोधि नहीं होता • महेंद्र कुमार	200.00
समय के भूगोल में • राजेंद्र मिश्र	200.00
असाबिया • राजेंद्र मिश्र	200.00
पीड़ा का राजमहल • डॉ० उर्मिला अग्रवाल	200.00
उड़ान जारी है • विनोद भृंग	200.00
सूर्यनगर की चाँदनी • रामेश्वर वैष्णव	150.00
कहता कुछ मौन (हाइकु-संग्रह) • हरिराम पथिक	200.00
डॉ० महेंद्रसागर प्रचण्डिया समग्र (भाग एक) • सं० डॉ० आदित्य प्रचण्डिया	700.00
डॉ० महेंद्रसागर प्रचण्डिया समग्र (भाग दो) • सं० डॉ० आदित्य प्रचण्डिया	700.00
मान भी जा छुटकी • गीतिका गोयल	150.00
धनुषभंजक राम • चंद्रवीरसिंह गहलौत 'बेदाग'	200.00

आत्मकथा-संस्मरण, साक्षात्कार, पत्र

मेरा जीवन : ए-वन • काका हाथरसी	300.00
आत्मसरोवर • ओम्प्रकाश अग्रवाल	125.00
निष्ठा के शिखर-बिंदु • नीरजा द्विवेदी	200.00
सफ़र साठ साल का • डॉ० अजय जनमेजय (सं)	400.00
यादों की गुल्लक • गीतिका गोयल, डॉ० अनुभूति (संपादक)	300.00
आधी हक़ीक़त आधा फ़साना • डॉ० बलजीतसिंह	150.00
मेरे साक्षात्कार • डॉ० बालशौरि रेड्डी	250.00
संवाद : साहित्यकारों से • डॉ० गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैया'	200.00
उत्तरोत्तर • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल (संपादक)	250.00

बाल-साहित्य

धरती पर चाँद (पुरस्कृत) • शंभूनाथ तिवारी	150.00
हम बगिया के फूल (बालगीत) • डॉ० बलजीतसिंह	150.00
आओ गीत सुनाओ गीत (बालगीत) • डॉ० बलजीतसिंह	150.00
छुट्टी के दिन बड़े सुहाने (बालगीत) • डॉ० बलजीतसिंह	200.00
दिन बचपन के (बालगीत) • डॉ० बलजीतसिंह	200.00
जादूगर बादल (बालगीत) • विनोद भृंग	150.00
आटे-बाटे दही चटाके (शिशुगीत) • बालकृष्ण गर्ग	150.00
चुनमुन की कहानियाँ (पुरस्कृत) • गीतिका गोयल	150.00
किशोर मन की कहानियाँ • डॉ० सरला अग्रवाल	150.00
चलो आकाश को छू लें • डॉ० तारादत्त निर्विरोध	200.00
मानव-विकास की कहानी • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
पार्टी गेम्स • चाँदनी कक्कड़	125.00
कागज की नाव • डॉ० सरोजनी कुलश्रेष्ठ	150.00

विविध

सिनेमा, साहित्य और संस्कृति • नवलकिशोर शर्मा	150.00
उत्तराखण्ड में आध्यात्मिक पर्यटन • डॉ० सरिता शाह	200.00
• निश्तर खानकाही, डॉ० गिरिराजशरण, डॉ० मीना अग्रवाल	
पर्यावरण : दशा और दिशा (पुरस्कृत)	300.00
नारी : कल और आज	300.00
• निश्तर खानकाही, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	
विश्व आतंकवाद : क्यों और कैसे	125.00
हिंसा : कैसी-कैसी	200.00
• रमेशचंद्र दीक्षित, निश्तर खानकाही, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	
मानवाधिकार : दशा और दिशा (पुरस्कृत)	300.00
अपराध-अपराधी : अन्वेषण एवं अभियोजन • डॉ० गिरिराज शाह	200.00
गुरु नानकदेव • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
आप भी तनावमुक्त हो सकते हैं • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	250.00
वेद-वेदान्त दर्शन • डॉ० मूलचन्द दालभ	300.00
प्रकृति : एक ज्ञेय तत्त्व • डॉ० मूलचन्द दालभ	300.00
कन्हैया गीता • डॉ० मूलचन्द दालभ	900.00
टास्कफोर्स : हैल्थकेयर प्रोजेक्ट्स • डॉ० गोविंद शर्मा एवं रवि लंगर	450.00
सिद्धाश्रम का संन्यासी • मनोज भारद्वाज	300.00
समुद्री दैत्य सुनामी • डॉ० लालबहादुर रावल	300.00
Ecosystem in The Central Himalyas • Dr.Vikram Singh IPS	200.00

अपना आदेश निम्नलिखित पते पर भेजें

हिंदी साहित्य निकेतन

16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०)

फोन : 01342-263232, 0124-4076565,

09412712789, 07838090732